लघुसिद्धान्तकौमुदी

'श्रीधरमुखोल्लासिनी'-हिन्दीव्याख्यासमन्विता

व्याख्याकार:
गोविन्द प्रसाद शर्मा

सम्पादक:
आचार्य रघुनाथ शास्त्री

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

लघुसिद्धान्तकौमुदी

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

420

—※—

श्रीमद्विद्वद्वर-वरदराजाचार्यप्रणीता

लघुसिद्धान्तकौमुदी

श्रीधरमुखोल्लासिनी-हिन्दी-व्याख्यासमन्विता

(पदच्छेद, समास, अनुवृत्तिक्रम, सूत्रार्थ, भावार्थों का विशेष स्फोरण, विस्तृत हिन्दीव्याख्या, प्रयोगसिद्धि के साथ विशेष उदाहरण एवं अभ्यासार्थ प्रश्नावलीसहित)

भाग–3

व्याख्याकारः

गोविन्द प्रसाद शर्मा

(गोविन्दाचार्य)

सम्पादकः

आचार्य रघुनाथ शास्त्री

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : (0542)2335263

प्रथम संस्करण 2007 ई०
मूल्य : 1500.00 (1-3 भाग सम्पूर्ण)

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : (011)32996391 फैक्स: (011)23286537
ई-मेल : chaukhamba_neeraj@yahoo.com

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू.ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली 110007
दूरभाष : (011)23856391

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001
दूरभाष : (0542)2420404

मुद्रक

ए. के. लिथोग्राफर
दिल्ली

The
CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA
420

THE LAGHUSIDDHĀNTAKAUMUDĪ of SRĪ VARADARĀJĀCĀRYA

Vol.-3

Hindi Commentary by
GOVIND PRASAD SHARMA
(Govindacharya)
Edited by
ACHARYA RAGHUNATH SHASTRI

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
VARANASI

Publishers :
CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
K-37/117, Gopal Mandir Lane,
Post Box No. 1129, Varanasi-221001
Tel. : (0542)2335263

First Edition : 2007

Price : 1500.00 (1-3 part complete)

Also can be had from :
CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor
Gali No. 21-A, Ansari Road
Daryaganj, New Delhi 110002
Tel. : (011)32996391 Fax: (011)23286537
e-mail : chaukhamba_neeraj@yahoo.com

CHOWKHAMBA SANSKRIT PRATISTHAN
38 U.A. Bungalow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007
Tel. : (011)23856391

CHAUKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind to Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001
Tel. : (0542)2420404

Printed by
A.K. Lithographers, Delhi

विषयाणामनुक्रमः

३३.	कृदन्ते कृत्यप्रक्रिया	७७१
३४.	पूर्वकृदन्तम्	७८२
३५.	कृदन्ते उणादयः	८३४
३६.	उत्तरकृदन्तम्	८३७
३७.	विभक्त्यर्थाः	८६७
३८.	केवलसमासः	८८७
३९.	अव्ययीभावः	८९३
४०.	तत्पुरुषः	९१२
४१.	बहुव्रीहिः	९५१
४२.	द्वन्द्वः	९६९
४३.	समासान्ताः	९७८
४४.	साधारणतद्धितप्रत्ययाः	९८३
४५.	अपत्याधिकारः	९९१
४६.	रक्ताद्यर्थकाः	१०१२
४७.	चातुरर्थिकाः	१०२६
४८.	शैषिकाः	१०३३
४९.	विकारार्थकाः	१०६२
५०.	ठगधिकारः	१०६७
५१.	यदधिकारः	१०७४
५२.	छयतोऽधिकारः	१०७९
५३.	ठञधिकारः	१०८३
५४.	त्वतलोरधिकारः	१०८८
५५.	भवनाद्यर्थकाः	१०९७
५६.	मत्वर्थीयाः	१११०
५७.	प्राग्दिशीयाः	११२१
५८.	प्रागिवीयाः	११३१
५९.	स्वार्थिकाः	११४४
६०.	स्त्रीप्रत्ययाः	११५३

परिशिष्टम्

१.	लिङ्गाधिकारः	११८१
२.	गणपाठः	११८६
३.	अकारादिक्रमेण सूत्रसूची	११९३
४.	अकारादिक्रमेण वार्तिकसूची	१२११
५.	अकारादिक्रमेण धातुसूची	१२१३

अथ कृदन्ते कृत्यप्रकरणम्

अधिकारसूत्रम्

७६६. धातोः ३।१।९१॥

आतृतीयाध्यायसमाप्तेर्ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः। **कृदतिङि**ति कृत्संज्ञा।

परिभाषासूत्रम्

७६७. वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ३।१।९४॥

अस्मिन् धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात् स्त्र्यधिकारोक्तं विना।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **कृदन्तप्रकरण** प्रारम्भ होता है। धातु से दो प्रकार के प्रत्यय होते हैं- तिङ् और कृत्। तिङ् तो प्रत्याहार है जो तिप् से लेकर महिङ् तक हैं और वे धातुओं से विहित लकारों के स्थान पर होते हैं। कृत्प्रत्यय वे हैं जिनकी **कृदतिङ्** से कृत्संज्ञा होती है, जिसमें अण्, अच्, णमुल्, अनीयर् आदि हैं। धातु से होने वाले प्रत्ययों में तिङ् प्रत्ययों को छोड़कर शेष सारे प्रत्यय कृत् कहलाते हैं। प्रातिपदिक (शब्द) बनाने के लिए सबसे पहले धातुओं से कृत् प्रत्यय किये जाते हैं। कृत् प्रत्यय लगने से वह कृदन्त बन जाता है और उसकी **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो जाती है। कृदन्त के ज्ञान के विना व्याकरण का ज्ञान सम्भव ही नहीं है। कहीं-कहीं भाषा में तिङन्त-क्रिया के विना कृदन्त-क्रिया से ही सारा व्यवहार किया जाता है और संस्कृत साहित्य में कृदन्तों का प्रयोग बहुतायत होता है।

कृदन्त को चार भागों में बाँटा गया है- कृत्य, पूर्वकृदन्त, उणादि और उत्तरकृदन्त। कृत्-संज्ञा के अन्तर्गत कुछ प्रत्ययों की कृत्यसंज्ञा होती है, इसीलिए इस प्रथम प्रकरण को कृत्यप्रकरण कहा जाता है।

७६६- धातोः। धातोः पञ्चम्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार आ रहा है।

तृतीयाध्याय के समाप्ति पर्यन्त जो प्रत्यय होते हैं, वे धातु से परे हों।

इस सूत्र से लेकर अर्थात् इस सूत्र की संख्या **तृतीय अध्याय के प्रथम पाद के** ९१वें सूत्र से लेकर **तृतीयाध्याय की समाप्ति पर्यन्त** अर्थात् **पाणिनीयाष्टाध्यायी** के तृतीयाध्याय के चतुर्थपाद के अन्तिम सूत्र **छन्दस्युभयथा** तक जो भी प्रत्यय हों वे धातु के बाद ही हों, ऐसा अधिकार यह सूत्र करता है।

स्मरण रहे कि **कृदतिङ्**(३०२) सूत्र द्वारा धातुओं से होने वाले तिङ्-भिन्न प्रत्ययों की कृत्संज्ञा होती है।

७६७- वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्। समानं रूपं यस्य स सरूपः, न सरूपः असरूपः। न स्त्री अस्त्री, तस्याम्, अस्त्रियाम्। वा अव्ययपदं, असरूपः प्रथमान्तम्, अस्त्रियां सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है और **उत्सर्गस्य अपवादप्रत्ययो बाधकः स्यात्** इन पदों का अध्याहार किया जाता है।

इस धातोः सूत्र के अधिकार में पढ़े गये असमानरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग के विकल्प से बाधक होते हैं किन्तु यह बात स्त्र्यधिकार के प्रत्ययों में लागू नहीं होती।

शास्त्र अर्थात् सूत्र दो प्रकार के होते हैं- उत्सर्ग और अपवाद। जो सामान्यरूप से कार्य का विधान करते हैं, उन्हें **उत्सर्ग** और जो विशेष रूप से कार्य करते हैं, उनको **अपवाद** शास्त्र कहा जाता है। कौमुदी के प्रारम्भ से अभी तक यह नियम चला आ रहा था कि विशेष शास्त्र उत्सर्ग शास्त्र का नित्य से बाधक होता है किन्तु यहाँ आकर यह परिवर्तन हुआ कि उत्सर्ग शास्त्र को अपवाद शास्त्र के द्वारा विकल्प से बाधा जाता है अर्थात् उत्सर्ग शास्त्र भी लगेगा और विशेष शास्त्र भी। तात्पर्य यह है कि उत्सर्ग-सूत्रों विहित सामान्य प्रत्यय भी होंगे और अपवाद सूत्रों से विशेष विधान करके किये जाने वाले प्रत्यय भी होंगे। इसमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उत्सर्ग और अपवाद प्रत्ययों में समानता अर्थात् समानरूप नहीं होना चाहिए। समानरूप होने पर तो उत्सर्ग को विशेष शास्त्र नित्य से ही बाधता है अर्थात् दोनों प्रत्ययों में समानरूप होने पर सामान्य प्रत्यय को बाधकर नित्य से विशेष प्रत्यय हो जाता है। सूत्र में **अस्त्रियाम्** पढ़ा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि यह विकल्प से बाध ने वाला नियम **स्त्रियाम्** सूत्र के अधिकार में होने वाले प्रत्ययों के सम्बन्ध में लागू नहीं होगा।

कुछ उदाहरण देखें- **कृत्य, पूर्वकृदन्त** और **उत्तरकृदन्त** में **धातोः** के अधिकार वाले प्रत्यय होंगे। इन प्रकरणों होने वाले प्रत्ययों में से **तव्यत्तव्यानीयरः** से होने वाले प्रत्यय **तव्यत्, अनीयर्** और **अचो यत्** से होने वाला प्रत्यय **यत्** तथा **ण्वुल्तृचौ** से होने वाले **ण्वुल्** और **तृच्** आदि हैं। अनुबन्धलोप होने पर क्रमशः **तव्य, अनीय, य, वु** और **तृ** बचते हैं। ये प्रत्यय परस्पर असमानरूप वाले हैं अर्थात् एक दूसरे से भिन्न रूप वाले हैं। अतः **तव्यत्** को विकल्प से बाधकर **अनीयर्** और **यत्** होते हैं। इसी तरह **ण्वुल्** प्रत्यय को बाधकर विकल्प से **तृच्** प्रत्यय हो जाता है। यह असमान प्रत्ययों का उदाहरण है।

समानरूप प्रत्ययों में तो नित्य से बाध्यबाधकभाव होता है। जैसे कि **अचो यत्** से होने वाला **यत्** और **ऋहलोर्ण्यत्** से होने वाला **ण्यत्** प्रत्यय होता है। **यत्** में तकार की इत्संज्ञा होकर **य** बचता है और **ण्यत्** में भी **णकार** की **चुटू** से इत्संज्ञा और **तकार** की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होकर **य** ही बचता है। इस तरह दोनों प्रत्ययों में केवल **य** मात्र शेष बचता है। इस तरह दोनों रूपों में समानता है। इस पर प्रश्न यह हो सकता है कि **यत्** और **ण्यत्** में भले ही अनुबन्धलोप के बाद समानता है किन्तु अनुबन्धलोप के पहले तो असमान है ही। अतः समानता अनुबन्धरहित में देखना चाहिए कि अनुबन्धसहित में? इसके उत्तर में यह कहा जाता है- **नानुबन्धकृतमसारूप्यम्।** इस परिभाषा के अनुसार अनुबन्ध अर्थात् इत्संज्ञक वर्णों को मानकर असमानता नहीं माननी चाहिए। **यत्** और **ण्यत्** में अनुबन्धलोप करने के बाद **य** के रूप में समानता है, अर्थात् समानरूप प्रत्यय हो जाते हैं। अतः **यत्** इस सामान्य प्रत्यय को **ण्यत्** यह विशेष प्रत्यय नित्य से बाधता है अर्थात् बाधक **ण्यत्** तो हो जायेगा किन्तु बाध्य **यत्** नहीं होगा।

कृत्यसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

७६८. कृत्याः ३।१।९५॥

ण्वुल्तृचावित्यतः प्राक् कृत्यसंज्ञाः स्युः।

प्रत्ययार्थनिर्धारकं विधिसूत्रम्

७६९. कर्तरि कृत् ३।४।६७॥

कृत्प्रत्ययः कर्तरि स्यात्। इति प्राप्ते-

प्रत्ययार्थनिर्धारकं विधिसूत्रम्

७७०. तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ३।४।७०॥

एते भावकर्मणोरेव स्युः।

....

स्त्रियाम् के अधिकार में यह परिभाषा नहीं लगती। इसलिए **स्त्रियां क्तिन्** ३.३.९४ इस उत्सर्ग का **अ प्रत्ययात्** ३.३.१०२ यह अपवाद नित्य से बाधक होता है। **क्तिन्** और **अ** प्रत्ययों में असमानता होने पर भी विकल्प से बाध्यबाधकभाव नहीं होता अपितु नित्य से ही **अ** प्रत्यय **क्तिन्** का बाधक होता है जिससे **चिकीर्षा, जिहीर्षा** ऐसे अप्रत्ययान्त ही रूप बनते हैं, न कि क्तिन्प्रत्ययान्त भी। अन्य उदाहरण यथास्थल स्पष्ट हो जायेंगे।

७६८- **कृत्याः**। कृत्याः प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्।

ण्वुल्तृचौ से पहले जितने प्रत्यय कहे गये हैं, वे कृत्यसंज्ञक होते हैं।

यह सूत्र **कृत्यसंज्ञा** का अधिकार करता हैं इसलिए संज्ञासूत्र मानने में भी कोई आपत्ति नहीं है। इसका अधिकार **ण्वुल्तृचौ** के पहले तक जाता है। उससे पहले के प्रत्ययों की कृत्संज्ञा तो होती है और कृत्यसंज्ञा भी होती है। यहाँ एक संज्ञा का अधिकार न होने से संज्ञाद्वय का समावेश है। कृत्यप्रत्यय सात होते हैं-

तव्यं च तव्यतञ्चैवानीयर्केलिमरौ तथा।
यतं ण्यतं क्यपं चापि कृत्यान् सप्त प्रचक्षते॥

अर्थात् तव्यत्, तव्य, अनीयर्, केलिमर्, यत्, ण्यत् और क्यप् ये सात प्रत्यय कृत्य माने गये हैं।

७६९- **कर्तरि कृत्**। कर्तरि सप्तम्यन्तं, कृत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **कृत् प्रत्यय कर्ता अर्थ में होता है।**

कृत् प्रत्यय सामान्यतया कर्ता अर्थ में ही होते हैं।

कृदन्त में जितने भी प्रत्यय होते हैं, वे सब किसी एक अर्थविशेष को लेकर के ही होते हैं। अतः यह ध्यान देना कि अमुक प्रत्यय किस अर्थ में हो रहा है। जिस-जिस अर्थ में प्रत्यय होते हैं, उन-उन स्थलों पर उस अर्थ का द्योतन करते हैं। कर्ता अर्थ में होना यह सामान्य विधान है। तत्तत् जगहों पर विशेष सूत्रों के द्वारा अन्य अर्थों में भी प्रत्यय किये जायेंगे जो इस सूत्र के बाधक होंगे। इसका बाधक अग्रिम सूत्र है।

७७०- **तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः**। खलोऽर्थः खलर्थः, षष्ठीतत्पुरुषः। कृत्याश्च क्ताश्च खलर्थाश्च तेषामितरतरेद्वन्द्वः कृत्यक्तखलर्थाः। तयोः सप्तम्यन्तम्, एव अव्ययपदं, कृत्यक्तखलर्थाः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

तव्यतादिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७७१. तव्यत्तव्यानीयरः ३।१।९६॥

धातोरेते प्रत्ययाः स्युः। एधितव्यम्, एधनीयं त्वया।

भावे औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीबत्वं च। चेतव्यश्चयनीयो वा धर्मस्त्वया। वार्तिकम्- **केलिमर उपसंख्यानम्।** पचेलिमा माषाः। पक्तव्या इत्यर्थः। भिदेलिमाः सरलाः। भेत्तव्या इत्यर्थः। कर्मणि प्रत्ययः।

....

कृत्य, क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में ही होते है।

कृत्संज्ञक प्रत्यय के अन्तर्गत आने के कारण कृत्यप्रत्यय भी पूर्वसूत्र से कर्ता अर्थ में प्राप्त हो रहे थे, उसको बाधकर इस सूत्र ने कहा कि कृत्य-प्रत्यय, क्त-प्रत्यय और खलर्थप्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में ही हों। क्त प्रत्यय पूर्वकृदन्तप्रकरण में और खलर्थ प्रत्यय उत्तरकृदन्तप्रकरण में आयेंगे। खल् प्रत्यय जिस अर्थ में होता है, उसी अर्थ में होने वाले प्रत्ययों को खलर्थ प्रत्यय कहते हैं।

७७१- तव्यत्तव्यानीयरः। तव्यच्च तव्यश्च अनीयर् च, तेषामिरतरेतरद्वन्द्वस्तव्यत्तव्यानीयरः। तव्यत्तव्यानीयरः प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च** और **धातोः** इन सूत्रों का अधिकार है।

धातु से तव्यत्, तव्य और अनीयर् प्रत्यय होते हैं।

तव्यत् में तकार की इत्संज्ञा होती है और लोप होकर **तव्य** ही शेष रहता है। एक तव्य तित् है और एक नहीं। तित् करने का फल **तित्स्वरितम्** से स्वरितस्वर का विधान है। अनियर् में रेफ इत्संज्ञक है। कृत्-प्रत्यय यदि शित् हैं तो उनकी **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा होती है और शित् से भिन्न हों तो उनकी **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा होती है। ये तीनों प्रत्यय शित् नहीं हैं, अतः इनकी आर्धधातुकसंज्ञा ही होगी। आर्धधातुक प्रत्यय वलादि हो और धातु अनिट् न हो तो उस वलादि प्रत्यय को **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् का आगम भी होगा।

तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः के नियम से तव्यत्, तव्य और अनीयर् ये अकर्मक धातु से भाव और कर्म अर्थ में हुए हैं। भाव अर्थ में स्वाभाविक रूप से नपुंसकलिङ्ग और एकवचन ही होता है। धातु के अर्थ क्रिया मात्र को **भाव** कहते हैं। भाव न तो स्त्रीलिङ्ग होता है और न ही पुँल्लिङ्ग, अतः स्वाभाविक रूप से नपुंसकलिङ्ग ही होगा। जिस क्रिया में कृत्य प्रत्यय लगा होता है, उसका कर्ता अनुक्त होने के कारण तृतीया विभक्ति वाला हो जाता है।

एधितव्यम्। अकर्मक **एध** वृद्धौ धातु को आपने भ्वादिप्रकरण में पढ़ा था। अनुबन्धलोप होकर एध् बचा है। उससे **तव्यत्तव्यानीयरः** से भाव अर्थ में तव्यत् या तव्य प्रत्यय हुए। **तव्यत्** होने के पक्ष में तकार की इत्संज्ञा होकर लोप हुआ, **तव्य** बचा। **एध्+तव्य** बना। **तव्य** की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा हुई और धातु अनिट् नहीं है, अतः **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् का आगम हुआ। टकार की इत्संज्ञा और लोप, टित् होने के कारण **तव्य** के आदि में बैठा, **एध्+इ+तव्य** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **एधितव्य** बना। **तव्य** कृत् प्रत्यय है, अतः कृदन्त शब्द हुआ। कृदन्त होने के कारण इसकी **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और सु विभक्ति आई। नपुंसक होने के कारण सु के स्थान पर

अतोऽम् से अम् आदेश और **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर ज्ञानम् की तरह **एधितव्यम्** बना। भाव अर्थ में प्रत्यय होने के कारण नपुंसकलिङ्ग तथा एकवचन ही होगा। यह एक क्रिया का ही रूप हुआ। एध् धातु का **वृद्धि** अर्थ होने से तो **एधितव्यम्** का अर्थ **बढ़ना चाहिए** ऐसा हुआ। इसका कर्ता अनुक्त होने से हमेशा तृतीयान्त ही होगा। कर्ता प्रथमपुरुष वाला, मध्यमपुरुष वाला या उत्तमपुरुष वाला कोई भी हो सकता है और एकवचन, द्विवचन या बहुवचन किसी भी वचन का हो सकता है किन्तु क्रियापद एकवचन और नपुंसकलिङ्ग वाला **एधितव्यम्** ही रहेगा। जैसे- **तेन एधितव्यम्, ताभ्याम् एधितव्यम्, तैः एधितव्यम्। त्वया एधितव्यम्, युवाभ्याम् एधितव्यम्, युष्माभिः एधितव्यम्, मया एधितव्यम्, आवाभ्याम् एधितव्यम्, अस्माभिः एधितव्यम्।** इसी प्रकार से सभी भावार्थक कृत्यप्रत्ययों के विषय में समझना चाहिए।

एधनीयम्। एध् धातु से **तव्यत्तव्यानीयरः** से अनीयर् प्रत्यय हुआ। **एध्+अनीयर्** हुआ। रकार का लोप करके **एध्+अनीय** बना। अनीय की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा हुई किन्तु अनीय वलादि नहीं है, अतः **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् का आगम नहीं हुआ। **एध्+अनीय** में वर्णसम्मेलन हुआ- **एधनीय** बना। अनीय कृत् प्रत्यय है, अतः कृदन्त के कारण इसकी **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और सु विभक्ति आई। नपुंसक होने के कारण सु के स्थान पर **अतोऽम्** से अम् आदेश और **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर ज्ञानम् की तरह **एधनीयम्** बना। भाव में प्रत्यय होने के कारण नपुंसक और एकवचन मात्र होगा। यह भी एक क्रिया का ही रूप हुआ। एध् धातु के वृद्धि अर्थ होने से **एधनीयम्** का अर्थ **बढ़ना चाहिए** हुआ। इसका भी कर्ता अनुक्त होने के कारण तृतीयान्त ही होगा। कर्ता प्रथमपुरुष वाला, मध्यमपुरुष वाला या उत्तमपुरुष वाला कोई भी हो सकता है और एकवचन, द्विवचन या बहुवचन कोई भी हो सकता है किन्तु क्रियापद **एधितव्यम्** एकवचन और नपुंसकलिङ्ग ही रहेगा।

चेतव्यः, चयनीयः। सकर्मक **चिञ्** (चयने) धातु का **संग्रह करना** अर्थ है। ञकार इत्संज्ञक है, उससे तव्य हुआ, **चि+तव्य** बना। तव्य की आर्धधातुकसंज्ञा और चि के इकार को **सार्वधातुकार्धकयोः** से गुण होकर **चे** बन गया, **चेतव्य** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सु विभक्ति, अनुबन्धलोप और रुत्वविसर्ग करने पर **चेतव्यः** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार अनीयर् करने पर **चि+अनीय** में चि को गुण चे, अय् आदेश करने पर **च्+अय्+अनीय** बना। वर्णसम्मेलन होकर **चयनीय** बना, उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा और सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करने पर **चयनीयः** बना। यहाँ पर कर्म अर्थ में प्रत्यय हुआ है। अतः **चेतव्यः** आदि कर्म के विशेषण होते हैं अर्थात् कर्म जिस लिङ्ग, जिस विभक्ति और जिस वचन में है, ये भी वैसे ही होते हैं। इस लिए इस **त्वया धर्मः चेतव्यः** में धर्मशब्द कर्मसंज्ञक है और वह पुँल्लिङ्गी प्रथमा एकवचनान्त है। अतः **चेतव्यः** और **चयनीयः** भी पुँल्लिङ्ग प्रथमा एकवचनान्त बन गये। भाव अर्थ में प्रत्यय होगा तो नपुंसकलिङ्ग और एकवचन ही होगा तथा कर्म अर्थ में प्रत्यय होगा तो कर्म जिस लिङ्ग, विभक्ति और वचन का होगा कृत्यप्रत्ययान्त क्रियापद भी उसी लिङ्ग, विभक्ति और वचन का ही होगा। जैसे- तेन पुष्पं चेतव्यम्, ताभ्यां पुष्पं चेतव्यम्, तैः पुष्पं चेतव्यम्, तेन पुष्पे चेतव्ये, तेन पुष्पाणि चेतव्यानि, मया पुष्पाणि चेतव्यानि, मया लेखः पठितव्यः, युष्माभिः लेखः पठितव्यः, त्वया लेखाः पठितव्याः, सर्वैः पत्रे पठितव्ये आदि।

कृत्यल्युट्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७७२. कृत्यल्युटो बहुलम् ३।३।११३।।

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति।।

स्नात्यनेनेति स्नानीयं चूर्णम्। दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः।

कृदन्त होने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा होती है और सु आदि सभी विभक्तियाँ आती हैं। अतः कर्म अर्थ में प्रत्यय होने पर सातों विभक्तियों के तीनों वचनों में रूप बनते हैं।

जैसे- चेतव्यः, चेतव्यौ, चेतव्याः। चेतव्यम्, चेतव्यौ, चेतव्यान्। चेतव्येन, चेतव्याभ्याम्, चेतव्यैः। चेतव्याय, चेतव्याभ्याम्, चेतव्येभ्यः। चेतव्यात्, चेतव्याभ्याम्, चेतव्येभ्यः। चेतव्यस्य, चेतव्ययोः, चेतव्यानाम्। चेतव्ये, चेतव्ययोः, चेतव्येषु। हे चेतव्य!, हे चेतव्यौ! हे चेतव्याः! इसी प्रकार चेतव्यो धर्मः, चेतव्यौ धर्मौ, चेतव्याः धर्माः आदि।

केलिमर उपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। **धातुओं से केलिमर् प्रत्यय भी होता है।** अर्थात् **तव्यत्तव्यानीयरः** इस सूत्र में **केलिमर् प्रत्यय** भी जोड़ देना चाहिए। यह प्रत्यय भी सभी धातुओं से हो सकता है। भाष्यकार ने इस प्रत्यय को कर्म अर्थ में माना है। **केलिमर्** में ककार की **लशक्वतद्धिते** से और रकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होकर **एलिम** शेष रहता है। कित् होने के कारण गुणनिषेध हो जाता है।

पचेलिमा माषाः, पक्तव्या इत्यर्थः। (पकाने योग्य ऊड़द) **पच्(डुपचष् पाके)** धातु से **केलिमर उपसंख्यानम्** इस वार्तिक से **केलिमर्** प्रत्यय होकर अनुबन्धलोप होने पर **पच्+एलिम** बना। आगे **माषाः** यह विशेष्यपद है और उसमें पुँल्लिङ्ग, प्रथमा का बहुवचन है, अतः विशेषण **पचेलिम** शब्द से भी पुँल्लिङ्ग में प्रथमा का बहुवचन जस् विभक्ति आई और **रामाः** की तरह **पचेलिमाः** बन गया। **पचेलिमास्+माषाः** में सकार को रुत्व, रेफ को यत्व और यकार का लोप आदि कार्य होकर **पचेलिमा माषा** बन जाता है।

भिदेलिमाः सरलाः, भेत्तव्या इत्यर्थः। (सरल, सीधे (पेड़ आदि) काटने योग्य हैं) **भिद् (भिदिर् द्वैधीकरणे)** धातु से **केलिमर्** प्रत्यय करके अनुबन्धलोप करने पर **भिद्+एलिम** बना। **पुगन्तलघूपधस्य च** से प्राप्त गुण का कित् होने के कारण **क्ङिति च** से निषेध हुआ। वर्णसम्मेलन होकर **भिदेलिम** बना। **सरलाः** इस विशेष्यपद के कारण इसमें भी पुँल्लिङ्ग में प्रथमा का बहुवचन आकर **भिदेलिमाः** सिद्ध हुआ।

७७२- **कृत्यल्युटो बहुलम्।** कृत्यल्युटः प्रथमान्तं, बहुलं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **कृत्यसंज्ञकाः प्रत्यया ल्युट् च बहुलेन भवन्ति**

कृत्यसंज्ञक प्रत्यय और ल्युट् प्रत्यय बहुल से होते हैं।

बहुल का अर्थ **अधिकतर नहीं है।** यह पारिभाषिक शब्द है। इसकी परिभाषा बताने के लिए **वैयाकरणजगत्** में **क्वचित्प्रवृत्तिः** यह श्लोक प्रसिद्ध है। बहुल के चार अर्थ हैं- पहला- **क्वचित्प्रवृत्तिः**- ऐसा सूत्र जहाँ लगना चाहिए वहाँ तो लगता ही है और जहाँ लगने की योग्यता नहीं है, वहाँ भी लग जाता है। दूसरा- **क्वचित् अप्रवृत्तिः**- कहीं-कहीं लगने योग्य स्थानों पर भी नहीं लगता। तीसरा- **क्वचिद्विभाषा**- कहीं-कहीं विकल्प से होता है और चौथा- **क्वचिद् अन्यद् एव**- कहीं कुछ और ही भी होता है। और ही होता है का तात्पर्य यह है कि

यत्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७७३. अचो यत् ३।१।९७॥

अजन्ताद्धातोर्यत् स्यात्। चेयम्।

ईदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७७४. ईद्यति ६।४।६५॥

यति परे आत ईत्स्यात्। देयम्। ग्लेयम्।

....

निर्धारित अर्थ, निर्धारित योग्यता के अतिरिक्त भी कुछ और ही विधान होता है। जैसे- **स्नानीयम्।** स्नान्ति अनेन (इसके द्वारा स्नान करते हैं, उबटन चूर्ण) इस विग्रह में अनेन में तृतीया है, वह करण अर्थ में है। कृत्य प्रत्यय तो भाव या कर्म अर्थ में होना चाहिए किन्तु बहुल होने के कारण **क्वचिदन्यदेव** अर्थात् कुछ और ही हुआ। तात्पर्य करण अर्थ में कृत्य-प्रत्यय का विधान कर दिया। इसी प्रकार **दानीयः** में दीयते अस्मै (जिसे दान दिया जाय) में सम्प्रदान अर्थ (चतुर्थी) में कृत्य-प्रत्यय का विधान कर दिया। यही **क्वचिदन्यदेव** है। इसी प्रकार से ल्युट् प्रत्यय के सम्बन्ध में समझना चाहिए। **स्नानीयम्** में स्ना धातु से अनीयर्, **स्ना+अनीय,** सवर्णदीर्घ करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप करके **स्नानीयम्** बना। चूर्ण नपुंसक लिङ्ग और एकवचनान्त होने के कारण यह भी नपुंसक लिङ्गी और एकवचनान्त हुआ।

दानीयः। दीयते अस्मै इस विग्रह में **कृत्यल्युटो बहुलम्** से बहुल से कृत्य-प्रत्यय अर्थात् अनीयर् प्रत्यय हुआ, **दा+अनीय** बना। सवर्णदीर्घ करके **दानीय** बना। सु, रुत्वविसर्ग हुआ, **दानीयः**। विप्रः पुँल्लिङ्ग और एकवचन का होने के कारण **दानीयः** भी पुँल्लिङ्ग और एकवचन का ही हुआ।

७७३- **अचो यत्।** अचः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** इन तीनों सूत्रों का अधिकार है।

अच् प्रत्याहार के वर्ण आदि में हों ऐसे धातुओं से यत् प्रत्यय होता है।

तकार की इत्संज्ञा होती है और य ही बचता है। यह भी कृत् और कृत्य दोनों ही है तथा भाव और कर्म अर्थ में ही हुआ है।

चेयम्। संग्रह करना, चयन करना अर्थ वाला चि धातु है। उससे **अचो यत्** से यत् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप होकर **चि+य** बना। य की आर्धधातुकसंज्ञा और चि के इकार की सार्वधातुकसंज्ञा, गुण करके **चेय** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप करके **चेयम्** सिद्ध हुआ। चेयम्=**संग्रह करने योग्य।**

जेयम्। जीतना अर्थ वाला जि धातु है। उससे **अचो यत्** से यत् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप होकर **जि+य** बना। य की आर्धधातुकसंज्ञा और जि के इकार को सार्वधातुक गुण करके **चेय** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप करके **जेयम्** सिद्ध हुआ। **जेयम्=जीतने योग्य।** अब इसी प्रकार निम्नलिखित धातुओं से निम्नानुसार रूप बनाइये।

नी-नेयम् (ले जाने योग्य)। **क्षि-क्षेयम्** (क्षीण होने योग्य) **आ+श्रि-आश्रेयम्** (आश्रय लेने योग्य) **श्रु-श्रव्यम्,** गुण होकर ओकार और **वान्तो यि प्रत्यये** से अव् आदेश। (सुनने योग्य)।

यत्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७७५. पोरदुपधात् ३।१।९८॥

पवर्गान्ताददुपधाद्यत् स्यात्। ण्यतोऽपवादः। शप्यम्। लभ्यम्।

क्यप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७७६. एति-स्तु-शास्-वृ-दृ-जुषः क्यप् ३।१।१०९॥

एभ्यः क्यप् स्यात्।

....

७७४- **ईद्यति**। ईत् प्रथमान्तं, यति सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **आतो लोप इटि च** से **आतः** की अनुवृत्ति आती है।

यत्-प्रत्यय के परे होने पर धातु के अन्त में विद्यमान आकार के स्थान पर ईकार आदेश होता है।

देयम्। दान देने के अर्थ में दा धातु है, उससे **अचो यत्** से यत् प्रत्यय हुआ, तकार की इत्संज्ञा और लोप करके **दा+य** बना। **ईद्यति** से दा के आकार के स्थान पर ईकार आदेश हुआ, **दी+य** बना। य को आर्धधातुक मानकर दी में ईकार को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण, **देय** बना। देय की प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अमादेश, पूर्वरूप करके **देयम्** बना। **देयम्- देने योग्य।**

पेयम्। पीने के अर्थ में पा-धातु है, उससे देयम् की तरह पेयम् बनाइये। इसी प्रकार से ज्ञा से ज्ञेयम्, मा से मेयम्, स्था से स्थेयम्, गा से गेयम्, ध्या से ध्येयम्, घ्रा से घ्रेयम्, धा से धेयम्, हा से हेयम् भी बना सकते हैं।

७७५- **पोरदुपधात्**। अत् उपधायां यस्य स अदुपधः, तस्माद् अदुपधात्। पोः पञ्चम्यन्तम्, अदुपधात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। इस सूत्र में **अचो यत्** से **यत्** की अनुवृत्ति आती है।

पवर्ग अन्त में हो अथवा ह्रस्व अकार उपधा में हो, ऐसे धातु से यत् प्रत्यय होता है।

यह **ऋहलोर्ण्यत्** का अपवादसूत्र है।

शप्यम्। शप आक्रोशे, शप् धातु से **ऋहलोर्ण्यत्** से ण्यत् प्राप्त था, शप् पवर्गान्त भी है और अदुपध भी है, अतः उसे बाधकर **पोरदुपधात्** से यत् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **शप्य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अमादेश, पूर्वरूप होने पर **शप्यम्।**

लभ्यम्। प्राप्त्यर्थक डुलभष् धातु से अनुबन्धलोप होने पर लभ् बचा है, उससे यत् प्रत्यय करके **शप्यम्** की तरह **लभ्यम्** बनाइये। इसी तरह रम् से **रम्यम्, आ+रभ्** से **आरभ्यम्**, गम् से गम्यम्, तप् से तप्यम्, जप् से जप्यम्, नम् से नम्यम् आदि भी बनाइये।

७७६- **एति-स्तु-शास्-वृ-दृ-जुषः क्यप्**। एतिश्च स्तुश्च शाश्च वृश्च दृश्च जुष्च तेषां समाहारद्वन्द्व एतिस्तुशास्वृदृजुष्, तस्मात्। एति-स्तु-शास्-वृ-दृ-जुषः पञ्चम्यन्तं, क्यप् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

इण्, स्तु, शास्, वृ, दृ और जुष् इन धातुओं से क्यप् प्रत्यय होता है।

क्यप् में ककार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और पकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और दोनों का **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल य बचता है। पित् करने का फल

तुगागमविधायकं विधिसूत्रम्

७७७. ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ६।१।७१॥

इत्यः। स्तुत्यः। **शासु अनुशिष्टौ।**

इदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७७८. शास इदङ्हलोः ६।४।३४॥

शास उपधाया इत्स्यादङि हलादौ क्ङिति।

शिष्यः। वृत्यः। आदृत्यः। जुष्यः।

वैकल्पिकक्यब्विधायकं विधिसूत्रम्

७७९. मृजेर्विभाषा ३।१।११३॥

मृजेः क्यब्वा। मृज्यः।

....

ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् से तुक् का आगम है और कित् करने का फल **क्ङिति च** से गुण का निषेध करना है।

७७७- **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्।** ह्रस्वस्य षष्ठ्यन्तं, पिति सप्तम्यन्तं, कृति सप्तम्यन्तं, तुक् प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **पिति कृति परे ह्रस्वस्य तुगागमो भवति।**

पित् कृत् के परे होने पर ह्रस्व वर्ण को तुक् का आगम होता है।

तुक् में उकार और ककार की इत्संज्ञा होती है। त् बचता है। कित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से अन्तावयव होकर तकार बैठेगा।

इत्यः। इण् गतौ। गत्यर्थक इ धातु से **अचो यत्** से यत् प्रत्यय की प्राप्ति थी, उसे बाधकर **एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्** से क्यप् हुआ, अनुबन्धलोप हुआ, **इ+य** में **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** से तुक् आगम हुआ, अनुबन्धलोप होकर कित् होने के कारण ह्रस्व वर्ण इ के अन्तावयव होकर के बैठा, **इत्य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्वविसर्ग करके **इत्यः** बना। यदि यत् होता तो तुक् न हो पाता और गुण होकर अय् आदेश होकर **अय्यः** ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता।

स्तुत्यः। ष्टुञ्, स्तु धातु से भी इसी तरह क्यप्, तुक्, सु, रुत्वविसर्ग करके **स्तुत्यः** बनाइये।

७७८- **शास इदङ्हलोः।** अङ् च हल् च अङ्हलौ, तयोरङ्हलोः। शासः षष्ठ्यन्तम्, इत् प्रथमान्तम्, अङ्हलोः सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अनिदितां हल उपधाया क्ङिति** से **उपधायाः** और **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अङ् या हलादि कित् और ङित् परे हो तो शास् धातु की उपधा के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश होता है।

शिष्यः। (शासु अनुशिष्टौ) **शास्** धातु से **एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्** से **क्यप्** हुआ। **शास्+य** में **शास इदङ्हलोः** से शास् के आकार को इकार आदेश हुआ और इकार से परे सकार को **शासिवसिघसीनां च** से षत्व होकर **शिष्य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुविभक्ति, रुत्वविसर्ग होकर **शिष्यः** सिद्ध हुआ।

आगे क्यप् और तुक् करके वृ से **वृत्यः**, आ+दृ से **आदृत्यः** बनते हैं। जुष् से केवल क्यप् होकर **जुष्यः** बनता है।

ण्यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७८०. ऋहलोर्ण्यत् ३।१।१२४॥

ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत्। कार्यम्। हार्यम्। धार्यम्।

कुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

७८१. चजोः कु घिण्ण्यतोः ७।३।५२॥

चजोः कुत्वं स्याद् घिति ण्यति च परे।

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

७८२. मृजेर्वृद्धिः ७।२।११४॥

मृजेरिको वृद्धिः सार्वधातुकार्धधातुकयोः। मार्ग्यः।

....

७७९- **मृजेर्विभाषा।** मृजेः पञ्चम्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्** से **क्यप्** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

मृज् धातु से क्यप् प्रत्यय विकल्प से होता है।

मृज्यः। मृज् से विकल्प से क्यप् होकर कित् होने के कारण लघूपधगुण नहीं हुआ- **मृज्यः।** क्यप् न होने के पक्ष में **ऋहलोर्ण्यत्** से ण्यत् होकर **मृजेर्वृद्धिः** से वृद्धि और **चजोः कु घिण्ण्यतोः** से जकार को कुत्व होकर **मार्ग्यः** बनता है।

७८०- **ऋहलोर्ण्यत्।** ऋहलोः पञ्चम्यर्थे षष्ठी, ण्यत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

ऋवर्णान्त और हलन्त धातुओं से ण्यत् प्रत्यय होता है।

णकार और तकार की इत्संज्ञा होती है। णित् का फल वृद्धि आदि है।

कार्यम्। डुकृञ् करणे, कृ-धातु से **ऋहलोर्ण्यत्** से ण्यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **कृ+य** में य के णित् होने के कारण **अचो ञ्णिति** से रपर-सहित आर्-वृद्धि, **क्+आर्+य,** वर्णसम्मेलन, **कार्य,** प्रातिपदिकसंज्ञा, सु विभक्ति, अमादेश, पूर्वरूप करके **कार्यम्** सिद्ध हुआ।

हार्यम्। धार्यम्। (हृञ् हरणे) **हृ** धातु तथा (धृञ् धारणे) **धृ** धातु से इसी प्रकार ण्यत्, वृद्धि, सु, अम्, पूर्वरूप करके **हार्यम्** और **धार्यम्** बनाइये।

७८१- **चजोः कुः घिण्ण्यतोः।** चश्च ज् च चजौ, तयोश्चजोः। घ् इद् यस्य स घित्(बहुव्रीहिः) घिच्च ण्यच्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो घिण्ण्यतौ, तयोर्घिण्ण्यतोः। चजोः षष्ठ्यन्तं, कु लुप्तप्रथमाकं, घिण्ण्यतोः सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

घित् या ण्यत् के परे होने पर चकार और जकार के स्थान पर कवर्ग आदेश होता है।

७८२- **मृजेर्वृद्धिः।** मृजेः षष्ठ्यन्तं, वृद्धिः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इको गुणवृद्धी** से **इकः** यह षष्ठ्यन्त पद उपस्थित होता है।

सार्वधातुक और आर्धधातुक के परे होने पर मृज् के इक् को गुण होता है।

यह सातवें अध्याय का सूत्र है और इस सूत्र में किस के परे होने पर वृद्धि होती है, यह नहीं बताया गया है किन्तु **धातोः कार्यमुच्यमानं तत्प्रत्यये भवति** अर्थात् यदि धातु को कोई कार्य होता है तो वह या तो सार्वधातुक प्रत्यय के परे होगा या तो आर्धधातुक प्रत्यय के परे होगा।

निपातनार्थं विधिसूत्रम्

७८३. भोज्यं भक्ष्ये ७।३।६९॥

भोग्यमन्यत्।

इति कृदन्ते कृत्यप्रक्रिया॥३३॥

....

सार्वधातुक या आर्धधातुक के परे होने पर मृज् के इक् की वृद्धि होगी।

मार्ग्यः। मृज् से क्यप् न होने के पक्ष में **ऋहलोर्ण्यत्** से ण्यत् हुआ और **चजोः कु घिण्ण्यतोः** से जकार को कुत्व होकर गकार हुआ और **मृजेर्वृद्धिः** से उपधाभूत ऋकार को वृद्धि होकर **मार्ग्य** बना। विभक्तिकार्य होकर **मार्ग्यः** सिद्ध हुआ।

७८३- **भोज्यं भक्ष्ये**। भोज्यं प्रथमान्तं, भक्ष्ये सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

भक्ष्य अर्थात् खाद्य अर्थ हो तो भुज् धातु से भोज्य का निपातन होता है।

(**भुज पालनाभ्यवहारयोः**) भुज् के दो अर्थ हैं, पालन और खाना। दोनों अर्थों में से ण्यत् होकर जकार को कुत्व प्राप्त था। **भोज्यं भक्ष्ये** से भक्ष्य अर्थ में कुत्व के अभाव का निपातन किया गया अर्थात् भुज् धातु से ण्यत् होने पर **भक्ष्य** अर्थ में कुत्व का अभाव होकर **भोज्यम्** बनता है और **पालन** अर्थ में कुत्व होकर **भोग्यम्** बनता है।

भोज्यम्। भुज पालनाभ्यवहारयोः। भुज् से ण्यत्, अनुबन्धलोप, उपधागुण करके **भोज्य** बना और स्वादिकार्य करके **भोज्यम्** सिद्ध हो जाता है।

सभी धातुओं से तव्यत्, अनीयर् होते हैं। ये असमान रूप वाले होने से किसी के नित्य से बाधक नहीं होते हैं। क्यप्, यत्, ण्यत् आदि सरूप प्रत्यय होने से आपस में एक दूसरे के नित्य से बाधक होते हैं। जहाँ क्यप् हुआ वहाँ ण्यत् नहीं हो सकता और जहाँ ण्यत् हुआ वहाँ यत् नहीं हो सकता किन्तु तव्यत्, अनीयर के बाद भी क्यप्, या ण्यत् अथवा यत् हो सकते हैं। जैसे- पठितव्यम्, पठनीयनम्, पाठ्यम्। गन्तव्यम्, गमनीयम्, गम्यम्। कर्तव्यम्, करणीयम्, कार्यम्। कथितव्यम्, कथनीयम्, कथ्यम्। खादितव्यम्, खादनीयम्, खाद्यम्।

परीक्षा

१- तिङन्त और कृदन्त में अन्तर बताइये। ५

२- तिङन्तप्रकरण की किन्हीं पन्द्रह धातुओं के तव्यत् और अनीयर् प्रत्यय लगाकर रूप बनाइये। १५

३- कृत्प्रत्यय करने वाले सूत्रों मे किन-किन सूत्रों का अधिकार रहता है? ५

४- कृत्यप्रक्रिया के **वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्** और **कृत्यलुटो बहुलम्** इन दो सूत्रों की व्याख्या करें। २०

५- **ऋहलोर्ण्यत्** और **अचो यत्** में बाध्यबाधक भाव स्पष्ट करें। ५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का कृदन्त-कृत्यप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ पूर्वकृदन्तम्

ण्वुल्तृच्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७८४. ण्वुल्तृचौ ३।१।१३३।।

धातोरेतौ स्तः। **कर्तरि कृदि**ति कर्त्रर्थे।

अनाकावादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७८५. युवोरनाकौ ७।१।१।।

यु-वु-एतयोरनाकौ स्तः। कारकः। कर्ता।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **पूर्वकृदन्तप्रकरण** प्रारम्भ होता है। कृत्यप्रकरण के बाद कृदन्त का यह दूसरा प्रकरण है। इस प्रकरण में भी **धातोः, प्रत्यय** और **परश्च** इन तीन सूत्रों का अधिकार है। जो भी प्रत्यय होंगे, वे सब धातु से परे ही विहित होंगे। कृदन्त की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा होती है और उसके बाद सु, औ, जस् आदि विभक्तियाँ भी आती हैं तथा सातों विभक्तियों में रूप बनते हैं। यदि शब्द विशेषण है तो विशेष्य के अनुसार लिङ्ग, विभक्ति और वचन होते हैं। कहीं-कहीं किसी प्रत्यय के लगने के बाद कोई शब्द एक निश्चित लिङ्ग वाला भी होता है। जैसे **प्रच्छ्** और **विच्छ्** धातुओं से **नङ्** प्रत्यय होने पर **प्रश्न** और **विश्न** ये शब्द नित्य पुँल्लिङ्गी ही होते हैं। इस प्रकरण के प्रत्यय धातु से विहित होने के कारण शित् होंगे तो सार्वधातुकसंज्ञक अन्यथा **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञक होंगे। वलादि-आर्धधातुक होने पर यदि धातु सेट् है तो इट् होगा और अनिट् है तो इट् नहीं होगा। इस प्रकरण में सामान्यतया **कर्तरि कृत्** से कर्ता अर्थ में प्रत्यय किये गये हैं और जहाँ अर्थ बदल जाता है वहाँ सूत्रों से अर्थनिर्देश किया है। तो आइये, इस प्रकरण में प्रवेश करते हैं।

७८४- **ण्वुल्तृचौ**। ण्वुल् च तृच् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः। ण्वुल्तृचौ प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** इन तीनों सूत्रों का अधिकार है।

धातुमात्र से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय होते हैं।

ये प्रत्यय **कर्तरि कृत्** के अनुसार कर्ता अर्थ में ही होंगे। ण्वुल् में णकार की **चुटू** से तथा लकार की **हलन्त्यम्** से एवं तृच् में चकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। इत्संज्ञा का फल लोप करना है। प्रत्यय, आगम और आदेशों में इस प्रकार के वर्णों की जो इत्संज्ञा और लोप रूप कार्य करते हैं, उस कार्य को संक्षेप में अनुबन्धलोप कहते हैं। आगे सर्वत्र अनुबन्धलोप से यही समझना चाहिए।

७८५- **युवोरनाकौ**। युश्च वुश्च तयो: समाहारद्वन्द्व:, युवु:, सौत्रं पुंस्त्वं, तस्य युवो:। युवो: षष्ठ्यन्तम्, अनाकौ प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

यु और वु के स्थान पर क्रमशः अन और अक आदेश होते हैं।

ये दोनों आदेश अदन्त हैं। **अन** और **अक** ये दोनों ही अनेकाल् हैं, अत: **अनेकाल्शित् सर्वस्य** के द्वारा सर्वादेश होते हैं।

कारक:। करोतीति। करने वाला। डुकृञ् करणे। कृ धातु से **ण्वुल्तृचौ** से ण्वुल् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, वु बचा, **कृ+वु** बना। वु के स्थान पर **युवोरनाकौ** से अकादेश हुआ। **कृ+अक** बना। अक की **आर्धधातुकं शेष:** से आर्धधातुकसंज्ञा हुई किन्तु यहाँ आर्धधातुकसंज्ञा का फल नहीं है, अन्य कतिपय प्रयोगों में होता है। ण्वुल् प्रत्यय णित् है। स्थानिवद्-भाव से णित्व अक में भी आ गया। अत: **अचो ञ्णिति** से कृ को **उरण् रपर:** की सहायता से आर्-वृद्धि हुई, **क्+आर्+अक** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **कारक** ऐसा अकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्द बना। कारक की प्रातिपदिकसंज्ञा और सु प्रत्यय आने के बाद रुत्वविसर्ग करके राम: की तरह **कारक:** भी सिद्ध हुआ। अब कारक-शब्द के सातों विभक्ति के रूपों को देखते हैं-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कारक:	कारकौ	कारका:
द्वितीया	कारकम्	कारकौ	कारकान्
तृतीया	कारकेण	कारकाभ्याम्	कारकै:
चतुर्थी	कारकाय	कारकाभ्याम्	कारकेभ्य:
पञ्चमी	कारकात्-द्	कारकाभ्याम्	कारकेभ्य:
षष्ठी	कारकस्य	कारकयो:	कारकाणाम्
सप्तमी	कारके	कारकयो:	कारकेषु
सम्बोधन	हे कारक!	हे कारकौ!	हे कारका:!

स्त्रीलिङ्ग में टाप् और इत्व करके **कारिका** बनता है और उसके रूप रमा शब्द की तरह बनते हैं। जैसे- **कारिका, कारिके, कारिका:, कारिकाम्, कारिके, कारिका:** आदि।

नपुंसकलिङ्ग में ज्ञानशब्द की तरह रूप चलते हैं। जैसे- **कारकम्, कारके, कारकाणि** आदि।

कर्ता। करोतीति कर्ता। कृ-धातु से ही **ण्वुल्तृचौ** से तृच् प्रत्यय करके चकार की इत्संज्ञा और लोप करके तृ शेष बचा। तृ की आर्धधातुकसंज्ञा हुई और कृ का **सार्वधातुकार्धधातुकयो:** से अर्-गुण हुआ, **क्+अर्+तृ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ तो **कर्तृ** ऐसा ऋकारान्त शब्द बना। कर्तृ की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और सु विभक्ति आई। इसके बाद ऋकारान्त धातृ-शब्द की तरह ऋकार के स्थान पर **ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च** से अनङ् आदेश, अनुबन्धलोप, **कर्त्+अन्+स्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **कर्तन् स्** बना। त के अकार की **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** से उपधासंज्ञा करके **अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम्** से दीर्घ हुआ, **कर्तान् स्** बना। **अपृक्त एकाल् प्रत्यय:** से सकार की अपृक्तसंज्ञा करके **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से उसका लोप हुआ, **कर्तान्** बना। नकार का **नलोपे: प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ, **कर्ता** सिद्ध हुआ।

इस तरह कर्तृ-शब्द के रूप धातृ-शब्द की तरह से बनते हैं। अत: धातृ-शब्द की प्रक्रिया का स्मरण करें, सारे रूप अपने आप बना लेंगे। हम यहाँ पर कर्तृ के सातों विभक्तियों के रूप दे रहे हैं किन्तु आगे सिद्ध किये जाने वाले सभी शब्दों के रूप नहीं दिये जायेंगे, केवल संकेत मात्र किया जायेगा कि इस शब्द के रूप अमुक शब्द की तरह होते हैं। उसके अनुसार आपको अपने आप प्रक्रिया करनी पड़ेगी। अत: सुबन्तप्रक्रिया को आप एक बार पुन: पढ़ लें, समझ लें तो आपको कठिनाई नहीं आयेगी।

कर्तृ-शब्द के पुँल्लिङ्ग के रूप

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	कर्ता	कर्तारौ	कर्तार:
द्वितीया	कर्तारम्	कर्तारौ	कर्तॄन्
तृतीया	कर्त्रा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभि:
चतुर्थी	कर्त्रे	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्य:
पञ्चमी	कर्तु:	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्य:
षष्ठी	कर्तु:	कर्त्रो:	कर्तॄणाम्
सप्तमी	कर्तरि	कर्त्रो:	कर्तृषु
सम्बोधन	हे कर्त:!	हे कर्तारौ!	हे कर्तार:!

स्त्रीलिङ्ग में **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से ङीप्, अनुबन्धलोप, यण् होकर **कर्त्री**-शब्द बन जाता है। इसके रूप नदी-शब्द की तरह चलते हैं। जैसे **कर्त्री, कर्त्र्यौ, कर्त्र्य:, कर्त्रीम्, कर्त्र्यौ, कर्त्री:** आदि।

नपुसंकलिङ्ग में वारि-शब्द की तरह **कर्तृ, कर्तृणी, कर्तॄणि, कर्तृ, कर्तृणी, कर्तॄणि, कर्तृणा, कर्तृभ्याम्, कर्तृभि:** आदि रूप बनते हैं।

आपने इस तरह कृ-धातु से ण्वुल् और तृच् प्रत्ययों के लगने से बनने वाले रूपों को देखा। अब इसी तरह निम्नलिखित धातुओं से इन प्रत्ययों को लगाकर रूप बनाइये।

क्र.	धातु	विग्रह	ण्वुलप्रत्ययान्त रूप	अर्थ
१-	याच्	याचत इति	याचक:	मांगने वाला।
२-	नी	नयतीति	नायक:	ले जाने वाला।
३-	लिख्	लिखतीति	लेखक:	लिखने वाला।
४-	सेव्	सेवत इति	सेवक:	सेवा करने वाला।
५-	दृश्	पश्यतीति	दर्शक:	देखने वाला।
६-	पूञ्	पुनातीति	पावक:	पवित्र करने वाला, अग्नि।
७-	धाव्	धावतीति	धावक:	दौड़ने वाला।
८-	वह्	वहतीति	वाहक:	ढोने वाला
९-	चिन्त्	चिन्तयतीति	चिन्तक:	चिन्तन करने वाला।
१०-	गण्	गणयतीति	गणक:	गिनने वाला।
११-	पाल्	पालयतीति	पालक:	पालन करने वाला।
१२-	पाठि	पाठयतीति	पाठक:	पढ़ाने वाला।
१३-	अध्यापि	अध्यापयतीति	अध्यापक:	पढ़ाने वाला।

ल्यु-णिनि-अच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७८६. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ३।१।१३४॥

नन्द्यादेर्ल्युः, ग्रह्यादेर्णिनिः, पचादेरच् स्यात्।

नन्दयतीति नन्दनः। जनमर्दयतीति जनार्दनः। लवणः। ग्राही। स्थायी। मन्त्री। पचादिराकृतिगणः।

....

अब तृच् प्रत्ययान्त कुछ शब्दों के उदाहरण देखें-

१४-	हृञ्	हरतीति	हर्ता	हरण करने वाला।
१५-	गम्	गच्छतीति	गन्ता	जाने वाला।
१६-	हन्	हन्तीति	हन्ता	मारने वाला।
१७-	भुज्	भुनक्तीति	भोक्ता	खाने वाला।
१८-	श्रु	श्रृणोतीति	श्रोता	सुनने वाला।
१९-	ज्ञा	जानातीति	ज्ञाता	जानने वाला।
२०-	दा	ददातीति	दाता	देने वाला।
२१-	क्री	क्रीणातीति	क्रेता	खरीदने वाला।
२२-	रच्	रचयतीति	रचयिता	रचने वाला।

इन सभी शब्दों के रूप बनाइये और धातुपाठ से धातु देखकर उनसे इन प्रत्ययों को लगाकर कैसे रूप बन सकते हैं, इसका भी प्रयत्न आप करें, आपकी प्रतिभा बढ़ेगी।

७८६- **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः**। नन्दिश्च ग्रहिश्च पच् च तेषां समाहारद्वन्द्वो नन्दिग्रहिपच्, नन्दिग्रहिपच् आदिर्येषां ते नन्दिग्रहिपचादयः, तेभ्यो नन्दिग्रहिपचादिभ्यः, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः। ल्युश्च णिनिश्च अच्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो ल्युणिन्यचः। नन्दिग्रहिपचादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ल्युणिन्यचः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

नन्दि आदि, ग्रहि आदि और पच् आदि धातुओं से क्रमशः ल्यु, णिनि और अच् प्रत्यय होते हैं।

नन्दि आदि, ग्रहि आदि और पच् आदि तीन गणों के धातुओं से ल्यु, णिनि और अच् ये तीन प्रत्यय होते हैं। **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** के नियम से क्रमशः विधान होने पर नन्दि आदि धातुओं से ल्यु, ग्रहि आदि धातुओं से णिनि और पच् आदि धातुओं से अच् प्रत्यय हो जाते हैं।

ल्यु में लकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, **यु** बचता है और उसके स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश हो जाता है। इससे अकारान्त शब्द बनता है। णिनि में णकार की **चुटू** से तथा इकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, इन् ही शेष रहता है। इस प्रत्यय के लगने के बाद शब्द इन्नन्त बन जाता है जिसके रूप इन्नन्त योगिन् शब्द की तरह बनते हैं। पच् में चकार की इत्संज्ञा होती है। अच्-प्रत्ययान्त शब्द अकारान्त राम-शब्द की तरह होता है।

नन्दनः। नन्दयतीति। प्रसन्न करने वाला। टुनदि समृद्धौ। **आदिर्ञिटुडवः**। **इदितो नुम् धातोः**। सूत्र में **नन्दि** ऐसा ण्यन्त निर्देश है। अतः ण्यन्त **नन्दि्** से **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** से ल्यु, अनुबन्धलोप, **णेरनिटि** से णि का लोप, **नन्द्+यु** बना। यु के स्थान पर

युवोरनाकौ से **अन** आदेश, **नन्द्+अन**, वर्णसम्मेलन करने पर **नन्दन** बन गया। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्वविसर्ग करके राम-शब्द की तरह **नन्दनः** सिद्ध हुआ।

जनार्दनः। जनमर्दयति। भक्त-जनों को अपने धाम पहुँचाने वाले अथवा दुष्ट जनों का नाश करने वाले भगवान्। जन-शब्दपूर्वक ण्यन्त (अर्द्) अर्दि धातु से **ल्यु**, णिलोप, **अन** आदेश होकर **जन+अम्+अर्द्+अन** बना। **जन+अम्** की **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** से उपपदसंज्ञा और **उपपदमतिङ्** से समास होकर **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **अम्** का लोप हुआ। इस तरह **जन+अर्द्+अन** बना। **जन+अर्द्** में सवर्णदीर्घ और आगे वर्णसम्मेलन होकर **जनार्दन** बना। सु विभक्ति लगकर **जनार्दनः** सिद्ध हुआ।

लवणः। लुनातीति। काटने वाला। लूञ् धातु से ल्यु होकर अन आदेश और लू को आर्धधातुकगुण होकर अव् आदेश होने पर **लवन** बना। **नन्द्यादिगण** में **लवणः** पढ़े जाने के कारण निपातनात् णत्व होकर **लवण** बना। सु आदि विभक्ति करके **लवणः** सिद्ध हुआ।

मधुसूदनः। मधुं सूदयति। मधु नामक दैत्य को मारने वाले (विष्णु)। द्वितीयान्त मधु-शब्दपूर्वक ण्यन्त (सूद्) सूदि धातु से **ल्यु**, णिलोप, **अन** आदेश होकर **मधु+अम्+सूद्+अन** बना। **मधु+अम्** की **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** से उपपदसंज्ञा और**उपपदमतिङ्** से समास होकर **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **अम्** का लोप हुआ। इस तरह **मधु+सूद्+अन** बना। वर्णसम्मेलन होकर स्वादिकार्य होने पर **मधुसूदनः** सिद्ध हुआ।

उक्त प्रक्रिया करने पर ही शुभ् से **शोभनः**, वृध् से **वर्धनः**, मद् से **मदनः**, रम् से **रमणः** आदि बनते हैं।

ग्राही। गृह्णातीति। ग्रहण करने वाला। ग्रह उपादाने। ग्रह्-धातु से **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** से णिनि, अनुबन्धलोप करके **इन्** बचा। णित् होने के कारण **अत उपधायाः** से धातु के उपधाभूत अकार की वृद्धि हुई, **ग्राह्+इन्**, वर्णसम्मेलन **ग्राहिन्** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, **सौ च** से दीर्घ, सु का लोप, नकार का लोप करके योगी की तरह **ग्राही** बनाइये। इसके रूप भी योगी की तरह **ग्राही, ग्राहिणौ, ग्राहिणः, ग्राहिणम्, ग्राहिणौ, ग्राहिणः** आदि बनते हैं।

स्थायी। तिष्ठतीति। स्थित रहने वाला। **स्था**(ष्ठा गतिनिवृत्तौ)धातु से णिनि, अनुबन्धलोप करके **आतो युक् चिण्कृतोः** से **युक्** आगम, अनुबन्धलोप करके **स्था+य्+इन्** बना। वर्णसम्मेलन करके **स्थायिन्** बनाकर सु विभक्ति, उसका **हल्ङ्याब्भ्यः०** से लोप, उपधादीर्घ, नकार का लोप आदि करके **स्थायी** सिद्ध होता है। आगे स्थायिनौ, स्थायिनः आदि बनते हैं।

मन्त्री। मन्त्रणा करने वाला। मत्रि गुप्तभाषणे। मन्त्रयत इति विग्रह में ण्यन्त **मन्त्रि**-धातु से णिनि करके णिलोप करके **मन्त्रिन्** बनाकर **मन्त्री**, निपूर्वक वस्-धातु निवसतीति विग्रह में निवासिन् बनाकर **निवासी**, उत्पूर्वक सह् से **उत्साही** आदि रूप बनाइये।

पचः। पचतीति। पकाने वाला अर्थात् जो पकाता है। डुपचष् पाके। पच् से **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** से अच् करके पच बनता है, प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्वविसर्ग करके अकारान्त रामः की तरह **पचः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह वच् से वचः,

कप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७८७. इगुपध-ज्ञा-प्री-किरः कः ३।१।१३५॥

एभ्यः कः स्यात्। बुधः। कृशः। ज्ञः। प्रियः। किरः।

कप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७८८. आतश्चोपसर्गे ३।१।१३६॥

प्रज्ञः। सुग्लः।

....

वद् से वदः, पत् से पतः आदि बनते हैं। इसी प्रकार दीव्यतीति, जो अपने गुण एवं कर्मों से चमके वह देवः तथा **पचादिगण** में **देवट्** यह प्रातिपदिक टित् पठित होने से स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** से ङीप् करके **देवी** आदि भी बनाने का प्रयत्न करें।

पचादि आकृतिगण है। इसमें कितने धातु आते हैं, ऐसा कोई निश्चित नियम नहीं है। आकृति अर्थात् सिद्ध रूपों को देखकर पचादिगणीय होने का अनुमान मात्र लगाया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि जहाँ-जहाँ भी कर्ता अर्थ में अच्-प्रत्यय लगा रूप देखा जाय तो समझ लेना चाहिए कि यह **पचादिगणीय** है।

७८७- **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः**। इक् उपधा यस्य स इगुपधः। इगुपधश्च ज्ञाश्च कृ च तेषां समाहारद्वन्द्व इगुपधज्ञाप्रिकिर्, तस्मात् इगुपधज्ञाप्रिकिरः। इगुपधज्ञाप्रीकिरः पञ्चम्यन्तं, कः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

इक् उपधा में हो ऐसे धातु ज्ञा, प्री और कृ धातुओं से क प्रत्यय होता है।

क में ककार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होती है, अ बचता है।

बुधः। बुध्यत इति। जानने वाला। बुध अवगमने। बुध्-धातु से **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** से क प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **बुध्+अ** बना। **क** प्रत्यय के कित् होने से लघूपधगुण का **क्ङिति च** से निषेध होकर वर्णसम्मेलन करके **बुध** बना। प्रातिप्रदिकसंज्ञा, सु, रुत्वविसर्ग करके **रामः** की तरह **बुधः** बन जाता है।

कृशः। कृश्यतीति। कमजोर होता है, पतला होता है। कृश तनूकरणे। कृश् से क करके **कृशः** बन जाता है।

ज्ञः। जानातीति। जानने वाला या जो जानता है। ज्ञा अवबोधने। ज्ञा-धातु से क प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप, **ज्ञ्+अ=ज्ञ,** प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्वविसर्ग करके **ज्ञः** बन जाता है।

प्रियः। प्रीणातीति। प्रसन्न करने वाला, प्यारा। प्रीञ् तर्पणे। प्री-धातु से क, **प्री+अ** में **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से प्राप्त गुण का **क्ङिति च** से निषेध होने पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से ईकार के स्थान पर इयङ् आदेश, अनुबन्धलोप, **प्र्+इय्+अ=प्रिय,** सु आदि होकर **प्रियः** सिद्ध हुआ।

किरः। किरतीति। बिखेरने वाला। कॄ विक्षेपे। कॄ-धातु से **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** से क, अनुबन्धलोप, **ॠत इद्धातोः** से ॠकार के स्थान पर रपर करके इर् आदेश, **क्+इर्+अ**, वर्णसम्मेलन, किर, सु आदि कार्य, **किरः**।

७८८- **आतश्चोपसर्गे**। आतः पञ्चम्यन्तम्, चाव्ययम्, उपसर्गे सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

कप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७८९. गेहे कः ३।१।१४४॥

गेहे कर्तरि ग्रहेः कः स्यात्। गृहम्।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७९०. कर्मण्यण् ३।२।१॥

कर्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययः स्यात्। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः।

....

इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः से **कः** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। **उपसर्गे उपपदे आदन्ताद्धातोः कः स्यात्।**

उपसर्ग के उपपद रहते आकारान्त धातुओं से क प्रत्यय होता है।

ककार की इत्संज्ञा होती है। यहाँ कित् का फल आकार का लोप करना है। **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** से **उपपदसंज्ञा** की जाती है। अभी यहाँ पर उपपद का अर्थ **समीप** ही समझें। विशेष अर्थ उसी सूत्र में स्पष्ट करेंगे।

प्रज्ञः। प्रजानातीति। अधिक जानने वाला। **प्र** उपसर्ग पूर्वक **ज्ञा** (अवबोधने) आकारान्त धातु है। इससे **क** प्रत्यय हुआ। **प्र+ज्ञा+अ** बना। **आतो लोप इटि च** से धातु के आकार का लोप हुआ। **प्र+ज्ञ्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **प्रज्ञ** बना। स्वादिकार्य होकर **प्रज्ञः**।

सुग्लः। सुग्लायतीति। अधिक थकने वाला। **सु** उपसर्ग पूर्वक **ग्लै हर्षक्षये** धातु है। पहले **आदेच उपदेशेऽशिति** से आत्व होकर **आतोश्चोपसर्गे** से क प्रत्यय और **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप होकर स्वादिकार्य होने परह **सुग्लः** सिद्ध हो जाता है।

७८९- गेहे कः। गेहे सप्तम्यन्तं, कः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **विभाषा ग्रहः** से **ग्रहः** की अनुवृत्ति आती है और **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

ग्रह् धातु से क प्रत्यय होता है, यदि इसका कर्ता घर हो तो।

गृहम्। गृह्णाति धान्यादिकमिति गृहम्। जो धान्य आदि ग्रहण करता है अर्थात् घर। ग्रह् धातु से **गेहे कः** से क प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **ग्रह्+अ** बना। कित् प्रत्यय परे होने के कारण **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च** से ग्रह् के रेफ के स्थान पर संप्रसारण होकर ऋकार हो जाता है। **ऋ+अ** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **ऋ** ही बनता है। इस तरह **ग्+ऋ+ह्+अ=गृह** बना। सु, उसके स्थान पर अम् आदेश होकर नपुंसकलिङ्ग में **गृहम्** सिद्ध हुआ।

७९०- कर्मण्यण्। कर्मणि सप्तम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** इन तीनों पदों का अधिकार है।

कर्म उपपद होने पर धातुओं से अण् प्रत्यय होता है।

अण् में णकार की इत्संज्ञा होती है। णित् होने के कारण वृद्धि तो होगी ही, अन्य कार्य भी हो सकते हैं।

कुम्भकारः। कुम्भं करोति। **डुकृञ् करणे**। कुम्भ अर्थात् घड़ा बनाता है या घड़ा बनाने वाला। **कुम्भ+अम्+कृ** यहाँ पर **कुम्भ** यह **कर्म** है और **कृ** धातु है। **कुम्भ+अम्+कृ** इस अवस्था में कुम्भ की **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** से उपपदसंज्ञा हुई और कर्म उपपद रहने पर कृ-धातु से **कर्मण्यण्** से **अण्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप हुआ। **कुम्भ+कृ+अ** बना।

कप्रत्यय-विधायकं विधिसूत्रम्

७९१. आतोऽनुपसर्गे कः ३।२।३॥

आदन्ताद्धातोरनुपसर्गात् कर्मण्युपपदे कः स्यात्। अणोऽपवादः।
आतो लोप इटि च। गोदः। धनदः। कम्बलदः। अनुपसर्गे किम्? गोसन्दायः।

वार्तिकम्- **मूलविभुजादिभ्यः कः।** मूलानि विभुजति मूलविभुजो रथः।
आकृतिगणोऽयम्। महीध्रः। कुध्रः।

....

अकार णित् है, उसके परे रहते **अचो ञ्णिति** से कृ को **आर्-वृद्धि** हुई। **क्+आर=कार, कुम्भ+कार** बना। कार इस कृदन्त के योग में कुम्भ से **कर्तृकर्मणोः कृति** से षष्ठी विभक्ति ङस् आई। **कुम्भ ङस्+कार** में **उपपदमतिङ्** से उपपद समास होकर समास के अवयव सुप् ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् होकर **कुम्भकार** हुआ। इससे सु विभक्ति और रुत्वविसर्ग करके **कुम्भकारः** बन गया। यह तो वास्तविक प्रक्रिया है किन्तु इस प्रक्रिया में कुछ कठिन लगे तो बस, इतना समझना कि **कुम्भं करोति** इस विग्रह में कुम्भ कर्म है, उसकी उपपदसंज्ञा हुई और **कर्मण्यण्** से अण् हुआ। अण् के परे होने पर कृ की वृद्धि हुई, **कुम्भकार** बना। सु, रुत्वविसर्ग होकर **कुम्भकारः** सिद्ध हुआ। आपको कठिनाई इसलिए आ सकती है कि आपने अभी समास पढ़ा नहीं है। **उपपदमतिङ्** यह सूत्र समासप्रकरण क है।

जिस तरह से आपने कुम्भकारः बनाया, उसी तरह से निम्नलिखित शब्दों की प्रक्रिया भी कर सकते हैं- **भाष्यं करोतीति भाष्यकारः। सूत्रं करोतीति सूत्रकारः। सूत्रं धारयतीति सूत्रधारः।**

७९१- आतोऽनुपसर्गे कः। आतः पञ्चम्यन्तम्, अनुपसर्गे सप्तम्यन्तं, कः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कर्मण्यण्** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

कर्म के उपपद रहते उपसर्गरहित आकारान्त धातु से क प्रत्यय होता है।

यह सूत्र **कर्मण्यण्** का अपवाद है। क में ककार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होती है, अकार शेष रहता है। कित् करने का फल **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप करना है। यदि कित् न होता तो आकार का लोप प्राप्त न होता और **आतो युक् चिण्कृतोः** से युक् का आगम होकर अनिष्ट रूप सिद्ध हो जाता।

गोदः। कम्बलदः। धनदः। दा दाने। गां ददाति, धनं ददाति, कम्बलं ददाति। अर्थ भी क्रमशः **गौ देने वाला, कम्बल देने वाला, धन देने वाला।** इन तीनों प्रयोगों में दा ध ातु है और क्रमशः गो, कम्बल और धन उपपद हैं। कोई उपसर्ग नहीं है। अतः दा से **कर्मण्यण्** से प्राप्त अण् को बाधकर **आतोऽनुपसर्गे कः** से क प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आकार का **आतो लोप इटि च** से लोप हुआ। **गो+द्+अ, कम्बल+द्+अ, धन+द्+अ** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **गोद, कम्बलद** और **धनद** बने। प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु, रुत्वविसर्ग करके **गोदः, कम्बलदः** और **धनदः** ये रूप सिद्ध हुए।

इस सूत्र के कुछ अन्य उदाहरण-

१- नॄन् पातीति, **नृ+पा+क=नृपः,** मनुष्यों की रक्षा करने वाला, राजा।

२- भुवं पातीति, **भू+पा+क=भूपः,** पृथ्वी की रक्षा करने वाला, राजा।

टप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७९२. चरेष्टः ३।२।१६॥

अधिकरणे उपपदे। कुरुचरः।

....

३- जलं ददातीति, **जल+दा+क=जलदः**, जल देने वाला, बादल।

४- कृतं जानातीति, **कृत+ज्ञा+क=कृतज्ञः**, किये गये उपकार को मानने वाला।

५- मधु पिबतीति, **मधु+पा+क=मधुपः**, मधु पीने वाला, भ्रमर।

इसी तरह अनेक आकारान्त धातुओं से कर्म उपपद होने पर क प्रत्यय करके अनेक रूप बना सकते हैं।

मूलविभुजादिभ्यः कः। यह वार्तिक है। **मूलविभूज आदि शब्दों की सिद्धि के लिए क प्रत्यय हो, ऐसा कहना चाहिए।**

मूलविभुजो रथः। वृक्षों की जड़ों को टेंढ़ा कर देने वाला रथ। यहाँ **मूल शस्+वि+भुज्** ऐसा अलौकिक विग्रह है। **भुजो कौटिल्ये** धातु है। कर्ता अर्थ में उक्त **मूलविभुजादिभ्यः कः** इस वार्तिक से क प्रत्यय, अनुबन्धलोप, कित् होने से लघूपधगुण का अभाव, कृत् के योग में षष्ठी, **मूल+आम्+विभुज** में उपपदसमास होकर स्वादिकार्य करके **मूलविभुजः** बना।

आकृतिगणोऽयम्। मूलविभुजादि आकृतिगण है। इसके शब्दों क़ी परिगणना नहीं है। जहाँ क प्रत्यय, गुणाभाव जैसे रूप दीखें तो यह समझना चाहिए के ऐसे शब्द इस गण के अन्तर्गत आते हैं।

महीध्रः। मही (पृथ्वी) को धारण करने वाला, पर्वत। **महीं धरतीति**। मही+अम्+धृ (धृञ् धारणे)। **मूलविभुजादिभ्यः कः** से **क** प्रत्यय, कित्वात् गुणाभाव, **इको यणचि** से यण् होने पर ऋकार के स्थान पर र् आदेश होने पर **मही+ध्+र्+अ=मही+ध्र** बना। कृद्योग षष्ठी आने पर **मही+अस्+ध्र,** उपपदसमास करके स्वादिकार्य करने पर **महीध्रः** सिद्ध होता है।

कुध्रः। कु (पृथ्वी) को धारण करने वाला, पर्वत। **कुं धरतीति**। कु+अम्+धृ (धृञ् धारणे)। **मूलविभुजादिभ्यः कः** से **क** प्रत्यय, कित्वात् गुणाभाव, **इको यणचि** से यण् होने पर ऋकार के स्थान पर र् आदेश होने पर **कु+ध्+र्+अ=कु+ध्र** बना। कृद्योग षष्ठी आने पर **कु+अस्+ध्र,** उपपदसमास करके स्वादिकार्य करने पर **कुध्रः** सिद्ध होता है।

७९२- **चरेष्टः**। चरेः पञ्चम्यन्तं, टः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** ये पद अधिकृत हैं और **अधिकरणे शेतेः** से **शेते** की अनुवृत्ति आती है।

अधिकरण के उपपद होने पर चर्-धातु से ट प्रत्यय होता है।

सूत्र में **चरेः** यह पद **चरि** का पञ्चम्यन्त रूप है। पाणिनि जी ने कहीं कहीं धातु के निर्देश में **इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे** से इक् प्रत्यय लगाया है, सो यह इक्-प्रत्ययान्त रूप है। **ट**-प्रत्यय में टकार की **चुटू** से इत्संज्ञा होकर केवल अकार ही शेष रहता है। इस प्रत्यय को टित् करने का फल **स्त्रीप्रत्यय** में **टिड्ढाणञ्** आदि सूत्रों की प्रवृत्ति है जिससे ङीप् आदि होते हैं।

कुरुचरः। कुरु देश में विचरण करने वाला। **कुरुषु चरति** विग्रह है। **कुरुषु** यह

टप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७९३. भिक्षासेनादायेषु च ३।२।१७॥

भिक्षाचरः। सेनाचरः। आदायेति ल्यबन्तम्, आदायचरः॥

टप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७९४. कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ३।२।२०॥

एषु द्योत्येषु करोतेष्टः स्यात्॥

सकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७९५. अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य ८।३।४६॥

आदुत्तरस्यानव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः करोत्यादिषु परेषु। यशस्करी विद्या। श्राद्धकरः। वचनकरः॥

....

अधिकरण उपपद में है। अतः **चर्**-धातु से **ट**-प्रत्यय होकर अनुबन्धलोप हुआ। **उपपदमतिङ्** से उपपदसमास होकर सुप्-विभक्ति का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् होकर **कुरुचर्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **कुरुचर** बना। सु-विभक्ति एवं उसका रुत्व और विसर्ग करके **कुरुचरः** सिद्ध हुआ।

चर् धातु में अधिकरण उपपद होने के अनेक उदाहरण हो सकते हैं। जैसे कि- निशायां चरतीति **निशाचरः** (रात्री में घूमने वाला राक्षस आदि), खे चरतीति **खेचरः** (आकाश में घूमने वाला, पक्षी, ग्रह, नक्षत्र आदि)।

७९३- भिक्षासेनादायेषु च। भिक्षा च सेना च आदायश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो भिक्षासेनादायाः, तेषु भिक्षासेनादायेषु। भिक्षासेनादायेषु सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **चरेष्टः** से **चरेः, टः** और **सुपि स्थः** से वचनविपरिणाम करके **सुप्सु** की अनुवृत्ति आती है साथ ही **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** इन पदों का अधिकार है।

भिक्षा, सेना और आदाय इन सुबन्तों के उपपद होने पर चर्-धातु से ट-प्रत्यय होता है।

चरेष्टः की तरह यहाँ अधिकरण अर्थात् सप्तमी विभक्ति ही हो, ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है किन्तु आवश्यकता के अनुसार कोई भी सुप् विभक्ति **भिक्षा, सेना, आदाय** में होनी चाहिए। **आदाय** ल्यप् प्रत्ययान्त अव्यय है। अव्यय में भी विभक्ति तो आती ही है।

भिक्षाचरः। भिक्षां चरतीति, भिक्षा के लिए घूमने वाला।

सेनाचरः। सेनां चरतीति, सेना मे जाने वाला।

आदायचरः। आदाय चरतीति, लेकर के चलने वाला।

उपर्युक्त तीनों प्रयोगों में उपपदसंज्ञा करके ट-प्रत्यय, उपपदसमास करके विद्यमान विभक्ति का लुक् करके वर्णसम्मेलन करके सु विभक्ति आती है और उसका रुत्व आदि कार्य करके तीनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

७९४- कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु। हेतुश्च ताच्छील्यञ्च आनुलोम्यञ्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो हेतुताच्छील्यानुलोम्यानि, तेषु। कृञः पञ्चम्यन्तं, हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **चरेष्टः** से **टः** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है ही।

हेतु(कारण), ताच्छील्य(तत्स्वभाव) और आनुलोम्य(आज्ञाकारिता) ये अर्थ द्योत्य होने पर कृ-धातु से ट-प्रत्यय होता है।

टकार इत्संज्ञक है, अ शेष रहता है। उक्त तीनों अर्थों के उदाहरण अग्रिम सूत्र के बाद रखे गये हैं।

७९५- अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य। कृ च कमिश्च कंसश्च कुम्भश्च पात्रञ्च कुशा च कर्णी च तेषामितरेतरद्वन्द्वः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्ण्यः, तेषु कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीषु। न अव्ययम् अनव्यव्यम्, नञ् तत्पुरुषः, तस्य अनव्ययस्य। अतः पञ्चम्यन्तं, कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीषु सप्तम्यन्तम्, अनव्ययस्य षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **विसर्जनीयस्य सः** से **विसर्जनीयस्य** और **सोऽपदादौ** से **सः** तथा **नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य** इस सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

ह्रस्व अकार से परे उत्तरपद में स्थित न हो, ऐसे अव्ययभिन्न विसर्ग को समास में नित्य से सकार आदेश होता है, यदि कृ, कम्, कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा और कर्णी ये परे हों तो।

यह विसर्गसन्धि का सूत्र है। इसके द्वारा विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश का विधान किया गया है। इसके विधान में पाँच नियम हैं-

१. जिसके स्थान पर सकार होना है, वह अव्ययभिन्न का विसर्ग हो।

२. वह विसर्ग ह्रस्व अकार से परे हो।

३. विसर्ग से परे कृ, कम् आदि में से कोई हो।

४. समस्तपद हो अर्थात् समास हो चुका हो।

५. उत्तरपद में स्थित न हो।

यशस्करी विद्या। यश देने वाली विद्या। यशः करोतीति-यशस्करी। यश के लिए विद्या हेतु है। अतः यशस्-पूर्वक कृ-धातु से **कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु** से हेतु अर्थ के द्योत्य होने पर ट-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अ बचा। अ की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा होकर कृ में ऋकार को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से रपर सहित गुण होकर **यशस्+कर्+अ=यशस्+कर** बना। कृत् के योग में **कर्तृकर्मणोः कृति** से षष्ठी विभक्ति हुई। **यशस् ङस् कर** में **उपपदमतिङ्** से समास होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्तियों का लुक् करने के बाद **यशस्+कर** में सकार को **ससजुषो रुः** से रुत्व करके **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से विसर्ग करने पर **यशः+कर** बना। यह विसर्ग ह्रस्व अकार से परे है, वह अव्यय वाला भी नहीं है, उससे कृ धातु परे है, समास भी हो गया है, और उत्तरपदस्थ भी नहीं है। **अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य** से विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश हुआ, **यशस्कर** बना। यह शब्द **विद्या** इस स्त्रीलिङ्ग शब्द का विशेषण है, अतः इसमें भी स्त्रीत्व की अपेक्षा है। फलतः **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से **ङीप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अकार का **यस्येति च** से लोप करके **यशस्करी** बना। प्रातिपदिक होने के कारण विभक्तिकार्य करके **यशस्करी** यह सिद्ध हुआ। यह हेतु का उदाहरण है।

श्राद्धकरः। श्राद्धं करोति तच्छीलम् अर्थात् श्राद्ध करना जिसका स्वभाव है। यहाँ पर **श्राद्ध**-पूर्वक **कृ**-धातु से ताच्छील्य अर्थ के द्योत्य होने पर **कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु** से **ट** करके गुण आदि करने पर **श्राद्धकर** बनता है। यहाँ पर विसर्ग के न होने के कारण सत्व करने का प्रसंग नहीं है। प्रातिपदिक होने के कारण विभक्तिकार्य करके पुँल्लिङ्ग में

खश्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७९६. एजेः खश् ३।२।२८॥

ण्यन्तादेजेः खश् स्यात्।

मुमागमविधायकं विधिसूत्रम्

७९७. अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ६।३।६७॥

अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः स्यात् खिदन्ते परे न त्वव्ययस्य। शित्त्वाच्छबादिः। जनमेजयतीति जनमेजयः।

....

श्राद्धकरः सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **तापकरः सूर्यः, दयाकरः सज्जनः** आदि भी बनाये जा सकते हैं।

वचनकरः। वचनं करोतीति वचनों को मानने वाला, आज्ञाकारी। यहाँ पर **वचन**-पूर्वक **कृ**-धातु से आनुलोम्य अर्थ के द्योत्य होने पर **कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु** से **ट** करके गुण आदि करने पर **वचनकर** बनता है। प्रातिपदिक होने के कारण विभक्तिकार्य करके पुँल्लिङ्ग में **वचनकरः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **आज्ञाकरः, वाक्यकरः** आदि भी बनाये जा सकते हैं।

७९६- **एजेः खश्**। एजेः पञ्चम्यन्तं, खश् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **कर्मण्यण्** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है और **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

कर्म उपपद होने पर णिजन्त एज् धातु से खश् प्रत्यय होता है।

खकार की **लशक्वतद्धिते** से और **शकार** की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होकर दोनों का **तस्य लोपः** से लोप होकर **अकार** ही शेष रहता है। शित् होने के कारण इस अकार की **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा होकर **कर्तरि शप्** से शप् आदि होते हैं। खकार की इत्संज्ञा होने के कारण खित् भी है, अतः अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होकर मुम् का आगम हो जाता है।

७९७- **अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्**। अच् अन्तो यस्य स अजन्तः। अरुश्च द्विषच्च अजन्तश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः अरुर्द्विषदजन्तं, तस्य अरुर्द्विषदजन्तस्य। अरुर्द्विषदजन्तस्य षष्ठ्यन्तं, मुम् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **खित्यनव्ययस्य** पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है और **अलुगुत्तरपदे** से **उत्तरपदे** का अधिकार आ रहा है।

अरुस्, द्विषत् तथा अजन्त शब्दों को मुम् का आगम होता है खिदन्त उत्तरपद में हो तो किन्तु यह आगम अव्यय को नहीं होगा।

मुम् में उकार और मकार की इत्संज्ञा होती है, म् ही शेष रहता है। मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** की सहायता से जिसको हुआ है उसके अन्त्य अच् के बाद यह बैठता है अर्थात् उसका अन्त्यावयव होकर रहता है।

जनमेजयः। जनम् एजयतीति जनमेजयः। लोगों को कँपाने वाला, परीक्षित् राजा का पुत्र। ऋकार-इत्संज्ञक **एजृ कम्पने** धातु है, उससे णिच् प्रत्यय होकर **एजि** बना है। पूर्व में **जन** यह कर्म उपपद में है। **जन+एजि** से **एजेः खश्** से खश् प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **जन+अम्+एजि+अ** बना। अ की सार्वधातुकसंज्ञा करके उसके परे शप् होकर उसमें भी

खच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७९८. प्रियवशे वदः खच् ३।२।३८॥

प्रियंवदः। वशंवदः।

मनिनादिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७९९. अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ३।२।७५॥

मनिन् क्वनिप् वनिप् विच् एते प्रत्ययाः धातोः स्युः।

....

अनुबन्धलोप होकर **जन+अम्+एजि+अ+अ** बना। **अ+अ** में **अतो गुणे** से पररूप होकर एक ही अकार हुआ, **जन+अम्+एजि+अ** बना। अकार को सार्वधातुक मानकर **एजि** के इकार को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण होकर एकार और उसके स्थान पर अय् आदेश होकर **जन+अम्+एज्+अय्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **जन+अम्+एजय** बना। अब द्वितीया के स्थान पर **कर्तृकर्मणोः कृति** से **जन** से षष्ठी विभक्ति ङस् ले आकर **जन ङस्+एजय** में **उपपदमतिङ्** से उपपदसमास होकर षष्ठी का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ, **जन+एजय** हुआ। अब **एजय** खिदन्त है और वह परे भी है तथा **जन** यह अजन्त है और अव्यय भी नहीं है। अतः **अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्** से **जन** को मुम् का आगम होकर अनुबन्ध लोप करके **म्** शेष बचा। मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** से उस जन के नकार के अकार का अन्त्यावयव होकर के बैठा, **जनम्+एजय** बना। वर्णसम्मेलन होकर **जनमेजय** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि कार्य होने पर **जनमेजयः** यह सिद्ध हुआ। इसी तरह **वृक्षमेजयः**, **शत्रुमेजयः** आदि प्रयोग भी बनाये जा सकते हैं।

अरुष् और **द्विषत्** में मुम् होने का फल **अरुन्तुदः**, **द्विषन्तपः** आदि सिद्ध होना है।

७९८- प्रियवशे वदः खच्। प्रियश्च वशश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः प्रियवशम्, तस्मिन् प्रियवशे। प्रियवशे सप्तम्यन्तं, वदः पञ्चम्यन्तं, खच् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **कर्मण्यण्** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है।

प्रिय या वश रूप कर्म के उपपद होने पर वद् धातु से खच् प्रत्यय होता है।

खकार और चकार इत्संज्ञक हैं, **अ** ही शेष रहता है। खित् होने के कारण मुम् का आगम होता है। शित् न होने के कारण शबादि नहीं होंगे।

प्रियंवदः। प्रियंवदतीति, प्रिय बोलने वाला, मधुरभाषी। यहाँ पर प्रिय+अम् के उपपद होने पर **वद्** धातु से **खच्** प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप होने पर **प्रिय+वद्+अ** बना। **वद्+अ=वद**। कृद्योग षष्ठी होकर **प्रिय+ङस्+वद** में उपपदसमास, सुप् का लुक् करके **प्रिय+वद** बना। यकारोत्तरवर्ती अकार को **अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्** से मुम् का आगम अनुबन्ध लोप होने पर **प्रिय+म्+वद** में मकार के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और उसको **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण होकर **प्रियंवद** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, स्वादिकार्य होकर **प्रियंवदः** सिद्ध हुआ।

वशंवदः। वशं वदतीति, अधीन में बोलता है, आज्ञाकारी है। **वश** यह कर्म उपपद है। शेष सभी प्रक्रिया **प्रियंवदः** की तरह है।

७९९- अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते। अन्येभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अपि अव्ययपदं, दृश्यन्ते क्रियापदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च** से **मनिन्क्वनिब्वनिपः** और **विजुपे छन्दसि**

इण्निषेधकं विधिसूत्रम्

८००. नेड्वशि कृति ७।२।८॥

वशादेः कृत इण् न स्यात्। **शृ हिंसायाम्।** सुशर्मा। प्रातरित्वा।

....

से **विच्** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परच** इनका अधिकार है ही। **धातोः** इस एकवचन को वचनविपरिणाम करके **धातुभ्यः** बनाया गया है।

अन्य धातुओं से परे भी मनिन्, क्वनिप्, वनिप् और विच् प्रत्यय देखे जाते हैं।

अष्टाध्यायी में इस सूत्र के पहले **आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च** पढ़ा गया है। उससे आकारान्त धातुओं से वेद में मनिन्, क्वनिप् और वनिप् प्रत्ययों का विधान हुआ है। अब प्रकृत सूत्र से लोक में आकारान्त धातुओं के अतिरिक्त अन्य धातुओं से भी उक्त प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। सूत्र में **दृश्यन्ते** यह पद दिया है जिसका तात्पर्य है कि लोक में भी कहीं कहीं शिष्टों के ग्रन्थों में उक्त प्रत्यय देखे गये हैं। तात्पर्य यह है कि जहाँ-जहाँ शिष्टों ने उक्त प्रयोग किया है, उन्हें हम प्रकृत सूत्र से सिद्ध मान सकते हैं किन्तु अपने इच्छा से लोक में ऐसे प्रयोग नहीं करना चाहिए। उक्त चारों प्रत्ययों में अनुबन्धलोप होकर क्रमशः **मन्, वन्, वन्** शेष रहते हैं अर्थात् **मनिन्** में नकार अनुबन्ध है, इकार उच्चारणार्थ है। इसी तरह **क्वनिप्** में ककार और पकार इत्संज्ञक और इकार उच्चारणार्थ और वनिप् में पकार इत्संज्ञक और इकार उच्चारणार्थक है किन्तु विच् में सर्वापहारलोप अर्थात् सभी वर्णों का लोप हो जाता है। स्मरण रहे कि **कृत्** के **अपृक्त वकार** का **वेरपृक्तस्य** से लोप होता है।

८००- नेड्वशि कृति। न अव्ययपदम्, इट् प्रथमान्तं, वशि सप्तम्यन्तं, कृति सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

वश् प्रत्याहार आदि में हो ऐसे कृत् प्रत्यय के परे होने पर इट् का आगम नहीं होता।

वशि यह पद **कृति** का विशेषण है। वश् यह प्रत्याहार है, अतः **यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे** के नियम से तदादिविधि होकर **वशादि कृत् के परे होने पर** ऐसा अर्थ बन जाता है। वश् प्रत्याहार में व्, र्, ल्, ञ्, म्, ङ्, ण्, न्, झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द् ये वर्ण आते हैं। **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से प्राप्त इट् का यह निषेधक सूत्र है।

अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते के द्वारा किये जाने वाले **मनिन्, क्वनिप्, वनिप्** और **विच्** प्रत्ययों के क्रमशः उदाहरण-

सुशर्मा। सुष्ठु शृणाति हिनस्ति पापानीति, पापों का अच्छी तरह नाश करने वाला। सु-पूर्वक शृधातु से **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** से **मनिन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **मन्** बचा, **सुशृ+मन्** बना। यहाँ पर **मन्** की आर्धधातुकसंज्ञा होकर **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इट् प्राप्त था, उसका **नेड् वशि कृति** से निषेध हुआ। ऋकार को गुण होकर **सुशर्+मन्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **सुशर्मन्** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा होने पर सु विभक्ति आई और **यज्वन्** से **यज्वा** की तरह **सुशर्मन्** से **सुशर्मा** बन गया। सुशर्माणौ, सुशर्माणः, सुशर्माणम्, सुशर्माणौ, सुशर्मणः, सुशर्मणा, सुशर्मभ्याम्, सुशर्मभिः, सुशर्मणे, सुशर्मभ्यः, सुशर्मणाम् आदि।

आदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८०१. विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत् ६।४।४१।।

अनुनासिकस्याऽऽस्यात्। विजायत इति विजावा।

ओणृ अपनयने। अवावा। विच्। **रुष रिष** हिंसायाम्। रोट्। रेट्। सुगण्।

....

प्रातरित्वा। प्रातरेति। प्रातः काल को जाने वाला। **प्रातर्**-पूर्वक **इण् गतौ** धातु है। **प्रातर्+इ** से **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** से **क्वनिप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **वन्** बचा, **प्रातर्+वन्** बना। यहाँ पर **वन्** की आर्धधातुकसंज्ञा होकर **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इट् प्राप्त, उसका **नेड् वशि कृति** से निषेध होने पर **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** से **तुक्** का आगम होकर **प्रातर्+इत्+वन्** हुआ। वर्णसम्मेलन होकर **प्रातरित्वन्** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा होने पर सु विभक्ति आई और **यज्वन्** से **यज्वा** की तरह **प्रातरित्वन्** से **प्रातरित्वा** बन गया। इसके रूप- प्रातरित्वा, प्रातरित्वानौ, प्रातरित्वानः, प्रातरित्वानम्, प्रातरित्वानौ, प्रातरित्वनः, प्रातरित्वना, प्रातरित्वभ्याम्, प्रातरित्वभिः, प्रातरित्वने, प्रातरित्वभ्यः, प्रातरित्वनोः, प्रातरित्वनाम्, प्रातरित्वनि, प्रातरित्वसु, हे प्रातरित्वन् आदि।

८०१- विड्वनोरनुनासिकस्यात्। विट् च वन् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो विड्वनौ, तयोः। विड्वनोः सप्तम्यन्तम्, अनुनासिकस्य षष्ठ्यन्तम्, आत् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

विट् और वन् के परे होने पर अनुनासिक के स्थान पर आत् अर्थात् आकार आदेश होता है।

अङ्गस्य के अधिकार के कारण **अनुनासिकस्य** यह **अङ्गस्य** का विशेषण है, सो तदन्तविधि हाने से **अनुनासिकान्त अङ्ग** को यह आदेश प्राप्त होता है पर **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से अन्त्य वर्ण के स्थान पर हो जाता है। **विट्** प्रत्यय के परे आत्व के उदाहरण **वैदिकी प्रक्रिया** में देख सकते हैं, यहाँ **वन्** प्रत्यय के परे का उदाहरण देखें।

विजावा। विजायत इति- विशेष रूप से उत्पन्न होने वाला या पुत्र, पौत्र के रूप में स्वयं जन्मने वाला। यह भी वैदिक प्रयोग ही है। **वि+जन्** से **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** से **वनिप्** प्रत्यय हुआ। इकार और पकार की इत्संज्ञा, **वन्** बचा। **विजन्+वन्** बना। इट् प्राप्त, उसका **नेड् वशि कृति** से निषेध होने पर **विजन्+वन्** में **विड्वनोरनुनासिकस्यात्** से अनुनासिक वर्ण **जन्** के **नकार** के स्थान पर **आकार** आदेश होकर **विज+आ+वन्** बना। सवर्णदीर्घ करके **विजावन्** सिद्ध हुआ। इससे **राजन्** की तरह विजावा, विजावानौ, विजावानः, विजावानम्, विजावानौ, विजाव्नः, विजाव्ना, विजावभ्याम्, विजावभिः, विजाव्ने, विजावभ्यः आदि रूप बनते हैं।

अवावा। ओणति, अपनयतीति। हटाने वाला। **ओणृ अपनयने** धातु है। अनुबन्ध लोप के बाद **ओण्** से **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** से **वनिप्** प्रत्यय हुआ। इकार और पकार की इत्संज्ञा, **वन्** बचा। **ओण्+वन्** बना। इट् प्राप्त, उसका **नेड् वशि कृति** से निषेध होने पर **ओण्+वन्** में **विड्वनोरनुनासिकस्यात्** से अनुनासिक वर्ण **ओण्** के **णकार** के स्थान पर **आकार** आदेश होकर **ओ+आ+वन्** बना। **ओ+आ** में **एचोऽयवायावः** से **अव्** आदेश होकर **अवावन्** सिद्ध हुआ। इससे **राजन्** की तरह अवावा, अवावानौ, अवावानः, अवावानम्,

क्विप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८०२. क्विप् च ३।२।७६॥

अयमपि दृश्यते। उखास्रत्। पर्णध्वत्। वाहभ्रट्।

....

अवावानौ, अवाव्नः, अवाव्ना, अवावभ्याम्, अवावभिः, अवाव्ने, अवावभ्यः आदि रूप बनते हैं।

रोट्। रेट्। ये दोनों **विच्** प्रत्यय के उदाहरण है। रोषति रेषति हिनस्तीति **रोट्, रेट्।** षकारान्त **रूष्** और **रिष्** धातु है। इनसे **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** से **विच्** प्रत्यय हुआ। **चकार** की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा, **इकार** उच्चारणार्थ है, **वकार** का **वेरपृक्तस्य** से लोप होकर **सर्वापहार** हो जाता है, अर्थात् कुछ भी नहीं बचता। पुनः प्रत्ययलक्षण से **विच्** प्रत्यय परे मान कर उसको आर्धधातुक समझ कर के **रिष्** और **रुष्** की उपधा इकार और उकार को **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण होकर **रेष्, रोष्** बन जाता है। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हो जाने के बाद **सु**, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप, **झलां जशोऽन्ते** से **षकार** के स्थान पर **जश्त्व** करके **डकार** आदेश होकर **रेड्, रोड्** बना। **वाऽवसाने** से विकल्प से **चर्त्व** होने पर **रेट्-रेड्** और **रोट्-रोड्** ये रूप बनते हैं। आगे अजादि विभक्ति के परे केवल वर्णसम्मेलन और हलादि विभक्ति के पर जश्त्व करके रूप बनाये जाते हैं। **रेट्-रेड्, रेषौ, रेषः, रेषम्, रेषौ, रेषः, रेषा, रेड्भ्याम्, रेड्भिः, रेषे, रेड्भ्यः** आदि। इसी तरह से **रोट्-रोड्, रोषौ, रोषः, रोषा, रोड्भ्याम्** आदि।

सुगण्। सुष्ठु गणयति। अच्छा गिनने वाला। **गण संख्याने** धातु है। चुरादि का है, अतः स्वार्थ में **णिच्** होकर **गणि** बना है। **सु** पूर्वक **गणि** से **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** से **विच्** प्रत्यय होकर सर्वापहार लोप हुआ। **णेरनिटि** से **इकार** का लोप करके **सुगण्** बचा। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके रूप बनाइये- **सुगण्, सुगणौ, सुगणः, सुगणम्, सुगणौ, सुगणः सुगणा, सुगण्भ्याम्, सुगण्भिः** आदि।

८९२- **क्विप् च।** क्विप् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** से वचन-विपरिणाम करके **दृश्यते** आता है।

धातु मात्र से क्विप् प्रत्यय भी होता है।

ककार की **लशक्वतद्धिते** से, पकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। अनेक हल् वर्णों का विना अच् की सहायता के उच्चारण नहीं हो सकता है, अतः इकार को उच्चारण के लिए लगाया गया है। उसकी इत्संज्ञा करने की आवश्यकता ही नहीं है, स्वतः निवृत्त हो जाता है। अब बचा है वकार, उसका **वेरपृक्तस्य** से लोप हो जाता है। इस प्रकार से क्विप् प्रत्यय में से कुछ भी नहीं बचता। इसीको **सर्वापहारलोप** कहते हैं। अब प्रश्न आता है कि यदि सर्वापहार लोप ही करना है तो प्रत्यय का विधान क्यों किया? इसका उत्तर यह है कि प्रत्यय करने से सर्वापहार लोप हो जाने पर भी स्थानिवद्भावेन, प्रत्ययलक्षणेन वा प्रत्ययत्व रहता ही है। तात्पर्य यह कि प्रत्यय को मानकर होने वाले कार्य लोप होने पर भी हो सकते हैं। यह कृत्-प्रकरण का प्रत्यय है, अतः लोप हो जाने पर भी शब्द क्विप्-प्रत्ययान्त बना रहता है। प्रत्ययान्त होने से कृदन्त भी बना रहेगा। कृदन्त मानकर **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो सकेगी। एक और बात भी है कि कृत् के परे होने पर कार्य करने वाले

ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् आदि सूत्रों की प्रवृत्ति भी हो सकेगी। इसी प्रकार कहीं **पित्** या **कित्** को मानकर के होने वाले कार्य भी हो सकते हैं।

उखास्रत्। उखायाः स्रंसते। बरतन से गिरने वाला। **स्रंसु अवस्रंसने** धातु है। **उखा ङस्+स्रंस्** इस पञ्चम्यन्त उपपद वाले **स्रंस्** धातु से **क्विप् च** से क्विप् प्रत्यय, सर्वापहार लोप हुआ। उपपदसमास के बाद प्रातिपकिदसंज्ञा, विभक्ति का लुक्, प्रत्ययलक्षणेन क्विप् को परे मानकर **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से **स्रंस्** में विद्यमान अनुस्वार के स्थानी **नकार** का लोप हुआ, **स्रस्** बचा। **उखास्रस्** बना हुआ है। समासत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञा है ही। अतः सु आया। अपृक्तसंज्ञा करके **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ, **उखास्रस्** में अन्त्य सकार को **वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः** से **दकार** आदेश करके **उखास्रद्** बना। **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **उखास्रत्, उखास्रद्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं। आगे उखास्रसौ, उखास्रसः, उखास्रसम्, उखास्रसौ, उखास्रसः, उखास्रसा, उखास्रद्भ्याम्, उखास्रद्भिः, उखास्रद्भ्यः, उखास्रसाम्, उखास्रत्सु आदि।

पर्णध्वत्। पर्णात् ध्वंसते। पत्ते से गिरने वाला। **ध्वंसु अवस्रंसने** धातु है। **पर्ण ङस्** इस पञ्चम्यन्त उपपद वाले **ध्वंस्** धातु से **क्विप् च** से क्विप् प्रत्यय, सर्वापहार लोप हुआ। उपपदसमास के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक्, प्रत्ययलक्षणेन क्विप् को परे मानकर **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से **ध्वंस्** में विद्यमान अनुस्वार के स्थानी **नकार** का लोप हुआ, **ध्वस्** बचा। **पर्णध्वस्** बना हुआ है। समासत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञा है ही। अतः सु आया। अपृक्तसंज्ञा करके **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतीस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ, **पर्णध्वस्** में अन्त्य सकार को **वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः** से **दकार** आदेश करके **पर्णध्वद्** बना। **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **पर्णध्वत्, पर्णध्वद्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं। आगे पर्णध्वसौ, पर्णध्वसः, पर्णध्वसम्, पर्णध्वसौ, पर्णध्वसः, पर्णध्वसा, पर्णध्वद्भ्याम्, पर्णध्वद्भिः, पर्णध्वद्भ्यः, पर्णध्वसाम्, पर्णध्वत्सु आदि।

वाहभ्रट्। वाहाद् भ्रंशते। घोड़े से गिरने वाला। **भ्रंशु अवस्रंसने** धातु है। **वाह ङस्+भ्रंश्** इस पञ्चम्यन्त उपपद वाले **भ्रंश्** धातु से **क्विप् च** से क्विप् प्रत्यय, सर्वापहार लोप हुआ। उपपदसमास के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक्, प्रत्ययलक्षणेन क्विप् को परे मानकर **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से **भ्रंश्** में विद्यमान अनुस्वार के स्थानी **नकार** का लोप हुआ, **भ्रश्** बचा। **वाहभ्रश्** बना। समासत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञा है ही। अतः सु आया। अपृक्तसंज्ञा करके **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतीस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ, **वाहभ्रश्** में अन्त्य शकार को **व्रश्चभ्रजसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः:** से **षकार** आदेश करके **वाहभ्रष्** बना। **षकार** को **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व करके **डकार**, उसको **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **टकार** हो जाता है। इससे **वाहभ्रट्, वाहभ्रड्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं। आगे वाहभ्रशौ, वाहभ्रशः, वाहभ्रशम्, वाहभ्रशौ, वाहभ्रशः, वाहभ्रशा, वाहभ्रड्भ्याम्, वाहभ्रड्भिः, वाहभ्रड्भ्यः, वाहभ्रशाम्, वाहभ्रट्त्सु, वाहभ्रट्सु आदि।

आगे **क्विप्** प्रत्ययान्त कुछ और उदाहरण दिये जा रहे हैं।

शास्त्रकृत्। शास्त्रं करोतीति। शास्त्र बनाने वाला। डुकृञ् करणे। शास्त्र-पूर्वक कृ-धातु से **क्विप् च** से क्विप् प्रत्यय, ककार की **लशक्वतद्धिते** से, पकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा हो गई। अनेक हल् वर्णों का अच् की सहायता के विना उच्चारण नहीं हो सकता है, अतः इकार को उच्चारण के लिए लगाया गया है। उसकी इत्संज्ञा करने की आवश्यकता

ही नहीं है, अतः स्वतः निवृत्त हो गई। अब बचा है वकार, उसकी **वेरपृक्तस्य** से लोप हो गया। इस प्रकार से क्विप् प्रत्यय में से कुछ भी नहीं बचा अर्थात् सर्वापहार लोप हुआ। प्रत्ययलक्षण से क्विप् को परे मानकर **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** से ह्रस्व वर्ण कृ के ऋकार को तुक् का आगम हुआ। अनुबन्धलोप करके त् बचा। कित् होने के कारण ऋकार के अन्त में बैठा। **शास्त्रकृत्** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अनुबन्धलोप करके सकार बचा। उसकी अपृक्तसंज्ञा करके **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ, **शास्त्रकृत्** सिद्ध हुआ। अजादिविभक्ति के परे रहते केवल वर्णसम्मेलन होगा और हलादिविभक्ति के परे रहने पर तकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर दकार बन जाता है। सुप् के परे होने पर जश्त्व होकर के दकार होता है, फिर **खरि च** से चर्त्व होकर तकार ही बन जाता है।

इस तरह सातों विभक्तियों में इसके रूप निम्नानुसार बनते हैं-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	शास्त्रकृत्	शास्त्रकृतौ	शास्त्रकृतः
द्वितीया	शास्त्रकृतम्	शास्त्रकृतौ	शास्त्रकृतः
तृतीया	शास्त्रकृता	शास्त्रकृद्भ्याम्	शास्त्रकृद्भिः
चतुर्थी	शास्त्रकृते	शास्त्रकृद्भ्याम्	शास्त्रकृद्भ्यः
पञ्चमी	शास्त्रकृतः	शास्त्रकृद्भ्याम्	शास्त्रकृद्भ्यः
षष्ठी	शास्त्रकृतः	शास्त्रकृतोः	शास्त्रकृताम्
सप्तमी	शास्त्रकृति	शास्त्रकृतोः	शास्त्रकृत्सु
सम्बोधन	हे शास्त्रकृत्!	हे शास्त्रकृतौ!	हे शास्त्रकृतः!

मधुलिट्। मधु लेढीति। शहद को चाटने वाला। लिह् आस्वादने। मधुपूर्वक लिह्-धातु से क्विप् प्रत्यय, उसका सर्वापहार, मधुलिह् की प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, उसका लोप, **हो ढः** से ढत्व करके लिट्-लिड् की तरह **मधुलिट्-मधुलिड्** बनेंगे। सातों विभक्तियों में लिह्-शब्द की तरह ही रूप बनते हैं। जैसे-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मधुलिट्-ड्	मधुलिहौ	मधुलिहः
द्वितीया	मधुलिहम्	मधुलिहौ	मधुलिहः
तृतीया	मधुलिहा	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भिः
चतुर्थी	मधुलिहे	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
पञ्चमी	मधुलिहः	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
षष्ठी	मधुलिहः	मधुलिहोः	मधुलिहाम्
सप्तमी	मधुलिहि	मधुलिहोः	मधुलिट्त्सु, मधुलिट्सु
सम्बोधन	हे मधुलिट्-ड्!	हे मधुलिहौ!	हे मधुलिहः!

विषभुक्। विषं भुङ्क्ते। विष खाने वाला। भुज पालनाभ्यवहारयोः। विष-पूर्वक भुज्-धातु से क्विप्, सर्वापहार लोप करके विषभुज् की प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, उसका लोप, **चोः कुः** से जकार को कुत्व करके गकार और उसको **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके ककार आदेश, चर्त्व न होने के पक्ष में गकार ही रहेगा। **विषभुक्-विषभुग्** दो रूप बनेंगे। अजादि विभक्ति के परे होने पर केवल वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति के परे कुत्व करके

णिनिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८०३. सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ३।२।७८॥

अजात्यर्थे सुपि धातोर्णिनिस्ताच्छील्ये द्योत्ये। उष्णभोजी।

....

निम्नानुसार रूप बन जाते हैं-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विषभुक्-ग्	विषभुजौ	विषभुजः
द्वितीया	विषभुजम्	विषभुजौ	विषभुजः
तृतीया	विषभुजा	विषभुग्भ्याम्	विषभुग्भिः
चतुर्थी	विषभुजे	विषभुग्भ्याम्	विषभुग्भ्यः
पञ्चमी	विषभुजः	विषभुग्भ्याम्	विषभुग्भ्यः
षष्ठी	विषभुजः	विषभुजोः	विषभुजाम्
सप्तमी	विषभुजि	विषभुजोः	विषभुक्षु
सम्बोधन	हे विषभुक्-ग्!	हे विषभुजौ!	हे विषभुजः!

८०३- **सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये**। न जातिरजातिस्तस्यामजातौ। सः (धात्वर्थः) शीलं (स्वभावो) यस्य स तच्छीलः, तस्य भावस्ताच्छील्यं, तस्मिन्। सुपि सप्तम्यन्तम्, अजातौ सप्तम्यन्तं, णिनिः प्रथमान्तं, ताच्छील्ये सप्तम्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **धातोः**, **प्रत्ययः**, **परश्च** का अधिकार है ही।

जात्यर्थ से भिन्न सुबन्त के उपपद होने पर धातु से परे णिनि प्रत्यय होता है यदि कर्ता का शील अर्थात् स्वभाव द्योतित हो तो।

ताच्छील्य का तात्पर्य स्वभाव से है। कर्ता अर्थ में प्रत्यय का विधान हो रहा है। अतः ताच्छील्य अर्थात् स्वभाव भी कर्ता का ही होगा किन्तु वह धातु के अर्थ के अनुसार का स्वभाव होना चाहिए। **णिनि** में णकार और अन्त्य इकार इत्संज्ञक हैं, **इन्** शेष रहता है।

उष्णभोजी। उष्णं भुङ्क्ते तच्छीलम्। गरमागरम खाने का स्वभाव वाला। **भुज** (पालनाभ्यवहारयोः) धातु है। **उष्ण** यह कर्म उपपद है। यहाँ पर जाति अर्थ से भिन्न सुबन्त उपपद है और **ताच्छील्य** अर्थात् **स्वभाव** अर्थ भी गम्यमान है। अतः **सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये** से **णिनि** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप होने के बाद **उष्ण+अम्+भुज्+इन्** बना। कृत् के योग में **कर्तृकर्मणोः कृति** से उपपद कर्म **उष्ण** के साथ षष्ठी विभक्ति आई तो **उष्ण ङस्+भुज् इन्** बना। अब **पुगन्तलघूपधस्य च** से **भुज्** को उपधागुण करके ओकार और **उपपदमतिङ्** से उपपदसमास करके **सुप्** का लुक्, **उष्णभोजिन्** यह प्रातिपदिक निष्पन्न हुआ। इससे **शार्ङ्गिन्** शब्द की तरह सुबन्त में रूप बनाये जाते हैं। उष्णभोजी, उष्णभोजिनौ, उष्णभोजिनः, उष्णभोजिनम्, उष्णभोजिनौ, उष्णभोजिनः, उष्णभोजिना, उष्णभोजिभ्याम्, उष्णभोजिभिः, उष्णभोजिने, उष्णभोजिभ्यः, उष्णभोजिनोः, उष्णभोजिनाम्, उष्णभोजिषु, हे उष्णभोजिन् आदि। इसी तरह कुछ अन्य प्रयोग भी देखें।

सत्यं वदति तच्छीलः (सत्य बोलने वाला) **सत्यवादी, सत्यवादिनौ, सत्यवादिनः**।

मृदु भाषते तच्छीलः (मधुर बोलने वाला। **मृदुभाषी, मदुभाषिणौ, मृदुभाषिणः**।

शीतं भुङ्क्ते तच्छीलः। (ठंडा खाने का स्वभाव वाला)**शीतभोजी, शीतभोजिनौ, शीतभोजिनः**।

णिनिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८०४. मनः ३।२।८२॥

सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात्। दर्शनीयमानी।

खश्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८०५. आत्ममाने खश्च ३।२।८३॥

स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्याच्चाण्णिनिः।
पण्डितमात्मानं मन्यते पण्डितम्मन्यः। पण्डितमानी।

....

मितं भाषते तच्छीलः(कम बोलने का स्वभाव वाला) **मितभाषी, मितभाषिणौ, मितभाषिणः**। प्रियं वदति तच्छीलः(प्रिय बोलने का स्वभाव वाला) **प्रियवादी, प्रियवादिनौ, प्रियवादिनः**।

८०४- **मनः**। मनः पञ्चम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **सुप्यजातौ णिनिः** से **सुपि** और **णिनिः** की अनुवृत्ति आती है तथा **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

सुबन्त के उपपद होने पर मन् धातु से णिनि प्रत्यय होता है।

अनुबन्धलोप होकर **इन्** बचता है। **अपने को मानना** अर्थ में अग्रिम सूत्र **आत्ममाने खश्च** लगता है। अतः इस सूत्र से अपने को मानने अर्थ में नहीं अपि तु सामान्यतया **मानना, जानना** अर्थ में **णिनि** किया जाता है।

दर्शनीयमानी। दर्शनीयं मन्यते। सुन्दर, दर्शनीय मानने वाला। **दर्शनीय** कर्म के उपपद रहते **मन ज्ञाने** इस दिवादिगणीय धातु से **णिनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, णित् होने के कारण **मन्** के उपधा की **अत उपधायाः** से वृद्धि होती है। उपपद **दर्शनीय** से **कृत्** के योग में षष्ठी विभक्ति, उपपदसमास, विभक्ति का लुक् करके **दर्शनीयमानिन्** बना। इससे सु आदि विभक्ति के योजन से रूप बनते हैं-

दर्शनीयमानी,	**दर्शनीयमानिनौ,**	**दर्शनीयमानिनः,**
दर्शनीयमानिनम्,	**दर्शनीयमानिनौ,**	**दर्शनीयमानिनः,**
दर्शनीयमानिना,	**दर्शनीयमानिभ्याम्,**	**दर्शनीयमानिभिः,**
दर्शनीयमानिने,	**दर्शनीयमानिभ्याम्,**	**दर्शनीयमानिभ्यः,**
दर्शनीयमानिनः,	**दर्शनीयमानिभ्याम्,**	**दर्शनीयमानिभ्यः,**
दर्शनीयमानिनः,	**दर्शनीयमानिनोः,**	**दर्शनीयमानिनाम्,**
दर्शनीयमानिनि,	**दर्शनीयमानिनोः,**	**दर्शनीयमानिषु,**
हे दर्शनीयमानिन्	**हे दर्शनीयमानिनौ,**	**हे दर्शनीयमानिनः।**

८०५- **आत्ममाने खश्च**। मननं मानः, आत्मनः=स्वस्य मान आत्ममानः, तस्मिन्। आत्ममाने सप्तम्यन्तं, खः प्रथमान्त, च अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये** से **सुपि, णिनिः** और **मनः** से **मनः** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है ही।

यदि मन् धातु का कर्ता उसका कर्म भी हो अर्थात् अपने को मानता है, ऐसा अर्थ हो तो सुबन्त के उपपद होने पर मन् धातु से खश् और णिनि प्रत्यय होते हैं।

सूत्र में **चकार** पढ़ा गया है, अतः **णिनि** का समुच्चय है। **खश्** में खकार की

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

८०६. खित्यनव्ययस्य ६।३।६६॥

खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः। ततो मुम्। कालिम्मन्या।

....

लशक्वतद्धिते से इत्संज्ञा होती है और **शकार** भी **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञक है ही। अतः **अ** शेष रहता है। **खित्** का प्रयोजन मुम् आगम और **शित्** का प्रयोजन सार्वधातुकसंज्ञा करना है। इस सूत्र से **अपने को मानना** अर्थ में ही ये प्रत्यय किये जाते हैं।

पण्डितम्मन्यः, पण्डितमानी। आत्मानं पण्डितं मन्यते। अपने को पण्डित मानने वाला। यहाँ पर **मन्** धातु का कर्ता अपने आप को पण्डित मान रहा है, अतः **मन्** धातु **आत्ममाने** अर्थ में प्रयुक्त है। **पण्डित** कर्म के उपपद रहते **मन ज्ञाने** इस दिवादिगणीय धातु से **खश्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, कृत् के योग में **षष्ठी** आती है, **पण्डित ङस्+मन्+अ** बना। है। **खश्** के शित् होने से उसकी **सार्वधातुकसंज्ञा** करके **कर्तरि शप्** से **शप्** प्राप्त था, दिवादि धातु होने के कारण उसे बाधकर के **दिवादिभ्यः श्यन्** से **श्यन्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप करने पर **य** बचा। **मन्+य+अ** में **अतो गुणे** से पररूप होकर **मन्य** बनता है। **उपपदमतिङ्** से उपपदसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, प्रातिपदिक के अवयव का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् करने पर **पण्डित+मन्य** बना है। **अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्** से खित् के परे रहने पर **मुम्** का आगम करके, उसको अनुस्वार और परसवर्ण करके **पण्डितम्मन्य** ऐसा **अदन्त** शब्द तैयार हो गया है। अब आगे **स्वादिकार्य** करके पण्डितम्मन्यः, पण्डितम्मन्यौ, पण्डितम्मन्याः आदि रूप बनाये जाते हैं। **खश्** के साथ **णिनि** प्रत्यय का समुच्चय है। अतः **णिनि** होने के पक्ष में **शित्** के न होने के कारण **श्यन्** आदि नहीं होंगे। **खित्** न होने के कारण **मुम्** आगम भी नहीं होगा। इस तरह **पण्डितमानिन्** प्रातिपदिक बनेगा। इसके रूप **दर्शनीयमानिन्** की तरह ही पण्डितमानी, पण्डितमानिनौ, पण्डितमानिनः आदि बना सकते हैं। इसी तरह आत्मानं शूरं मन्यते- शूरम्मन्यः-शूरमानी, वीरम्मन्यः-वीरमानी, धन्यम्मन्यः-धन्यमानी, ईश्वरम्मन्यः-ईश्वरमानी, विद्वन्मन्यः-विद्वन्मानी आदि बनाने का प्रयत्न करे।

८०६-खित्यनव्ययस्य। ख् इत् यस्य स खित्, तस्मिन्। न अव्ययम् अनव्ययं, तस्य। खिति सप्तम्यन्तम्, अनव्ययस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अलुगुत्तरपदे** से **उत्तरपदे** का अधिकार है। **इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य** से **ह्रस्वः** की अनुवृत्ति आती है। **उत्तरपदे** से **पूर्वपद** का आक्षेप किया जाता है।

खित् प्रत्यय जिसके अन्त में हो, ऐसे उत्तरपद के परे रहने पर पूर्वपद के अन्त्य वर्ण को ह्रस्व होता है, अनव्यय में अर्थात् अव्यय को ह्रस्व नहीं होता।

पूर्वपद को प्राप्त ह्रस्व **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से अन्त्य वर्ण को हो जाता है।

कालिम्मन्या। आत्मानं कालीं मन्यते। अपने को काली, दुर्गा मानने वाली, स्त्री। यहाँ पर **मन्** धातु की कर्त्री अपने आप को काली मान रही है, अतः **मन्** धातु **आत्ममाने** अर्थ में प्रयुक्त है। **काली** कर्म के उपपद रहते **मन ज्ञाने** इस दिवादिगणीय धातु से **खश्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, कृत् के योग में **षष्ठी** आती है, **काली ङस्+मन्+अ** बना। **खश्** के शित् होने से उसकी **सार्वधातुकसंज्ञा** करके **कर्तरि शप्** से **शप्** प्राप्त था, दिवादि धातु होने

णिनिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८०७. करणे यजः ३।२।८५॥

करणे उपपदे भूतार्थे यजेर्णिनिः कर्तरि।

सोमेनेष्टवान् सोमयाजी। अग्निष्टोमयाजी।

क्वनिप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८०८. दृशेः क्वनिप् ३।२।९४॥

कर्मणि भूते। पारं दृष्टवान् पारदृश्वा।

....

के कारण उसे बाधकर के **दिवादिभ्यः श्यन्** से **श्यन्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप करने पर **य** बचा। **मन्+य+अ** में **अतो गुणे** से पररूप होकर **मन्य** बनता है। **उपपदमतिङ्** से उपपदसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, प्रातिपदिक के अवयव का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् करने पर **काली+मन्य** बना है। **खित्यनव्ययस्य** से खिदन्त के परे **काली** के ईकार को ह्रस्व करके **कालि+मन्य** बना। अब **अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्** से खित् के परे रहने पर **मुम्** का आगम करके, उसको अनुस्वार और परसवर्ण करके **कालिम्मन्य** ऐसा **अदन्त** शब्द तैयार हो गया है। स्त्रीत्व की विवक्षा में **टाप्** होकर **कालिम्मन्या** बन जाता है। अब आगे **स्वादिकार्य** करके **कालिम्मन्या, कालिम्मन्ये, कालिम्मन्याः** आदि रूप बनाये जाते हैं। इसी तरह **आत्मानं सुन्दरीं मन्यते- सुन्दरिम्मन्या, सतिम्मन्या** आदि भी बनाये जा सकते हैं।

८०७- **करणे यजः**। करणे सप्तम्यन्तं, यजः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। **सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये** से **णिनि** की अनुवृत्ति आती है।

करण के उपपद होने पर भूतकाल की क्रिया के वाचक यज् धातु से कर्ता अर्थ में णिनि प्रत्यय होता है।

सोमयाजी। सोमेन इष्टवान्। सोमलता से यज्ञ कर चुका व्यक्ति। यहाँ पर **यज्ञ** करने में **सोम** यह **करण** है और **भूतकाल** में **करणे यजः** से **यज्** धातु से **णिनि** करके **सोमयाजी, सोमयाजिनौ, सोमयाजिनः** आदि बना सकते हैं। ध्यान रहे कि जहाँ जहाँ पर उपपद के रहने पर प्रत्यय होते हैं, वहाँ-वहाँ उपपद का धातु के साथ **उपपदसमास** अवश्य होता है, यह नहीं भूलना चाहिए। कृत् प्रत्यय के लगने के बाद तो कृदन्त मानकर के प्रातिपदिक संज्ञा होती ही है। उसके बाद सु आदि प्रत्ययों के विना तो पद ही नहीं बनता और पद के विना प्रयोग ही नहीं किया जा सकता। पाठकों को स्मरण कराते हैं कि व्याख्या में यदि कहीं कहीं उन सारी प्रक्रियाओं को नहीं दिखा सके तो भी आप समझ लें कि समास, स्वादिकार्य आदि सभी होते हैं।

अग्निष्टोमयाजी। अग्निष्टोमेन इष्टवान्। अग्निष्टोम यज्ञ कर चुका व्यक्ति। यहाँ पर **यज्ञ** करने में **अग्निष्टोम** यह **करण** है और **भूतकाल** में **करणे यजः** से **यज्** धातु से **णिनि** करके अग्निष्टोमयाजी, अग्निष्टोमयाजिनौ, अग्निष्टोमयाजिनः आदि बना सकते हैं।

८०८- **दृशेः क्वनिप्**। दृशेः पञ्चम्यन्तं, क्वनिप् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है और **कर्मणि हनः** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है।

क्वनिप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८०९. राजनि युधि कृञः ३।२।९५॥

क्वनिप् स्यात्। युधिरन्तर्भावितण्यर्थः। राजानं योधितवान् राजयुध्वा। राजकृत्वा।

क्वनिप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८१०. सहे च ३।२।९६॥

कर्मणीति निवृत्तम्। सह योधितवान् सहयुध्वा। सहकृत्वा।

....

कर्म के उपपद होने पर भूतकालिक क्रिया में वर्तमान(विद्यमान) दृश् धातु से क्वनिप् प्रत्यय होता है।

कर्तरि कृत् के अनुसार यह प्रत्यय भी **कर्ता** अर्थ में ही होता है किन्तु **उपपद** जो है वह **कर्म** होना चाहिए। **क्वनिप्** में अनुबन्ध के लोप होने पर **वन्** शेष रहता है। अपृक्त न होने के कारण **वकार** का लोप नहीं होता।

पारदृश्वा। पारं दृष्टवान्। जो पार को देख चुका है अथवा पारंगत, निष्णात। यहाँ पर भूत काल है और **पार** यह कर्म उपपद है। **दृश्** धातु से **क्वनिप्**, अनुबन्धलोप, **कृत्** के योग में **कर्म में षष्ठी, उपपदसमास** करके सुप् का लुक् करके **पारदृश्वन्** यह प्रातिपदिक सिद्ध हुआ। इससे सु आदि विभक्ति लगा कर **पारदृश्वा, पारदृश्वानौ, पारदृश्वानः** आदि रूप बनते हैं। इसी तरह **शास्त्रदृश्वा, विश्वदृश्वा** आदि अनेक शब्दों की सिद्धि हो सकती है।

८०९- राजनि युधि कृञः। राजनि सप्तम्यन्तं, युधि सप्तम्यन्तं, कृञः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **भूते** तथा **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है और **कर्मणि हनः** से **कर्मणि** तथा **दृशेः क्वनिप्** से **क्वनिप्** की अनुवृत्ति आती है।

राजन् इस कर्म के उपपद होने पर भूतकालिक क्रिया में वर्तमान युध् और कृञ् धातुओं से क्वनिप् प्रत्यय होता है।

कर्तरि कृत् के अनुसार यह प्रत्यय भी **कर्ता** अर्थ में ही होता है किन्तु **उपपदसंज्ञक** जो कर्म है वह **राजन्** ऐसा ही होना चाहिए। अनुबन्धलोप होकर **वन्** शेष रहता है। **कौमुदीकार** लिखते हैं कि यहाँ पर **युध्** धातु **अन्तर्भावितण्यर्थ** है अर्थात् धातु में ही **णिच्** का अर्थ विद्यमान है। अतः **युद्ध किया** ऐसा अर्थ न होकर **युद्ध कराया** ऐसा अर्थ होगा।

राजयुध्वा। राजानं योधितवान् । राजा को लड़ाया जिसने। यहाँ पर भूतकाल है और **राजन्** यह कर्म उपपद है। **युध्** धातु से **क्वनिप्**, अनुबन्धलोप, **कृत्** के योग में **कर्म में षष्ठी, उपपदसमास** करके सुप् का लुक् करके **राजयुध्वन्** यह प्रातिपदिक सिद्ध हुआ। इससे सु आदि विभक्ति लगाकर **राजयुध्वा, राजयुध्वानौ, राजयुध्वानः** आदि रूप बनते हैं।

राजकृत्वा। राजानं कृतवान् । राजा को बनाया जिसने। यहाँ पर भूतकाल है और **राजन्** यह कर्म उपपद है। **कृ** धातु से **क्वनिप्**, अनुबन्धलोप, **कृत्** के योग में **कर्म में षष्ठी, उपपदसमास** करके सुप् का लुक् करके **राजकृ+वन्** बना। **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** से **तुक्** आगम करके **राजकृत्वन्** यह प्रातिपदिक सिद्ध हुआ। इससे सु आदि विभक्ति लगाकर **राजकृत्वा, राजकृत्वानौ, राजकृत्वानः** आदि रूप बनते हैं।

ड-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८११. सप्तम्यां जनेर्डः ३।२।९७॥

अलुग्विधायकं विधिसूत्रम्

८१२. तत्पुरुषे कृति बहुलम् ६।३।१४॥

ङेरलुक्। सरसिजम्, सरोजम्।

....

८१०- **सहे च**। सहे सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है तथा **दृशेः क्वनिप्** से **क्वनिप्** और **राजनि युधि कृञः** से **युधि कृञ्** की अनुवृत्ति आती है।

सह के उपपद होने पर भूतकालिक क्रिया में वर्तमान युध् और कृञ् धातुओं से क्वनिप् प्रत्यय होता है।

कर्मणि की अनुवृत्ति यहाँ पर नहीं आती। अतः कौमुदीकार ने लिखा- **कर्मणीति निवृत्तम्**। सह वैसे भी अव्यय है। अतः **सह** यह कर्म नहीं हो सकता। अर्थात् **सह** इस पद को देखते हुए **कर्मणि** स्वतः निवृत्त हुआ।

सहयुध्वा। सह योधितवान्। किसी के साथ युद्ध कर चुका व्यक्ति। यहाँ पर भूत काल है और **सह** यह उपपद है। **युध्** धातु से **क्वनिप्**, अनुबन्धलोप करके **सहयुध्वन्** यह प्रातिपदिक सिद्ध हुआ। इससे सु आदि विभक्ति लगाकर **राजयुध्वन्** की तरह **सहयुध्वा, सहयुध्वानौ, सहयुध्वानः** आदि रूप बनते हैं।

८११- **सप्तम्यां जनेर्डः**। सप्तम्यां सप्तम्यन्तं, जनेः पञ्चम्यन्तं, डः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। किसी पद की अनुवृत्ति नहीं है।

सप्तम्यन्त के उपपद रहने पर जन धातु से ड प्रत्यय होता है।

डकार की इत्संज्ञा होकर **अ** बचता है। डित् का फल **डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः** अर्थात् भसंज्ञा के विना भी **टि** का लोप करना। अन्यथा डित् का कोई प्रयोजन नहीं है।

८१२- **तत्पुरुषे कृति बहुलम्**। तत्पुरुषे सप्तम्यन्तं, कृति सप्तम्यन्तं, बहुलम् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्** से **सप्तम्याः** और **अलुगुत्तरपदे** सम्पूण सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

तत्पुरुष समास में कृदन्त उत्तरपद के परे होने पर सप्तमी का बहुल से अलुक् होता है।

यह सूत्र **अलुक् समास** का है। समास होने पर जो **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से प्रातिपदिक के अवयव सुप् का लुक् प्राप्त होता है, उसका यह निषेध करता है। यदि तत्पुरुष समास हुआ हो और कृदन्त उत्तरपद में हो एवं पूर्वपद में सप्तमी विभक्ति हो तो उसका लुक् न हो। यह विधि **बहुल** से होती है। **बहुल** का तात्पर्य- **कहीं होना, कहीं न होना, कहीं विकल्प से होना** और **कहीं कुछ भिन्न ही होना**। आप **कृत्यप्रक्रिया** के **कृत्यलुटो बहुलम्** सूत्र में **बहुल** को भलीभाँति समझ चुके हैं। इस सूत्र में **उत्तरपदे** की अनुवृत्ति आने से वह **कृति** का विशेषण बन जाता है। फलतः **कृदन्ते** यह अर्थ निकलता है।

सरसिजम्, सरोजम्। तालाब में पैदा हुआ, कमल। **सरसि जातम्**। यहाँ पर

डप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८१३. उपसर्गे च संज्ञायाम् ३।२।९९।।

प्रजा स्यात् सन्ततौ जने।।

निष्ठासंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

८१४. क्तक्तवतू निष्ठा १।१।२६।।

एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः।

....

भूतकाल है और **सरस्+ङि** इस सप्तम्यन्त के उपपद होने पर **जन् (जनी प्रादुर्भावे)** धातु से **सप्तम्यां जनेर्डः** से **ड** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **सरस्+ङि+जन्+अ** बना। **डित्** होने के कारण भसंज्ञा के न रहने पर भी **जन्** में जो टिसंज्ञक **अन्** है, उसका लोप हुआ और जकार प्रत्यय के अकार से मिल गया- **सरस्+ङि+ज** बना। पूर्वपद में विद्यमान सप्तमी विभक्ति का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् प्राप्त था। **तत्पुरुषे कृति बहुलम्** से अलुक् अर्थात् लुक् का निषेध हुआ। यहाँ पर **बहुल** का अर्थ **विकल्प** लिया गया। अतः सप्तमी का विकल्प से अलुक् हुआ। **सरसिज** यह प्रातिपदिक सिद्ध हुआ। इससे सु आदि विभक्ति लगाकर **सरसिजम्, सरसिजे, सरसिजानि** आदि रूप बनते हैं। जब **सप्तमी का अलुक् नहीं हुआ** अर्थात् लुक् हो गया तो **सरस्+ज** बनता है। इसमें **सरस्** पद है ही, अतः पदान्त सकार को रुत्व करके **हशि च** से उत्व करके **सर+उ+ज** बना। गुण होकर **सरोज** बना। स्वादि कार्य करके **सरोजम्, सरोजे, सरोजानि** आदि बनाते जायें। इसी तरह **मनसि जातं मनसिजम्, मनोजम्** मन में उत्पन्न होने वाला कामदेव, **वने जातं वनजम्** आदि अनेक शब्दों की सिद्धि की जाती है।

८१३- **उपसर्गे च संज्ञायाम्।** उपसर्गे सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, संज्ञायां सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। **सप्तम्यां जनेर्डः** से **जनेः** और **डः** की अनुवृत्ति आती है।

उपसर्ग उपपद होने पर भूतकाल में जन् धातु से ड प्रत्यय होता है संज्ञा के विषय में।

इस सूत्र के लिए **उपसर्ग** उपपद में होना चाहिए, **जन्** धातु होना चाहिए और प्रकृति और प्रत्यय से समुदायार्थ **संज्ञा** होनी चाहिए।

प्रजा। प्रजायत इति। जो उत्पन्न हुई है, जनता, सन्तति आदि। **प्र** पूर्वक **जन्** धातु है। संज्ञा अर्थ भी है। अतः **उपसर्गे च संज्ञायाम्** से **प्र+जन्** से **ड** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, टिसंज्ञक **अन्** का लोप करके **प्रज्+अ= प्रज** बना। यहाँ पर **कुगतिप्रादयः** से गतिसमास होता है। संज्ञा में **प्रजा** ऐसा स्त्रीप्रत्ययान्त शब्द प्रयुक्त होता है। अतः **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** प्रत्यय होकर **प्रजा** शब्द बना। इससे **रमा** शब्द की तरह **प्रजा, प्रजे, प्रजाः** आदि सुबन्त रूप बनते हैं।

८१४- **क्तक्तवतू निष्ठा।** क्तश्च क्तवतुश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः क्तक्तवतू। क्तक्तवतू प्रथमान्तं, निष्ठा प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

क्त और क्तवतु प्रत्यय निष्ठासंज्ञक होते हैं।

निष्ठाप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८१५. निष्ठा ३।२।१०२॥

भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात्।

तत्र **तयोरेवेति** भावकर्मणोः क्तः, **कर्तरि कृदिति** कर्तरि क्तवतुः। उकावितौ। स्नातं मया। स्तुतस्त्वया विष्णुः। विश्वं कृतवान् विष्णुः।

....

व्याकरणशास्त्र में जहाँ-जहाँ भी निष्ठा का नाम लिया जायेगा, वहाँ-वहाँ ये दोनों प्रत्यय समझे जायेंगे। दोनों प्रत्ययों में ककार **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञक है और क्तवतु में उकार भी **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञक है। क्रमशः **त** और **तवत्** शिष्ट होते हैं। कित् का फल गुणनिषेध आदि है।

८१५- **निष्ठा**। निष्ठा प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। कृदन्तप्रकरण के सूत्रों में **धातोः**, **प्रत्ययः**, **परश्च** इन तीन सूत्रों का अधिकार तो होता ही है, साथ ही इस सूत्र में **भूते** का भी अधिकार है।

निष्ठासंज्ञक क्त और क्तवतु प्रत्यय भूतकाल अर्थ में सभी धातुओं से होते हैं।

तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः के नियमानुसार **क्त** प्रत्यय **भाव** और **कर्म** अर्थ में तथा **कर्तरि कृत्** के निमयमानुसार **क्तवतु** प्रत्यय **कर्ता** अर्थ में होता है। **भाव** और कर्म अर्थ में **क्त** प्रत्यय होने से इसका कर्ता तृतीयान्त होगा किन्तु **क्तवतु** प्रत्यय कर्ता में होने से इसका कर्ता प्रथमान्त होगा।

स्नातं मया। मुझसे नहाया गया। ष्णा शौचे। **धात्वादेः षः सः** से षकार को सत्व करने पर ण भी न में बदल गया। स्ना से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा भाव और भूतकाल अर्थ में क्त, अनुबन्धलोप, **स्नात**, प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अमादेश, पूर्वरूप **स्नातम्** बना। नपुंसकलिङ्ग और औत्सर्गिक एकवचन हुआ। इसका कर्ता अस्मद्-शब्द तृतीयान्त बना- **स्नातं मया**।

स्तुतस्त्वया विष्णुः। तुझ से विष्णु की स्तुति की गई अर्थात् तुमने विष्णु की स्तुति की। ष्टुञ् स्तुतौ। **धात्वादेः षः सः**। षकार के अभाव में टकार भी तकार में बदल गया। स्तु-धातु से कर्म और भूतकाल अर्थ में क्त प्रत्यय, अनुबन्धलोप, कित् होने के कारण **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से प्राप्त गुण का **क्ङिति च** से निषेध, स्तुत की प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्वविसर्ग, **स्तुतः** सिद्ध हुआ। यहाँ कर्ता युष्मत्-शब्द तृतीयान्त ही हुआ किन्तु कर्म में प्रत्यय होने के कारण कर्म जिस लिङ्ग, विभक्ति और वचन का होता है, क्रिया भी उसी लिङ्ग, विभक्ति और वचन का होगा। यहाँ पर विष्णु शब्द पुँल्लिङ्ग, प्रथमा, एकवचन का है, इसलिए स्तुतः भी पुँल्लिङ्ग, प्रथमा, एकवचन का ही हुआ- **स्तुतः त्वया विष्णुः**। स्तुतः के विसर्ग को **विसर्जनीयस्य सः** से सकार आदेश होकर **स्तुतस्त्वया विष्णुः** बन गया। अकारान्त स्तुत के पुँल्लिङ्ग में रामशब्द की तरह **स्तुतः, स्तुतौ, स्तुताः**, स्त्रीलिङ्ग में टाप् आदि होकर रमा शब्द की तरह **स्तुता, स्तुते, स्तुताः** और नपुंसकलिङ्ग में ज्ञानशब्द की तरह **स्तुतम्, स्तुते, स्तुतानि** आदि रूप बनते हैं।

विश्वं कृतवान् विष्णुः। विष्णु ने विश्व को बनाया। **(डुकृञ् करणे)** कृ-धातु से कर्ता अर्थ में निष्ठासंज्ञक क्तवतु प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तवत् बचा। कित् होने से गुण का

नकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८१६. रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ८।२।४२॥

रदाभ्यां परस्य निष्ठातस्य नः स्यात्, निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दस्य च। **शॄ हिंसायाम्। ॠत इत्।** रपरः। णत्वम्। शीर्णः। भिन्नः। छिन्नः।

....

निषेध, **कृतवत्** हलन्त शब्द बना। प्रातिपदिकसंज्ञा सु, कृतवत्+स् में धीमत् शब्द की तरह **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से अन्त्य अच् के बाद नुम् आगम, अनुबन्धलोप, **कृतवन्त्+स्** बना। **अत्वसन्तस्य चाधातोः** से वकारोत्तरवर्ती अकार को दीर्घ, **कृतवान्त् स्** बना। सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप, तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप करने पर **कृतवान्** सिद्ध हुआ। इसके रूप धीमत् की तरह ही चलते हैं।

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कृतवान्	कृतवन्तौ	कृतवन्तः
द्वितीया	कृतवन्तम्	कृतवन्तौ	कृतवतः
तृतीया	कृतवता	कृतवद्भ्याम्	कृतवद्भिः
चतुर्थी	कृतवते	कृतवद्भ्याम्	कृतवद्भ्यः
पञ्चमी	कृतवतः	कृतवद्भ्याम्	कृतवद्भ्यः
षष्ठी	कृतवतः	कृतवतोः	कृतवताम्
सप्तमी	कृतवति	कृतवतोः	कृतवत्सु
सम्बोधन	हे कृतवन्!	हे कृतवन्तौ!	हे कृतवन्तः!

स्त्रीलिङ्ग में **उगितश्च** से ङीप् करके कृतवती बनता है और इसके रूप नदी-शब्द की तरह **कृतवती, कृतवत्यौ, कृतवत्यः** आदि बनते हैं। नपुंसकलिङ्ग में तान्त ही रहेगा और रूप बनेंगे- **कृतवत्, कृतवती, कृतवन्ति, कृतवत्, कृतवती, कृतवन्ति** और तृतीया से पुँल्लिङ्ग की तरह ही रूप बन जाते हैं।

अब आप अन्य धातुओं से भी क्त और क्तवतु प्रत्यय करके रूप बनाइये। जैसे- लिख् से **लिखितम्, लिखितः, लिखितवान्**। पठ् से **पठितम्, पठितः, पठितवान्।** चल् से **चलितम्, चलितः, चलितवान्**। गम् से **गतम्, गतः, गतवान्।** (गम् धातु में अनुनासिक मकार का **अनुदात्तोपदेश०** सूत्र से लोप होता है।) हस् से **हसितम्, हसितः, हसितवान्** इत्यादि।

८१६- रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः। रश्च दश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो रदौ, ताभ्याम्। निष्ठायाः त् निष्ठात्, तस्य निष्ठातः, षष्ठीतत्पुरुषः। रदाभ्यां पञ्चम्यन्तं, निष्ठातः षष्ठ्यन्तं, नः प्रथमान्तं, पूर्वस्य षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं दः षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

रेफ या दकार से परे निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता और निष्ठा की अपेक्षा पूर्व में स्थित धातु के दकार को भी नकार आदेश होता है।

यह सूत्र रेफ या दकार से क्त-प्रत्यय के तकार के परे रहने पर लगता है, प्रत्यय के तकार के स्थान पर भी नकार करता है और यदि धातु के अन्त में दकार हो तो उसके स्थान पर भी नकार आदेश करता है।

शीर्णः। हिंसा किया गया, मारा गया। **शॄ हिंसायाम्** धातु है। **शॄ** धातु से **निष्ठा**

नकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८१७. संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ८।२।४३॥

निष्ठातस्य नः स्यात्। द्राणः। ग्लानः।

....

इस सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **शृ+त** बना। **क्त** के कित् होने के कारण प्राप्त गुण का निषेध, **ऋत इद्धातोः** से धातु में विद्यमान दीर्घ ऋकार के स्थान पर रपर सहित इकार आदेश होने पर **शिर्+त** बना। **हलि च** से रेफान्त उपधा को दीर्घ करके **शीर्+त** बना। रकार से परे निष्ठासंज्ञक तकार के स्थान पर **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** से नकार आदेश हुआ, **शीर्+न** बना। **रषाभ्यां नो णः समानपदे** से नकार को णत्व करके **रेफ** का ऊर्ध्वगमन होकर **शीर्ण** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग करके **शीर्णः** सिद्ध हुआ। **क्तवतु** प्रत्यय में यही प्रक्रिया होती है अर्थात् नत्व होकर **शीर्णवान्** बनता है।

छिन्नः। काटा गया। **छिदिर्** द्वैधीकरणे। **छिद्** धातु से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, **ककार** का लोप, **छिद्+त** बना। दकार से परे निष्ठासंज्ञक तकार और धातु के दकार दोनों के स्थान पर **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** से नकार आदेश हुआ, **छिन्+न** बना, वर्णसम्मेलन, **छिन्न**। प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग, **छिन्नः**। **क्तवतु** प्रत्यय में यही प्रक्रिया होकर **छिन्नवान्** बनता है।

भिन्नः। तोड़ा गया। **भिदिर्** विदारणे। **भिद्** धातु से **निष्ठा** से **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **भिद्+त** बना। दकार से परे निष्ठासंज्ञक तकार है, अतः धातु के दकार और प्रत्यय के तकार दोनों के स्थान पर **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** से नकार आदेश हुआ, **भिन्+न** बना, वर्णसम्मेलन, **भिन्न**। प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग, **भिन्नः**। **क्तवतु** प्रत्यय में यही प्रक्रिया होती है अर्थात् नत्व होकर **भिन्नवान्** बनता है।

८१७-संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः। संयोगः आदिर्यस्य सः संयागादिस्तस्य। यण् अस्मिन्नस्तीति यण्वान्, तस्य। **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** से **निष्ठातः** और **नः** की अनुवृत्ति आती है।

संयोग जिस के आदि में हो ऐसे आकारान्त यण् वाले धातु से परे निष्ठा के तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

यह सूत्र **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** का समानान्तर सूत्र है। इस सूत्र की प्रवृत्ति में तीन हेतु होने चाहिए- **धातु** के आदि में संयोग हो, धातु में **यण्** अर्थात् **य्, व्, र्, ल्** में से कोई एक वर्ण हो और वह धातु **आकारान्त** हो। ऐसे में **निष्ठासंज्ञक तकार** के स्थान पर **नकार** हो जाता है।

द्राणः। दुर्गति को प्राप्त। **द्रा** कुत्सायां गतौ। **द्रा** धातु से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **द्रा+त** बना। दकार, रकार से परे निष्ठासंज्ञक तकार नहीं है, अतः नत्व के लिए दूसरा सूत्र लगा- **संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः**। यहाँ पर **द्रा** धातु द् और र के संयोग होने से संयोगादि वाला भी है और रेफयुक्त होने के कारण **यण्वान्** भी है तथा आकारान्त भी। अतः निष्ठा के **तकार** के स्थान पर **नकार** आदेश हुआ, **द्रा+न** बना। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से नकार को णत्व करके, प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग, **द्राणः**। **क्तवतु** प्रत्यय में यही प्रक्रिया होकर **द्राणवान्** बनता है।

ग्लानः। खिन्न, दुःखी। **ग्लै** हर्षक्षये। **ग्लै** इस ऐकारान्त धातु से **निष्ठासंज्ञक** प्रत्यय

नकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८१८. ल्वादिभ्यः ८।२।४४॥

एकविंशतेर्लूञादिभ्यः प्राग्वत्।

लूनः। **ज्या** धातुः। **ग्रहिज्येति** सम्प्रसारणम्।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

८१९. हलः ६।४।२॥

अङ्गावयवाद्धलः परं यत्सम्प्रसारणं तदन्तस्य दीर्घः। जीनः।

नकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८२०. ओदितश्च ८।२।४५॥

भुजो भुग्नः। **टुओश्वि,** उच्छूनः।

....

की विवक्षा में **आदेच उपदेशेऽशिति** से **ऐकार** के स्थान पर **आकार** आदेश करके **ग्ला** बना है। उससे **निष्ठा** के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **ग्ला+त** बना। दकार से परे निष्ठासंज्ञक तकार नहीं है, अतः नत्व के लिए सूत्र लगा- **संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः**। यहाँ पर **ग्ला** धातु संयोगादि वाला भी है, यण्वान् है और आकारान्त भी। अतः निष्ठा के **तकार** के स्थान पर **नकार** आदेश हुआ, **ग्ला+न** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग, **ग्लानः**। **क्तवतु** प्रत्यय में यही प्रक्रिया होकर **ग्लानंवान्** बनता है।

८१८- **ल्वादिभ्यः**। लू आदिर्येषां ते ल्वादयस्तेभ्यः। ल्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** से **निष्ठातः** और **नः** की अनुवृत्ति आती है।

लूञ् आदि इक्कीस धातुओं से परे निष्ठा के तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

लूनः। काटा हुआ। **लूञ्** छेदने। **लू** धातु से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **लू+त** बना। दकार से परे निष्ठासंज्ञक तकार नहीं है, अतः नत्व के लिए सूत्र लगा- **ल्वादिभ्यः**। इससे **तकार** के स्थान पर **नकार** आदेश हुआ, **लू+न** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग, **लूनः**। **क्तवतु** प्रत्यय में भी नत्व होकर **लूनवान्** बनता है।

८१९- **हलः**। हलः पञ्चम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **सम्प्रसारणस्य** से **सम्प्रसारणस्य** और **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अङ्ग के अवयव हल् से परे जो सम्प्रसारण, तदन्त जो अङ्ग, उसको दीर्घ होता है।

अचश्च और **अलोऽन्त्यस्य** इन दो परिभाषासूत्रों की सहायता से **अन्त्य अच्** को ही दीर्घ हो सकता है। **सम्प्रसारणस्य** यह **अङ्गस्य** का विशेषण है, अतः **सम्प्रसारणान्तस्य** यह अर्थ हुआ है।

जीनः। बूढ़ा हुआ। **ज्या** वयोहानौ। **ज्या** इस आकारान्त धातु से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **ज्या+त** बना। **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चति-पृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च** से **यकार** को सम्प्रसारण करके **ज्+इ+आ+त** बना है। **इ+आ** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **इ** मात्र बना। उसके बाद **हलः** से सम्प्रसारण रूप **जि** के

ककारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८२१. शुषः कः ८।२।५१॥

निष्ठातस्य कः। शुष्कः।

....

इकार को दीर्घ हुआ। **जी+त** बना। दकार से परे निष्ठासंज्ञक तकार नहीं है, अतः नत्व के लिए सूत्र लगा- **ल्वादिभ्यः**। इससे **तकार** के स्थान पर **नकार** आदेश हुआ, **जी+न** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग, **जीनः**। **क्तवतु** प्रत्यय में भी नत्व होकर **जीनवान्** बनता है।

८२०-**ओदितश्च**। ओत् इत् यस्य स ओदित्, बहुव्रीहिः तस्मात्। ओदितः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** से **निष्ठातः** और **नः** की अनुवृत्ति आती है।

ओदित् अर्थात् ओकार इत्संज्ञक धातुओं से परे निष्ठा के तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

भुग्नः। तोड़ा गया, टेढ़ा किया गया। **भुजो** कौटिल्ये। **भुज्** धातु से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **भुज्+त** बना। **ओदितश्च** से निष्ठा के **तकार** के स्थान पर **नकार** आदेश हुआ, **भुज्+न** बना। **ओदितश्च** परत्रिपादी सूत्र है, अतः इसके द्वारा किया गया कार्य पूर्वत्रिपादी **चोः कुः** की दृष्टि में असिद्ध होता है। अतः तकार मानकर के **चोः कुः** से धातु के **जकार** को कुत्व करके **गकार** हुआ- **भुग्न** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग करके **भुग्नः** सिद्ध हुआ। **क्तवतु** प्रत्यय में भी नत्व होकर **भुग्नवान्** बनता है।

उच्छूनः। सूजा हुआ, फूला हुआ। **टुओश्वि** गतिवृद्ध्योः। इस धातु में **टु** की **आदिर्ञिटुडवः** से और **ओ** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होकर लोप होने के बाद **श्वि** बचता है। **उत्** उपसर्ग पूर्वक **श्वि** धातु से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **उत्+श्वि+त** बना। **वचिस्वपियजादीनां किति** से **वकार** को **सम्प्रसारण** करके आगे पूर्वरूप करने पर **उत्+शु+त** बना है। अब **हलः** से सम्प्रसारण रूप **उ** को दीर्घ होकर **उत्+शू+त** बना। **ओदितश्च** से निष्ठा के **तकार** के स्थान पर **नकार** आदेश हुआ, **उत्+शू+न** बना। उपसर्ग के तकार को श्चुत्व और धातु के शकार को **शश्छोऽटि** से छत्व होकर **उच्छून** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग करके **उच्छूनः** सिद्ध हुआ। **क्तवतु** प्रत्यय में नत्व होकर **उच्छूनवान्** बनता है।

८२१- **शुषः कः**। शुषः पञ्चम्यन्तं, कः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** से **निष्ठातः** की अनुवृत्ति आती है।

शुष् धातु से परे निष्ठा के तकार के स्थान पर ककार आदेश होता है।

इस सूत्र में **कः** को देखकर **नः** की अनुवृत्ति रूक जाती है अर्थात् नहीं आती है।

शुष्कः। सूखा हुआ। **शुष** शोषणे। **शुष्** धातु से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **शुष्+त** बना। अब **ष्टुना ष्टुः** से ष्टुत्व और **शुषः कः** से निष्ठा के **तकार** के स्थान पर **ककार** आदेश एक साथ प्राप्त हुए किन्तु **पूर्वत्रासिद्धम्** के नियम से **शुषः कः** इस पूर्वत्रिपादी के प्रति **ष्टुना ष्टुः** यह परत्रिपादी असिद्ध हुआ। अतः **शुषः कः** से तकार के स्थान पर **ककार** आदेश हुआ, **शुष्+क**, वर्णसम्मेलन होकर **शुष्क** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग करके **शुष्कः** सिद्ध हुआ। **क्तवतु** प्रत्यय में कत्व होकर **शुष्कवान्** बनता है।

वकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८२२. पचो वः ८।२।५२॥

पक्वः। **क्षै क्षये।**

मकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८२३. क्षायो मः ८।२।५३॥

क्षामः।

णिलोपविधायकं विधिसूत्रम्

८२४. निष्ठायां सेटि ६।४।५२॥

णेर्लोपः। भावितः। भावितवान्। **दृह हिंसायाम्।**

....

८२२- **पचो वः**। पचः पञ्चम्यन्तं, वः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** से **निष्ठातः** की अनुवृत्ति आती है।

पच् धातु से परे निष्ठा के तकार के स्थान पर वकार आदेश होता है।

इस सूत्र में **वः** पद को देखकर **नः** की अनुवृत्ति रूक जाती है अर्थात् नहीं आती है।

पक्वः। पका हुआ। **डुपचष्** पाके। **पच्** धातु से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **पच्+त** बना। **पचो वः** से तकार के स्थान पर **वकार** आदेश होकर **पच्+व** बना। **चोः कुः** से चकार को **ककार** आदेश हुआ- **पक्+व** बना। वर्णसम्मेलन होकर **पक्व** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग करके **पक्वः** सिद्ध हुआ। **क्तवतु** प्रत्यय में भी वत्व होकर **पक्ववान्** बनता है।

८२३- **क्षायो मः**। क्षायः पञ्चम्यन्तं, मः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** से **निष्ठातः** की अनुवृत्ति आती है।

क्षै धातु से परे निष्ठा के तकार के स्थान पर मकार आदेश होता है।

क्षामः। क्षीण हुआ, कमजोर। **क्षै क्षये। क्षै** धातु से **क्त** प्रत्यय की विवक्षा में **आदेच उपदेशेऽशिति** से आत्त्व करके **क्षा** होने पर **निष्ठा** सूत्र से **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **क्षा+त** बना। **क्षायो मः** से तकार के स्थान पर **मकार** आदेश होकर **क्षा+म** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग करके **क्षामः** सिद्ध हुआ। **क्तवतु** प्रत्यय में भी मत्व होकर **क्षामवान्** बनता है।

८२४- **निष्ठायां सेटि**। इटा सह वर्तते सेट्, तस्मिन्। निष्ठायां सप्तम्यन्तं, सेटि सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **णेरनिटि** से **णेः** और **अतो लोपः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

इट् से युक्त निष्ठासंज्ञक प्रत्यय के परे होने पर णि का लोप होता है।

भावितः, भावितवान्। होने की प्रेरणा दे चुका। **भू सत्तायाम्। भू** से **हेतुमति च** के द्वारा णिच् करने पर **भावि** बना है। उससे **क्त** प्रत्यय होने पर **भावि+त** बना है। यहाँ पर **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् करके **भावि+इत** बना। अब **निष्ठायां सेटि** से णि के लोप होने पर **भाव्+इत** बना। वर्णसम्मेलन करने पर **भावितः** बना। क्तवतु प्रत्यय के योग में **भावितवान्** बनता है। यह पुँल्लिङ्ग का रूप है। स्त्रीलिङ्ग में **भाविता, भावितवती** बनते हैं। अण्यन्त **भू** धातु से तो **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **भू+त** बना।

निपातार्थं विधिसूत्रम्

८२५. दृढः स्थूलबलयोः ७।२।२०॥

स्थूले बलवति च निपात्यते।

हि-इत्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८२६. दधातेर्हिः ७।४।४२॥

तादौ किति। हितम्।

....

इट् प्राप्त था, **श्र्युकः किति** से **इट्** का निषेध हुआ, **भूत** बना है। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग करके **भूतः** सिद्ध होता है। **क्तवतु** प्रत्यय में **भूतवान्** बनता है।

८२५- **दृढः स्थूलबलयोः**। स्थूलञ्च बलञ्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः स्थूलबले, तयोः। दृढः प्रथमान्तं, स्थूलबलयोः सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्।

स्थूल और बलवान् अर्थ में दृढ शब्द का निपातन किया जाता है।

जो कार्य सूत्रों की प्रक्रिया से सिद्ध नहीं हो रहा है, उस कार्य को सूत्रकार स्वयं अपने मन में बनाकर सिद्धकार्य शब्द को कण्ठतः सूत्र में पढ़ देते हैं। इसीको निपातन कहते हैं। अर्थात् शब्द की सिद्धि के लिए प्रक्रिया का अनुसरण न करके **यह शब्द शुद्ध है**, इस तरह से सीधे कहना ही **निपातन** है। यहाँ पर **दृह्** धातु से क्त प्रत्यय करने पर इट् होकर **दृंहितः** ऐसा शब्द बनने जा रहा है। **मोटा** और **बलवान** अर्थ में **दृंहितः** बनना अभीष्ट नहीं है। ऐसा बनने से रोकने के लिए **इट्** को रोकने वाला **निषेधक** सूत्र बनाना पढ़ता। आचार्य ने सोचा कि एक तो एक विशेष सूत्र बनाना ही पड़ता और दूसरा इसकी पूरी प्रक्रिया करनी पड़ेगी। जैसे कि जब **हकार** को **हो ढः** से ढत्व, **झषस्तथोर्धोऽधः** से निष्ठा के तकार के स्थान पर धत्व, धकार को ष्टुत्व करके **दृढ्+ढ** में **ढो ढे लोपः** से पूर्व ढकार का लोप आदि लम्बी प्रक्रिया करनी पड़ती। अतः एक ही सूत्र बना कर के सब काम निपटा लिया जाय। अतः कहा कि **मोटा** और **बलवान्** अर्थ में **दृह्** धातु से **क्त** प्रत्यय करने पर **दृढः** बनता है। अर्थात् अन्य अर्थों में इस धातु से **दृंहितः** बन सकता है किन्तु उक्त अर्थ में तो **दृढः** ही बनेगा।

८२६- **दधातेर्हिः**। दधातेः षष्ठ्यन्तं, हिः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति** से **ति** और **किति** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

तकारादि कित् प्रत्यय के परे होने पर धा धातु के स्थान पर हि आदेश होता है।

यहाँ पर **यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे** से तदादिविधि होकर **ति** से **तकारादि** अर्थ निकलता है। **अनेकाल्** होने के कारण **अनेकाल्शित् सर्वस्य** के नियम से यह **सर्वादेश** होता है।

हितम्। धारण किया हुआ। **डुधाञ् धारणपोषणयोः**। यहाँ **धा** धातु से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **धा+त** बना। अनिट् धातु है। **दधातेर्हिः** से **धा** के स्थान पर **हि** आदेश हुआ- **हि+त** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, स्वादि कार्य करके **हितम्** सिद्ध हुआ। उपसर्गों के योग में इसी से **विहितम्, अभिहितम्, निहितम्** आदि प्रयोग होते हैं।

दथादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८२७. दो दद् घोः ७।४।४६॥

घुसंज्ञकस्य दा इत्यस्य दथ् स्यात् तादौ किति। चर्त्वम्। दत्तः।

....

८२७- **दो दद् घोः**। दः षष्ठ्यन्तं, दद् प्रथमान्तं, घोः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति** से ति और **किति** की अनुवृत्ति आती है।

तकारादि कित् प्रत्यय के परे होने पर घुसंज्ञक दा धातु के स्थान पर दद् आदेश होता है।

दत्तः। दिया गया। डुदाञ् दाने। **दा** धातु से **निष्ठा** सूत्र द्वारा **क्त** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **दा+त** बना। **दो दद् घोः** से **दा** के स्थान पर **दद्** आदेश होकर **दद्+त** बना। दकार को **खरि च** से चर्त्व होकर **दत्तः** सिद्ध हुआ। **क्तवतु** प्रत्यय होकर **दत्तवान्** बनता है।

भूतकाल में होने के कारण **क्त** और **क्तवतु** प्रत्ययान्त शब्दों को क्रिया की तरह प्रयोग कर सकते हैं। **स गृहं गतः, स गृहं गतवान्, तेन पुस्तकं पठितम्, स पुस्तकं पठितवान्। सा पुस्तकं पठितवती। तत् कुलं पठितवत्** आदि।

इस तरह से **निष्ठा** प्रत्यय और उसके स्थान पर होने वाले आदेश आदि का विवेचन किया गया। लोक में **निष्ठाप्रत्ययान्त** शब्दों का प्रयोग खूब होता है। अतः पाठक गण धातु से इन दोनों प्रत्ययों को लगा कर के शब्द बनाने का अभ्यास करें। यह ध्यान रहे कि धातु यदि अनिट् हो तो क्त में भी इट् नहीं होगा और धातु यदि सेट् है तो यहाँ पर भी उससे इट् होगा किन्तु कहीं-कहीं निष्ठा में इट् का निषेध किया गया है। वह विषय **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में नहीं रखा गया है। **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में इसका पूर्ण ज्ञान हो सकेगा। फिर छात्रों के लिए कुछ दिशा निर्देश कर रहे हैं। कुछ धातु के **निष्ठा** प्रत्ययान्त रूप दे रहे हैं। नीचे **मोटे काले** अक्षर में धातु हैं और सामान्य अक्षरों में पहला शब्द **क्त** प्रत्यय वाला और दूसरा शब्द **क्तवतु** प्रत्यय वाला है। अर्थ तो **धातुपाठ** से लिया जा सकता है।

धातु	प्रत्यय	धातु	प्रत्यय	धातु	प्रत्यय
अर्च	अर्चितः, अर्चितवान्	**आप्**	आप्तः, आप्तवान्	**इष्**	इष्टः, इष्टवान्
ईक्ष्	ईक्षितः, ईक्षितवान्	**कथ्**	कथितः, कथितवान्	**कुप्**	कुपितः, कुपितवान्
कृ	कृतः, कृतवान्	**क्री**	क्रीतः, क्रीतवान्	**क्रुध्**	क्रुद्धः, क्रुद्धवान्
क्षिप्	क्षिप्तः, क्षिप्तवान्	**खाद्**	खादितः, खादितवान्	**खिद्**	खिन्नः, खिन्नवान्
ख्या	ख्यातः, ख्यातवान्	**गद्**	गदितः, गदितवान्	**गम्**	गतः, गतवान्
गर्ज्	गर्जितः, गर्जितवान्	**गै**	गीतः, गीतवान्	**ग्रस्**	ग्रस्तः, ग्रस्तवान्
ग्रह्	गृहीतः, गृहीतवान्	**घुष्**	घोषितः, घोषितवान्	**घ्रा**	घ्रातः, घ्रातवान्
चर्व्	चर्वितः, चर्वितवान्	**चल्**	चलितः, चलितवान्	**चि**	चितः, चितवान्
चिन्त	चिन्तितः, चिन्तितवान्	**चुम्ब्**	चुम्बितः, चुम्बितवान्	**चेष्ट्**	चेष्टितः, चेष्टितवान्
छिद्	छिन्नः, छिन्नवान्	**जन्**	जातः, जातवान्	**जागृ**	जागरितः, जागरितवान्
जि	जितः, जितवान्	**जीव्**	जीवितः, जीवितवान्	**जुष्**	जुष्टः, जुष्टवान्

ज्ञा	ज्ञातः, ज्ञातवान्	तप्	तप्तः, तप्तवान्	तुष्	तुष्टः, तुष्टवान्
त्यज्	त्यक्तः, त्यक्तवान्	त्रस्	त्रस्तः, त्रस्तवान्	त्रै	त्रातः, त्रातवान्
दण्ड्	दण्डितः, दण्डितवान्	दह्	दग्धः, दग्धवान्	दा	दत्तः, दत्तवान्
दीप्	दीप्तः, दीप्तवान्	दुष्	दुष्टः, दुष्टवान्	दुह्	दुग्धः, दुग्धवान्
दृश्	दृष्टः, दृष्टवान्	धृ	धृतः, धृतवान्	ध्यै	ध्यातः, ध्यातवान्
नम्	नतः, नतवान्	नश्	नष्टः, नष्टवान्	निन्द्	निन्दितः, निन्दितवान्
नी	नीतः, नीतवान्	नु	नुतः, नुतवान्	पच्	पक्वः, पक्ववान्
पठ्	पठितः, पठितवान्	पत्	पतितः, पतितवान्	पा	पीतः, पीतवान्
पा	पातः, पातवान्	पाल्	पालितः, पालितवान्	पिष्	पिष्ट, पिष्टवान्
पीड्	पीडितः, पीडितवान्	पुष्	पुष्टः, पुष्टवान्	पूञ्	पूतः, पूतवान्
पूज्	पूजितः, पूजितवान्	प्रच्छ्	पृष्टः, पृष्टवान्	बन्ध्	बद्धः, बद्धवान्
बाध्	बाधितः, बाधितवान्	बुध्	बुद्धः, बुद्धवान्	ब्रू	उक्तः, उक्तवान्
भक्ष्	भक्षितः, भक्षितवान्	भाष्	भाषितः, भाषितवान्	भी	भीतः, भीतवान्
भुज्	भुक्तः, भुक्तवान्	भू	भूतः, भूतवान्	भूष्	भूषितः, भूषितवान्
भ्रंश्	भ्रष्टः, भ्रष्टवान्	भ्रम्	भ्रान्तः, भ्रान्तवान्	मण्ड्	मण्डितः, मण्डितवान्
मद्	मत्तः, मत्तवान्	मन्	मतः, मतवान्	मान्	मानितः, मानितवान्
मिल्	मिलितः, मिलितवान्	मुच्	मुक्तः, मुक्तवान्	मुह्	मुग्धः, मुग्धवान्
मृ	मृतः, मृतवान्	यज्	इष्टः, इष्टवान्	या	यातः, यातवान्
याच्	याचितः, याचितवान्	युज्	युक्तः, युक्तवान्	युध्	युद्धः, युद्धवान्
रक्ष्	रक्षितः, रक्षितवान्	रच्	रचितः, रचितवान्	रम्	रतः, रतवान्
राज्	राजितः, राजितवान्	रिच्	रिक्तः, रिक्तवान्	रुद्	रुदितः, रुदितवान्
रुध्	रुद्धः, रुद्धवान्	रुष्	रुष्टः, रुष्टवान्	लभ्	लब्धः, लब्धवान्
लिख्	लिखितः, लिखितवान्	लिप्	लिप्तः, लिप्तवान्	वच्	उक्तः, उक्तवान्
वन्द्	वन्दितः, वन्दितवान्	वस्	उषितः, उषितवान्	वाञ्छ्	वाञ्छितः, वाञ्छितवान्
विद्	विदितः, विदितवान्	वृ	वृतः, वृतवान्	वृध्	वर्धितः, वर्धितवान्
वेष्ट्	वेष्टितः, वेष्टितवान्	व्यथ्	व्यथितः, व्यथितवान्	व्यध्	विद्धः, विद्धवान्
शक्	शक्तः, शक्तवान्	शङ्क्	शङ्कितः, शङ्कितवान्	शप्	शप्तः, शप्तवान्
शम्	शान्तः, शान्तवान्	शास्	शिष्टः, शिष्टवान्	शिक्ष्	शिक्षितः, शिक्षितवान्
शी	शयितः, शयितवान्	शुच्	शोचितः, शोचितवान्	शुध्	शुद्धः, शुद्धवान्
शुभ्	शोभितः, शोभितवान्	शुष्	शुष्कः, शुष्कवान्	श्रम्	श्रान्तः, श्रान्तवान्
श्रि	श्रितः, श्रितवान्	श्रु	श्रुतः, श्रुतवान्	श्लिष्	श्लिष्टः, श्लिष्टवान्
सह्	सोढः, सोढवान्	सिच्	सिक्तः, सिक्तवान्	सूच्	सूचितः, सूचितवान्
सृज्	सृष्टः, सृष्टवान्	सेव्	सेवितः, सेवितवान्	स्खल्	स्खलितः, स्खलितवान्
स्तु	स्तुतः, स्तुतवान्	स्था	स्थितः, स्थितवान्	स्ना	स्नातः, स्नातवान्
स्पृश्	स्पृष्टः, स्पृष्टवान्	स्मृ	स्मृतः, स्मृतवान्	स्वप्	सुप्तः, सुप्तवान्
हन्	हतः, हतवान्	हस्	हसितः, हसितवान्	हा	हीनः, हीनवान्
हु	हुतः, हुतवान्	हृ	हृतः, हृतवान्	आ+हू	आहूतः, आहूतवान्

स्मरण रहे कि **कृदन्तप्रकरण** में जो जो भी प्रत्यय होते हैं, उन **कृदन्त** शब्दों की

कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा होती है। इसके बाद प्राय: सभी शब्द ऐसे हैं, जिनके तीनों लिङ्गों में रूप बनते है और कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो किसी लिङ्गविशेष में ही प्रयुक्त होते हैं किन्तु **निष्ठा** प्रत्ययान्त शब्द भूतकाल में होते हैं। अत: इसके सभी लिङ्गों में रूप होते हैं। जैसे- **पठ्** धातु से **क्त** प्रत्यय करने पर पुँल्लिङ्ग में **पठित:**, स्त्रीलिङ्ग में **पठिता** और नपुंसकलिङ्ग में **पठितम्** एवं **क्तवतु** प्रत्यय होकर पुँल्लिङ्ग में **पठितवान्**, स्त्रीलिङ्ग में **पठितवती** और नपुंसकलिङ्ग में **पठितवत्** ये प्रथमा एकवचनान्त सिद्ध होते हैं।

क्त प्रत्ययान्त पठित शब्द के पुँल्लिङ्ग में रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पठित:	पठितौ	पठिता:
द्वितीया	पठितम्	पठितौ	पठितान्
तृतीया	पठितेन	पठिताभ्याम्	पठितै:
चतुर्थी	पठिताय	पठिताभ्याम्	पठितेभ्य:
पञ्चमी	पठितात्	पठिताभ्याम्	पठितेभ्य:
षष्ठी	पठितस्य	पठितयो:	पठितानाम्
सप्तमी	पठिते	पठितयो:	पठितेषु
सम्बोधन	हे पठित!	हे पठितौ!	हे पठिता:!

क्त प्रत्ययान्त पठिता शब्द के स्त्रीलिङ्ग में रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पठिता	पठिते	पठिता:
द्वितीया	पठिताम्	पठिते	पठिता:
तृतीया	पठितया	पठिताभ्याम्	पठिताभि:
चतुर्थी	पठितायै	पठिताभ्याम्	पठिताभ्य:
पञ्चमी	पठिताया:	पठिताभ्याम्	पठिताभ्य:
षष्ठी	पठिताया:	पठितयो:	पठितानाम्
सप्तमी	पठितायाम्	पठितयो:	पठितासु
सम्बोधन	हे पठिते	हे पठिते!	हे पठिता:!

क्त प्रत्ययान्त पठित शब्द के नपुंसकलिङ्ग में रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पठितम्	पठिते	पठितानि
द्वितीया	पठितम्	पठिते	पठितानि

तृतीया से पुँल्लिङ्ग की तरह ही रूप होते हैं।

क्तवतु प्रत्ययान्त पठितवत् शब्द के पुँल्लिङ्ग में रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पठितवान्	पठितवन्तौ	पठितवन्त:
द्वितीया	पठितवन्तम्	पठितवन्तौ	पठितवन्त:
तृतीया	पठितवता	पठितवद्भ्याम्	पठितवद्भि:
चतुर्थी	पठितवते	पठितवद्भ्याम्	पठितवद्भ्य:

कानजादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८२८. लिटः कानज्वा ३।२।१०६।।

क्वस्वादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८२९. क्वसुश्च ३।२।१०७।।

लिटः कानच् क्वसुश्च वा स्तः। **तङानावात्मनेपदम्।** चक्राणः।

....

पञ्चमी	पठितवतः	पठितवद्भ्याम्	पठितवद्भ्यः
षष्ठी	पठितवतः	पठितवतोः	पठितवताम्
सप्तमी	पठितवति	पठितवतोः	पठितवत्सु
सम्बोधन	हे पठितवन्!	हे पठितवन्तौ!	हे पठितवन्तः!

क्तवतु प्रत्ययान्त पठितवत् (पठितवती) शब्द के स्त्रीलिङ्ग में रूप

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	पठितवती	पठितवत्यौ	पठितवत्यः
द्वितीया	पठितवतीम्	पठितवत्यौ	पठितवतीः
तृतीया	पठितवत्या	पठितवतीभ्याम्	पठितवतीभिः
चतुर्थी	पठितवत्यै	पठितवतीभ्याम्	पठितवतीभ्यः
पञ्चमी	पठितवत्याः	पठितवतीभ्याम्	पठितवतीभ्यः
षष्ठी	पठितवत्याः	पठितवत्योः	पठितवतीनाम्
सप्तमी	पठितवत्याम्	पठितवत्योः	पठितवतीषु
सम्बोधन	हे पठितवति!	हे पठितवत्यौ!	हे पठितवत्यः!

क्तवतु प्रत्ययान्त पठितवत् शब्द के नपुंसकलिङ्ग में रूप

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	पठितववत्	पठितवती	पठितवन्ति
द्वितीया	पठितववत्	पठितवती	पठितवन्ति

तृतीया से पुँल्लिङ्ग की तरह ही रूप होते हैं।

८२८- **लिटः कानज्वा।** लिटः षष्ठ्यन्तं, कानच् प्रथमान्तं, वा अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्।

लिट् के स्थान पर कानच् आदेश विकल्प से होता है।

८२९- **क्वसुश्च।** क्वसुः प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **लिटः कानच् वा** से **लिटः** और **वा** की अनुवृत्ति आती है।

लिट् के स्थान पर क्वसु आदेश भी विकल्प से होता है।

इन दोनों का सम्मिलित अर्थ भी किया जा सकता है। वह इस तरह से- **लिट् के स्थान पर कानच् और क्वसु आदेश विकल्प से होते हैं।**

इन दो सूत्रों से पूर्वसूत्र **छन्दसि लिट्** से सामान्य भूतकाल में **लिट्** लकार होता है। वेद में उसी के स्थान पर इन दो सूत्रों के द्वारा **कानच्** और **क्वसु** प्रत्यय हो जाते हैं। अतः कानच् और क्वसु प्रत्ययान्त शब्द भी वेद में ही प्रयुक्त होते हैं परन्तु क्वसु-प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग कवियों ने कहीं-कहीं किया है। जैसे कि **रघुवंश** में **कालिदास** ने- **तं तस्थिवांसम्, श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषः** आदि प्रयोग किया है।

नकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८३०. म्वोश्च ८।२।६५॥

मान्तस्य धातोर्नत्वं म्वोः परतः। जगन्वान्।

शतृशानचादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८३१. लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ३।२।१२४॥

अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लट एतौ वा स्तः। शबादिः।

पचन्तं चैत्रं पश्य।

....

कानच् की **तङानावात्मनेपदम्** से **आत्मनेपदसंज्ञा** होती है। **कानच्** में आन और **क्वसु** में **वस्** बचता है।

चक्राण। कृ धातु से लिट् के स्थान पर **कानच्** आदेश करके अनुबन्धलोप करने पर **कृ+आन** बना। स्थानिवद्भावेन **आन** को लिट् मान कर के **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से **कृ** को द्वित्व, उरत्, रपर, हलादिशेष, चुत्व करके **चकृ+आन** बना। **आन** लिट् का अपित् है, अतः **असंयोगाल्लिट् कित्** से किद्वद्भाव हो गया है। अतः **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से प्राप्त गुण का **क्ङिति च** से निषेध हो जाता है। फलतः **चकृ+आन** में **इको यणचि** से यण् होकर **चक्राण** बनता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, स्वादिकार्य करके **चक्राणः** सिद्ध हो जाता है।

८३०- म्वोश्च। म् च व् च म्वौ, तयोः म्वोः। म्वोः सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **मो नो धातोः** यह पूरा सूत्र आता है।

मकारान्त धातु के मकार के स्थान पर नकार आदेश होता है मकार और वकार के परे रहने पर।

जगन्वान्। गम् धातु से परे **लिट्** के स्थान पर **क्वसुश्च** से **क्वसु** आदेश, अनुबन्धलोप करके **गम्+वस्** बना। स्थानिद्भावेन **वस्** को लिड्वत् मानकर **गम्** को द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, हलादिशेष, चुत्व करके **जगम्+वस्** बना। प्राप्त इट् का **नेड् वशि कृति** से निषेध। पुनः **विभाषा गमहनविदविशाम्** से विकल्प से इट् का आगम करके **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से उपधालोप करने पर **जग्मिवस्** बनता है। इससे **जग्मिवान्** आदि सिद्ध होते हैं। इट् न होने के पक्ष में **म्वोश्च** से धातु के मकार के स्थान पर **नकार** आदेश करके **जगन्वस्** बनता है। अब **विद्वस्** शब्द की तरह **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुम्, **सान्तमहतः संयोगस्य** से दीर्घ करके, हल्ङ्यादिलोप, संयोगान्त सकार का लोप करने पर **जगन्वान्** सिद्ध होता है। **जगन्वान्, जगन्वांसौ, जगन्वांसः, जगन्वांसम्, जगन्वांसौ**, आगे **वसोः सम्प्रसारणम्** से सम्प्रसारण एवं अजादि कित् परे मिलने के कारण **गमहनजनखनघासामुपधालोपो झलि क्ङिति** से उपधाभूत अकार का लोप होकर **जग्मुषः**, **जग्मुषा** आदि बनते हैं। हलादि के परे **वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः** से दकार आदेश होने के कारण **जगन्वद्भ्याम्, जगन्वद्भिः** आदि रूप बनते हैं।

८३१- लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे। शता च शानच् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः शतृशानचौ। न प्रथमा अप्रथमा। समानम् अधिकरणं यस्य स समानाधिकरणः। अप्रथमया समानाधिकरणः अप्रथमासमानाधिकरणस्तस्मिन्। लटः षष्ठ्यन्तं, शतृशानचौ प्रथमान्तम्, अप्रथमासमानाधिकरणे सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

मुगागमविधायकं विधिसूत्रम्

८३२. आने मुक् ७।२।८२॥

अदन्ताङ्गस्य मुमागमः स्यादाने परे। पचमानं चैत्रं पश्य। **लडित्यनुवर्तमाने** पुनर्लड्ग्रहणात् प्रथमासामानाधिकरण्येऽपि क्वचित्। सन् द्विजः।

....

अप्रथमान्त अर्थात् द्वितीयान्त आदि के साथ समानाधिकरण होने पर लट् के स्थान पर शतृ और शानच् आदेश होते हैं।

समानविभक्तिक अर्थात् शतृ-प्रत्ययान्त क्रियाशब्द और कारक की एक ही विभक्ति में होने की स्थिति हो तो लट् के स्थान पर शतृ और शानच् आदेश होते हैं। परस्मैपदी धातु से शतृ और आत्मनेपदी से शानच् तथा उभयपदी से दोनों प्रत्यय होते हैं। शानच् की **तङानावात्मनेपदम्** से आत्मनेपदसंज्ञा होती है। शित् होने के कारण **तिङ्शित् सार्वधातुकम्** से शतृ और शानच् की सार्वधातुकसंज्ञा होती है। शतृ में शकार और ऋकार इत्संज्ञक हैं। अत् शेष रहता है। शित् करण का फल सार्वधातुकसंज्ञा आदि है।। ऋकारेत्संज्ञा का फल **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुम् आदि करना है। शानच् में शकार और चकार इत्संज्ञक हैं, आन शेष रहता है। द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी इन सभी विभक्तियों के साथ एकविभक्तिक होने पर सर्वत्र शतृ, शानच् हो जाते हैं। शतृ की सार्वधातुकसंज्ञा करके शप् होगा।

पचन्तं चैत्रं पश्य। पकाते हुए चैत्र को देखो। यहाँ पर **चैत्रम्** द्वितीयान्त होने से **अप्रथमान्त** है। **चैत्रम्** यह पद जिस अर्थ को कहता है, **पच्** धातु से वर्तमान काल में लाया गया **लट्** भी उसी अर्थ को कहता है। अतः **अप्रथमान्त** के साथ **समान अधिकरण** है। इस अवस्था में **लट्** के स्थान पर **शतृ** और **शानच्** हो सकते हैं। यहाँ पर **शतृ** का उदाहरण दिखा रहे हैं। **पच्+लट्** में **लट्** के स्थान पर **लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे** से **शतृ** आदेश, अनुबन्धलोप, **पच्+अत्** बना, **अत्** की सार्वधातुकसंज्ञा करके **कर्तरि शप्** से शप्, अनुबन्धलोप, **पच्+अ+अत्** बना। **अ+अत्** में **अतो गुणे** से पररूप **पच्+अत्**, वर्णसम्मेलन, **पचत्**, प्रातिपदिकसंज्ञा, **अम्** विभक्ति, **पचत्+अम्** बना। **उगिदचां सर्वनामस्थाने धातोः** से नुम्, मित् होने के कारण अन्त्य अच् **चकार** के अकार के बाद बैठा, **पचन्त्+अम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **पचन्तम्** सिद्ध हुआ। इसके शेष रूप **धीमत्** शब्द की तरह पुँल्लिङ्ग में **पचन्तौ, पचतः, पचता** आदि, स्त्रीलिङ्ग में **पचन्तीम्, पचन्त्यौ, पचन्त्यः** आदि बनेंगे।

आगे बताया जा रहा है कि कहीं कहीं प्रथमा के साथ समानाधिकरण होने पर भी ये आदेश होते हैं। अतः इनका प्रयोग प्रथमा, द्वितीया आदि कारक के साथ भी एकविभक्तिकत्वेन अन्वय होने पर ही होगा। जैसे प्रथमा के साथ समानाधिकरण के उदाहरण हैं- **रामः पठन् गच्छति**, द्वितीया का **पचन्तं चैत्रं पश्य**, तृतीया का **पचता चैत्रेण आनीतम्**, चतुर्थी का **पचते चैत्राय देहि**, पञ्चमी का **पचतश्चैत्रादानीतम्**, षष्ठी का **पचतश्चैत्रस्य पुस्तकम्** और सप्तमी का **पचति चैत्रे दयालुता नास्ति** आदि।

८३२- आने मुक्। आने सप्तम्यन्तं, मुक् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अतो येयः** से **अतः** की षष्ठी में विपरिणाम करके अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

वस्वादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८३३. विदेः शतुर्वसुः ७।१।३६॥

वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा। विदन्। विद्वान्।

....

आन के परे होने अदन्त अङ्ग को मुक् का आगम होता है।

मुक् में उकार और ककार इत्संज्ञक हैं। कित् होने के कारण अदन्त के अन्त में बैठैगा।

पचमानं चैत्रं पश्य। पच् धातु उभयपदी है, अतः शतृ और शानच् दोनों होते हैं। शतृ का प्रयोग आपने सिद्ध कर ही लिया, अब शानच् का प्रयोग सिद्ध करते हैं। पच् से शानच्, अनुबन्धलोपे, **पच्+आन**, सार्वधातुकसंज्ञा और शप्, अनुबन्धलोप, **पच्+अ+आन** बना। **पच्+अ=पच, पच+आन** में **आने मुक्** से पच के अकार को मुक् आगम, अनुबन्ध लोप, **पच+म्+आन,** वर्णसम्मेलन हुआ, **पचमान** ऐसा अकारान्त शब्द बना। प्रातिपदिकसंज्ञा करके पुँल्लिङ्ग में राम शब्द की तरह **पचमानः** और स्त्रीलिङ्ग में टाप् करके **पचमाना** शब्द बनाकर रमा शब्द की तरह रूप बनते हैं। अब प्रथमा, द्वितीया आदि किसी भी विभक्ति के साथ समानाधिकरण अर्थात् एकविभक्तिक करके प्रयोग करें। **पचमानं चैत्रं पश्य। पचमानेन चैत्रेण आनीतम्, पचमानाय चैत्राय देहि आदि। पचमानात् चैत्रादानीतम्, पचमानस्य चैत्रस्य पुस्तकं, पचमाने चैत्रे दयालुता नास्ति।**

वेद और **लोक** में प्रथमान्त के साथ सामानाधिकरण्य में भी **शतृ** और **शानच्** प्रत्यय के रूप पर्याप्त मात्रा में देखे जाते हैं किन्तु **लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे** से प्रथमान्त के साथ समानाधिकरण्य में ये आदेश कतई नहीं हो सकते। प्रथमान्त समानाधिकरण में काव्य और शास्त्रों में प्रयुक्त शतृ-शानच् प्रत्ययान्त शब्दों को भी सीधे असाधु मानना भी उचित नहीं है। सभी लोग प्रथमासमानाधिकरण में ऐसे रूप प्रचुर मात्रा में करते आ रहे हैं। क्या ऐसे शब्दों को असाधु माना जाय? इस पर कौमुदीकार कहते हैं कि **लडित्यनुवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणात् प्रथमासामानाधिकरण्येऽपि क्वचित्** अर्थात् **वर्तमाने लट्** से विभक्तिविपरिणाम करके **लटः** की अनुवृत्ति हो सकती थी तो इस सूत्र में **लटः** क्यों पढ़ा? पुनः लट् पढ़ने का तात्पर्य यह है कि सर्वथा प्रथमासमानाधिकरण में निषेध नहीं किया गया है। क्योंकि पाणिनि जी ही ऐसा व्यवहार दिखाते हैं। **लटः** का इस सूत्र में पुनः पठन करना यह संकेत करने के लिए है कि कहीं कहीं प्रथमासमानाधिकरण में भी ये आदेश किये जा सकते हैं। अतः **सन् द्विजः** आदि प्रथमा के साथ समानाधिकरण वाले प्रयोगों में भी **शतृ** होता है। **अस्** धातु से **शतृ** करने पर **श्नसोरल्लोपः** से **अस्** के **अकार** का लोप करके प्रथमा के एक वचन में **सन्** बनता है। **सन् द्विजः**। विद्यमान ब्राह्मण। आगे **सन्तौ ब्राह्मणौ, सन्तो ब्राह्मणाः, सन्तं ब्राह्मणं, सतः ब्राह्मणान्।**

अब इसी प्रकार आपने अभी तक जितने धातुओं का अध्ययन किया, उनसे और धातुपाठ में देखकर अन्य प्रचलित धातुओं से भी शतृ और शानच् प्रत्यय लगाकर रूप बनाइये।

८३३- **विदेः शतुर्वसुः**। विदेः पञ्चम्यन्तं, शतुः षष्ठ्यन्तं, वसुः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है।

सत्संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

८३४. तौ सत् ३।२।१२७॥

तौ शतृ-शानचौ सत्संज्ञौ स्तः।

वैकल्पिकसत्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८३५. लृटः सद्वा ३।३।१४॥

व्यवस्थितविभाषेयम्। तेनाप्रथमासामानाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोः सम्बोधने लक्षणहेत्वोश्च नित्यम्। करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य।

....

विद् धातु से परे शतृ के स्थान पर विकल्प से वसु आदेश होता है।

यह सूत्र केवल **विद्** धातु में लगता है। वसु में **उकार** की इत्संज्ञा होती है, **वस्** शेष रहता है।

विद्वान्। ज्ञाता, जानने वाला। **विद ज्ञाने। विद्** धातु से क्वचित् प्रथमासामानाधिकरण्य में भी **लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे** से लट् के स्थान पर **शतृ** आदेश हो जाने के बाद **शतृ** के स्थान पर **विदेः शतुर्वसुः** से विकल्प से **वसु** आदेश होकर **विद्+वस्** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु, नुम्, दीर्घ, सुलोप आदि करके **हलन्तपुँल्लिङ्ग** में **विद्वान्** बना चुके हैं। आगे **विद्वांसौ, विद्वांसौ, विदुषः, विदुषा, विद्वद्भ्याम्** आदि। जब **वसु** आदेश नहीं होता, तब **शतृ** ही है। अनुबन्धलोप के बाद **विद्+अत्** बना है। **शतृ** की सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अदादिगणीय धातु होने का कारण उसका लुक् करके **विदत्** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके **विदन्, विदन्तौ, विदन्तः** आदि रूप बनते हैं।

८३४- तौ सत्। तौ प्रथमान्तं, सत् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तौ** यह पद **लटः शतृशानचावप्रथमा-समानाधिकरणे** से विहित **शतृ** और **शानच्** स्वरूपनिर्देश है।

शतृ और शानच् की सत् संज्ञा होती है।

जैसे- निष्ठा कहने से क्त और क्तवतु प्रत्यय का ज्ञान होता है, उसी प्रकार सत् कहने से शतृ और शानच् का ज्ञान होगा। **सत्-संज्ञा** का उपयोग **लृटः सद्वा** आदि सूत्रों में किया जायेगा।

८३५- लृटः सद्वा। लृटः षष्ठ्यन्तं, सत् प्रथमान्तं, वा अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **लिट् के स्थान पर सत्-संज्ञक अर्थात् शतृ और शानच् आदेश विकल्प से होते हैं।**

इस विकल्प को **व्यवस्थित विभाषा** कहा गया है। विभाषा का अर्थ विकल्प और व्यवस्थित का तात्पर्य है- जो विकल्प किसी स्थान पर नित्य से हो, अन्य स्थान पर एकपक्ष में भी न हो और किसी स्थान पर एक बार हो और एक बार न हो अर्थात् कहीं नित्य से प्रवृत्ति, कहीं नित्य से अप्रवृत्ति और कहीं दोनों व्यवस्था व्यवस्थित विभाषा में होती है।

तेनाप्रथमा.........नित्यम्। व्यवस्थित विभाषा मानने के कारण प्रथमाभिन्न के साथ सामानाधिकरण्य होने पर प्रत्यय और उत्तरपद के पर में होने पर, सम्बोधन में तथा लक्षण और हेतु अर्थ होने पर नित्य से लृट् के स्थान पर शतृ और शानच् होते हैं। सम्बोधन आदि में शतृ-शानच् करने वाला सूत्र लघुकौमुदी में नहीं दिये गये हैं। अतः हम भी इनका विवरण सिद्धान्तकौमुदी की व्याख्या में देने वाले हैं।

अधिकारसूत्रम्

८३६. आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ३।२।१३४॥

क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः प्रत्ययास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः।

तृन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८३७. तृन् ३।२।१३५॥

कर्ता कटान्।

....

करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य। कृ-धातु उभयपदी है। उससे लृट् लकार, उसके स्थान पर परस्मैपद में शतृ और आत्मनेपद में शानच् हुआ। दोनों में अनुबन्धलोप होने पर **कृ+अत्** और **कृ+आन** हुआ। शित् होने के कारण दोनों की सार्वधातुकसंज्ञा, स्थानिवद्भावेन लृट् का लकारत्व आया, **स्यतासी लृलुटोः** से स्य प्रत्यय होकर **कृ+स्य+अत्** और **कृ+स्य+आन** हुआ। **स्य** की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा करके **ऋद्धनोः स्ये** से आर्धधातुक को इट् का आगम हुआ, **कृ+इस्य+अत्** एवं **कृ+इस्य+आन** हुआ। दोनों जगह **कृ** को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से अर्-गुण हुआ, **कर्+इस्य+अत्** एवं **कर्+इस्य+आन** हुआ। वर्णसम्मेलन होने पर **करिस्य+अत्** और **करिस्य+आन** हुआ। इकार से परे सकार को षत्व होकर **करिष्य+अत्** और **करिष्य+आन** हुआ। **करिष्य+अत्** में **अतो गुणे** से पररूप होकर **करिष्यत्** हुआ एवं **करिष्य+आन** में **आने मुक्** से मुक् आगम होकर **करिष्यमान** बना। षकार से परे होने के कारण नकार के स्थान पर **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व हुआ, **करिष्यमाण** बना। **करिष्यत्** और **करिष्यमाण** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और सु आया, **करिष्यत्** से प्रथमा में पठन् की तरह **करिष्यन्** और **करिष्यमाण** से रामः की तरह **करिष्यमाणः** बना तथा द्वितीया के एकवचन में **करिष्यन्तम्** और **करिष्यमाणम्** बने। इस तरह **करिष्यन्तं, करिष्यमाणं पश्य** ये रूप सिद्ध हुए।

८३६- आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु। स (धात्वर्थः) शीलं (स्वभावो) यस्य स तच्छीलम्। स (धात्वर्थो) धर्म आचारो यस्य स तद्धर्मा। साधु करोतीति साधुकारी। तस्य साधुकारी तत्साधुकारी। तच्छीलं च तद्धर्मा च तत्साधुकारी च तेषामितरेतरद्वन्द्वस्तच्छीलतद्धर्म-तत्साधुकारिणस्तेषु। आ अव्ययपदं, क्वेः पञ्चम्यन्तं, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **धातोः** का अधिकार होने से यहाँ पर **तत्** शब्द से **धातु** का ही बोध होता है।

यहाँ इस सूत्र से लेकर क्विप् प्रत्यय तक कहे जाने वाले सभी प्रत्यय तच्छील, तद्धर्मा और तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में होते हैं, ऐसा समझना चाहिए।

उस धातु के अर्थ के स्वभाव वाला **तच्छील,** उस धातु के अर्थ के धर्म वाला **तद्धर्म** और उस धातु के अर्थ के अनुसार उत्तम कर्म करने वाला **तत्साधुकारी** है। **अष्टाध्यायी** के क्रम से आगे वक्ष्यमाण सूत्र **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप्** तक के प्रत्ययों के विषय में यह सूत्र अर्थ का निर्णय करता है। इस सूत्र लेकर क्विप् विधायक उक्त सूत्र तक के सभी प्रत्यय उक्त तीन अर्थों में ही होंगे। तात्पर्य यह है कि **कर्तरि कृत्** से विधीयमान कर्त्रर्थक प्रत्यय के साथ तच्छील, तद्धर्मा और तत्साधुकारी अर्थ भी लगा रहता है।

षाकन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८३८. जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् ३।२।१५५॥

षकारेत्संज्ञाविधायकं विधिसूत्रम्

८३९. षः प्रत्ययस्य १।३।६॥

प्रत्ययस्यादिः ष इत्संज्ञः स्यात्।

जल्पाकः। भिक्षाकः। कुट्टाकः। लुण्टाकः। वराकः। वराकी।

....

८३७- **तृन्**। तृन् प्रथमान्तमेकपदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार और **तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु** की अनुवृत्ति आती है।

तच्छील, तद्धर्म, तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में धातुओं से तृन् प्रत्यय होता है।

नकार इत्संज्ञक है, **तृ** शेष रहता है। प्रकरण के आरम्भ में **तृच्** प्रत्यय का प्रसंग आया था। **तृन्** और **तृच्** प्रत्ययों की प्रक्रिया एक ही होती है। **तृन्** में नकार की इत्संज्ञा होने के कारण यह नित् होता है और इसका फल स्वर में अन्तर पड़ता है, रूपसिद्धि में नहीं।

कर्ता कटान्। करोति तच्छीलः। चटाई बनाने का स्वभाव वाला कृ-धातु से ही **तृन्** सूत्र से **तृन्** प्रत्यय करके नकार की इत्संज्ञा और लोप करके **तृ** शेष बचा। **तृ** की आर्धधातुकसंज्ञा हुई और **कृ** का **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से **अर्**-**गुण** हुआ, **क्+अर्+तृ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ तो **कर्तृ** ऐसा ऋकारान्त शब्द बना। **कर्तृ** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सु** विभक्ति आई। इसके बाद ऋकारान्त धातृ-शब्द की तरह ऋकार के स्थान पर **ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च** से अनङ् आदेश, अनुबन्धलोप, **कर्त्+अन्+स्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **कर्तन् स्** बना। त के अकार की **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** से उपधासंज्ञा करके **अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृ- क्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम्** से दीर्घ हुआ, **कर्तान् स्** बना। **अपृक्त एकाल् प्रत्ययः** से सकार की अपृक्तसंज्ञा करके **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से उसका लोप, **कर्तान्** बना। नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप, **कर्ता** सिद्ध हुआ। **तृन्नन्त** कृदन्त शब्द के योग में **कर्तृकर्मणोः कृति** से प्राप्त षष्ठी विभक्ति का **न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्** से निषेध होकर **कर्मणि द्वितीया** से **कट** शब्द में द्वितीया विभक्ति हुई- **कर्ता कटान्।** यह **तच्छील कर्ता** का उदाहरण है।

८३८- **जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन्।** जल्पश्च भिक्षश्च कुट्टश्च लुण्टश्च वृङ् च तेषां समाहारद्वन्द्वो जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङ्, तस्मात्। जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः पञ्चम्यन्तं, षाकन् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार और **तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु** की अनुवृत्ति आती है।

जल्प, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ट और वृङ् धातुओं से तच्छील, तद्धर्म, तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में षाकन् प्रत्यय होता है।

षाकन् में षकार की अग्रिम सूत्र से इत्संज्ञा होती है और नकार तो **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञक है ही। इस तरह **आक** शेष रहता है।

८३९- **षः प्रत्ययस्य**। षः प्रथमान्तं, प्रत्ययस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **आदिर्ञिटुडवः** से **आदिः** और **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से **इत्** की अनुवृत्ति आती है।

प्रत्यय के आदि में विद्यमान षकार इत्संज्ञक होता है।

उप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८४०. सनाशंसभिक्ष उः ३।२।१६८॥

चिकीर्षुः। आशंसुः। भिक्षुः।

....

जल्पाकः। बहुत बोलने का स्वभाव वाला, बोलने को अपना धर्म समझने वाला अथवा अच्छी तरह से बोलने वाला। यहाँ पर **आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु** में वर्णित तीनों अर्थ घटित होते हैं। **जल्प** व्यक्तायां वाची। **जल्प्** धातु से उक्त तीनों अर्थ सहित कर्ता अर्थ में **जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन्** से **षाकन्** प्रत्यय हुआ। **ष्** की **षः प्रत्ययस्य** से और **न्** की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होकर **आक** शेष बचा। **जल्प्+आक** बना। वर्णसम्मेलन होकर **जल्पाक** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु, रुत्वविसर्ग करके **जल्पाकः** सिद्ध हुआ। कोश आदि के अनुसार **जल्पाकः** का अर्थ **ज्यादा बोलने वाला** है।

उक्त पद्धति से उन्हीं अर्थों में **भिक्ष्** आदि धातुओं से भी षाकन् प्रत्यय करके निम्नलिखित शब्द सिद्ध हो सकते हैं-

भिक्षाकः। भीख मांगने का स्वभाव, धर्म अथवा साधुकारिता वाला। **भिक्ष** भिक्षायामलाभे लाभे च।

कुट्टाकः। छेदन, भर्त्सन का स्वभाव, धर्म अथवा साधुकारिता वाला। **कुट्ट** छेदनभर्त्सनयोः।

लुण्टाकः। लूटने का स्वभाव, धर्म, साधुकारिता वाला। **लुण्ट** स्तेये।

वराकः। चुनने, वरण करने का स्वभाव, धर्म अथवा साधुकारिता वाला। **वृङ्** सम्भक्तौ।

षाकन् प्रत्यय **षित्** है। इस प्रत्यय के लगने से स्त्रीत्व की विवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** से **ङीष्** प्रत्यय होकर **जल्पाकी, भिक्षाकी, कुट्टाकी, लुण्टाकी, वराकी** आदि रूप बनते हैं।

८४०- **सनाशंसभिक्ष उः**। सन् च आशंसश्च भिक्ष् च तेषां समाहारद्वन्द्वः सनाशंसभिक्ष्, तस्मात्। सनाशंसभिक्षः पञ्चम्यन्तम्, उः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च,** का अधिकार और **तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु** की अनुवृत्ति है।

सन्नन्त, आ+शंस् और भिक्ष् धातुओं से तच्छील, तद्धर्म, तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में उ प्रत्यय होता है।

प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम् के नियम से **सन्** से **सन्नन्त** का ग्रहण किया गया है।

चिकीर्षुः। करने की स्वभावतः इच्छा वाला। **डुकृञ्** करणे। **कृ** धातु से **सन्** प्रत्यय करके **चिकीर्ष** बनता है और उसकी **सनाद्यन्ता धातवः** धातुसंज्ञा होती है। यह बात **सन्नन्तप्रक्रिया** में बताई जा चुकी है। **चिकीर्ष** यह **सन्नन्त** है। इससे **सनाशंसभिक्ष उः** से उ प्रत्यय हुआ। **उकार** की **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकसंज्ञा** करके **अतो लोपः** से षकारोत्तरवर्ती अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **चिकीर्षु** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु, रुत्वविसर्ग करके **चिकीर्षुः** सिद्ध हुआ। चिकीर्षू, चिकीर्षवः, चिकीर्षुम्, चिकीर्षून्, चिकीर्षुणा, चिकीर्षुभ्याम्, चिकीर्षुभिः, चिकीर्षवे इत्यादि इसके रूप बनते हैं।

आशंसुः। स्वभावतः इच्छा रखने वाला। **आङः शसि** इच्छायाम्। **आ** पूर्वक **शस्** धातु का इच्छा करना अर्थ है। **आ+शंस्** से **सनाशंसभिक्ष उः** से **उ** प्रत्यय होकर आशंसु

क्विप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८४१. भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप् ३।२।१७७॥

विभ्राट्। भाः।

लोपविधायकं विधिसूत्रम्

८४२. राल्लोपः ६।४।२१॥

रेफाच्छ्वोर्लोपः क्वौ झलादौ क्ङिति। धूः। विद्युत्। ऊर्क्। पूः।

दृशिग्रहणस्यापकर्षाज्जवतेर्दीर्घः। जूः। ग्रावस्तुत्।

वार्तिकम्- **क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च।**

वक्तीति वाक्।

....

बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु, रुत्वविसर्ग करके **आशंसुः** सिद्ध हुआ। आगे आशंसू, आशंसवः, आशंसुम्, आशंसून्, आशंसुना, आशंसुभ्याम् इत्यादि इसके रूप बनते हैं।

भिक्षुः। स्वभावतः भीख मांगने वाला, भीखारी, याचनशील, साधु। **भिक्ष** भिक्षायाम्। **भिक्ष्** से **सनाशंसभिक्ष उः** से **उ** प्रत्यय होकर **भिक्षु** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु, रुत्वविसर्ग करके **भिक्षुः** सिद्ध हुआ। आगे भिक्षू, भिक्षवः, भिक्षुम्, भिक्षून्, भिक्षुणा इत्यादि इसके रूप बनते हैं।

८४१- **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप्**। भ्राजश्च भासश्च धुर्विश्च द्युतश्च ऊर्जिश्च पॄ च जुश्च ग्रावस्तुश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तु, तस्मात्। भ्राजभास-धुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः पञ्चम्यन्तं, क्विप् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का तो अधिकार है ही साथ ही **आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु** से **तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु** का भी अधिकार है।

भ्राज्, भास्, धुर्व, द्युत्, ऊर्ज्, पॄ, जु और ग्राव-पूर्वक स्तु धातुओं से तच्छील, तद्धर्म और तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में क्विप् प्रत्यय होता है।

क्विप् में ककार, इकार, पकार की इत्संज्ञा होकर उनका लोप होता है तो शेष **वकार** का **वेरपृक्तस्य** से लोप होता है। इस तरह **क्विप्** में कुछ भी नहीं बचता अर्थात् **क्विप्** का सर्वापहार लोप हो जाता है। अब प्रश्न होता है कि जब सारे वर्णों का लोप ही करना है तो विधान करने का क्या लाभ हुआ? तो सुनिये, प्रत्ययलक्षणेन धातु कृदन्त बनता है जिससे प्रातिपदिकसंज्ञा हो सकेगी, **कित्** होने के कारण सम्प्रसारण होगा, गुण और वृद्धि का निषेध होगा और पित्त्व के कारण **तुक्** का आगम भी हो सकेगा।

विभ्राट्। चमकने का स्वभाव वाला। **भ्राजृ** दीप्तौ। **वि** पूर्वक **भ्राज्** धातु से **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय करके सर्वापहार लोप करने पर **विभ्राज्** ही बनता है। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु प्रत्यय, **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराज-भ्राजच्छशां षः** से **जकार** के स्थान पर **षकार** आदेश, षकार को **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर डकार को **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व होकर **विभ्राट्, विभ्राड्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। आगे **विभ्राजौ, विभ्राजः, विभ्राजम्, विभ्राजः, विभ्राजा, विभ्राड्भ्याम्** आदि रूप बनते हैं।

भाः। चमकने का स्वभाव वाला। **भासृ** दीप्तौ। **भास्** धातु से **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय करके सर्वापहार लोप करने पर **भास्** ही बनता है। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्** करके पुनः **भास्** ही रह गया। शब्द के ही सकार को रुत्व और विसर्ग होकर **भाः** सिद्ध होता है। आगे भासौ, भासः, भासा, भाभ्याम्, भाभिः आदि।

८४२- **राल्लोपः**। रात् पञ्चम्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **छ्वोः शूडनुनासिके च** से **छ्वोः** और **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** से **क्विझलोः** तथा **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

रेफ से परे छकार या वकार का लोप होता है, यदि क्वि परे या झलादि कित्, ङित् परे हो तो।

धूः। चमकने के स्वभाव वाली। **धुर्वी** हिंसायाम्। **धुर्व्** धातु से **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय करके सर्वापहार लोप करने पर **धुर्व्** ही बनता है। प्रत्ययलक्षण से **क्विप्** को मानकर के **राल्लोपः** से **धुर्व्** में विद्यमान अन्त **वकार** का लोप हुआ। **धुर्** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्** करके पुनः **धुर्** ही रह गया। **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः** से उपधा को दीर्घ करके रेफ को विसर्ग होकर **धूः** सिद्ध हुआ है। आगे **धुरौ, धुरः, धुरम्, धुरा, धूर्भ्याम्** आदि रूप बनते हैं।

विद्युत्। चमकने का स्वभाव वाला। **द्युत** दीप्तौ। **वि** पूर्वक **द्युत्** धातु से **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय करके सर्वापहार लोप करने पर **विद्युत्** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्** करके **विद्युत्** सिद्ध हुआ। आगे **विद्युतौ, विद्युतः, विद्युता, विद्युद्भ्याम्** आदि।

ऊर्क्। बलवान्। **ऊर्ज** बलप्राणनयोः। **ऊर्ज्** धातु से **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय करके सर्वापहार लोप करने पर **ऊर्ज्** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्** करके पुनः **ऊर्ज्** ही रह गया। **जकार** को **चोः कुः** से कुत्व करने पर **ऊर्ग्** बना। **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करने पर **ऊर्क्, ऊर्ग्** ये दो रूप बनते हैं। आगे **ऊर्जौ, ऊर्जः, ऊर्जा, ऊर्ग्भ्याम्** इत्यादि। यहाँ पर पदान्त क् या ग् का संयोगान्तलोप नहीं होता, क्योंकि **रात्सस्य** ने रेफ से परे स् का ही संयोगान्तलोप हो, अन्य का नहीं, ऐसा नियम किया है।

पूः। प्राणियों के पालन, पोषण करने का स्वभाव वाला। **पॄ** पालनपूरणयोः। **पॄ** धातु से **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय करके सर्वापहार लोप करने पर **पॄ** बना। प्रत्ययलक्षण से **क्विप्** को कित् मान **गुण** का निषेध, **पॄ** में ॠकार के स्थान पर **ॠत इद्धातोः** से इत्व प्राप्त था, उसे बाध कर के **उदोष्ठ्यपूर्वस्य** से उत्व, रपर, होकर **पुर्** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्** करके पुनः **पुर्** ही रह गया। **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः** से उपधा को दीर्घ करके रेफ को विसर्ग होकर **पूः** सिद्ध होता है। आगे **पुरौ, पुरः, पुरम्, पुरा, पूर्भ्याम्** आदि रूप बनते हैं।

दृशिग्रहणस्यापकर्षाज्जवतेर्दीर्घः। ग्रन्थकार कहते हैं कि अग्रिम सूत्र **अन्येभ्योऽपि दृश्यते** से **दृश्यते** का अपकर्षण किया जाता है। उसका फल यह माना जायेगा कि इस सूत्र में कुछ कार्य ऐसे भी हैं, जो लोक में तो देखे जाते हैं किन्तु सूत्र आदि विधान नहीं करते, उनकी स्वीकृति **दृश्यते** पद के कारण समझी जाती है। जैसे कि **जूः** ऐसा प्रयोग लोक में

शूठादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८४३. च्छ्वोः शूडनुनासिके च ६।४।१९॥

सतुक्कस्य छस्य वस्य च क्रमात् श् ऊठ् इत्यादेशौ स्तोऽनुनासिके क्वौ झलादौ च क्ङिति। पृच्छतीति प्राट्। आयतं स्तौतीति आयतस्तूः। कटं प्रवते कटप्रूः। जूरुक्तः। श्रयति हरिं श्रीः।

....

देखा जाता है किन्तु सूत्रों से कहीं भी दीर्घ नहीं सिद्ध होता। अतः लोक में दृष्ट दीर्घपाठ को स्वीकृत कर लिया जाय, यह तात्पर्य **दृश्यते** इस पद से लगा लिया जाता है। फलतः गणपाठ में अपठित किन्तु सूत्र में पठित **सौत्र** धातु **जु** से **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जि-पृजुग्रावस्तुवः क्विप्** से क्विप्, सर्वापहार, उक्त प्रक्रिया से दीर्घ करके **जू** बन जाता है। अब प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु, उसको रुत्व और विसर्ग करके **जूः** सिद्ध हो जाता है। आगे **जुवौ, जुवः, जुवम्** इत्यादि रूप बनते हैं।

ग्रावस्तुत्। पाषाण, मूर्ति आदि अथवा सोम-अभिषव के साधन पत्थर आदि की स्तुति करने के स्वभाव वाला। **ग्रावन्** पूर्वक **ष्टुञ् स्तुतौ** धातु है। **ग्रावन्+अम्+स्तु** से **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जि-पृजुग्रावस्तुवः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय करके सर्वापहार लोप करने पर **ग्रावन्+अम्+स्तु** बना। उपपद समास। **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से अम् का लुक्, **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप, **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** से **स्तु** को **तुक्** का आगम कर के **ग्रावस्तुत्** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्...** **हल्ङ्यादिलोप** करके **ग्रावस्तुत्** सिद्ध हुआ। आगे **ग्रावस्तुतौ, ग्रावस्तुतः, ग्रावस्तुतम्** आदि रूप बनाये जा सकते हैं।

क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च। यह वार्तिक है। इसका अर्थ है- **वच्, प्रच्छ्, आयत पूर्वक स्तु, कट पूर्वक प्रु, जु और श्रि इन छः धातुओं से तच्छील आदि कर्ता अर्थ में क्विप् प्रत्यय होता है साथ ही इन धातुओं को दीर्घ होता है और सम्प्रसारण का अभाव भी।**

वाक्। बोलना जिसका स्वभाव है, वाणी। **वक्ति तच्छीला। वच** परिभाषणे। **वच्** से **क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रूजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च** से **क्विप्** प्रत्यय और उसके परे रहने पर **वचिस्वपियजादीनां किति** से प्राप्त सम्प्रसारण का अभाव एवं धातु को दीर्घ आदि करके **क्विप्** में सर्वापहार लोप करने पर **वाच्** बना। **प्रातिपदिकसंज्ञा** के बाद **सु,** उसका **हल्ङ्यादिलोप** करके **चकार** को **चोः कुः** से कुत्व करके **वाक्** बना। ककार को जश्त्व करके **वावसाने** से चर्त्व करके **वाक्, वाग्** ये दो रूप बनते हैं। आगे **वाचौ, वाचः, वाचम्, वाचः, वाचा, वाग्भ्याम्** इत्यादि।

८४३- च्छ्वोः शूडनुनासिके च। च्छ् च व् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः च्छ्वौ, तयोः। श् च ऊठ् च तयोः समाहारद्वन्द्वः शूड्। च्छ्वोः षष्ठ्यन्तं, शूड् प्रथमान्तम्, अनुनासिके सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदं सूत्रम्। **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** से **क्विझलोः क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

अनुनासिकादि प्रत्यय के परे होने पर या क्वि परे होने पर अथवा झलादि कित् ङित् के परे होने पर तुक् सहित छकार के स्थान पर श् आदेश और वकार के स्थान पर ऊठ् आदेश होते हैं।

ष्ट्रन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८४४. दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ३।२।१८२॥

दाबादेः ष्ट्रन् स्यात् करणेऽर्थे। दात्यनेन दात्रम्। नेत्रम्।

....

पृच्छतीति प्राट्। पूछने का स्वभाव वाला। **प्रच्छ** ज्ञीप्सायाम्। **प्रच्छ्** धातु से **क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रूजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च** से **क्विप्** प्रत्यय और उसके परे रहने पर **ग्रहिज्यावयि०** से प्राप्त सम्प्रसारण का अभाव एवं धातु को दीर्घ आदि करके **क्विप्** में सर्वापहार लोप करने पर **प्राच्छ्** बना। **तुक्** सहित **छकार** अर्थात् **च्छ्** के स्थान पर **च्छ्वोः शूडनुनासिके च** से **शकार** आदेश होकर **प्राश्** बना। **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराज-भ्राजच्छशां षः** से शकर के स्थान पर षकार आदेश, उसको जश्त्व, वैकल्पिक चर्त्व करके **प्राट्, प्राड्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। आगे **प्राशौ, प्राशः** आदि सरल ही रूप होते हैं।

आयतं स्तौतीति आयतस्तूः। विस्तार से स्तुति करने के स्वभाव वाला। **आयत** पूर्वक **स्तु** धातु है। **क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रूजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च** से **क्विप्** प्रत्यय और दीर्घ करने के बाद **क्विप्** प्रत्यय का सर्वापहार लोप, **आयतस्तू** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्व, विसर्ग, **आयतस्तूः**। आगे अजादि में उवङ् होकर **आयतस्तुवौ, आयतस्तुवः** आदि।

कटं प्रवते कटप्रूः। चटाई बुनने वाला। **कट** पूर्वक **प्रुङ् गतौ** धातु है। **कट+प्रु** से **क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रूजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च** से **क्विप्** प्रत्यय, धातु को दीर्घ, आगे **क्विप्** में सर्वापहार लोप, **कटप्रू** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्व, विसर्ग, **कटप्रूः**। आगे **कटप्रुवौ, कटप्रुवः** आदि।

जूरुक्तः। **जूः** की सिद्धि पहले बताई जा चुकी है।

श्रयति हरिं श्रीः। हरि का आश्रय करना जिसका स्वभाव है, ऐसी लक्ष्मी। **श्रिञ् सेवायाम्**। **श्रि** से **क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रूजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च** से **क्विप्** प्रत्यय, धातु को दीर्घ, आगे **क्विप्** में सर्वापहार लोप, **श्री** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्व, विसर्ग, **श्रीः**। आगे अजादि में इयङ् होकर **श्रियौ, श्रियः** आदि।

८४४- **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे**। दाप् च नीश्च शसश्च युश्च युजश्च स्तुश्च तुदश्च सिश्च सिचश्च मिहश्च पतश्च दशश्च नह् च तेषां समाहारद्वन्द्वो दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहस्तस्मात्। दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः पञ्चम्यन्तं, करणे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **धः कर्मणि ष्ट्रन्** से **ष्ट्रन्** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

दाप्, नी, शस्, यु, युज्, स्तु, तुद्, सि, सिच्, मिह्, पत्, दंश्, नह् इन धातुओं से परे करण अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्यय होता है।

षकार का **षः प्रत्ययस्य** से लोप होता है। षकार के हट् जाने पर में टकार भी स्वतः हट् जाता है अर्थात् टकार तकार में परिवर्तित होता है। नकार की भी इत्संज्ञा होती है और उसका लोप हो जाता है। इस तरह **त्र** ही शेष रहता है।

दात्यनेन दात्रम्। जिससे काटा जाता है, वह साधन। **दाति अनेन**। **दाप्** लवने। पकार इत्संज्ञक है। **दा** से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्**

इण्निषेधकं विधिसूत्रम्

८४५. तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च ७।२।९॥

एषां दशानां कृत्प्रत्ययानामिण् न। शस्त्रम्। योत्रम्। योक्त्रम्। स्तोत्रम्। तोत्रम्। सेत्रम्। सेक्त्रम्। मेढ्रम्। पत्त्रम्। दंष्ट्रा। नद्ध्री।

....

प्रत्यय, अनुबन्धलोप। अनिट् धातु है, अतः इट् का प्रसंग नहीं है। अतः **दात्र** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **दात्रम्** सिद्ध हुआ।

नेत्रम्। नीयतेऽनेन। आँख, मथने की रस्सी आदि। **णीञ्** प्रापणे। ञकार इत्संज्ञक है। **णकार** के स्थान पर **णो नः** से **नकार** आदेश होता है। अब **नी** से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुद-सिसिचमिहपत-दशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप लोप, **नीत्र** बना। **त्र** को आर्धधातुक मानकर के **नी** के ईकार को **सार्वधातुकगुण** हुआ- **नेत्र** बना। अनिट् धातु है। अतः इट् का प्रसंग नहीं है। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **नेत्रम्** सिद्ध हुआ।

८४५- **तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च।** तिश्च तुश्च त्रश्च तश्च थश्च सिश्च सुश्च सरश्च कश्च सश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वस्तितुत्रतथसिसुसरकसास्तेषु। तितुत्रतथसिसुसरकसेषु सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **नेड् वशि कृति** से **न, इट्** और **कृति** की अनुवृत्ति आती है।

ति, तु, त्र, त, थ, सि, सु, सर, क और स इन कृत्प्रत्ययों को इट् का आगम नहीं होता।

सेट् धातुओं से प्राप्त इट् के निषेध के लिए है। अनिट् धातुओं से तो **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से ही निषेध सिद्ध है।

शस्त्रम्। जिससे हिंसा की जाती है, वह साधन, हथियार। शसति हिनस्ति अनेन। **शसु हिंसायाम्। शस्** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप लोप, **शस्+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च** से निषेध हो गया। **शस्त्र** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **शस्त्रम्** सिद्ध हुआ।

योत्रम्। युवन्त्यनेन। जिससे बाँधते हैं वह साधन, रस्सी। **यु** मिश्रणे। **यु** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **यु+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च** से निषेध हो गया। **यु** को आर्धधातुकगुण होकर **योत्र** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **योत्रम्** सिद्ध हुआ।

योक्त्रम्। युञ्जन्त्यनेन। जिससे जोड़ा जाता है वह साधन, रस्सी। **यु** मिश्रणे। **यु** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **यु+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध हो गया। **युज्** को लघूपधगुण होकर **योज्+त्र** बना। जकार को कुत्व और उसको चर्त्व करके **योक्त्र** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **योक्त्रम्** सिद्ध हुआ।

स्तोत्रम्। स्तुवन्त्यनेन। जिससे स्तुति की जाती है वह साधन, स्तव, मन्त्र आदि। **ष्टुञ्** स्तुतौ। **स्तु** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **स्तु+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध हो गया। **स्तु** को आर्धधातुकगुण होकर **स्तोत्र** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **स्तोत्रम्** सिद्ध हुआ।

तोत्त्रम्। तुदन्त्यनेन। जिससे पीटते हैं वह साधन, चाबुक, डंडा, अंकुश आदि। तुद व्यथने। **तुद्** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **तुद्+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध हो गया। **तुद्** को उपधागुण होकर और दकार को **खरि च** से चर्त्व होकर **तोत्त्र** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **तोत्त्रम्** सिद्ध हुआ।

सेत्रम्। सिन्वन्त्यनेन। जिससे बाँधते हैं, वह साधन, बेड़ी, हथकड़ी इत्यादि। **षिञ्** बन्धने। **सि** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **सि+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध हो गया। **सि** को आर्धधातुगुण होकर **सेत्र** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **सेत्रम्** सिद्ध हुआ।

सेक्त्रम्। सिञ्चन्त्यनेन। जिससे सींचा जाय वह साधन, सींचने का पात्र। **षिच** क्षरणे। **सिच्** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **सिच्+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध हो गया। **स्तु** को आर्धधातुगुण होकर **सेच्+त्र** बना। चकार को कुत्व करके **सेक्त्र** बनता है। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **सेक्त्रम्** सिद्ध हुआ।

मेढ्रम्। मेहन्त्यनेन। जिससे मूत्रत्याग किया जाय वह साधन, मूत्रेन्द्रिय। **मिह** सेचने। **मिह्** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **मिह+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध हो गया। **मिह्+त्र** उपधागुण होने के बाद हकार को **हो ढः** से ढत्व, **झषस्तथोर्धोऽधः** से तकार को धत्व करके ढकार के योग में धकार को ष्टुत्व करके **मेढ्+ढ्र** बना। **ढो ढे लोपः** से पूर्व ढकार का लोप करके **मेढ्र** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **मेढ्रम्** सिद्ध हुआ।

पत्त्रम्। पतन्त्यनेन। जिसके द्वारा पक्षी आदि उड़ते हैं, वह साधन, पंख आदि। **पत्लृ** पतने। **पत्** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **पत्+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च** से निषेध हो गया। **पत्त्र** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **पत्त्रम्** सिद्ध हुआ।

दंष्ट्रा। दशन्त्यनया। जिसके द्वारा काटते हैं वह साधन, बड़ा दाँत, दाढ़ आदि। **दंश** दंशने। **दंश** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **दंश्+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध हो गया। **दंश्** के शकार के स्थान पर **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजश्छशां षः** से **षकार** आदेश, उससे पर प्रत्यय के तकार को ष्टुत्व करके **दंष्ट्र** बना। **षित्** होने के कारण **षिद्गौरादिभ्यश्च** से **ङीष्** प्राप्त था किन्तु **दंष्ट्र** शब्द के **अजादिगण** में होने के कारण उसे

इत्र-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८४६. अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः ३।२।१८४॥

अरित्रम्। लवित्रम्। धुवित्रम्। सवित्रम्। खनित्रम्। सहित्रम्। चरित्रम्।

....

बाधकर के **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर **दंष्ट्रा** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** - हल्ङ्यादिलोप करके **दंष्ट्रा** सिद्ध हुआ।

नद्धी। नह्यतेऽनया। जिसके द्वारा बाँधा जाता है, वह साधन, चमड़े की रस्सी आदि। **णह** बन्धने। **नह्** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **नह्+त्र** बना। **नहो धः** से **हकार** के स्थान पर **धकार** आदेश, उससे पर प्रत्यय के तकार को **झषस्तथोर्धोऽधः** से धकार आदेश करके **पूर्वधकार** को जश्त्व करने पर **नद्ध्र** बना। **षित्** होने के कारण **षिद्गौरादिभ्यश्च** से **ङीष्** होकर **नद्ध्री** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, **हल्ङ्यादिलोप** करके **नद्ध्री** सिद्ध हुआ।

आचार्य कहीं तो इट् का निषेध करने के लिए **तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च** सूत्र को बनाते हैं और कहीं अप्राप्त इट् का विधान न करके **ष्ट्रन्** प्रत्यय और **इट्** आगम के स्थान पर सीधे **इत्र** प्रत्यय करते हैं। अग्रिम सूत्र को देखिये।

८४६- **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः**। अर्तिश्च लूश्च धूश्च सूश्च खनश्च सहश्च चर् च तेषां समाहारद्वन्द्वः, अर्तिलूधूसूखनसहचर्, तस्मात्। अर्तिलूधूसूखनसहचरः पञ्चम्यन्तम्, इत्रः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **करणे** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार तो है ही।

ऋ, लू, धू, सू, खन्, सह् और चर् धातुओं से करण अर्थ में इत्र प्रत्यय होता है।

अरित्रम्। ऋच्छन्त्यनेन। जिससे ले जाते है, चलाते हैं वह साधन, नौका का चप्पू। **ऋ** गतिप्रापणयोः। **ऋ** धातु से करण अर्थ में **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः** से **इत्र** प्रत्यय होकर **ऋ+इत्र** बना। **इत्र** की **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकसंज्ञा** करके **ऋ** को **सार्वधातुकार्धतुकयोः** से गुण, रपर होकर **अर्+इत्र, अरित्र** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप, **अरित्रम्।**

लवित्रम्। लुनन्त्यनेन। जिससे काटते हैं, वह साधन, दात्र, दतिया, आरीनुमा काटने का हँसुआ आदि। **लूञ्** छेदने। **लू** धातु से करण अर्थ में **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः** से **इत्र** प्रत्यय होकर **लू+इत्र** बना। **इत्र** की **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकसंज्ञा** करके **लू** के **ऊकार** को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण, अव् आदेश होकर **ल्+अव्+इत्र, लवित्र** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप, **लवित्रम्।**

धुवित्रम्। धुवन्त्यनेन। जिससे आग आदि को प्रज्वलित करते हैं, फूँकते हैं, वह साधन, पंखा, बांस आदि की फूँकनी। **धू** विधूनने। **धू** धातु से करण अर्थ में **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः** से **इत्र** प्रत्यय होकर **धू+इत्र** बना। **इत्र** की **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकसंज्ञा** करके **लू** के **ऊकार** को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण प्राप्त था किन्तु **कुटादि** गण में इसके आने के कारण **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्** से ङिद्वद्भाव हो जाने से **क्ङिति च** से गुण का निषेध हुआ। अतः **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **उवङ्** आदेश होकर **धुव्+इत्र, धुवित्र** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप, **धुवित्रम्।**

संज्ञायामित्रविधायकं विधिसूत्रम्

८४७. पुवः संज्ञायाम् ३।२।१८५॥

पवित्रम्।

इति पूर्वकृदन्तम्॥३४॥

....

सवित्रम्। सुवन्त्यनेन। जिससे प्रेरणाएँ प्राप्त होती हैं वह साधन। **षू** प्रेरणे। **सू** धातु से करण अर्थ में **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः** से **इत्र** प्रत्यय होकर **सू+इत्र** बना। **इत्र** की **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकसंज्ञा** करके **लू** के **ऊकार** को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण, अवादेश करके **स्+अव्+इत्र, सवित्र** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप, **सवित्रम्।**

खनित्रम्। खनन्त्यनेन। जिससे खोदते हैं, वह साधन, फावड़ा, खुरपी आदि। **खनु** अवदारणे। **खन्** धातु से करण अर्थ में **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः** से **इत्र** प्रत्यय होकर **खन्+इत्र, खनित्र** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप, **खनित्रम्।**

सहित्रम्। सहन्तेऽनेन। सहन करते हैं जिस कार्यकलाप से, वह कार्य। **षह** मर्षणे। **सह्** धातु से करण अर्थ में **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः** से **इत्र** प्रत्यय होकर **सह्+इत्र, सहित्र** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप, **सहित्रम्।**

चरित्रम्। चरन्त्यनेन। जिसके द्वारा मनुष्य समाज में चल सकते हैं, वह आचरण, स्वभाव, व्यवहार आदि। **चर** गतिभक्षणयोः। **चर्** धातु से करण अर्थ में **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः** से **इत्र** प्रत्यय होकर **चर्+इत्र, चरित्र** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप, **चरित्रम्।**

८४७- पुवः संज्ञायाम्। पुवः पञ्चम्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः** से **इत्रः** और **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **करणे** की अनुवृत्ति आती है।

धातोः, प्रत्ययः, परश्च का अधिकार तो है ही।

यदि प्रकृति और प्रत्यय के समुदाय से संज्ञा अर्थ निकले तो पू धातु से करण अर्थ में इत्र प्रत्यय होता है।

तात्पर्य यह है कि **पू** से **इत्र** प्रत्यय करने पर जो शब्द बने उससे किसी की संज्ञा का बोध हो।

पवित्रम्। पवन्ते पुनन्ति वा अनेन। जिससे पवित्र, शुद्ध होते हैं, वह साधन। वेद के अनुसार इसका अर्थ **कुश, जल, वायु, अग्नि** आदि है। **पूङ्** पवने और **पूञ्** पवने दोनों धातुएँ यहाँ पर ग्राह्य हैं। **पू** धातु से करण अर्थ में **पुवः संज्ञायाम्** से **इत्र** प्रत्यय होकर **पू+इत्र** बना। **इत्र** की **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकसंज्ञा** करके **पू** के **ऊकार** को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण करके **अव्** आदेश होकर **प्+अव्+इत्र, पवित्र** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप, **पवित्रम्।**

आपने अभी तक जितने धातु पढ़े, उन सभी धातुओं से ण्वुल्, तृच्, क्त, क्तवतु, शतृ और शानच् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का प्रयत्न करें।

संस्कृतभाषा में सभी शब्द प्रायः धातुओं से ही निर्मित हैं। धातुओं से दो तरह के प्रत्यय होते हैं- तिङ् और कृत्। तिङन्त और कृदन्त में लगभग सारे शब्द समाये हैं। कृदन्त

से तद्धित के प्रत्यय भी होते हैं। अत: कृत्प्रकरण को अच्छी तरह समझ लेने के बाद संस्कृत भाषा में व्युत्पत्ति के लिए कोई परेशानी नहीं आती।

परीक्षा

द्रष्टव्य:- प्रत्येक प्रश्न दस अंक के हैं और अनिवार्य भी हैं।

१- ण्वुल और तृच् प्रत्यय लगाकर पाँच-पाँच रूपों की सिद्धि करें। १०

२- णिनि, ल्यु, अच्, क, अण् प्रत्यय लगाकर दो-दो रूपों की सिद्धि करें। १०

३- क्त, क्तवतु प्रत्यय लगाकर पाँच-पाँच शब्दों की सिद्धि करें। १०

४- शतृ और शानच् प्रत्यय लगाकर किन्हीं पाँच-पाँच शब्दों की सिद्धि करें। १०

५- ये बारह प्रत्यय करने वाले सूत्रों में आपस में कितनी समानता है, स्पष्ट करें। १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का पूर्वकृदन्त-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ कृदन्त उणादयः।

उण्प्रत्ययविधायकं शाकटायनसूत्रम्

कृ-वा-पा-जि-मि-स्वदि-साध्यशूभ्य उण्।।१।।

करोतीति कारुः। वातीति वायुः। पायुर्गुदम्। जायुरौषधम्। मायुः पित्तम्। स्वादुः। साध्नोति परकार्यमिति साधुः। आशु शीघ्रम्।

उणादिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८४८. उणादयो बहुलम् ३।३।१।।

एते वर्तमाने संज्ञायां च बहुलं स्युः। केचिदविहिता अप्यूह्याः।

संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे।

कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु।।

इत्युणादिप्रकरणम्।।३५।।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **उणादिप्रकरण** प्रारम्भ करते हैं। **उणादिप्रत्ययान्त** शब्दों को कुछ आचार्य **व्युत्पन्न** मानते हैं तो कुछ आचार्य **अव्युत्पन्न**। विद्वानों के इसमें दो मत हैं। कुछ तो कहते हैं- पाणिनि के मत में औणादिक शब्द अव्युत्पन्न हैं परन्तु कुछ कहते हैं कि **उणादयो बहुलम्** इस सूत्र को बनाकर पाणिनि ने व्युत्पन्न माना है। कृदन्तप्रकरण के बीच में पाणिनि जी का लिखा एक ही सूत्र आता है, वह है **उणादयो बहुलम्**। इस सूत्र से पाणिनि जी ने उणादिप्रत्ययों का विधान किया है किन्तु वे प्रत्यय कौन-कौन हैं और किन-किन अर्थों में किस-किस से होते हैं, यह जान नहीं सकते। अतः शाकटायनमुनि के रचित **पञ्चपादी उणादिसूत्र** जिसमें लगभग साढ़ेसात सौ सूत्रों द्वारा सवा तीन सौ के करीब प्रत्ययों का प्रतिपादन किया गया है, का आश्रय लिया गया है। संस्कृत शास्त्र में अनेकों शब्द ऐसे हैं, जिनकी सिद्धि अष्टाध्यायी के सूत्रों से नहीं हो पाती है, उन सारे शब्दों को उणादि के अन्तर्गत सिद्ध मान लिया जाता है। हम इस प्रपञ्च में न पड़कर यही मानते हैं कि उणादि प्रत्ययों के विना पाणिनीय व्याकरण शास्त्र अधूरा है। अतः उणादिप्रकरण का सामान्य एवं संक्षिप्त ज्ञान कराते हैं।

शब्दसागर अथाह है। अतः उणादि में कितने प्रत्यय हो सकते हैं, इसका कथन भी असम्भव ही है, तथापि जो प्रचलित हैं, उनका ज्ञान भी शाकटायनमुनि के उणादिसूत्रों से पता चलेगा। यहाँ तो बस, एक ही सूत्र का उदाहरण देखते हैं।

कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्। कृ, वा, पा, जि, मि, स्वद्, साध् और अश् धातुओं से परे उण् प्रत्यय करता है।

करोतीति **कारुः**। कृ धातु से **कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्** से उण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, कृ+उ, कृ की वृद्धि, कार्+उ, वर्णसम्मेलन, कारु बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग, **कारुः** सिद्ध हुआ। जो करता है, वह कारु है।

वातीति **वायुः**। वा गतिगन्धनयोः। **वा** धातु से **उण्** होने के बाद **आतो युक् चिण्कृतोः** से **युक्** का आगम होकर उसका अनुबन्धलोप करके **य्** शेष बचा, **वा+य्+उ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **वायु**। प्रातिपदिकसंज्ञा, स्वादिकार्य- **वायुः**। वहने वाला- **वायुः**।

पायुर्गुदम्। पा रक्षणे। पाति=रक्षति अपानादिनिःसारणद्वारा शरीरमिति। अपान वायु आदि निकालकर शरीर की सुरक्षा करता है, ऐसा अङ्ग। **पा** धातु से उण्, युक् करके **पा+य्+उ** बना, वर्णसम्मेलन करके **पायु** बना, प्रातिपदिकसंज्ञा और स्वादिकार्य से **पायुः** सिद्ध हुआ।

जायुरौषधम्। जि अभिभवे। जो रोगों पर विजय प्राप्त करता है, औषध। जितने के अर्थ में प्रयुक्त **जि** धातु से **उण्**, अनुबन्धलोप, **जि** की वृद्धि, **जै+उ**, आय् आदेश, **जाय्+उ**, वर्णसम्मेलन, **जायु**, स्वादिकार्य करके **जायुः** सिद्ध हुआ।

मायुः पित्तम्। फेंकने के अर्थ में प्रयुक्त **मि** धातु है। जो शरीर में अतिरिक्त ऊष्मा आदि को फेंकता हो, पित्त नामक अंग। मि से उण्, वृद्धि, आय् आदेश, स्वादिकार्य करके **मायुः** सिद्ध हो जाता है।

स्वादुः। स्वद आस्वादने। स्वदते=रोचते इति स्वादुः। जो अच्छा, स्वादिष्ट लगे, वह स्वादु। **स्वद्** से **उण्**, उपधावृद्धि करके स्वादिकार्य करने पर **स्वादुः** सिद्ध हो जाता है।

साध्नोति परकार्यमिति **साधुः**। साध संसिद्धौ। जो दूसरों का उपकार करे, वह साधु है। **साध्** धातु से **उण्** करके वर्णसम्मेलन करके स्वादि कार्य करने पर **साधुः** सिद्ध हुआ।

आशु शीघ्रम्। अशूङ् व्याप्तौ। जो शीघ्र सर्वत्र व्याप्त हो जाय। **अश्** से **उण्**, उपधावृद्धि, स्वादिकार्य करके **आशु** बनता है। इसके रूप नपुंसकलिङ्ग में **मधु** शब्द की तरह चलते हैं।

८४८- उणादयो बहुलम्। उण् आदिर्येषां ते उणादयः। उणादयः प्रथमान्तं, बहुलं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

धातुओं से उण् आदि प्रत्यय वर्तमान काल में और संज्ञा में बहुल से होते हैं।

उण् आदि कहने से यहाँ पर शाकटायनमुनि के रचित उणादिसूत्रों से किये जाने वाले सभी प्रत्यय समझना ठीक रहेगा। पाणिनि जी ने उन सभी प्रत्ययों को उणादिगण में समेट लिया, यही जानना हमारे लिए उचित भी है। वे सभी प्रत्यय बहुल से होते हैं। बहुल का अर्थ अधिकतर नहीं है। यह पारिभाषिक-शब्द है। इसकी परिभाषा बताने के लिए वैयाकरण जगत में निम्नलिखित श्लोक प्रसिद्ध है-

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति॥

बहुल के चार अर्थ हैं- पहला- **क्वचित्प्रवृत्तिः**- जहाँ जो कार्य बहुल से हो ऐसा बताया

गया, ऐसा सूत्र जहाँ लगना चाहिए वहाँ तो लगता ही है और जहाँ लगने की योग्यता नहीं है, वहाँ भी लग जाता है। दूसरा- **क्वचित् अप्रवृत्तिः**- कहीं-कहीं लगने योग्य स्थानों पर भी नहीं लगता। तीसरा- **क्वचिद्विभाषा**- कहीं कहीं विकल्प से करता है और चौथा- **क्वचिद् अन्यद् एव**- अर्थात् कहीं कुछ और ही कर देता है। और ही होता है का तात्पर्य यह है कि निर्धारित अर्थ, निर्धारित योग्यता के अतिरिक्त भी कुछ और ही विधान कर देता है।

उणादि में प्रकृति और प्रत्यय कैसे होते हैं इसका कथन महाभाष्य में इस प्रकार से किया गया है-

संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे।
कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु॥

तात्पर्य यह है कि उणादि के सम्बन्ध में यदि किसी शब्द से प्रत्यय का विधान करने वाला कोई सूत्र न मिले तो स्वयं प्रकृति-प्रत्ययों की कल्पना कर लेनी चाहिए। पूर्वभाग में प्रकृति अर्थात् धातु और परभाग में प्रत्यय की कल्पना करें। उस प्रत्यय में भी शब्दानुरूप कार्य की आवश्यकता को देखते हुए अनुबन्धों को जोड़ लेना चाहिए। जैसे यदि गुण या वृद्धि का अभाव करना हो तो प्रत्यय को कित् या ङित्, यदि वृद्धि करनी हो तो प्रत्यय को ञित् या णित् करना चाहिए। इसी प्रकार से टिलोप आदि के लिए डित्करण आदि भी कर लेना चाहिए।

पाणिनि जी ने **उणादयो बहुलम्** को पूर्वकृदन्त और उत्तरकृदन्त के बीच में पढ़ा है। अतः यह भी कृदन्त का ही सूत्र है।

यह तो एक दिग्दर्शन मात्र है, पूर्णज्ञान के लिए शाकटायन के सभी सूत्रों को पढ़ना ही पढ़ेगा।

आपको फिर एक बात याद दिला दूँ की **लघुसिद्धान्तकौमुदी** व्याकरण शास्त्र में प्रवेश के लिए प्रवेशिका अर्थात् प्रवेश-परीक्षात्मक ग्रन्थ है। जैसे आजकल विद्यालयों में प्रवेश के लिए पहले प्रवेश परीक्षा ली जाती है और छात्र उसमें उत्तीर्ण होने के लिए उस प्रकार की पुस्तके पढ़ते हैं, जिससे अवश्य उत्तीर्ण हों, इसके वे लिए बहुत तैयारी करते हैं। इसी तरह इस कौमुदी को भी यही समझें कि व्याकरणशास्त्र में प्रवेश के लिए योग्यता प्राप्त कराने वाला यह ग्रन्थ है।

यह भी नहीं है कि इसके ज्ञान से केवल सामान्य ज्ञान मात्र होगा। यदि इस ग्रन्थ को आद्योपान्त अच्छी तरह पढ़ लिया गया, इसको अच्छी तरह से लगा लिया तो व्याकरण जगत् के अनेक नियम और उपनियमों का ज्ञान हो जायेगा और व्यावहारिक एवं अधिक प्रचलित शब्दों के विषय में आत्मनिर्भर भी बना जा सकेगा क्योंकि संज्ञाप्रकरण से लेकर सन्धि, सुबन्त, तिङन्त, कृदन्त, कारक, समास, तद्धित और स्त्रीप्रत्यय प्रकरणों के मुख्य विषय इसमें समाविष्ट हैं। लगभग सभी प्रकरणों का मार्गदर्शन किया गया है। अतः जिनको महावैयाकरण नहीं बनना है और संस्कृत भाषा का सामान्य ज्ञान करके अन्य शास्त्रों का अध्ययन करना है, उनके लिए यह ग्रन्थ पर्याप्त हो सकता है।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित सारसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का उणादिप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ उत्तरकृदन्तम्

तुमुन्ण्वुल्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८४९. तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ३।३।१०॥

क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यत्यर्थे धातोरेतौ स्तः।
मान्तत्वादव्ययत्वम्। कृष्णं द्रष्टुं याति। कृष्णं दर्शको याति।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में कृदन्त का अन्तिमप्रकरण **उत्तरकृदन्त** का आरम्भ होता है। इस प्रकरण में मुख्यतया **तुमुन्, ण्वुल्, घञ्, अच्, अप्, क्तिन्, क्त्वा** और **णमुल्** आदि प्रत्यय बताये जा रहे हैं। **उणादयो बहुलम्** के पहले का प्रकरण **पूर्वकृदन्त** और बाद का प्रकरण **उत्तरकृदन्त** है।

८४९- **तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्।** तुमन् च ण्वुल् च तयोरितरेतरद्वन्द्वस्तुमुन्ण्वुलौ। क्रिया अर्थः (प्रयोजनं) यस्याः सा क्रियार्था, तस्यां, बहुव्रीहिः। तुमुन्ण्वुलौ प्रथमान्तं, क्रियायां सप्तम्यन्तं, क्रियार्थायां सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **धातोः, प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है। **भविष्यति गम्यादयः** से **भविष्यति** की अनुवृत्ति आती है।

एक क्रिया के लिए दूसरी क्रिया समीप में होने पर भविष्यत् काल में धातु से परे तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय होते हैं।

किसी क्रिया की सिद्धि के लिए जब दूसरी क्रिया की जाती है तो वह दूसरी क्रिया पहली क्रिया की **क्रियार्था क्रिया** कहलाती है। जैसे भोक्तुं गच्छति= खाने के लिए जाता है। यहाँ खाना इस क्रिया के लिए ही गमनरूपी दूसरी क्रिया हो रही है। यही दूसरी क्रिया ही **क्रियार्था क्रिया** है। भविष्यत् काल का अर्थ इसलिए है कि अभी खाने के लिए जा रहा है अर्थात् खाया नहीं है। तुमुन्-प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग खूब होता है किन्तु इस अर्थ में ण्वुल्प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग कम ही होता है। तुमुन् में नकार की **हलन्त्यम्** से और उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होकर लोप होने पर **तुम्** शेष रहता है। **तुम्** मान्त है। **मान्त कृदन्त** शब्द की **कृन्मेजन्तः** से **अव्ययसंज्ञा** होती है अर्थात् **मान्त कृदन्त** शब्द **अव्यय** होता है। आपको स्मरण होगा ही कि अव्यय का केवल एक ही रूप होता है अर्थात् अन्य सुबन्त की तरह सातों विभक्तियों के रूप नहीं होते।

तुम् की **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकसंज्ञा होती** है। यदि धातु **सेट्** होगा तो **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से **इट्** का आगम होगा और **अनिट्** होगा तो **इट्** नहीं होगा।

तुमन्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८५०. कालसमयवेलासु तुमुन् ३।३।१६७॥

कालार्थेषूपपदेषु तुमुन्। कालः समयो वेला वा भोक्तुम्।

....

पठितुं गच्छति। पढ़ने के लिए जाता है। यहाँ पर पढ़ने के लिए दूसरी क्रिया **गमन करना** है। ऐसी स्थिति में **पठ्** धातु से **तुमुन्**, अनुबन्धलोप, **पठ्+तुम्** बना। **तुम्** की आर्धधातुकसंज्ञा और उसको इट् का आगम हुआ, **पठ्+इ+तुम्** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **पठितुम्** बना। अव्ययसंज्ञा, प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु विभक्ति और अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से **सु** का लुक् हुआ, **पठितुम्।**

कृष्णं द्रष्टुं याति। कृष्ण को देखने के लिए जाता है। यहाँ पर भी **देखने** के लिए दूसरी क्रिया **गमन करना** है। ऐसी स्थिति में **दृश्** धातु से **तुमुन्**, अनुबन्धलोप, **दृश्+तुम्** बना। **तुम्** की आर्धधातुकसंज्ञा और उसको इट् का आगम प्राप्त हुआ। उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध हुआ। **दृश्+तुम्** में **सृजिदृशोर्झल्यमकिति** से **अम्** आगम, मित् होने से अन्त्य अच् का अवयव बना। **दृ+अश्** बना। यण् होकर **द्+र्+अश्**, वर्णसम्मेलन होने पर **द्रश्+तुम्** बना। **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजश्छशां षः** से **शकार** के स्थान पर **षकार** आदेश, षकार से परे प्रत्यय के तकार को ष्टुत्व करके **द्रष्टुम्** बना। मान्त होने के कारण **कृन्मेजन्तः** से अव्ययसंज्ञा करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सु विभक्ति और अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से **सु** का लुक् हुआ, **द्रष्टुम्।**

कृष्णं दर्शको याति। कृष्ण को देखने के लिए जाता है। यहाँ पर **देखने के लिए जाना** एक क्रिया के लिए दूसरी क्रिया हो रही है। अतः **दृश्** धातु से **ण्वुल्** प्रत्यय हो गया। अनुबन्धलोप होने के बाद **वु** बचा। उसके स्थान पर **अक** आदेश हो गया। **दृश्+अक** बना। **पुगन्तलघूपधस्य च** से **दृ** के **ऋकार** को **अर्-गुण** हुआ, **द्+अर्+श्+अक** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **दर्शक** बना, **रेफ** का **ऊर्ध्वगमन** हुआ, **दर्शक** बना। इसकी **प्रातिपदिकसंज्ञा** हुई, सु, रुत्वविसर्ग होकर **दर्शकः** सिद्ध हुआ। **याति** के परे होने पर **सु** को जो **रु** हुआ था, उस **रेफ** के स्थान पर **हशि च** से **उत्व** और गुण होकर **दर्शको याति** बना है।

८५०- कालसमयवेलासु तुमुन्। कालश्च समयश्च वेला च तेषामितरेतरद्वन्द्वः कालसमयवेलास्तासु। कालसमयवेलासु सप्तम्यन्तं, तुमुन् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **धातोः**, **प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

काल, समय, वेला जैसे काल अर्थवाची शब्दों के उपपद रहते धातुओं से तुमुन् प्रत्यय होता है।

भविष्यति अर्थ और **क्रियार्था क्रिया** के अभाव में पूर्व सूत्र से अप्राप्त **तुमुन्** का यह सूत्र विधान करता है।

कालः समयो वेला वा भोक्तुम्। भोजन के लिए समय। **भुज** पालनाभ्यवहारयोः। **भुज्** धातु से **कालसमयवेलासु तुमुन्** से **तुमुन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रत्यय की आर्धधातुकसंज्ञा, उपधागुण, **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् का निषेध, जकार को **चोः कुः** से कुत्व करके गकार, उसको **खरि च** से चर्त्व, ककार, **भोक्तुम्** बना। मान्त होने से अव्ययसंज्ञा, प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अव्ययत्वात् उसका लुक् करके **भोक्तुम्** बनता है। इसका प्रयोग- **भोक्तुं कालः, भोक्तुं समयः, भोक्तुं वेला।**

कुछ धातुओं से निष्पन्न तुमुन्नन्त शब्दों को यहाँ पर दिखा रहे हैं। अन्य धातुओं से भी आप तुमुन् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने की चेष्टा करें।

अर्च-अर्चितुम्=पूजने के लिए
अव्-अवितुम्=बचाने के लिए
आप्-आप्तुम्=पाने के लिए
कृ-कर्तुम्=करने के लिए
क्रीड्-क्रीडितुम्=खेलने के लिए
खेल्-खेलितुम्=खेलने के लिए
गै, गा-गातुम्=गाने के लिए
चल्-चलितुम्=चलने के लिए
जप्-जपितुम्=जपने के लिए
जि-जेतुम्=जीतने के लिए
ज्ञा-ज्ञातुम्= जानने के लिए
त्रै, त्रा-त्रातुम्=बचाने के लिए
दा-दातुम्=देने के लिए
धाव्-धावितुम्=दौड़ने के लिए
ध्यै, ध्या-ध्यातुम्=ध्यान करने के लिए
नी-नेतुम्=ले जाने के लिए
पठ्-पठितुम्=पढ़ने के लिए
पा-पातुम्=पीने के लिए
ब्रू, वच्-वक्तुम्=कहने के लिए
भण्-भणितुम्=कहने के लिए
भुज्-भोक्तुम्=खाने के लिए
रक्ष्-रक्षितुम्=रक्षा करने के लिए
रम्-रन्तुम्=रमण करने के लिए
लभ्-लब्धुम्=पाने के लिए
विद्-वेदितुम्=जानने के लिए
शक्-शक्तुम्=सकने के लिए
श्रु-श्रोतुम्=सुनने के लिए
स्तु-स्तोतुम्=स्तुति करने के लिए
स्ना-स्नातुम्=नहाने के लिए
हन्-हन्तुम्=मारने के लिए
हृ-हर्तुम्=हरने के लिए
अध्यापि-अध्यापयितुम्=पढ़ाने के लिए
श्रावयितुम्=सुनाने के लिए
ग्राहयितुम्=ग्रहण कराने के लिए
कारयितुम्=करवाने के लिए
जनयितुम्=पैदा करने के लिए

अर्ज-अर्जितुम्=कमाने के लिए
अस्-भवितुम्=होने के लिए
कथ्-कथयितुम्=कहने के लिए
क्री-क्रेतुम्=खरीदने के लिए
खाद्-खादितुम्=खाने के लिए
गम्-गन्तुम्=जाने के लिए
ग्रह्-ग्रहीतुम्=ग्रहण करने के लिए
जन्-जनितुम्=पैदा होने के लिए
जागृ-जागरितुम्=जागने के लिए
जीव्-जीवितुम्=जीने के लिए
त्यज्-त्यक्तुम्=छोड़ने के लिए
दह्-दग्धुम्=जलाने के लिए
दृश्-द्रष्टुम्=देखने के लिए
धृ-धर्तुम्=धारण करने के लिए
नम्-नन्तुम्=झुकने के लिए
पच्-पक्तुम्=पकाने के लिए
पत्-पतितुम्=गिरने के लिए
पूज्-पूजयितुम्=पूजने के लिए
भक्ष्-भक्षयितुम्=खाने के लिए
भाष्-भाषितुम्=बोलने के लिए
भू-भवितुम्=होने के लिए
रच्-रचयितुम्=बनाने के लिए
रुद्-रोदितुम्=रोने के लिए
लिख्-लेखितुम्=लिखने के लिए
वृध्-वर्धितुम्=बढ़ने के लिए
शिक्ष्-शिक्षितुम्=सीखने के लिए
सेव्-सेवितुम्=सेवा करने के लिए
स्था-स्थातुम्=ठहरने के लिए
स्मृ-स्मर्तुम्=याद करने के लिए
हस्-हसितुम्=हसने के लिए
आ-ह्वे-आह्वातुम्=बुलाने के लिए
दर्शयितुम्=दिखाने के लिए
घातयितुम्=मरवाने के लिए
प्रसादयितुम्=प्रसन्न करने के लिए
लेखयितुम्=लिखवाने के लिए।
तोषयितुम्=खुश करने के लिए।

घञ्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८५१. भावे ३।३।१८॥

सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ्। पाकः।

घञ्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८५२. अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ३।३।१९॥

कर्तृभिन्ने कारके घञ् स्यात्।

नकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

८५३. घञि च भावकरणयोः ६।४।२७॥

रञ्जेर्नलोपः स्यात्। रागः। अनयोः किम्? रज्यत्यस्मिन्निति रङ्गः।

....

८५१- **भावे**। भावे सप्तम्यन्तम्, एकपदं सूत्रम्। **पदरुजविशस्पृशो घञ्** से **घञ्** की अनुवृत्ति आती है और **धातोः, प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

सिद्धावस्था रूप में प्राप्त धातु का अर्थ वाच्य होने पर धातु से घञ् प्रत्यय होता है।

धात्वर्थ अर्थात् **क्रिया** दो प्रकार की होती है- पहली **सिद्धावस्थापन्न** और दूसरी **साध्यावस्थापन्न। यत्र क्रियायाः क्रियान्तराकाङ्क्षा सा सिद्धावस्थापन्ना** और **यत्र क्रियायाः क्रियान्तरानाकाङ्क्षा सा साध्यावस्थापन्ना** अर्थात् जिस क्रिया में अन्य क्रिया की आकांक्षा होती है, वह सिद्ध अवस्था को प्राप्त क्रिया है। जैसे- **पाकः, त्यागः** आदि और जिस क्रिया में अन्य क्रिया की आकांक्षा नहीं होती है, वह साध्य अवस्था को प्राप्त क्रिया है। जैसे- **पचति, त्यजति** आदि। जब क्रिया **सिद्ध अवस्थापन्न** होती है, तब वह द्रव्य की तरह हो जाती है। अतः ऐसी क्रिया से **घञ्** आदि प्रत्यय होते हैं। **घञ्** में **घकार** की **लशक्वतद्धिते** से और ञकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होकर केवल **अकार** ही शेष रहता है। **घित्** का फल **चजोः कु घिण्यतोः** से **कुत्व** और **ञित्** का फल **अत उपधायाः** आदि से वृद्धि आदि है।

पाकः। पचनं पाकः। डुपचष् पाके। पच् से **भावे** से घञ्, अनुबन्धलोप, **पच्+अ** बना। णित्व होने के कारण उपधाभूत पकारोत्तरवर्ती अकार को वृद्धि, **पाच्+अ** में चकार को **चजोः कु घिण्ण्यतोः** से कुत्व होकर ककार हुआ, **पाक** बना। प्रातिपदिक संज्ञा के बाद स्वादिकार्य होकर **पाकः** सिद्ध हुआ। आगे **पाकौ, पाकाः** आदि तो बनाये ही जा सकते हैं।

उक्त प्रक्रिया से ही **भज्** से **भागः, रम्** से **रामः, नश्** से **नाशः, पठ्** से **पाठः** आदि सिद्ध किये जा सकते हैं।

८५२- **अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्**। अकर्तरि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, कारके सप्तम्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **पदरुजविशस्पृशो घञ्** से **घञ्** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

कर्तृभिन्न कारक में धातु से परे घञ् प्रत्यय होता है संज्ञा के विषय में।

८५३- **घञि च भावकरणयोः**। भावश्च करणञ्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो भावकरणे, तयोः। घञि

घञ्-प्रत्यय-ककारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८५४. निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ३।३।४१॥

एषु चिनोतेर्घञ्, आदेश्च ककारः। उपसमाधानं राशीकरणम्। निकायः। कायः। गोमयनिकायः।

....

सप्तम्यन्तं, च अव्ययं, भावकरणयोः सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **रञ्जेश्च** से **रञ्जेः** और **श्नान्नलोपः** से **नलोपः** की अनुवृत्ति आती है।

भाव या करण अर्थ में विहित घञ् प्रत्यय के परे होने पर रन्ज् धातु के नकार का लोप होता है।

रञ्ज् धातु में **ञकार** का मूल **नकार** ही है। जकार के योग में उसका अनुस्वार और परसवर्ण होकर **ञकार** बना है। उसी नकार का लोप यह सूत्र करता है।

रागः। रज्यतेऽनेन। जिससे रँगा जाए अर्थात् रंगने का सामान, रंग आदि। **रञ्ज् रागे**। यहाँ पर कर्ता से भिन्न करण कारक की विवक्षा में **रञ्ज्** धातु से **अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्** से **घञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **रञ्ज्+अ** बना। **घञि च भावकरणयोः** से ञकार के स्थानी नकार का लोप करके **रज्+अ** बना। **अत उपधायाः** से उपधा की वृद्धि और **चजोः कु घिण्ण्यतोः** से जकार को कुत्व करके वर्णसम्मेलन करने पर **राग** बना। घञन्त शब्द पुँल्लिङ्ग होता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्व, विसर्ग- **रागः**।

अनयोः किम्? रज्यत्यस्मिन्निति रङ्गः। यदि **घञि च भावकरणयोः** इस सूत्र में **भावकरणयोः** ऐसा नहीं कहते तो **रज्यति अस्मिन्** ऐसे विग्रह में **अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्** से **अधिकरण** अर्थ में घञ् प्रत्यय होने पर नकार का लोप होकर अनिष्ट रूप बन जाता। **भावकरणयोः** पद देने से अधिकरण में नकार का लोप नहीं हुआ। अतः **रङ्गः** बन गया।

८५४- निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः। निवासश्च चितिश्च शरीरञ्च उपसमाधानञ्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो निवासचितिशरीरोपसमाधानानि, तेषु। निवासचितिशरीरोपसमाधानेषु सप्तम्यन्तं, आदेः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, कः प्रथमान्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **हस्तादाने चेरस्तेये** से **चेः**, **पदरुजविशस्पृशो घञ्** से **घञ्** तथा **अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **धातोः**, **प्रत्ययः**, **परश्च** का अधिकार है।

निवास, चिति(चयन), शरीर और उपसमाधान(राशीकरण) अर्थ में धातु से परे घञ् प्रत्यय होता है और धातु के आदिवर्ण के स्थान पर ककार आदेश भी होता है।

जहाँ रहते हैं, उसे **निवास**, जिसका चयन किया जाता है उसे **चिति**, अस्थियों के समूह को **शरीर** और **इकट्ठे** करने को **उपसमाधान** कहते हैं। **निकायः**। **कायः**। **गोमयनिकायः**। ये क्रमशः **निवास**, **शरीर** और **उपसमाधान** के उदाहरण हैं। **चिति** का उदाहरण **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में नहीं दिया गया है। वैसे **आकायः** इस का उदाहरण हो सकता है। **नि+चि** से **निकायः**, **चि** से **कायः**, **आ+चि** से **आकायः** और **गोमय+नि+चि** से **गोमयनिकायः** बन जाते हैं। सभी में **चिञ्** चयने वाला **चि** धातु है। **निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः** से **घञ्** प्रत्यय और धातु के आदि में विद्यमान **चकार** के स्थान पर

अच्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८५५. एरच् ३।३।५६॥

इवर्णान्तादच्। चयः। जयः।

अप्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८५६. ॠदोरप् ३।३।५७॥

ॠवर्णान्तादुवर्णान्ताच्चाप्। करः। गरः। यवः। लवः। स्तवः। पवः।

वार्तिकम्- **घञर्थे कविधानम्।** प्रस्थः। विघ्नः।

....

ककार आदेश करके **काय** बनता है। फलतः **निकायः**(घर) **आकायः** (चयन की अग्नि या स्थान) **कायः**(चीयतेऽस्मिन् अस्थ्यादिकम् अथवा चीयते अन्नादिभक्षितेन स कायः, शरीर) और **गोमयनिकायः** (गोबर की राशि) ये शब्द सिद्ध हो जाते हैं।

८५५- **एरच्।** एः पञ्चम्यन्तम्, अच् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। यहाँ पर **भावे** और **संज्ञायाम्** को **अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्** ये दोनों सूत्र पूरे के पूरे अनुवृत्त हो रहे हैं और **धातोः, प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

इवर्णान्त धातु से अच् प्रत्यय होता है भाव या कर्ता से भिन्न कारक में।

चकार की इत्संज्ञा होकर केवल **अ** शेष रहता है। उसकी आर्धधातुकसंज्ञा होती है और उसके परे गुण आदि हो जाते हैं।

चयः। चयनं चयः। चयन करना, संग्रह करना। **चिञ् चयने** धातु है। **चि** से **एरच्** से अच् प्रत्यय, अनुबन्धलोप होने पर **चि+अ** बना। **अ** को आर्धधातुक मानकर **चि** के **इकार** को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण होकर **चे+अ** बना। अय् आदेश होकर **चय** यह प्रातिपदिक सिद्ध हुआ। स्वादि कार्य करके **चयः। चयौ। चयाः** आदि बनाइये।

इसी तरह **जि** से **जयः, वि+जि** से **विजयः, क्षि** से **क्षयः, क्री** से **क्रयः, ली** से **लयः** आदि भी बनाने चाहिए।

८५६- **ॠदोरप्।** ॠत् च उश्च तयोः समाहाराद्वन्द्व ॠदुः, सौत्रं पुस्त्वम्। तस्माद् ॠदोः। ॠदोः पञ्चम्यन्तम्, अप् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। यहाँ पर **भावे** और **संज्ञायाम्** को छोड़कर **अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्** ये दोनों सूत्र पूरे के पूरे अनुवृत्त हो रहे हैं और **धातोः, प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

दीर्घ-ॠवर्णान्त धातु और उवर्णान्त धातुओं से अप् प्रत्यय होता है भाव या कर्ता से भिन्न कारक में।

पकार की इत्संज्ञा होकर केवल **अ** शेष रहता है। उसकी आर्धधातुकसंज्ञा होती है और उसके परे गुण आदि हो जाते हैं।

करः। करणं करः। बिखेरना। **कॄ विक्षेपे**। इससे **ॠदोरप्** से **अप्**, अनुबन्धलोप, उसकी आर्धधातुकसंज्ञा, आर्धधातुकगुण करके **कर्+अ**, वर्णसम्मेलन होकर **कर** यह प्रातिपदिक बना। स्वादिकार्य होकर **करः** सिद्ध होता है।

पवः। पवनं पवः। पूञ् पवने। उवर्णान्त होने के कारण **ॠदोरप्** से अप् आदि होकर गुण होने पर **पो+अ**, अवादेश, वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकसंज्ञा करके स्वादिकार्य करने पर **पवः** बन जाता है।

क्त्रिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८५७. ड्वितः क्त्रिः ३।३।८८॥

मप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८५८. क्त्रेर्मम्नित्यम् ४।४।२०॥

क्त्रिप्रत्ययान्तान्मप् निर्वृत्तेऽर्थे। पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम्। **डुवप्** उप्त्रिमम्।

....

लवः। लवनं लवः। लूञ् छेदने। उवर्णान्त होने के कारण **ऋदोरप्** से अप् आदि होकर गुण होने पर **लो+अ**, अवादेश, वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकसंज्ञा करके स्वादिकार्य करने पर **लवः** बन जाता है।

घञर्थे कविधानम्। यह वार्तिक है। **जिस अर्थ में घञ् का विधान किया गया है, उसी अर्थ में क प्रत्यय का विधान कहना चाहिए।** यह **महाभाष्य** का वार्तिक है जो कि **घञर्थे कविधानं स्थास्नापाव्यधिहनियुध्यर्थम्** इस रूप में है। **घञ्** के अर्थ में **स्था, स्ना, पा, व्यध्, हन्** और **युध्** धातुओं से परे **क** का विधान करना चाहिए। अतः **प्रस्थः, विघ्नः** में **घ** जिस अर्थ में होता है, उसी अर्थ में **क** प्रत्यय हुआ है।

प्रस्थः। प्रतिष्ठतेऽस्मिन् धान्यानि। जिसमें धान्य आदि का मान होता है, एक मान विशेष। प्राचीन काल का यह माप है। **ष्ठा** गतिनिवृत्तौ। **प्र** पूर्वक **स्था** धातु से **घञर्थ** अर्थात् **भाव** और **संज्ञाविषयक कर्तृभिन्न कारक** अर्थ में **घञर्थे कविधानम्** वार्तिक से **क** प्रत्यय, अनुबन्ध ककार की इत्संज्ञा, लोप करके **प्र+स्था+अ** बना। **आतो लोप इटि च** से धातु के आकार का लोप करके **प्रस्थ** बन गया। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके स्वादिकार्य करने पर **प्रस्थः** सिद्ध हुआ।

विघ्नः। विहन्यन्तेऽस्मिन्। रूकावट, विघ्न। **हन** हिंसागत्योः। **वि** पूर्वक **हन्** धातु से **घञर्थ** अर्थात् **भाव** और **संज्ञाविषयक कर्तृभिन्न कारक** अर्थ में **घञर्थे कविधानम्** वार्तिक से **क** प्रत्यय, अनुबन्ध ककार की इत्संज्ञा, लोप करके **वि+हन्+अ** बना। अजादि कित् के परे रहते **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से धातु के उपधाभूत अकार का लोप करके **वि+ह्न्+अ** बना। हकार को **हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु** से कुत्व करके वर्णसम्मेलन करने पर **विघ्न** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके स्वादिकार्य करने पर **विघ्नः** सिद्ध हुआ।

८५७- **ड्वितः क्त्रिः**। डुः इद् यस्य स ड्वित्, तस्मात्। ड्वितः पञ्चम्यन्तं, क्त्रिः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **भावे** और **अकर्तरि च कारके** की अनुवृत्ति है तो **धातोः, प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

डु की इत्संज्ञा हुई हो, ऐसी धातु से भाव और कर्तृभिन्न कारक अर्थ में क्त्रि प्रत्यय होता है।

ककार इत्संज्ञक है, **त्रि** शेष रहता है। **डुपचष्** पाके आदि धातुओं में **डु** की इत्संज्ञा हुई होती है। केवल **क्त्रिप्रत्ययान्त** शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता है, उसके साथ अग्रिम सूत्र से **मप्** प्रत्यय भी जोड़ते हैं। **क्त्रि** यह कृत् प्रत्यय है तो **मप्** यह तद्धित प्रत्यय है।

८५८- **क्त्रेर्मम्नित्यम्**। क्त्रेः पञ्चम्यन्तं, मप् प्रथमान्तं, नित्यम् क्रियाविशेषणं द्वितीयान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः** से **निर्वृत्ते** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

अथुच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८५९. ट्वितोऽथुच् ३।३।८९॥

टुवेपृ कम्पने। वेपथुः।

नङ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८६०. यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ३।३।९०॥

यज्ञः। याच्ञा। यत्नः। विश्नः। प्रश्नः। रक्ष्णः।

....

क्त्रिप्रत्ययान्त शब्द से मप् प्रत्यय होता है निर्वृत्त अर्थ में।

निर्वृत्त का अर्थ है- **उत्पन्न हुआ, सिद्ध हुआ, रचा गया, बनाया गया आदि।**

पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम्। पाक से उत्पन्न, तैयार हुआ। **डुपचष्** पाके। **पच्** धातु ड्वित् है। अतः इससे **ड्वितः क्त्रिः** से **क्त्रि** प्रत्यय हुआ। ककार की इत्संज्ञा करके लोप। **पच्+त्रि** बना। चकार को कुत्व होकर **पक्त्रि** बना। इससे **क्त्रेर्मम्नित्यम्** से मप् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप करके **पक्त्रिम** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम् आदेश करके **पक्त्रिमम्** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार **डुवप्** बीजसन्ताने धातु है। वह भी ड्वित् है। अतः **वप्** से **क्त्रि** करके **वप्+त्रि** बना है। **वचिस्वपियजादीनां किति** से **सम्प्रसारण** होने के बाद पूर्वरूप होकर **उप्त्रि** बना। उससे **मप्** करने के बाद **उप्त्रिम** बना है। प्रातिपदिकत्वात् सु, अम् करके **उप्त्रिमम्** सिद्ध हुआ। बोना, गर्भाधान करना आदि।

८५९- **ट्वितोऽथुच्।** टु इत् यस्य स ट्वित्, तस्मात्। ट्वितः पञ्चम्यन्तम्, अथुच् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **भावे** एवं **अकर्तरि च कारके** की अनुवृत्ति और **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

टु की इत्संज्ञा जिस धातु में हुई है ऐसी ट्वित् धातु से भाव में अथुच् प्रत्यय होता है ।

चकार इत्संज्ञक है, **अथु** शेष रहता है।

वेपथुः। कम्पन। **टुवेपृ** कम्पने। **वेप्** धातु से **ट्वितोऽथुच्** से **अथुच्** प्रत्यय करके अनुबन्धलोप करने पर **वेप्+अथु** बना। वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्वविसर्ग करके **वेपथुः** सिद्ध हुआ। ऐसे ही कई ट्वित् धातुओं से अथुच् प्रत्यय करके **नन्दथुः, वमथुः, भ्राजथुः, मज्जथुः, याचथुः, स्फूर्जथुः** आदि भी बनते हैं।

८६०- **यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्।** यजश्च याचश्च यतश्च विच्छश्च प्रच्छश्च रक्ष् च तेषां समाहारद्वन्द्वः यजयाजयतविच्छप्रच्छरक्ष्, तस्मात्। यजयाजयतविक्ष्छप्रच्छरक्षः पञ्चम्यन्तं, नङ् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **भावे** और **संज्ञायाम्** को छोड़कर **अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्** की अनुवृत्ति आती है **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

भाव और कर्तृभिन्न कारक में यज्, याच्, यत्, विच्छ्, प्रच्छ् और रक्ष् धातुओं से नङ्-प्रत्यय होता है।

नङ् में **ङकार** इत्संज्ञक है। ङित् करने के अनेक प्रयोजन हैं। **नङ्** प्रत्ययान्त शब्द **पुँल्लिङ्ग** होता है।

यज्ञः। यजनं यज्ञः। यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु। देवपूजा आदि अर्थ में विद्यमान यज्-धातु से **यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्** के द्वारा नङ् प्रत्यय हुआ, ङकार का लोप

नन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८६१. स्वपो नन् ३।३।९१॥

स्वप्नः।

कि-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८६२. उपसर्गे घोः किः ३।३।९२॥

प्रधिः। उपधिः।

....

हुआ, **यज्+न** बना। जकार से परे नकार का **स्तोः श्चुना श्चुः** से चुत्व होकर ञकार बन गया। **यज्+ञ** बना। जकार और ञकार का संयोग होने पर **ज्ञ** बन जाता है, अतः यहाँ **यज्ञ** बन गया। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई, सु हुआ और रुत्वविसर्ग हुआ, **यज्ञः**।

याच्ञा। टुयाचृ याच्ञायाम्। याच् धातु से पूर्ववत् भाव अर्थ में नङ् प्रत्यय होकर चुत्व करके **याच्ञ** बना। स्त्रीत्व में टाप् करके **याच्ञा** बना। यहाँ **ज्ञ** नहीं बनता क्योंकि जकार और ञकार के संयोग में ज्ञ बनता है, ञकार और चकार के संयोग में नहीं। **याच्ञा** बनने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सु विभक्ति और रमा की तरह सुलोप होकर **याच्ञा** सिद्ध होता है।

यत्नः। यतनं यत्नः। प्रयत्न। **यती** प्रयत्ने। **यत्** धातु से **यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्** से नङ् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप होकर **यत्+न, यत्न** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई, सु, उसके स्थान पर रुत्वविसर्ग हुआ, **यत्नः**।

विश्नः। विच्छनं विश्नः। **विच्छ् गतौ** । **विच्छ्** धातु से **यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्** से नङ् प्रत्यय हुआ, ङकार का लोप हुआ, **विच्छ्+न** बना। चकार सहित छकार के स्थान पर **च्छ्वोः शूडनुनासिके च** सूत्र से शकार आदेश होकर **विश्+न** बना। **शकार** को **स्तोः श्चुना श्चुः** से श्चुत्व प्राप्त था, **शात्** सूत्र से निषेध हुआ। अतः **विश्न** ही रह गया। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई, सु, उसके स्थान पर रुत्वविसर्ग हुआ, **विश्नः**।

प्रश्नः। प्रच्छनं प्रश्नः। **प्रच्छ्** ज्ञीप्सायाम्। **प्रच्छ्** धातु से **यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्** से नङ् प्रत्यय हुआ, ङकार का लोप हुआ, **प्रच्छ्+न**, बना। **च्छ्वोः शूडनुनासिके च** से सतुक् **च्छ्** के स्थान पर **श** आदेश हुआ- **प्रश्+न, प्रश्न** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई, सु, रुत्वविसर्ग, **प्रश्नः**।

रक्ष्णः। रक्षणं रक्ष्णः। **रक्ष** पालने। **रक्ष्** धातु से **यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्** से नङ् प्रत्यय हुआ, ङकार का लोप हुआ, **रक्ष्+न** बना। **रषाभ्यां नो णः समानपदे** से णत्व करके **रक्ष्णः** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई, सु, रुत्वविसर्ग हुआ, **रक्ष्णः**।

८६१- स्वपो नन्। स्वपः पञ्चम्यन्तं, नन् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **भावे** और **संज्ञायाम्** को छोड़कर **अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

भाव और कर्तृभिन्न कारक में स्वप् धातु से नन्-प्रत्यय होता है।

नकार इत्संज्ञक है। नन्-प्रत्ययान्त भी पुँल्लिङ्ग में ही होता है।

स्वप्नः। स्वपनं स्वप्नः। **ञिष्वप्** शये। **स्वप्** धातु से **स्वपो नन्** से नन् प्रत्यय हुआ, नकार का लोप हुआ, **स्वप्न** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई, सु, रुत्वविसर्ग, **स्वप्नः**।

क्तिन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८६३. स्त्रियां क्तिन् ३।३।९४॥

स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन् स्यात्। घञोऽपवादः। कृतिः। स्तुतिः।

वार्तिकम्- **ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः।** तेन नत्वम्।

कीर्णिः। लूनिः। धूनिः। पूनिः।

वार्तिकम्- **सम्पदादिभ्यः क्विप्।** सम्पत्। विपत्। आपत्।

वार्तिकम्- **क्तिन्नपीष्यते।** सम्पत्तिः। विपत्तिः। आपत्तिः।

....

८६२- **उपसर्गे घोः किः।** उपसर्गे सप्तम्यन्तं, घोः पञ्चम्यन्तं, किः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **भावे, अकर्तरि च कारके** की अनुवृत्ति आ रही है।

उपसर्ग उपपद होने पर घुसंज्ञक दा-धातु और धा-धातु से भाव अर्थ में कर्तृभिन्न कारक में कि प्रत्यय होता है।

दाधा घ्वदाप् से इन दो धातुओं की घुसंज्ञा होती है। **कि** में ककार **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञक है और इकार शेष रहता है। कित् होने के कारण धातु के आकार का **आतो लोप इटि च** से लोप हो जाता है।

प्रधिः। विधिः। प्रधीयन्ते काष्ठानि अस्मिन्निति प्रधिः। विधीयते, विधानम् इति वा विधिः। दोनों प्रयोगों में क्रमशः प्र और वि उपसर्ग और डुधाञ् धारणपोषणयोः धातु है। प्र-पूर्वक धा-धातु और वि-पूर्वक धा-धातु से **उपसर्गे घोः किः** से कि प्रत्यय, ककार का लोप, धा में आकार का भी **आतो लोप इटि च** से लोप करके **प्रध्+इ, विध्+इ** बना। वर्णसम्मेलन करके **प्रधि, विधि** बने। इनकी प्रातिपदिकसंज्ञा और सु विभक्ति करके हरि-शब्द की तरह रूप बनाइये- **प्रधिः, प्रधी, प्रधयः, विधिः, विधी, विधयः** आदि।

अब इसी तरह से आ-पूर्वक **दा** धातु से आदिः, प्र-पूर्वक दा धातु से **प्रदिः**, आ पूर्वक धा धातु से **आधिः**, वि+आ उपसर्ग पूर्वक धा धातु से **व्याधिः**, नि पूर्वक **धा** धातु से **निधिः**, सम्-पूर्वक धा धातु से **सन्धिः**, प्रति+नि पूर्वक धा धातु से **प्रतिनिधिः** आदि भी बनाइये।

८६३- **स्त्रियां क्तिन्।** स्त्रियां सप्तम्यन्तं, क्तिन् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **भावे, अकर्तरि च कारके** की अनुवृत्ति एवं **धातोः, प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

स्त्रीत्वयुक्त भाव की विवक्षा में धातु से क्तिन् प्रत्यय होता है।

क्तिन् में ककार और नकार इत्संज्ञक हैं, ति शेष रहता है। यह क्तिन् **भावे** से प्राप्त घञ् प्रत्यय का अपवाद है। भाव अर्थ में स्त्रीत्व की विवक्षा होने पर घञ् न होकर क्तिन् ही होगा।

कृतिः। करणं कृतिः। करना। कृ-धातु से भाव अर्थ में **स्त्रियां क्तिन्** से क्तिन् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप होकर **कृ+ति=कृति** बना। स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रत्यय हुआ है तो कृति शब्द स्त्रीलिङ्ग वाला बन गया। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु करके **कृतिः** बनता है। इसके रूप मति शब्द की तरह चलते हैं। केवल शस् में नत्व नहीं होता है, इसलिए **कृतीः** बनता है। ङित्-विभक्ति ङे, ङसि, ङस्, ङि में वैकल्पिक नदीसंज्ञा होकर कुछ विशेष रूप बन जाते हैं। आइये, तालिका से समझें।

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कृतिः	कृती	कृतयः
द्वितीया	कृतिम्	कृती	कृतीः
तृतीया	कृत्या	कृतिभ्याम्	कृतिभिः
चतुर्थी	कृत्यै, कृतये	कृतिभ्याम्	कृतिभ्यः
पञ्चमी	कृत्याः, कृतेः	कृतिभ्याम्	कृतिभ्यः
षष्ठी	कृत्याः, कृतेः	कृत्योः	कृतीनाम्
सप्तमी	कृत्याम्, कृतौ	कृत्योः	कृतिषु
सम्बोधन	हे कृते!	हे कृती!	हे कृतयः!

स्तुतिः। स्तवनं स्तुतिः। ष्टुञ् स्तुतौ। षत्व आदि करके स्तु धातु बना है। इससे क्तिन् करके कृतिः की तरह **स्तुतिः** बन जाता है। इसके रूप भी कृति की तरह ही चलते हैं।

ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः। यह वार्तिक है। ऋवर्णान्त धातु और लू आदि गणपठित धातु से परे किये गये क्तिन् प्रत्यय में निष्ठासंज्ञा की तरह व्यवहार किया जाता है। जैसे निष्ठाप्रत्यय में त को नकार आदेश होता है तो क्तिन् के तकार को भी नकार आदेश हो जाय। यही निष्ठावद्भाव है। इस वार्तिक के ल्वादि धातु हैं- **लूञ्, स्तृञ्, कृञ्, वृञ्, धृञ्, शॄ, पॄ, वॄ, भॄ, मॄ, दॄ, जॄ, झॄ, धॄ, नॄ, कॄ, ॠ, गॄ**,ज्या, री, ब्ली और प्ली।

कीर्णिः। **कॄ** विक्षेपे। **कॄ** धातु से क्तिन् करके **कॄ**+ति बना। **ॠत इद्धातोः** से रपरसहित इत्व अर्थात् इर् आदेश करके **किर्+ति** बना। **हलि च** से दीर्घ होकर **कीर्+ति** बना। **ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः** इस वार्तिक से निष्ठावद्भाव करके ति के तकार के स्थान पर **ल्वादिभ्यः** से नकार आदेश हुआ, **कीर्+नि** बना। रेफ से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व हुआ, **कीर्+णि** बना, वर्णसम्मेलन हुआ, रेफ का ऊर्ध्वगमन हुआ, **कीर्णि** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि विभक्ति लाकर कृति शब्द की तरह **कीर्णिः** बनाइये और कृति की तरह रूप चलाइये।

लूनिः। लवनं लूनिः, काटना। लूञ् छेदने। लू धातु से क्तिन् करके **लूति** बना। निष्ठावद्भाव करके **ल्वादिभ्यः** से तकार के स्थान पर नत्व करके **लूनि** बनाकर प्रातिपदिकसंज्ञा करके कृति की तरह रूप बनाइये- **लूनिः, लूनी, लूनयः**।

धूनिः। धूञ् कम्पने, काँपना। धू धातु से क्तिन् करके **धूति** बना। निष्ठावद्भाव करके **ल्वादिभ्यः** से नत्व करके धूनि बनाकर प्रातिपदिकसंज्ञा करके कृति की तरह रूप बनाइये- **धूनिः, धूनी, धूनयः**।

सम्पदादिभ्यः क्विप्। क्तिन्नपीष्यते। यह वार्तिक है। सम्पत् आदि से क्विप् प्रत्यय होता है और क्तिन् भी होता है। इन दोनों वार्तिक से दो प्रत्ययों का विधान हुआ। क्विप् का सर्वापहार लोप हो जाता है किन्तु **क्तिन्** में **ति** शेष रहता है।

सम्पत्। सम्पत्तिः। सम् पूर्वक **पद (गतौ)** धातु से क्विप्, सर्वापहारलोप करके **सम्पद्** ही रहा। प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु विभक्ति, सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ। दकार को **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **सम्पत्-सम्पद्** बनते हैं। आगे सम्पदौ, सम्पदः, सम्पदम्, सम्पदौ, सम्पदः, सम्पदा, सम्पद्भ्याम् आदि रूप बनाये जाते हैं। क्तिन् होने के पक्ष में **सम्पद्+ति** बना। दकार के स्थान पर **खरि च** से चर्त्व करके तकार

निपातनार्थं विधिसूत्रम्

८६४. ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च ३।३।९७॥

एते निपात्यन्ते।

....

आदेश होता है। वर्णसम्मेलन होकर **सम्पत्ति** बनता है। अब प्रातिपदिकसंज्ञा करके कृति की तरह रूप बनाइये। **सम्पत्तिः, सम्पत्ती, सम्पत्तयः** आदि।

अब इसी प्रकार विपूर्वक पद से **विपत्-विपद्, विपत्तिः** और आपूर्वक पद् धातु से **आपत्-आपद् आपत्तिः** भी बना सकते हैं।

८६४- ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च। ऊतिश्च यूतिश्च जूतिश्च सातिश्च हेतिश्च कीर्तिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्व ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयः। ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयः प्रथमान्तं, चाव्ययं, द्विपदं सूत्रम्। **मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः से उदात्तः** की तथा **भावे, अकर्तरि कारके** की अनुवृत्ति आती है। **स्त्रियां क्तिन्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

स्त्रीत्व से युक्त भाव एवं कर्ता से भिन्न कारक अर्थ में ऊति, यूति, जूति, साति, हेति और कीर्ति ये क्तिन्-प्रत्ययान्त शब्दों का निपातन होता है और ये शब्द उदात्त होते हैं।

जो कार्य प्रक्रिया के माध्यम से न दिखाकर सीधे सिद्ध शब्द को सूत्र में ही दिखाते हैं, उसे आचार्य ने **निपातन** नाम दिया है। उक्त शब्दों को कुछ भी प्रक्रिया न करके सूत्र में भी आचार्य ने सीधे साधुत्व कथन के लिए पढ़ा है। अब आगे देखते हैं कि किस तरह की प्रक्रिया हो सकती थी, यदि निपातन न किया जाता तो!

ऊतिः। रक्षा, क्रीडा, लीला आदि। **अव रक्षणे** धातु है। **अव्** से स्त्रीत्वविशिष्ट भाव या कर्तृभिन्न कारक अर्थ में **क्तिन्** प्रत्यय करके **ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च** से **वकार** को ऊठ् आदेश आदि करने पर ही **ऊति** बन सकता है किन्तु **ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च** से निपातन होने से उन सूत्रों के लगे विना ही **ऊति** शब्द सिद्ध मान लिया गया। **निपातनात्** यह शब्द **अन्तोदात्त** मान लिया गया अर्थात् प्रत्यय **ति** यह उदात्त स्वर वाला हुआ। निपातन का यहाँ पर **क्तिन्** से नित् होने से प्राप्त आद्युदात्त को बाधकर अन्तोदात्त करना यही फल है। **ऊति** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और **मति**-शब्द की तरह **ऊतिः, ऊती, ऊतयः** आदि रूप बनते हैं। ध्यान रहे कि **क्तिन्** प्रत्ययान्त शब्द **स्त्रीलिङ्ग** ही होते हैं।

यूतिः। मिलाना, मेलन। **यु मिश्रणामिश्रणयोः** धातु है। **यु** से स्त्रीत्वविशिष्ट भाव या कर्तृभिन्न कारक अर्थ में **स्त्रियां क्तिन्** से **क्तिन्** प्रत्यय करके **युति** बन सकता है किन्तु **ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च** से निपातन होने से उन सूत्रों के लगे विना ही **युति** शब्द बन गया और निपातनात् ही **यु** को दीर्घ भी हो गया। **निपातनात्** यह शब्द **अन्तोदात्त** मान लिया गया अर्थात् प्रत्यय **ति** यह उदात्त स्वर वाला हुआ। **यूति** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और **मति**-शब्द की तरह **यूतिः, यूती, यूतयः** आदि रूप बनते हैं।

जूतिः। तेज चलना, गति, वेग। पाणिनि जी ने **जु** ऐसा धातुपाठ में नहीं पढ़ा है, फिर भी सूत्र में उक्त धातु के उल्लेख होने के कारण **जु गतौ** ऐसी सौत्र धातु मान ली जाती

ऊठादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८६५. ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च ६।४।२०॥

एषामुपधावकारयोरूठ् अनुनासिके क्वौ झलादौ क्ङिति। अतः क्विप्। जूः। तूः। स्रूः। ऊः। मूः।

....

है। जु से स्त्रीत्वविशिष्ट भाव या कर्तृभिन्न कारक अर्थ में **स्त्रियां क्तिन्** से **क्तिन्** प्रत्यय करके **जुति** बन सकता है किन्तु **ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च** से निपातन होने से उन सूत्रों के लगे विना ही **जुति** शब्द बन गया और निपातनात् ही **जु** को दीर्घ भी हो गया। **निपातनात्** यह शब्द **अन्तोदात्त** भी मान लिया गया। **जूति** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और **मति**-शब्द की तरह **जूतिः, जूती, जूतयः** आदि रूप बनते हैं।

सातिः। नाश, भेंट, दान। **षोऽन्तकर्मणि** धातु है। **धात्वादेः षः, सः** से **सकार** आदेश और **आदेच उपदेशेऽशिति** से आत्त्व करके **सा** बना। इससे स्त्रीत्वविशिष्ट भाव या कर्तृभिन्न कारक अर्थ में **स्त्रियां क्तिन्** से **क्तिन्** प्रत्यय करके **साति** बन गया है। यहाँ पर **द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति** से इत्व की प्राप्ति हो सकती है किन्तु **ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च** से निपातन होने से उसका अभाव हुआ और **साति** शब्द ही बन गया। **निपातनात्** यह शब्द **अन्तोदात्त** भी मान लिया गया। **साति** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और **मति**-शब्द की तरह **सातिः, साती, सातयः** आदि रूप बनते हैं।

हेतिः। अस्त्र, अग्निज्वाला, सूर्यकिरण। **हन हिंसागत्योः** धातु है। **हन्** से स्त्रीत्वविशिष्ट भाव या कर्तृभिन्न कारक अर्थ में **स्त्रियां क्तिन्** से **क्तिन्** प्रत्यय करके **अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति** से अनुनासिक **न्** का लोप **हति** बन सकता है किन्तु **ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च** के **निपातन** से एत्व होकर **हेति** बनाया गया है। यह शब्द **अन्तोदात्त** भी मान लिया गया। **हेति** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और **मति**-शब्द की तरह **हेतिः, हेती, हेतयः** आदि रूप बनते हैं।

कीर्तिः। यश। **कृत संशब्दने** चुरादि धातु है। **कृत्** से चौरादिक **णिच्** करके **ण्यासश्रन्थो युच्** से **युच्** हो सकता था किन्तु **ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च** के **निपातन** से **क्तिन्** प्रत्यय ही हुआ और **णेरनिटि** से **णि** का लोप करके धातु के उपधाभूत ऋकार को इत्व, रपर, दीर्घ आदि होकर **कीर्ति** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और **मति**-शब्द की तरह **कीर्तिः, कीर्ती, कीर्तयः** आदि रूप बनते हैं।

८६५- ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च। ज्वरश्च त्वरश्च स्रिविश्च अविश्च मव् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो ज्वरत्वरस्रिव्यविमवस्तेषाम्। ज्वरत्वरस्रिव्यविमवां षष्ठ्यन्तम्, उपधायाः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययं, त्रिपदं सूत्रम्। **च्छ्वोः शूडनुनासिके च** से **श्** को छोड़कर सम्पूर्ण सूत्र और **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** से **क्विझलोः** एवं **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

ज्वर्, त्वर्, स्रिव्, अव् तथा मव् धातुओं की उपधा और वकार दोनों के स्थान पर ऊठ् आदेश होता है यदि अनुनासिक, क्वि अथवा झलादि कित् के परे हो तो।

इच्छाशब्दस्य निपातनार्थं विधिसूत्रम्

८६६. इच्छा ३।३।१०१॥

इषेर्निपातोऽयम्।

....

उक्त धातुओं से **क्वि** के परे इस सूत्र की प्रवृत्ति बताई गई है। अतः इन धातुओं से **क्विप्** प्रत्यय होगा, यह जान लेना चाहिए। **ठकार** इत्संज्ञक है, ऊ शेष रहता है।

जूः। ज्वरणं जूः। रोग। **ज्वर रोगे** धातु है। **ज्वर्** से **सम्पदादिभ्यः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय, सर्वापहार लोप होने के बाद प्रत्ययलक्षणेन **क्वि** को परे मानकर के **ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च** से **ज्+व्+अ+र्=ज्वर्** में उपधाभूत अकार और वकार अर्थात् **व्अ** के स्थान पर **ऊठ्** आदेश, अनुबन्धलोप होने पर **ज्+ऊ=जू, जूर्** बना। **जूर्** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो** लोप करके रेफ को विसर्ग करने पर **जूः** सिद्ध होता है। इसके रूप **जूः, जूरौ, जूरः, जूरम्, जूरौ, जूरः, जूरा, जूर्भ्याम्** आदि बनते हैं।

तूः। त्वरणं तूः। शीघ्रता। **ञित्वरा सम्भ्रमे** धातु है। **त्वर्** से **सम्पदादिभ्यः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय, सर्वापहार लोप होने के बाद प्रत्ययलक्षणेन **क्वि** को परे मानकर **ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च** से **त्+व्+अ+र्=त्वर्** में उपधाभूत अकार और वकार **व्अ** के स्थान पर **ऊठ्** आदेश, अनुबन्धलोप होने पर **त्+ऊ=तू, तूर्** बना। **तूर्** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो** लोप करके रेफ को विसर्ग करने पर **तूः** सिद्ध होता है। इसके रूप **तूः, तूरौ, तूरः, तूरम्, तूरौ, तूरः, तूरा, तूर्भ्याम्** आदि बनते हैं।

स्रूः। स्रवणं स्रूः। गमन। **स्रिवु गतिशोषणयोः** धातु है। **स्रिव्** से **सम्पदादिभ्यः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय, सर्वापहार लोप होने के बाद प्रत्ययलक्षणेन **क्वि** को परे मान कर के **ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च** से **स्+र्+इ+व्=स्रिव्** में उपधाभूत इकार और अन्त्य वकार **इव्** के स्थान पर **ऊठ्** आदेश, अनुबन्धलोप होने पर **स्+र्=ऊ, स्रू** बना। **स्रू** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु, उसको रुत्वविसर्ग करके **स्रूः** यह बनता है। आगे अजादि विभक्ति के परे होने पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **उवङ्** होकर **भ्रू** शब्द की तरह **स्रुवौ, स्रुवः** आदि बनते हैं।

ऊः। अवनम् ऊः। रक्षण। **अव रक्षणे** धातु है। **अव्** से **सम्पदादिभ्यः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय, सर्वापहार लोप होने के बाद प्रत्ययलक्षणेन **क्वि** को परे मान कर के **ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च** से **अव्** पूरे के स्थान पर **ऊठ्** आदेश, अनुबन्धलोप होने पर **ऊ** बना। **ऊ** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु, उसको रुत्वविसर्ग करके **ऊः** यह बनता है। आगे अजादि विभक्ति के परे होने पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **उवङ्** होकर **भ्रू** शब्द की तरह **उवौ, उवः** आदि बनते हैं।

मूः। मवनं मूः। बन्धन। **मव बन्धने** धातु है। **मव्** से **सम्पदादिभ्यः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय, सर्वापहार लोप होने के बाद प्रत्ययलक्षणेन **क्वि** को परे मान कर के **ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च** से **अव्** के स्थान पर **ऊठ्** आदेश, अनुबन्धलोप होने पर **म्+ऊ=मू** बना। **मू** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु, उसको रुत्वविसर्ग करके **मूः** यह बनता है। आगे अजादि विभक्ति के परे होने पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **उवङ्** होकर **भ्रू** शब्द की तरह **मुवौ, मुवः** आदि बनते हैं।

अकारप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८६७ अ प्रत्ययात् ३।३।१०२॥

प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्य: स्त्रियामकार: प्रत्यय: स्यात्। चिकीर्षा। पुत्रकाम्या।

....

८६६- **इच्छा**। प्रथमान्तमेकपदम्। **स्त्रियां क्तिन्** से **स्त्रियाम्** और **भावे** इस सूत्र की अनुवृत्ति है।

स्त्रीत्वविशिष्ट भाव अर्थ में 'इच्छा' शब्द का निपातन होता है।

तात्पर्य यह है कि **इष्** धातु से भाव अर्थ में **इच्छा** शब्द साधु है।

इच्छा। इषु इच्छायाम्। इष् धातु से भाव अर्थ में **इच्छा** का निपातन होने से धातु से श प्रत्यय, षकार के स्थान पर **इषुगमियमां छ:** से छकार आदेश, तुक् आगम आदि सभी कार्य निपातनात् सिद्ध होते हैं। साथ ही स्त्रीलिङ्गता का भी निपातन है, जिससे **इच्छा** बन जाता है। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु का **हल्ङ्याब्भ्यो** लोप आदि करके **इच्छा, इच्छे, इच्छा:** रूप बनते हैं।

८६७- **अ: प्रत्ययात्**। अ: प्रथमान्तं, प्रत्ययात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **स्त्रियां क्तिन्** से **स्त्रियाम्**, **भावे**, **अकर्तरि कारके** की अनुवृत्ति है। **धातो:**, **प्रत्यय:** और **परश्च** का अधिकार तो है ही।

स्त्रीत्वविशिष्ट भाव तथा कर्तृभिन्न कारक अर्थ में प्रत्ययान्त धातुओं से अ प्रत्यय होता है।

जब धातुओं से **सन्, यङ्, यक्, क्यच्, काम्यच्** आदि प्रत्यय किये जाते हैं तब धातु प्रत्ययान्त कहलाते हैं। ऐसे धातुओं से स्त्रीत्वविशिष्ट भाव आदि अर्थ में **अ** प्रत्यय का विधान इस सूत्र से किया जाता है।

चिकीर्षा। कर्तुमिच्छा चिकीर्षा। करने की इच्छा। **डुकृञ् करणे**। **कृ** धातु से **सन्** प्रत्यय करके **चिकीर्ष** बन चुका है। अत: यह प्रत्ययान्त धातु है। इससे **अ: प्रत्ययात्** से **अ** प्रत्यय हुआ। **अ** की **आर्धधातुकं शेष:** से **आर्धधातुकसंज्ञा** करके **अतो लोप:** से **चिकीर्ष** के **अकार** के लोप होने पर **चिकीर्ष्+अ**, वर्णसम्मेलन करके **चिकीर्ष** ही बना। प्रत्यय करने पर भी स्वरूप में तो अन्तर नहीं आया किन्तु धातु से यह कृदन्त प्रातिपदिक बन गया। यह प्रत्यय स्त्रीत्व की विवक्षा में हुआ है। अत: **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर **चिकीर्षा** बना लिया जाता है। इसके बाद के सुप् का **हल्ङ्यादिलोप** करके **चिकीर्षा** ही बनता है। आगे **चिकीर्षे, चिकीर्षा:** आदि रूप बनते हैं।

उपर्युक्त तरीके से सभी धातुओं से यह प्रत्यय हो सकता है। जैसे कि **पठ्** धातु से सन् करके **पिपठिष्** से **पिपठिषा, वच्** धातु से सन् करके **विवक्ष्** से **विवक्षा, सन्नन्त गम्** से **जिगमिषा, सन्नन्त जीव्** से **जिजीविषा, सन्नन्त भुज्** से **बुभुक्षा** आदि।

पुत्रकाम्या। आत्मन: पुत्रस्यैषणम्। अपने लिए पुत्र की इच्छा। **पुत्र** शब्द से **काम्यच्** प्रत्यय करके **सनाद्यन्ता धातव:** से धातुसंज्ञा होकर **पुत्रकाम्य** धातु बना है। अत: यह प्रत्ययान्त धातु है। इससे **अ: प्रत्ययात्** से **अ** प्रत्यय हुआ। **अ** की **आर्धधातुकं शेष:** से **आर्धधातुकसंज्ञा** करके **अतो लोप:** से **पुत्रकाम्य** के **अन्त्य अकार** के लोप होने पर **पुत्रकाम्य्+अ**, वर्णसम्मेलन करके **पुत्रकाम्य** ही बना। प्रत्यय करने पर भी स्वरूप में तो यहाँ

अकारप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८६८. गुरोश्च हलः ३।३।१०३॥

गुरुमतो हलन्तात् स्त्रियामकारः प्रत्ययः स्यात्। ईहा।

युच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८६९. ण्यासश्रन्थो युच् ३।३।१०७॥

अकारस्यापवादः। कारणा। हारणा।

....

भी अन्तर नहीं आया किन्तु धातु से यह कृदन्त प्रातिपदिक बन गया। यह प्रत्यय स्त्रीत्व की विवक्षा में हुआ है। अतः **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर **पुत्रकाम्या** बना लिया जाता है। इसके बाद हुए सुप् का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** करके **पुत्रकाम्या** ही बनता है। आगे **पुत्रकाम्ये, पुत्रकाम्याः** आदि रूप बनते हैं।

८६८- **गुरोश्च हलः**। गुरोः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययं, हलः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अः प्रत्ययात्** से **अः** की **भावे** यह सूत्र और **अकर्तरि च कारके** आदि की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है ही।

स्त्रीत्व की विवक्षा में भाव और कर्तृभिन्न कारक अर्थ में हलन्त गुरुमान् धातु से अ प्रत्यय होता है।

संयोगे गुरु, दीर्घञ्च से जिनकी **गुरुसंज्ञा** होती है, ऐसे वर्ण जिस धातु में हों और वह धातु हलन्त भी तो इससे **अ** प्रत्यय का विधान किया गया है। **गुरु अस्यास्तीति गुरुमान्,** जिसमें गुरुवर्ण हो वह धातु गुरुमान् हुआ। एक ओर दीर्घ वर्ण गुरु हैं तो दूसरी तरफ संयोग के परे होने पर ह्रस्व वर्ण भी गुरु हो जाता है। जैसे- **अर्च्, लज्ज्, शिक्ष्** आदि।

ईहा। चेष्टा। **ईह चेष्टायाम्** धातु दीर्घवर्ण वाला होने से **गुरुमान्** है और हलन्त भी। **ईह्** से **गुरोश्च हलः** से **अ** प्रत्यय करके **ईह** बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा में यह प्रत्यय हुआ है, अतः इससे **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर **ईहा** बन जाता है। प्रातिपदिकसंज्ञा करके स्वादि कार्य करना न भूलें।

उक्त रीति से ही **शिक्ष्** से **शिक्षा, रक्ष्** से **रक्षा, हिंस्** से **हिंसा, भाष्** से **भाषा, आ+कांक्ष्** से **आकांक्षा** आदि बनाये जा सकते हैं।

८६९- **ण्यासश्रन्थो युच्**। णिश्च आस् च श्रन्थ् च तेषां समाहारद्वन्द्वो ण्यासश्रन्थ्, तस्माद् ण्यासश्रन्थः। ण्यासश्रन्थः पञ्चम्यन्तं, युच् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। इस सूत्र में पूर्ववत् **स्त्रियां, भावे, अकर्तरि च कारके, धातोः, प्रत्ययः, परश्च** आदि उपलब्ध हैं।

स्त्रीत्वविशिष्ट भाव और अकर्ता कारक की विवक्षा में ण्यन्त धातु, आस् और श्रन्थ् धातुओं से युच् प्रत्यय होता है।

यह सूत्र पूर्व के दो सूत्रों का बाधक है। **युच्** में चकार की इत्संज्ञा होती है, **यु** बचता है और उसके स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश होता है। **णि** आदि **धातोः** का विशेषण है। अतः **णि** से तदन्तविधि करके **ण्यन्त** अर्थ लिया जाता है।

कारणा। कराना। **कृ** धातु से **णिच्** करके **कारि** बनता है। उसकी धातुसंज्ञा करके **अः प्रत्ययात्** को बाधकर के **ण्यासश्रन्थो युच्** से **युच्** प्रत्यय करके उसके स्थान

क्त-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८७०. नपुंसके भावे क्तः ३।३।११४॥

ल्युट्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८७१. ल्युट् च ३।३।११५॥

हसितम्। हसनम्।

....

पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश होकर **कारि+अन** बना। **णेरनिटि** से **णि** वाले **इकार** का लोप करके **कार्+अन** बना। वर्णसम्मेलन, रेफ से परे नकार को णत्व करके **कारण** बना। स्त्रीत्वविवक्षा में यह प्रत्यय हुआ है, अतः **टाप्** होकर **कारणा** बनता है। प्रातिपदिकसंज्ञा के बाद स्वादिकार्य करके **कारणा, कारणे कारणाः** आदि रूप बनते हैं।

हारणा। हराना। **हृ** धातु से **णिच्** करके **हारि** बनता है। उसकी धातुसंज्ञा करके **अः प्रत्ययात्** को बाधकर के **ण्यासश्रन्थो युच्** से **युच्** प्रत्यय करके उसके स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश होकर **हारि+अन** बना। **णेरनिटि** से **णि** वाले **इकार** का लोप करके **हार्+अन** बना। वर्णसम्मेलन, रेफ से परे नकार को णत्व करके **हारण** बना। स्त्रीत्वविवक्षा में यह प्रत्यय हुआ है, अतः **टाप्** होकर **हारणा** बनता है। प्रातिपदिकसंज्ञा के बाद स्वादिकार्य करके **हारणा, हारणे हारणाः** आदि रूप बनते हैं।

८७०- नपुंसके भावे क्तः। नपुंसके सप्तम्यन्तं, भावे प्रथमान्तं, क्तः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

नपुंसकत्व में भाव अर्थ में क्त प्रत्यय होता है।

यह प्रत्यय केवल भाव अर्थ में ही होता है, और यह (क्त)प्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिङ्ग वाला ही होता है। ककार इत्संज्ञक है, **त** शेष रहता है। इसके पहले भी **निष्ठा** से **क्त** प्रत्यय का विधान हो चुका है। इन दोनों स्थलों की विशेषता यह है कि **निष्ठा** से विहित क्त प्रत्यय **भूतकाल** में होता है और यह **कालसामान्य** में। उस क्त प्रत्ययान्त के तीनों लिङ्गों में रूप होते हैं तो इस क्तप्रत्ययान्त से केवल नपुंसकलिङ्ग में।

नपुंसकलिङ्ग में भाव अर्थ में **क्त** प्रत्यय के साथ **ल्युट्** प्रत्यय का विधान अग्रिम सूत्र से किया जाता है। अतः कौमुदीकार ने दोनों सूत्रों के उदाहरण एक साथ दिये हैं।

८७१- ल्युट् च। ल्युट् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। **नपुंसके भावे क्तः** से **नपुंसके, भावे** की अनुवृत्ति आती है।

नपुंसकत्व में भाव अर्थ में ल्युट् प्रत्यय भी होता है।

लकार और **टकार** इत्संज्ञक हैं, **यु** बचता है। उसके स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश होता है।

हसितम्, हसनम्। हँसना। **हस हसने**। यहाँ **हस्** धातु है। **नपुंसके भावे क्तः** से **क्त** प्रत्यय होने के बाद अनुबन्धलोप होकर **हस्+त** बना। प्रत्यय की आर्धधातुकसंज्ञा करके वलादि आर्धधातुकलक्षण इट् आगम होकर वर्णसम्मेलन हुआ- **हसित** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम् आदेश होकर **हसितम्** सिद्ध हुआ। **ल्युट् च** से **ल्युट्** होने के पक्ष में अनुबन्धलोप होकर **यु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश होकर **हस्+अन=हसन** बना। वलादि न होने के कारण **इट्** आगम नहीं हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, **हसनम्** बना। इस तरह **पठ्**

घ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८७२. पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ३।३।११८॥

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

८७३. छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ६।४।९६॥

द्विप्रभृत्युपसर्गहीनस्य छादेर्ह्रस्वो घे परे।

दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेनेति दन्तच्छदः। आकुर्वन्त्यस्मिन्नित्याकरः।

....

से **पठनम्**, **गम्** से **गमनम्**, **लिख्** से **लेखनम्** इत्यादि सभी धातुओं से यह प्रत्यय किया जा सकता है। **णिजन्त** धातुओं से **ल्युट्** करने पर **णेरनिटि** से **णि** का लोप किया जाता है, इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

८७२- **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण**। पुंसि सप्तम्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तं, घः प्रथमान्तं, प्रायेण तृतीयान्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **करणाधिकरणयोश्च** से **करणाधिकरणयोः** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः**, **प्रत्ययः**, **परश्च** का अधिकार है।

पुँल्लिङ्ग में संज्ञा-वाच्य होने पर करण और अधिकरण अर्थ में प्रायः घ प्रत्यय होता है।

घकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होती है, **अ** शेष रहता है। **घ** और **घित्** होने के अनेक प्रयोजन हैं। **घ** को निमित्त मान कर लगने वाला अगला ही सूत्र है। **घ** प्रत्ययान्त शब्द पुँल्लिङ्ग होता है।

८७३- **छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य**। द्वौ उपसर्गौ यस्य स द्व्युपसर्गः। न द्व्युपसर्गः अद्व्युपसर्गस्तस्य। छादेः षष्ठ्यन्तं, घे सप्तम्यन्तम्, अद्व्युपसर्गस्य षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **खचि ह्रस्वः** से **ह्रस्वः** और **ऊदुपधाया गोहः** से **उपधायाः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

दो या दो से अधिक उपसर्गों से युक्त न हो ऐसे छाद् अङ्ग की उपधा को ह्रस्व होता है घ प्रत्यय के परे होने पर।

दन्तच्छदः। दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेन। जिससे दाँत ढके जाते हैं। **छद अपवारणे**। **छद्** धातु से **णिच्** करने पर **छादि** बनता है। ण्यन्त होने से **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञक तो है ही। अतः उससे **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** से **घ** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होने पर **छादि+अ** बना। **णेरनिटि** से णि का लोप होता है। इस तरह **छाद** बन जाता है। इससे पूर्व में **दन्त** है। कृत् के योग में **कर्तृकर्मणोः कृति** से षष्ठी विभक्ति प्राप्त हुई, उसका षष्ठी समास करके लुक् हो जाता है। **दन्त+छाद** में **छे च** से तुक् का आगम, तकार को श्चुत्व करके **दन्तच्छाद** बना है। **छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य** से **छाद्+अ** में छकारोत्तरवर्ती आकार को ह्रस्व होकर **दन्तच्छद** यह प्रातिपदिक बन जाता है। उससे स्वादिकार्य करके **दन्तच्छदः**।

आकरः। आकुर्वन्त्यस्मिन्। जहाँ मनुष्य अनेक प्रकार के खनिज प्राप्त करते हैं, खान। **आ+कृ** धातु से **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** से **घ** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होने पर **आ+कृ+अ** बना। प्रत्यय की आर्धधातुकसंज्ञा, धातु को गुण, रपर करके **आकर** प्रातिपदिक बनता है। उससे स्वादिकार्य करके **आकरः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **नि+ली** से **निलयः**, **आ+ली** से **आलयः** आदि भी बनाये जा सकते हैं।

घञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८७४. अवे तृस्त्रोर्घञ् ३।३।१२०॥

अवतार: कूपादे:। अवस्तारो जवनिका।

घञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८७५. हलश्च ३।३।१२१॥

हलन्ताद् घञ्। घापवाद:। रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति राम:।
अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरित्यपामार्ग:।

....

८७४- **अवे तृस्त्रोर्घञ्**। तृ च स्तृ च तृस्त्रौ, तयो तृस्त्रो:। अवे सप्तम्यन्तं, तृस्त्रो: षष्ठ्यन्तं, घञ् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **करणाधिकरणयोश्च** से **करणाधिकरणयो:** और **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** से **पुंसि, संज्ञायाम्, प्रायेण** की अनुवृत्ति है। **धातो:, प्रत्यय:, परश्च** का अधिकार तो है ही।

अव उपसर्ग उपपद में होने पर तृ धातु और स्तृ धातुओं से करण और अधिकरण अर्थ में प्राय: घञ् होता है पुँल्लिङ्ग में।

घकार और **ञकार** इत्संज्ञक हैं, **अ** शेष रहता है। **ञित्** होने के कारण वृद्धि होगी।

अवतार:। अवतरन्त्यनेन। जिसके द्वारा स्नान आदि के लिए नीचे उतरते हैं, घाट, नदी, कुँआ आदि। **तॄ प्लवनसन्तरणयो:**। **अव+तॄ** में **अवे तृस्त्रोर्घञ्** से **घञ्**, अनुबन्धलोप करके **अव+तॄ+अ** बना। ञित् के परे होने परे **तॄ** के ॠकार की **अचो ञ्णिति** से वृद्धि-रपर होकर **अवतार** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्वविसर्ग करके **अवतार:** सिद्ध हुआ।

अवस्तार:। अवस्तीर्यन्तेऽनेन। जिससे ढकते हैं, परदा आदि। **स्तॄञ् आच्छादने**। **अव+स्तॄ** में **अवे तृस्त्रोर्घञ्** से **घञ्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप करके **अव+स्तॄ+अ** बना। ञित् के परे होने परे **स्तॄ** के ॠकार की **अचो ञ्णिति** से वृद्धि, रपर होकर **अवस्तार** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्वविसर्ग करके **अवस्तार:** सिद्ध हुआ।

८७५- **हलश्च**। हल: पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **करणाधिकरणयोश्च** से **करणाधिकरणयो:** और **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** से **पुंसि, संज्ञायाम्, प्रायेण** तथा **अवे तृस्त्रोर्घञ्** से **घञ्** की अनुवृत्ति आती है। **धातो:, प्रत्यय:, परश्च** का अधिकार है।

हलन्त धातुओं से करण और अधिकरण अर्थ में घञ् होता है पुँल्लिङ्ग में।

यह **घ** प्रत्यय का अपवाद है।

राम:। रमन्ते योगिनोऽस्मिन्। जिसमें योगीजन रमण करते हैं, अर्थात् आनन्दित रहते हैं, उसे राम कहते हैं। **रमु क्रीडायाम्** धातु है। **रम्** धातु से **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** से **घ** प्रत्यय की प्राप्ति थी, उसे बाधकर के **हलश्च** से **घञ्** हुआ। अनुबन्धलोप होने के बाद **रम्+अ** बना। **अत उपधाया:** से उपधाभूत अकार की वृद्धि होकर **राम** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि करने पर **राम:** सिद्ध होता है।

अपामार्ग:। अपमृज्यते व्याध्यादिरनेन। जिससे रोग आदि दूर किये जाते है, वह औषधविशेष। **अप** उपसर्ग है और **मृजू शुद्धौ** धातु है। **मृज्** धातु से **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** से **घ** प्रत्यय की प्राप्ति थी, उसे बाधकर के **हलश्च** से **घञ्** हुआ। अनुबन्धलोप होने के बाद **अप+मृज्+अ** बना। **मृजेर्वृद्धि:** से ऋकार की वृद्धि, रपर, रेफ का ऊर्ध्वगमन होकर

खल्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८७६. ईषद्दुस्सुषुः कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ३।३।१२६।।

करणाधिकरणयोरिति निवृत्तम्। एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल्। तयोरेवेति भावे कर्मणि च। कृच्छ्रे- दुष्करः कटो भवता। अकृच्छ्रे- ईषत्करः। सुकरः।

युच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८७७. आतो युच् ३।३।१२८।।

खलोऽपवादः। ईषत्पानः सोमो भवता। दुष्पानः। सुपानः।

....

अप+मार्ज्+अ बना। **घित्** होने के कारण **चजोः कु घिण्यतोः** से जकार को कुत्व करके **अप+मार्ग्+अ** बना। **उपसर्गस्य घञ्मनुष्ये बहुलम्** से उपसर्ग के अकार को दीर्घ करके **अपामार्ग** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि करने पर **अपामार्गः** सिद्ध होता है।

८७६- **ईषद्दुस्सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्।** ईषच्च दुश्च सुश्च तेषामितरेतरद्वन्द्व ईषद्दुस्सवस्तेषु। कृच्छ्रञ्च अकृच्छ्रञ्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः कृच्छ्राकृच्छ्रे, तौ अर्थौ येषां ते कृच्छ्राकृच्छ्रार्थास्तेषु। ईषद्दुस्सुषु सप्तम्यन्तं, कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु सप्तम्यन्तं, खल् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। इस सूत्र में **करणाधिकरणयोश्च** की निवृत्ति हो गई है।

दुःख और सुख अर्थ वाले ईषत्, दुस् एवं सु उपपद होने पर धातु से खल् प्रत्यय होता है।

खकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होती है। अन्त्य लकार तो इत्संज्ञक है ही। इस तरह केवल **अ** मात्र शेष बचता है। सूत्र में **इषद्दुस्सुषु** ऐसा सप्तमीनिर्देश होने के कारण इनकी **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** से उपपदसंज्ञा होती है, अतः उपपदसमास भी होगा। **तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः** के अनुसार **भाव** और **कर्म** अर्थ में ही यह प्रत्यय होता है।

दुष्करः। ईषत्करः। सुकरः। कृच्छ्र अर्थात् **कष्ट** अर्थ में **दुस्** पूर्वक **कृ** धातु और **अकृच्छ्र** अर्थात् **सुख** अर्थ में **सु** और **ईषत्** पूर्वक **कृ** धातु यहाँ पर प्रदर्शित है। **दुःखेन क्रियते इति दुष्करः** अर्थात् जो कष्ट से बनाया जा सके और **सुखेन क्रियते इति सुकरः** अर्थात् जो आसानी से बनाया जा सके। सुखार्थ में ही **ईषत्** का भी प्रयोग है। अतः **ईषत्करः** भी बनता है। यहाँ पर **दुस्, ईषत्** और **सु** उपपद में हैं और **कृ** धातु है। **ईषद्दुस्सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्** से **खल्** प्रत्यय करके अनुबन्धलोप होने पर **कृ** को आर्धधातुकगुण, रपर करके क्रमशः **दुष्कर, ईषत्कर, सुकर** बनते हैं। इनकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके, सु, रुत्वविसर्ग करने पर उक्त तीनों रूप सिद्ध होते हैं। **दुष्करः कटो भवता**= आपके द्वारा चटाई का बनना कठिन है। **ईषत्करः सुकरो वा कटो भवता**= आपके द्वारा चटाई आसानी से बन सकती है। **खल्** प्रत्यय के कर्म अर्थ में होने से अनुक्त कर्ता में तृतीया होकर **भवता** हुआ और कर्म के उक्त होने से **कटः** कर्म के अनुसार **ईषत्करः, सुकरः, दुष्करः** बन गये।

८७७- **आतो युच्।** आतः पञ्चम्यन्तं, युच् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **ईषद्दुस्सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्** से **ईषद्दुस्सुषुः** और **कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

दुःख और सुख अर्थ वाले ईषत्, दुस्, सु उपपद होने पर आकारान्त धातु से युच् प्रत्यय होता है।

क्वाप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८७८. अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ३।४।१८॥

प्रतिषेधार्थयोरलङ्खल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात्। प्राचां ग्रहणं पूजार्थम्। **अमैवाव्ययेनेति** नियमान्नोपपदसमासः। **दो दद् घोः।** अलं दत्त्वा। **घुमास्थेतीत्वम्।** पीत्वा खलु। अलङ्खल्वोः किम्? मा कार्षीत्। प्रतिषेधयोः किम्? अलङ्कारः।

....

यह सूत्र **ईषद्दुस्सुषुः कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्** का अपवाद है। **युच्** में **चकार** की इत्संज्ञा होती है, यु शेष बचता है। उसके स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश होता है। यह भी खलर्थ प्रत्यय है। अतः **तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः** के अनुसार **भाव** और **कर्म** अर्थ में ही होता है।

ईषत्पानः सोमो भवता। दुष्पानः। सुपानः। कृच्छ्र अर्थात् **कष्ट** अर्थ में **दुस्** पूर्वक **पा** धातु और **अकृच्छ्र** अर्थात् **सुख** अर्थ में **सु** और **ईषत्** पूर्वक **पा** धातु यहाँ पर है। **दुःखेन पीयत इति दुष्पानः** अर्थात् जो कष्ट से पान कर सके और **सुखेन पीयते इति सुपानः** अर्थात् जो आसानी से पान किया जा सके। सुखार्थ में ही **ईषत्** का भी प्रयोग है। अतः **ईषत्पानः** भी बनता है। यहाँ पर **दुस्, ईषत्** और **सु** उपपद में हैं और **पा पाने** धातु है। **आतो युच्** से **खल्** के अर्थ में **युच्** प्रत्यय करके अनुबन्धलोप होने पर **यु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश करके **दुष्पान, ईषत्पान, सुपान** बनते हैं। इनकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके, सु, रुत्वविसर्ग करने पर उक्त तीनों रूप सिद्ध होते हैं।

दुष्पानः सोमो भवता= आपके द्वारा सोमरस का पान कर पाना कठिन है।

ईषत्पानः सुपानो वा सोमो भवता= आपके द्वारा सोमरस का पान आसानी से हो सकता है।

८७८- अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा। अलं च खलुश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः अलङ्खलू, तयोः। अलङ्खल्वोः सप्तम्यन्तं, प्रतिषेधयोः सप्तम्यन्तं, प्राचां षष्ठ्यन्तं, क्त्वा लुप्तप्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

निषेध अर्थ में विद्यमान अलं और खलु शब्दों के उपपद होने पर धातुओं से क्त्वा प्रत्यय होता है।

क्त्वा में ककार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होती है, **त्वा** शेष रहता है। **अलङ्खल्वोः** यह सप्तम्यन्त है। इससे उपपद का निर्देश है। अतः **अलं दत्त्वा** और **पीत्वा खलु** में उपपद समास का किया जाना चाहिए था किन्तु **अमैवाव्ययेन** अर्थात् अम्(णमुल्) के साथ ही जिस उपपद का तुल्य विधान हो वह उपपद ही अव्यय के साथ समास को प्राप्त होता है, अन्य नहीं। इस नियम सूत्र के अनुसार यहाँ पर उपपदसमास नहीं होगा।

इस सूत्र में **प्राचाम्** यह पद विकल्प के लिए नहीं है अपितु **प्राचीन आचार्यों** के सम्मान के लिए है। धन्य हैं वे प्राचीन आचार्य, जिनका स्मरण पाणिनि जी अपने सूत्रों में करते हैं, विना किसी अन्य प्रयोजन के।

क्त्वा प्रत्ययान्त शब्द **क्त्वातोसुन्कसुनः** से **अव्ययसंज्ञक** हो जाता है, जिससे आई हुई विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लोप होता है।

क्वाप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८७९. समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ३।४।२१॥

समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा स्यात्। भुक्त्वा व्रजति। **द्वित्वमतन्त्रम्।** भुक्त्वा पीत्वा व्रजति।

....

अलं दत्त्वा। मत दो। यहाँ पर **अलं** पूर्वक **दा** धातु है। निषेध अर्थ में विद्यमान **अलं** के योग में **अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा** से **क्त्वा** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **दा+त्वा** बना। **दो दद्घोः** से **दा** के स्थान पर **दद्** आदेश होकर दकार को चर्त्व करके **दत्+त्वा,** वर्णसम्मेलन करके **दत्त्वा** बना। क्त्वाप्रत्ययान्त होने से अव्ययसंज्ञा होती है, अतः सु का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर **दत्त्वा** सिद्ध हुआ। **अलं दत्त्वा। अमैवाव्ययेन** के नियमानुसार **अलम्** के उपपद रहते हुए भी **दत्त्वा** के साथ उपपद समास नहीं होता।

पीत्त्वा खलु। मत पीओ। यहाँ पर **खलु** उपपद वाला **पा** धातु है। निषेध अर्थ में विद्यमान **खलु** के योग में **अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा** से **क्त्वा** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **पा+त्वा** बना। **घुमास्थागापाजहातिसां हलि** से **पा** के **आकार** के स्थान पर **ईकार** आदेश होकर **पी+त्वा** बना। क्त्वाप्रत्ययान्त होने से अव्ययसंज्ञा होती है, अतः सु का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर **पीत्वा** सिद्ध हुआ। **पीत्वा खलु।** यहाँ पर भी **अमैवाव्ययेन** के नियमार्थ होने से उपपद समास नहीं होता।

अलङ्खल्वोः किम्? मा कार्षीत्। यदि **अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा** इस सूत्र में **अलङ्खल्वोः** न पढ़ते तो **मा कार्षीत्** इस निषेधात्मक **मा** के योग में भी **कार्षीत्** की जगह **क्त्वा** होकर अनिष्ट रूप बनने लगता। एतदर्थ **अलङ्खल्वोः** का पाठ किया गया। **कार्षीत्** यह पद **मा** के उपपद होने पर **कृ** धातु के लुङ् **अट्** का अभाव होकर बना है।

प्रतिषेधयोः किम्? अलङ्कारः। यदि **अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्वा** इस सूत्र में **प्रतिषेधयोः** (निषेधार्थक) न पढ़ते तो **अलङ्कारः** में **अलं** के योग में **कृ** धातु से क्त्वा होकर **अलङ्कृत्वा** ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता। अतः इसके निवारण के लिए **प्रतिषेधयोः** पढ़ा गया।

८७९- **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले।** समानः कर्ता ययोस्तौ समानकर्तृकौ, तयोः समानकर्तृकयोः, पूर्वश्चासौ कालः पूर्वकालः, तस्मिन् पूर्वकाले। समानकर्तृकयोः षष्ठ्यन्तं, पूर्वकाले सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा** से **क्त्वा** की अनुवृत्ति आती है और **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

समानकर्तृक धात्वर्थों में पूर्वकाल में विद्यमान धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है।

जहाँ दो या दो से अधिक धातु हों और उन धातुओं का कर्ता एक ही तो वहाँ एक धातु की क्रिया सबसे पहले होगी, उसके बाद दूसरी क्रिया होगी, उसके बाद तीसरी क्रिया होगी और अन्त में मुख्यक्रिया होगी। यह सूत्र समानकर्तृक धातुओं में पूर्वकालिक क्रिया वाले धातु से क्त्वा प्रत्यय का विधान करता है। **ककार** इत्संज्ञक है, **त्वा** बचता है। इसका अर्थ जैसे- **कृत्वा=करके, भुक्त्वा=खाकर, भूत्वा=होकर** आदि समझें। क्त्वा प्रत्यय होने के बाद **क्त्वातोसुन्कसुनः** से अव्ययसंज्ञा हो जाती है।

भुक्त्वा व्रजति। राम खाकर के जाता है। यहाँ **भुज्** और **व्रज्** दो धातु हैं। खाने

कितोऽकिद्विधायकमतिदेशसूत्रम्

८८०. न क्त्वा सेट् १।२।१८॥

सेट् क्त्वा किन्न स्यात्। शयित्वा। सेट् किम्? कृत्वा।

....

का काम भी राम कर रहा है और जाने का काम भी राम ही कर रहा है, दोनों धातुओं का कर्ता एक राम ही है किन्तु यहाँ खाने का कार्य पहले और जाने का कार्य बाद में है। इसलिए **पूर्वकालिक क्रिया** है **खाना**। अतः **भुज्** धातु से **क्त्वा** प्रत्यय हुआ। ककार की इत्संज्ञा हुई, **त्वा** बचा। **भुज्+त्वा** बना। **चोः कुः** से **भुज्** के जकार को कुत्व, **भुग्+त्वा**, गकार को **खरि च** से चर्त्व होकर **ककार** हुआ, **भुक्त्वा** बना। अव्यय होने के कारण **सु** का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हुआ। **भुक्त्वा व्रजति**।

द्वित्वमतन्त्रम्। सूत्र में द्वित्व संख्या विवक्षित नहीं है अर्थात् **क्त्वा** प्रत्यय करने के लिए केवल दो ही क्रियायें हों, ऐसी बात नहीं है, अपितु दो या दो से अधिक अनेक क्रियाएँ हों तो भी उनमें से पूर्वकालिक क्रियाओं में **क्त्वा** प्रत्यय होता है। इसलिए **भुक्त्वा पीत्वा व्रजति** में **भुज्** और **पा** दोनों धातुओं से **क्त्वा** हुआ। तात्पर्य यह है कि यहाँ **समानकर्तृकयोः** ऐसा द्विवचनान्त पद द्वि धातु के लिए प्रधान नहीं है अपितु दो या दो से अधिक इस अर्थ को बताने के लिए मानना चाहिए। जितनी भी पूर्वकालिक क्रियायें होंगी, उन सब से **क्त्वा** होने के बाद यदि धातु सेट् हो तो **इट्** आदि होकर प्रातिपदिकसंज्ञा करके और अनिट् हो तो इट् के विना विभक्ति को लाकर एवं उसका लोप करके क्वान्त रूप सिद्ध होते हैं। **भुक्त्वा पीत्वा व्रजति**।

प्रेरणा आदि अर्थ में **णिच्** होने के बाद ण्यन्त धातु अथवा **चुरादि** के ण्यन्त धातुओं से भी **क्त्वा** प्रत्यय होकर रूप बनते हैं। जैसे- **कृ** से **णिच्** होने पर **कारि** बना है, उससे **क्त्वा** होने पर **कारि+त्वा** बना। इट् का आगम होकर **कारि+इत्वा** बना। इकार को गुण और **अय्** आदेश होकर **कार्+अय्+इत्वा** बना। वर्णसम्मेलन होकर **कारयित्वा** बन जाता है। इसी तरह **धारयित्वा, चोरयित्वा, पाययित्वा, खादयित्वा, पाठयित्वा** आदि बनाये जा सकते हैं। समास आदि हो जाने के बाद तो **क्त्वा** के स्थान पर **ल्यप्** आदेश होने के बाद ल्यप् का यकार वल् में नहीं आता, अतः वलादिलक्षण इट् का आगम नहीं होता। फलतः अनिडादि आर्धधातुक को परे मानकर **णेरनिटि** से **णिच्** के इकार का लोप हो जाता है, जिससे **अवधार्य, प्रधार्य, प्रचोर्य, प्रखाद्य, प्रपाय** आदि रूप बनाये जा सकते हैं।

८८०- **न क्त्वा सेट्**। इटा सह वर्तत इति सेट्। न अव्ययपदं, क्त्वा लुप्तप्रथमाकं, सेट् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **असंयोगाल्लिट् कित्** से **कित्** की अनुवृत्ति आती है।

इट् से युक्त क्त्वा को कित् न हो।

क्त्वा में ककार की इत्संज्ञा होने के कारण स्वतः **कित्** है। विद्यमान कित् को ही यह सूत्र **अकित्** मानने का अतिदेश करता है। अकित् होने से गुण का निषेध नहीं होगा, यही फल है।

शयित्वा। सोकर के। **शीङ् स्वप्ने**। शी धातु यदि पूर्ववर्ती क्रिया में आ जाय तो उससे भी **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** से क्त्वा होगा ही। वलादिलक्षण इट् आगम करके

विकल्पेन कित्त्वार्थं विधिसूत्रम्

८८१. रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च १।२।२६॥

इवर्णोवर्णोपधाद्धलादेः रलन्तात्परौ क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ स्तः। द्युतित्वा, द्योतित्वा। लिखित्वा, लेखित्वा। व्युपधात् किम्? वर्तित्वा। रलः किम्? सेवित्वा। हलादेः किम्? एषित्वा। सेट् किम्? भुक्त्वा।

....

शी+इत्वा बना है। ऐसी अवस्था में कित् त्वा को **न क्त्वा सेट्** से अकिद्वद्भाव कर देने से शी के ईकार का **क्ङिति च** से गुण का निषेध नहीं हो पाता है। फलतः गुण होकर **शे+इत्वा**, अयादेश होकर **शयित्वा** सिद्ध हो जाता है।

सेट् किम्? कृत्वा। यदि **न क्त्वा सेट्** में **सेट्** नहीं कहते तो अनिट् **कृ** आदि धातुओं से भी परे **क्त्वा** को अकित् हो जाता, जिससे **गुण** आदि होकर **अकर्त्वा** ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता।

८८१- रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च। उश्च इश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो वी, वी उपधे यस्य स व्युपधः, तस्मात् व्युपधात्। हल् आदिर्यस्य स हलादिस्तस्य। रलः पञ्चम्यन्तं, व्युपधात् पञ्चम्यन्तं, हलादेः पञ्चम्यन्तं, सन् प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **पूङः क्त्वा च** से **क्त्वा, न क्त्वा सेट्** से **सेट्, नोपधात्थफान्ताद्वा** से **न** और **असंयोगाल्लिट् कित्** से **कित्** की अनुवृत्ति आती है।

इवर्ण और उवर्ण उपधा में है जिनकी ऐसी हलादि रलन्त धातुओं से परे इट् सहित क्त्वा और इट् सहित सन् विकल्प से कित् हों।

इस सूत्र की प्रवृत्ति में धातु के आदि में हल् वर्ण, अन्त में रल् प्रत्याहार वाला वर्ण और धातु के उपधा में इकार या उकार में से कोई एक वर्ण होना चाहिए। यदि ऐसा मिलता है तो इन धातुओं से परे **क्त्वा** को विकल्प से **कित्** अर्थात् किद्वद्भाव किया जायेगा। कित् मानने के पक्ष में गुण का निषेध और कित् न मानने के पक्ष में गुण होगा।

द्युतित्वा, द्योतित्वा। चमककर। **द्युत दीप्तौ।** द्युत् से क्त्वा, इट् होकर **द्युत्+इत्वा** बना है। **द्युत्** धातु हलादि भी है, रल् प्रत्याहारान्त भी है और उपधा में उकार भी है। अतः **रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च** से सेट् **क्त्वा** को वैकल्पिक कित् किया। कित् होने के पक्ष में गुण का निषेध होकर **द्युतित्वा** और **कित्** न होने के पक्ष में **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण होकर **द्योतित्वा** ये दो रूप बन गये।

लिखित्वा, लेखित्वा। लिखकर। **लिख अक्षरविन्यासे।** लिख् धातु से क्त्वा, इट् होकर **लिख्+इत्वा** बना है। **लिख्** धातु हलादि भी है, रल् प्रत्याहारान्त भी है और उपधा में इकार भी है। अतः **रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च** से सेट् **क्त्वा** को वैकल्पिक कित् किया। कित् होने के पक्ष में गुण का निषेध होकर **लिखित्वा** और **कित्** न होने के पक्ष में **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण होकर **लेखित्वा** ये दो रूप बन गये।

व्युपधात् किम्? वर्तित्वा। यदि **रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च** में **व्युपधात्** न कहते तो जिसमें इकार या उकार उपधा में नहीं है, ऐसे **वृत्** आदि ऋकारादि उपधा वाले धातुओं से भी वैकल्पिक किद्वद्भाव होकर गुणाभाव और गुण वाले दो रूप बनते। **व्युपधात्**

इटो विकल्पाय विधिसूत्रम्

८८२. उदितो वा ७।२।५६॥

उदितः परस्य क्त्व इड् वा।

शमित्वा, शान्त्वा। देवित्वा, द्यूत्वा। दधातेर्हिः, हित्वा।

....

कहने से **वृत्** धातु में यह सूत्र नहीं लगा। अतः **न क्त्वा सेट्** से नित्य से अकित् होने पर गुण होकर **वर्तित्वा** एक ही रूप बना।

रलः किम्? सेवित्वा। यदि **रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च** में **रलः** न कहते तो जिसमें रल् अन्त में नहीं है ऐसे **सिव्** आदि वकारान्त धातुओं से भी वैकल्पिक किद्वद्भाव होकर गुणाभाव और गुण वाले दो रूप बनते। **रलः** कहने से **सिव्** धातु में यह सूत्र नहीं लगा। अतः **न क्त्वा सेट्** से नित्य से अकित् होने पर गुण होकर **सेवित्वा** एक ही रूप बना।

हलादेः किम्? एषित्वा। यदि **रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च** में **हलादेः** न कहते तो जिस धातु के आदि में हल् नहीं है, अच् है, ऐसे **इष्** आदि इकारादि धातुओं से भी वैकल्पिक किद्वद्भाव होकर गुणाभाव और गुण वाले दो रूप बनते। **हलादेः** कहने से **इष्** धातु में यह सूत्र नहीं लगा। अतः **न क्त्वा सेट्** से नित्य से अकित् होने पर गुण होकर **एषित्वा** एक ही रूप बना।

सेट् किम्? भुक्त्वा। यदि **रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च** में **सेट्** न कहते तो जिस धातु से इट् नहीं हुआ है ऐसे **भुज्** आदि अनिट् धातुओं से भी वैकल्पिक किद्वद्भाव होकर गुणाभाव और गुण वाले दो रूप बनते। **सेट्** कहने से **भुज्** धातु में यह सूत्र नहीं लगा। नित्य से गुणनिषेध होकर **भुक्त्वा** एक ही रूप बना।

८८२- **उदितो वा।** उत् इत् यस्य स उदित्, तस्मात्। उदितः पञ्चम्यन्तं, वा अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **जॄव्रश्च्योः क्त्वि** से विभक्तिविपरिणाम करके **क्त्वः** और **वसतिक्षुधोरिट्** से **इट्** की अनुवृत्ति आती है।

ह्रस्व उकार की इत्संज्ञा हुई हो ऐसी उदित् धातु से परे क्त्वा को विकल्प से इट् का आगम होता है।

शमित्वा, शान्त्वा। शान्त होकर। **शमु उपशमे। शम्** धातु से **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** से **क्त्वा,** अनुबन्धलोप, आर्धधातुकसंज्ञा, नित्य से इट् प्राप्त, उदित् होने के कारण उसे बाधकर के **उदितो वा** से विकल्प से **इट्** का आगम करके **शम्+इत्वा,** वर्णसम्मेलन होकर **शमित्वा** बन जाता है। इट् न होने के पक्ष में **शम्+त्वा** है। **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** से उपधा को दीर्घ और मकार को अनुस्वार, उसको परसवर्ण होकर **शान्त्वा** बनता है। दोनों रूपों की **क्त्वाप्रत्ययान्त** होने के कारण अव्ययसंज्ञा होती है, प्रातिपदिकत्वेन आई विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर **शमित्वा, शान्त्वा** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

देवित्वा, द्यूत्वा। जूआ खेल कर। **दिवु क्रीडाविजिगीषा०। दिव्** धातु से **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** से **क्त्वा,** अनुबन्धलोप, आर्धधातुकसंज्ञा, नित्य से इट् प्राप्त, उदित् होने से उसे बाधकर के **उदितो वा** से विकल्प से **इट्** का आगम करके **दिव्+इत्वा,** वर्णसम्मेलन होकर **देवित्वा** बन जाता है। इट् न होने के पक्ष में **दिव्+त्वा** बना है।

ह्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८८३. जहातेश्च क्त्वि ७।४।४३॥

हित्वा। हाङस्तु- हात्वा।

ल्यबादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८८४. समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७।१।३७॥

अव्ययपूर्वपदेऽनञ्समासे क्त्वो ल्यबादेशः स्यात्। तुक्।

प्रकृत्य। अनञ् किम्? अकृत्वा।

....

च्छ्वोः शूडनुनासिके च से **वकार** के स्थान पर **ऊठ्** आदेश **दि+ऊ+त्वा** बना। यण् करके **द्यूत्वा** बन गया। दोनों की **क्त्वाप्रत्ययान्त** होने के कारण अव्ययसंज्ञा होती है, प्रातिपदिकत्वेन आई विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर **देवित्वा, द्यूत्वा** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

हित्वा। धारण करके। **डुधाञ् धारणपोषणयोः**। अनिट् **धा** धातु से **क्त्वा** करके **धा+त्वा** बना। **दधातेर्हिः** से **धा** के स्थान पर **हि** आदेश करके **हित्वा** बना। अव्ययसंज्ञा, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुलुक् आदि तो पूर्ववत् है ही।

८८३- **जहातेश्च क्त्वि**। जहातेः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, क्त्वि सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **दधातेर्हिः** से **हिः** की अनुवृत्ति आती है।

क्त्वा प्रत्यय के परे होने पर दिवादिगणीय हा धातु के स्थान पर भी हि आदेश होता है।

जहातेः से केवल जुहोत्यादिगणीय **ओहाक् त्यागे** का ही ग्रहण है, **ओहाङ् गतौ** का नहीं।

हित्वा। छोड़कर। **ओहाक् त्यागे**। अनुबन्धलोप के बाद **हा** बचता है। इससे **क्त्वा** होने पर **हा+त्वा** बना। यह धातु **एकाच् उपदेशेऽनुदात्तात्** से **अनिट्** है। **जहातेश्च क्त्वि** से **हा** के स्थान पर **हि** आदेश होकर **हित्वा** सिद्ध हुआ। **ओहाङ्** वाले **हा** के स्थान पर यह आदेश नहीं होगा। अतः **हात्वा** ही रह जाता है।

८८४- **समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्**। न नञ् अनञ्, अनञ् पूर्वं यस्मिन् स अनञ्पूर्वः, तस्मिन्। समासे सप्तम्यन्तम्, अनञ्पूर्वे सप्तम्यन्तं, क्त्वः षष्ठ्यन्तं, ल्यप् प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

जिस समास के पूर्वपद में नञ् से भिन्न कोई अन्य अव्यय स्थित हो तो उस समास में धातु से परे क्त्वा के स्थान पर ल्यप् आदेश होता है।

नञ् अव्यय है। **अनञ्** कहने से **नञ्** से भिन्न और **नञ्** के समान **अव्यय** अर्थ लिया गया है। अर्थात् समास के पूर्वपद में नञ् से भिन्न अन्य कोई अव्यय हो तो उत्तरपदस्थ अर्थात् धातु से परे **क्त्वा** प्रत्यय के स्थान पर **ल्यप्** आदेश हो जाता है। **लकार** और **पकार** इत्संज्ञक हैं, **य** बचता है। जैसे **क्त्वा** प्रत्यय **कृत्संज्ञक, आर्धधातुक** और **कित्** है, उसी प्रकार उसके स्थान पर होने वाला **ल्यप्** भी **स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ** से **स्थानिवद्भाव** करके **कृत्संज्ञक, आर्धधातुक** और **कित्** माना जायेगा। **अल्विधि** होने के कारण वलादिलक्षण

इट् का **अनल्विधौ** से निषेध हो जायेगा। अत: इट् की कर्तव्यता में **स्थानिवद्भाव** ही नहीं होगा, अन्यत्र हो जायेगा। इतना ध्यान रखना कि **ल्यप्** आदेश होने पर धातु से **इट्** का आगम नहीं होता। **नञ्** से भिन्न अव्ययों का कृत्संज्ञक क्त्वाप्रत्ययान्त के साथ **कुगतिप्रादयः** से समास करने के बाद ही इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

प्रकृत्य। प्र पूर्वक **कृ** धातु से **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** से **क्त्वा** प्रत्यय, ककार का लोप, **प्र+कृ+त्वा** बना। अनिट् धातु होने के कारण इट् प्राप्त ही नहीं है। **त्वा** की आर्धधातुकसंज्ञा, गुण प्राप्त, कित् होने के कारण **क्ङिति च** से गुण का निषेध, **प्र+कृत्वा** में उपपदसमास करके **समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्** से **त्वा** के स्थान पर **ल्यप्** आदेश, अनुबन्धलोप, **प्रकृ+य** बना। **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** से **कृ** को **तुक्** का आगम करके **प्रकृत्य** बन जाता है। **क्त्वातोसुन्कसुनः** से अव्ययसंज्ञा होती है। प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सु** आदि विभक्ति की उपस्थिति, उनका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है। **प्रकृत्य।**

अन्य उदाहरण- **सङ्गम्य।** सम् पूर्वक गम् धातु से **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** से क्त्वा प्रत्यय, ककार का लोप, **सम्+गम्+त्वा** बना। अनिट् धातु होने के कारण इट् प्राप्त ही नहीं है। **सम्+गम्+त्वा** में समास करके **समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्** से त्वा के स्थान पर ल्यप् आदेश, अनुबन्धलोप, **सम्+गम्+य** बना। सम् के मकार को अनुस्वार और परसवर्ण करके ङकार बन गया, **सङ्+गम्+य** बना। वर्णसम्मेलन होकर **सङ्गम्य** बन गया। इसके बाद **क्त्वातोसुन्कसुनः** से अव्ययसंज्ञा होती है। प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति की उपस्थिति, उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर- **सङ्गम्य** सिद्ध हुआ।

अकृत्वा। (नञ्) **न+कृत्वा** में समास करके **अ+कृत्वा** बना है। **नञ्** पूर्व में होने पर सूत्र ने ल्यप् आदेश का निषेध किया है, अत: यहाँ पर ल्यप् आदेश नहीं हुआ, क्त्वा ही रह गया- **अकृत्वा।**

हम यहाँ कुछ धातुओं में **क्त्वा** प्रत्यय और **ल्यप्** आदेश लगाकर लिख रहे हैं। आप इनकी प्रक्रिया को समझें और अन्य धातुओं से भी क्त्वा-ल्यप् लगाकर रूप सिद्ध करने का प्रयत्न करें। अधिकतर धातुओं में उपसर्ग के लगने के बाद अर्थ भी बदल जाता है। अत: हम ने यहाँ पर **क्त्वान्त** और **ल्यबन्त** दोनों का अर्थ बदलने की स्थिति में क्रमशः दोनों अर्थों को दिखाया है।

अर्च-अर्चित्वा-समर्च्य=पूजकर के
अव्-अवित्वा-समव्य=बचाकर के
आप्-आप्त्वा- प्राप्य=पाकर के
कृ-कृत्वा-सङ्कृत्य=कर के
क्रीड्-क्रीडित्वा-सङ्क्रीड्य=खेलकर
खेल्-खेलित्वा-सङ्खेल्य=खेलकर के
गै, गा-गीत्वा-प्रगाय=गाकर के
चल्-चलित्वा-सञ्चल्य=चलकर के
जप्-जपित्वा-प्रजप्य=जपकर के
जि-जित्वा-विजित्य=जीतकर के
ज्ञा-ज्ञात्वा-विज्ञाय=जानकर के
दा-दत्त्वा-प्रदाय=देकर के

अर्ज-अर्जयित्वा-उपार्ज्य=कमाकर के
अस्-भूत्वा-अनुभूय=होकर, अनुभवकर के
कथ्-कथयित्वा-प्रकथय्य=कहकर के
क्री-क्रीत्वा-विक्रीय=खरीदकर, बेचकर के
खाद्-खादित्वा-प्रखाद्य=खाकर के
गम्-गत्वा-अवगम्य= जानकर के
ग्रह्-गृहीत्वा-सङ्गृह्य=ग्रहणकर के
जन्-जनित्वा-सञ्जाय=पैदा होकर के
जागृ-जागरित्वा-प्रजागर्य=जागकर के
जीव्-जीवित्वा-सञ्जीव्य=जीकर के
त्यज्-त्यक्त्वा-परित्यज्य=छोड कर के
दृश्-दृष्ट्वा-सन्दृश्य=देखकर के

णमुल्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८८५. आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ३।४।२२॥

आभीक्ष्णे द्योत्ये पूर्वविषये णमुल् स्यात् क्त्वा च।

....

धाव्-धावित्वा-प्रधाव्य=दौड़कर के
धृ-धृत्वा-प्रधृत्य=धारणकर के
ध्यै, ध्या-ध्यात्वा-सन्ध्याय=ध्यानकर के
नम्-नत्वा-प्रणम्य=झुककर, प्रणामकर के
नी-नीत्वा-आनीय=ले जाकर, लाकर
पच्-पक्त्वा-प्रपच्य=पकाकर के
पठ्-पठित्वा-प्रपठ्य=पढ़कर के
पत्-पतित्वा, निपत्य=गिरकर के
पा-पीत्वा-प्रपाय=पीकर के
पूज्-सम्पूज्य=पूजकर के
भक्ष्-भक्षयित्वा-आभक्ष्य=खाकर
भण्-भणित्वा-आभण्य=कहकर के
भाष्-भाषित्वा-सम्भाष्य=बोलकर के
भुज्-भुक्त्वा, उपभुज्य=खाकर के
भू-भूत्वा-सम्भूय=होकर के, सम्भव होकर के, रक्ष्-रक्षित्वा-संरक्ष्य=रक्षाकर के
रम्-रमित्वा-विरम्य=रमणकर, रूककर के, रुद्-रुदित्वा-प्ररुद्य=रोकर के
लभ्-लब्ध्वा-उपलभ्य=पाकर के
लिख्-लिखित्वा-आलिख्य=लिखकर के
विद्-विदित्वा-संविद्य=जानकर के
वृध्-वर्धित्वा-संवृध्य=बढ़कर के
शक्-शक्त्वा-अतिशक्य=सककर के
शिक्ष्-शिक्षित्वा-प्रशिक्ष्य=सीखकर के
श्रु-श्रुत्वा-विश्रुत्य=सुनकर के
सेव्-सेवित्वा-संसेव्य=सेवाकर के
स्तु-स्तुत्वा-संस्तुत्य=स्तुतिकर के
स्था-स्थित्वा-उत्थाय=रहकर के, उठकर के
स्पृश्-स्पृष्ट्वा-संस्पृश्य=छूकर के
स्ना-स्नात्वा-प्रस्नाय=नहाकर के
स्मृ-स्मृत्वा-संस्मृत्य=यादकर के
स्वप्-सुप्त्वा-प्रसुप्य=सोकर के
हन्-हत्वा-निहत्य=मारकर के
हस्-हसित्वा-विहस्य=हसकर के
हृ-हृत्वा-आहृत्य=हरकर, लाकर के
आ-ह्वे-आहूय=बुलाकर के
अध्यापि-अध्याप्य- पढ़ाकर के
दर्शयित्वा-आदर्श्य=दिखाकर के
श्रावयित्वा-संश्राव्य=सुनाकर के
घातयित्वा-संघात्य=मरवाकर के
ग्राहयित्वा-सङ्ग्राह्य=ग्रहण कराकर
प्रसादयित्वा-प्रसाद्य=प्रसन्नकर के
कारयित्वा-प्रकार्य=करवाकर के
लेखयित्वा-संलेख्य=लिखवाकर के

८८५- आभीक्ष्ण्ये णमुल् च। आभीक्ष्ण्ये सप्तम्यन्तं, णमुल् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** से **पूर्वकाले** और **अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा** से **क्त्वा** की अनुवृत्ति आती है तथा **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

समान कर्ता वाले दो धातुओं में पूर्वकालिक धातु से णमुल् और क्त्वा प्रत्यय होते हैं बार-बार होना अर्थ द्योतित होने पर।

यह भी **क्त्वा** का ही विषय है। इसमें दोनों प्रत्यय बारी-बारी से होते हैं। अर्थ में **क्रिया का बारम्बार होना** द्योतित होना चाहिए। **णमुल्** में आदि णकार की **चुटू** से और **अन्त्य** लकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। **उकार** उच्चारणार्थ लगाया गया है। इस तरह केवल **अम्** शेष रहता है। **णित्** होने से वृद्धि हो जायेगी। इस प्रत्यय के लगने के बाद वह प्रातिपदिक **मान्त कृत्** हो जाता है, जिससे **कृन्मेजन्तः** से अव्ययसंज्ञा होती है। फलतः उसके बाद की विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है।

द्वित्वविधायकं विधिसूत्रम्

८८६. नित्यवीप्सयोः ८।१।४॥

आभीक्ष्ण्ये वीप्सायां च द्योत्ये पदस्य द्वित्वं स्यात्।
आभीक्ष्ण्यं तिङन्तेषु अव्ययसंज्ञकेषु च कृदन्तेषु च।
स्मारं स्मारं नमति शिवम्। स्मृत्वा स्मृत्वा वा। पायम्पायम्।
भोजम्भोजम्। श्रावं श्रावम्।

णमुल्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८८७. अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ३।४।२७॥

एषु कृञो णमुल् स्यात्, सिद्धोऽप्रयोगोऽस्य एवम्भूतश्चेत् कृञ्।
व्यर्थत्वात्प्रयोगानर्ह इत्यर्थः। अन्यथाकारम्। एवङ्कारम्। कथङ्कारम्।
इत्थङ्कारम्। भुङ्क्ते। सिद्धेति किम्? शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते।

इत्युत्तरकृदन्तम्॥३६॥

....

८८६- **नित्यवीप्सयोः**। नित्यं च वीप्सा च नित्यवीप्से, तयोः नित्यवीप्सयोः। सप्तम्यन्तं पदम्। **पदस्य** यह सूत्र अनुवृत्त होता है और **सर्वस्य द्वे** का अधिकार चल रहा है।

बार-बार होना और वीप्सा अर्थात् अनेक में व्याप्त होना अर्थ द्योतित होने पर पद को द्वित्व होता है।

आभीक्ष्ण्य का अर्थ द्वित्व और द्वित्व का तात्पर्य उस शब्द का दो बार पढ़ना अभिप्रेत है। यह द्वित्व तिङन्तों में, अव्यय में और कृदन्त पदों में होता है।

स्मारं स्मारं नमति शिवम्। शिव को बार बार स्मरण कर-कर के नमस्कार करता है। **स्मृ चिन्तायाम्।** यहाँ पर भी दो क्रियाएँ हैं। पूर्वकालिक क्रिया **स्मृ** और उत्तरकालिक क्रिया **नमति**। पूर्वकालिक धातु से **आभीक्ष्ण्ये णमुल् च** से **णमुल्** होकर अनुबन्धलोप होने पर **स्मृ+अम्** बना। **अचो ञ्णिति** से वृद्धि होकर **स्मार्+अम्** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **स्मारम्** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, अव्ययसंज्ञा, विभक्ति और उसके लोप होने पर **नित्यवीप्सयोः** से **स्मारम्** का द्वित्व हो गया- **स्मारम् स्मारम्** बना। अब क्त्वा होने के पक्ष में तो **स्मृत्वा स्मृत्वा** बनेगा ही अर्थात् द्वित्व **क्त्वा** के पक्ष में भी होगा।

इसी तरह अन्य धातुओं से भी णमुल्, क्त्वा और द्वित्व करके अनेक धातुओं से प्रयोग बना सकते हैं। कुछ उदाहरण यहाँ पर दिये जा रहे हैं।

पठ्	पाठं पाठम्, पठित्वा पठित्वा-	बार बार पढ़कर।
दृश्	दर्शं दर्शम्, दृष्ट्वा दृष्ट्वा-	बार बार देख कर।
ध्यै	ध्यायं ध्यायम्, ध्यात्वा ध्यात्वा	बार बार ध्यान कर।
खाद्	खादं खादम्, खादित्वा खादित्वा	बार बार खा कर।
कृ	कारं कारम्, कृत्वा कृत्वा	बार बार कर के।
पच्	पाचं पाचम्, पचित्वा पचित्वा	बार बार पका कर।

८८७- **अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत्।** अन्यथा च एवं च कथं च इत्थं च तेषामितरेतरद्वन्द्वः अन्यथैवंकथमित्थमस्तेषु। सिद्धोऽप्रयोगो यस्य स सिद्धाप्रयोगः। अन्यथैवंकथमित्थंसु

सप्तम्यन्तं, सिद्धाप्रयोगः प्रथमान्तं, चेत् अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ्** से **कृञ्** और **स्वादुमि णमुल्** से **णमुल्** की अनुवृत्ति आती है और **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

अन्यथा, एवम्, कथम्, इत्थम् के उपपद होने पर कृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है यदि कृञ् धातु अर्थहीन होने से प्रयोग के अयोग्य प्रतीत हो रहा हो तो।

सिद्धाप्रयोगः का तात्पर्य यह है कि यदि निष्पद्यमान शब्द में कृञ् धातु का अर्थ न प्रतीत हो रहा हो।

अन्यथाकारं भुङ्क्ते। अन्य प्रकार से खा रहा है। **एवङ्कारं भुङ्क्ते।** इस प्रकार से खाता है। **कथङ्कारं भुङ्क्ते।** कैसे खाता है? **इत्थङ्कारं भुङ्क्ते।** इस तरह से खाता है। इन चारों प्रयोगों में **कृ** धातु है और क्रमशः **अन्यथा, एवम्, कथम्, इत्थम्** ये उपपद हैं। **अन्यथाकारं भुङ्क्ते** का वही अर्थ है जो **अन्यथा भुङ्क्ते** का है। **कृ** धातु और उससे **णमुल्** प्रत्यय करके भी वही अर्थ निकल रहा है, जो पहले से था। इस तरह यहाँ पर **कृ** धातु **सिद्धाप्रयोग** सिद्ध हो रहा है। अतः **कृ** से **अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत्** से **णमुल्** करके **अन्यथाकारम्** बन जाता है। मकारान्त कृदन्त **कृन्मेजन्तः** से अव्ययसंज्ञक होता है। अतः सुप् का लुक् करके **अन्यथाकारम्** सिद्ध होता है। इसी तरह **एवङ्कारम्, कथङ्कारम्** और **इत्थङ्कारम्** के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए।

सिद्धेति किम्? शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते। प्रश्न यह कहते हैं कि **अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत्** इस सूत्र में यदि **सिद्धाप्रयोगश्चेत्** न हो तो क्या होता? इस पर उत्तर देते हैं कि **शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते** शिर को दूसरी तरफ करके भोजन करता है। इस वाक्य में **कृत्वा** सिद्धाप्रयोग अर्थात् निष्प्रयोजन नहीं है, यहाँ पर भी **णमुल्** होकर अनिष्ट रूप बन जाता। ऐसा न हो, इसके लिए सूत्र में **सिद्धाप्रयोगश्चेत्** यह कहा गया।

इस तरह से उत्तरकृदन्तप्रकरण को संक्षेप में पूर्ण किया गया। इतने प्रत्ययों की सम्यक् जानकारी होने के बाद तो अन्य विविध प्रत्ययों की भी जानकारी सरलता से हो सकती है। आपने अभी तक जितने धातु पढ़े, उन सभी धातुओं से तुमुन् और क्त्वा प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का प्रयत्न करें।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- प्रत्येक प्रश्न दस अंक के हैं और अनिवार्य भी हैं।

१- **तुमुन्** और **क्त्वा** प्रत्यय लगाकर किन्हीं पाँच रूपों की सिद्धि करें। १०
२- ल्यप् आदेश के किन्हीं दस रूपों की सिद्धि करें। १०
३- घ और घञ् प्रत्यय लगाकर किन्हीं दस रूपों की साधना करें। १०
४- क्तिन् प्रत्यय लगाकर दस रूपों की सिद्धि करें। १०
५- **क्त्वा, ल्यप्** प्रत्यय के पाँच-पाँच तथा **ण्यन्त** से **क्त्वा** और ल्यप् के दो-दो उदाहरण प्रक्रिया सहित दिखायें। १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का उत्तरकृदन्त-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ विभक्त्यर्थाः

प्रथमाविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

८८८. प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा२।३।४६॥

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः। मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः। प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये परिमाणमात्रे सङ्ख्यामात्रे च प्रथमा स्यात्।

प्रातिपदिकार्थमात्रे- उच्चैः। नीचैः। कृष्णः। श्रीः। ज्ञानम्।

लिङ्गमात्रे- तटः, तटी, तटम्। परिमाणमात्रे- द्रोणो व्रीहिः।

वचनं सङ्ख्या- एकः, द्वौ, बहवः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **विभक्त्यर्थप्रकरण (कारक)** प्रारम्भ होता है। आपने सन्धिप्रकरण के बाद अजन्तपुँल्लिङ्ग आदि छः प्रकरणों में सु आदि इक्कीस प्रत्ययों का विधान देखा। इन प्रत्ययों को सात विभक्तियों में विभाजित किया गया था। कौन सी विभक्ति किस अर्थ में होती है, यह बात इस **कारकप्रकरण** में बतायी जायेगी। अतः इस प्रकरण को **विभक्त्यर्थप्रकरण** भी कहते हैं। कारक शब्द का एक अर्थ कर्ता भी है। किन्तु यहाँ पर कारक शब्द पारिभाषिक है। **करोति क्रियां निर्वर्तयतीति कारकम्,** अथवा **क्रियान्वयि कारकम्** अथवा **साक्षात् क्रियाजनकं कारकम्।** जो क्रिया का निमित्त बने अर्थात् जो क्रिया का निष्पादन करे, जो क्रिया के साथ अन्वय अर्थात् सीधे सम्बन्ध रखे अथवा जो क्रिया का जनक है, उसे कारक कहते हैं।

ये कारक छः हैं- **कर्तृकारक, कर्मकारक, करणकारक, सम्प्रदानकारक, अपादानकारक और अधिकरणकारक।** सम्बन्ध को कारक नहीं माना गया हैं, क्योंकि षष्ठी को छोड़कर अन्य सभी कारकों का क्रिया के साथ साक्षात् अन्वय है किन्तु सम्बन्ध का सीधे अन्वय न होकर परम्परया अन्वय होता है। जैसे **रामः पठति** में **रामः** कर्ता का **पठति** क्रिया के साथ साक्षात् सम्बन्ध है और कर्ता और क्रिया एक दूसरे से आकांक्षा युक्त हैं, अतः सीधे सम्बन्ध रखते हैं। इस तरह क्रिया के साथ अन्वय करने की योग्यता होने के कारण प्रथमाविभक्ति युक्त **रामः** यह कारक हुआ।

इसी प्रकार **देवदत्तः पुस्तकं लिखति** इस वाक्य में **पुस्तकं** इस कर्म का **लिखति** इस क्रिया के साथ में सीधे सम्बन्ध हो रहा है। **पुस्तकं** और **लिखति** के बीच में

अन्य किसी शब्द की आवश्यकता नहीं है। इस तरह क्रिया के साथ अन्वय करने की योग्यता होने के कारण द्वितीयाविभक्तियुक्त **पुस्तकम्** यह **कर्म-कारक** हुआ।

गोपालः कराभ्यां प्रणमति (गोपाल दोनों हाथों से प्रणाम करता है) इस वाक्य में **कराभ्यां** इस करण साधन का **प्रणमति** इस क्रिया के साथ में सीधे सम्बन्ध हो रहा है। **कराभ्यां प्रणमति** के बीच में किसी अन्य शब्द की आवश्यकता नहीं है। इस तरह क्रिया के साथ अन्वय करने की योग्यता होने के कारण तृतीयाविभक्तियुक्त **कराभ्याम्** यह **करण-कारक** हुआ।

राजा धनं निर्धनाय ददाति या **राजा निर्धनाय धनं ददाति** (राजा धन निर्धन को देता है या राजा निर्धन को धन देता है) इस वाक्य में **निर्धनाय** इस सम्प्रदान का सीधा सम्बन्ध **ददाति** क्रिया के साथ हो रहा है। **निर्धनाय** और **ददाति** के बीच अन्य कोई शब्द न हो तो भी वाक्य की संगति बैठ जाती है। क्रिया के साथ अन्वय करने की योग्यता होने के कारण चतुर्थीविभक्तियुक्त **निर्धनाय** यह **सम्प्रदान-कारक** हुआ।

छात्राः पाठालयाद् आगच्छन्ति (छात्र पाठशाला से आ रहे हैं) इस वाक्य में **पाठालयात्** इस अपादान का **आगच्छन्ति** इस क्रिया के साथ में सीधे सम्बन्ध अर्थात् अन्वय हो रहा है। **पाठालयात्** और **आगच्छन्ति** के बीच में अन्य किसी शब्द की आवश्यकता नहीं है। इस तरह क्रिया के साथ अन्वय करने की योग्यता होने के कारण पञ्चमीविभक्तियुक्त **पाठालयात्** यह **अपादान-कारक** हुआ।

देवदत्तस्य पुत्रः शाकम् आनयति (देवदत्त का पुत्र शाक लाता है) इस वाक्य में **देवदत्तस्य** यह षष्ठीविभक्ति युक्त शब्द का **आनयति** क्रिया के साथ में सीधे अन्वय नहीं हो रहा है। **देवदत्त का लाता है**, ऐसा वाक्य ही नहीं बनता है। देवदत्त का और लाता है के बीच में किसी अन्य शब्द की आवश्यकता होती है। इस तरह क्रिया के साथ साक्षात् अन्वय करने की योग्यता न होने के कारण षष्ठीविभक्तियुक्त **देवदत्तस्य** यह कोई कारक नहीं हुआ।

बालकः कटे तिष्ठति (बालक चटाई पर बैठता है) इस वाक्य में **कटे** इस अधिकरण का सम्बन्ध **तिष्ठति** क्रिया के साथ सीधे हो रहा है। **कटे** और **तिष्ठति** के बीच में अन्य किसी शब्द की आवश्यकता नहीं है। इस तरह क्रिया के साथ अन्वय करने की योग्यता होने के कारण सप्तमीविभक्तियुक्त **कटे** यह **अधिकरण-कारक** हुआ।

विवक्षातः कारकाणि भवन्ति। वक्ता जिस प्रकार से अर्थात् जिस प्रकार के भाव से किसी को प्रस्तुत करना चाहता है या प्रस्तुत करता है, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। वह **अग्निः पचति** या **अग्निना पचति** आदि किस रूप में प्रयोग करना चाहता है, उसी रूप में प्रयोग कर सकता है।

वाक्यज्ञान के लिए कारकप्रकरण का विशेष महत्त्व है। इसके विना वाक्य शुद्ध होना कठिन है। **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में कारकप्रकरण विस्तृत रूप में है किन्तु **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में केवल दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। फिर भी व्याख्या में प्रयत्न करेंगे कि बोलचाल के लिए आवश्यक कारक का समावेश हो जाय।

८८८- प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा। इस सूत्र का सामासिक विग्रह कुछ इस प्रकार से है- पदं पदं प्रतिपदं, प्रतिपदे भवं प्रातिपदिकं, प्रातिपदिकस्यार्थः प्रातिपदिकार्थः। प्रातिपदिकार्थश्च, लिङ्गञ्च, परिमाणञ्च, वचनञ्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः

प्रातिपदिकार्थलिङ्ग-परिमाणवचनानि, प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनानि एव प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रम्, तस्मिन् प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे, प्रथमा। प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे सप्तम्यन्तं, प्रथमा प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

प्रातिपदिकार्थमात्र में, लिङ्गमात्र की अधिकता में, परिमाणमात्र में और वचन में प्रथमा विभक्ति होती है।

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः। किसी शब्द के उच्चारण करने पर निश्चितरूप से जिस अर्थ की उपस्थिति हो अर्थात् प्रतीति होती है उसे **प्रातिपदिकार्थ** कहते हैं। जिस शब्द के उच्चारण करने से यह पता चले कि यह शब्द इस अर्थ का ज्ञान कराता है, अथवा इस शब्द का यह अर्थ है, ऐसी प्रतीति जिस शब्द के विषय में हो जाये, उसे प्रातिपदिकार्थ कहते हैं।

सूत्र में जो **मात्र**-शब्द उच्चारित है। वह अवधारणार्थक है। इसमें चार मानक निश्चित किये गये हैं- प्रातिपदिकार्थ, लिङ्ग, परिमाण और वचन। इन चारों के साथ में मात्रशब्द का सम्बन्ध है। **द्वन्द्वादौ द्वन्द्वमध्ये द्वन्द्वान्ते च श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते। द्वन्द्वसमास** के आदि, मध्य और अन्त में पढ़ा गया शब्द द्वन्द्व के विग्रह में उच्चारित सभी शब्दों के साथ लग जाता है। द्वन्द्वसमास करके **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनानि** बनाया गया है और इसके अन्त में **मात्र** को जोड़ा जा रहा है, अतः **मात्र** का योग **प्रातिपदिकार्थ** के साथ भी, **लिङ्ग** के साथ भी, **परिमाण** के साथ भी और **वचन** के साथ भी हो जाता है। इसका यह अर्थ निकलता है-

प्रातिपदिकार्थ में ही, प्रातिपदिकार्थ होते हुए लिङ्गमात्र की अधिकता होने पर, प्रातिपदिकार्थ होते हुए परिमाणमात्र की अधिकता होने पर और प्रातिपदिकार्थ होते हुए संख्यामात्र भी रहने पर प्रथमा विभक्ति होती है।

प्रातिपदिकार्थमात्र तो सब में रहता ही है।

शब्दों से विभक्ति आना आवश्यक है, क्योंकि विभक्ति लगने के बाद **सुप्तिङन्तं पदम्** से **पदसंज्ञा** होती है। पद होने पर ही वह व्यवहार के योग्य हो जाता है। **अपदं न प्रयुञ्जीत** अर्थात् अपद का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जैसे- **श्री** शब्द है। जब तक इसमें विभक्ति नहीं लगाते तब तक उसका प्रयोग नहीं हो सकता। केवल वैयाकरण लोग विना विभक्ति के भी अर्थ समझेंगे किन्तु जो व्याकरण की प्रक्रिया को नहीं समझते, वे विभक्त्यन्त शब्द का ही अर्थ समझ सकते हैं। जैसे केवल **भू**-धातु का लोक में कोई अर्थ गम्य नहीं है किन्तु जब लट्, तिप्, शप्, गुण, अवादेश करके **भवति** बन जाता है तब उसका अर्थ सभी समझ सकते हैं। इसी प्रकार विना विभक्ति के कोई अर्थ नहीं समझ सकता। अतः पद बने विना उसका प्रयोग नहीं होता। **पद** बनने के लिए **तिङ्** आदि विभक्ति या **सुप्** आदि विभक्तियों का होना आवश्यक है। सुप् आदि विभक्ति कहाँ-कहाँ किस-किस प्रकार रो की जायें, यही अर्थ निश्चय करता है **कारकप्रकरण** अर्थात् **विभक्त्यर्थप्रकरण।**

प्रातिपदिकार्थमात्रे। जिस शब्द का सीधा-सीधा अर्थमात्र उपस्थित है, ऐसे शब्द से प्रथमाविभक्ति होती है अर्थात् किसी शब्द के उच्चारण करने पर नियतरूप से जिस अर्थ की उपस्थिति हो अर्थात् प्रतीति होती हो ऐसे प्रातिपदिकार्थ से प्रथमाविभक्ति होने का उदाहरण है- **उच्चैः, नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम्।** इन शब्दों के उच्चारणमात्र से क्रमशः

ऊपर, नीचे, भगवान् कृष्ण, लक्ष्मी जी और **ज्ञान** ये अर्थ अपने आप किसी अन्य शक्ति के विना भी उपस्थित हो रहे हैं। इसलिए यहाँ पर **प्रातिपदिकार्थ** माना गया और **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से प्रथमाविभक्ति हुई।

उच्चैः। नीचैः। उच्चैस् और नीचैस् इन दो प्रातिपदिकों से **प्रातिपदिकार्थ मात्र** में **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से **प्रथमाविभक्ति** हुई, **सु** प्रत्यय उपस्थित हुआ। ये दोनों शब्द अव्ययसंज्ञक हैं, अतः **अव्ययादाप्सुपः** से **सु** विभक्ति का लोप हुआ। **उच्चैस्** और **नीचैस्** के **सकार** को **रुत्वविसर्ग** हुआ। **सु** के लोप होने पर भी प्रत्ययलक्षण के द्वारा विभक्त्यन्त माना गया। विभक्त्यन्त होने से **पदसंज्ञा** हो गई। पद होने से **प्रयोग योग्य** हो गये।

कृष्णः। कृष्ण का **वासुदेव** अर्थ निश्चित रूप से उपस्थित है। अतः प्रातिपदिकार्थ है। प्रातिपदिकार्थ में **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से प्रथमाविभक्ति हुई। एकत्व की विवक्षा में **द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने** से एकवचन **सु** आया। अनुबन्धलोप होने पर सकार को रुत्वविसर्ग हुआ- **कृष्णः।**

श्रीः। श्री शब्द के उच्चारण से **लक्ष्मी** यह अर्थ निश्चित रूप से उपस्थित है। अतः प्रातिपदिकार्थ हुआ। प्रातिपदिकार्थ में **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से प्रथमाविभक्ति हुई। एकत्वविवक्षा में **सु** आया, उसको रुत्वविसर्ग हुआ- **लक्ष्मीः।** लक्ष्मी-शब्द न तो ङ्यन्त है और न आबन्त ही। अतः **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से सु का लोप नहीं हुआ। शेष विभक्ति में नदी-शब्द की तरह रूप चलते हैं।

ज्ञानम्। ज्ञानशब्द का **ज्ञान, विद्या की सम्पन्नता** अर्थ निश्चित रूप से उपस्थित है। अतः प्रातिपदिकार्थ है। प्रातिपदिकार्थ में **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से प्रथमाविभक्ति हुई। एकत्वविवक्षा में **सु** आया। नपुंसकलिङ्ग होने के कारण सु के स्थान पर **अतोऽम्** से अम् हुआ और **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **ज्ञानम्।**

लिङ्गमात्राधिक्ये। कोई शब्द केवल अपने लिङ्ग को नहीं कह सकता अपितु लिङ्गविशिष्ट प्रातिपदिकार्थ को ही कहता है। जैसे पुरुषशब्द पुँल्लिङ्गयुक्त मनुष्यरूप प्रातिपदिकार्थ को, नारी-शब्द स्त्रीलिङ्गयुक्त नारी रूप प्रातिपदिकार्थ को तथा पुस्तकशब्द नपुंसकलिङ्गयुक्त पुस्तक रूप अर्थ को अवश्य कहते हैं किन्तु तट शब्द से उसमें विद्यमान बहुत लिङ्गों में से एक कोई लिङ्गयुक्त नदी का तीर अर्थ तो उपस्थित है किन्तु अनेक लिङ्ग अर्थ उपस्थित नहीं हैं। इसलिए **प्रातिपदिकार्थ** में प्रथमा नहीं हो सकती है। अतः प्रातिपदिकार्थ होते हुए लिङ्गमात्र की अधिकता हो तो भी प्रथमा विभक्ति हो, इसके लिए इस सूत्र में **लिङ्ग** ग्रहण किया गया है।

तटः, तटी, तटम्। अकारान्त तट-शब्द से प्रातिपदिकार्थ सहित लिङ्गमात्र की अधिकता में प्रथमाविभक्ति हुई। **पुँल्लिङ्ग** में **राम**शब्द की तरह, **स्त्रीलिङ्ग** में **नदी**शब्द की तरह और **नपुंसकलिङ्ग** में **ज्ञान**-शब्द की तरह प्रक्रिया होती है।

परिमाणमात्राधिक्ये। कहीं पर भी किसी शब्द से केवल परिमाण की अभिव्यक्ति नहीं हुआ करती अपितु प्रातिपदिकार्थ सहित परिमाण की अभिव्यक्ति हुआ करती है। अतः प्रातिपदिकार्थ सहित परिमाणमात्र की अधिकता होने पर प्रथमाविभक्ति होवे, इसलिए **परिमाणमात्राधिक्ये** कहा गया। जैसे **द्रोणो व्रीहिः।** द्रोण प्राचीनकाल का एक परिमाणवाचक

सम्बोधने प्रथमाविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

८८९. सम्बोधने च २।३।४७॥

प्रथमा स्यात्। हे राम।

इति प्रथमा।

....

शब्द है, जैसे आजकल किलो, कुन्टल आदि है। द्रोण का अर्थ परिमाण-विशेष और इस सूत्र से परिमाणाधिक्य में जो सु प्रत्यय हुआ, उसका परिमाण सामान्य अर्थ है। जैसे **एक किलो चावल** इस वाक्य में **नाप** सामान्य परिमाण और **एक किलो** विशेष परिमाण, इस तरह से **एक किलो से नपा हुआ चावल** यह तात्पर्य निकलता है। इसी प्रकार से **द्रोण** का अर्थ भी **परिमाण** है और **परिमाण** अर्थ में हुए **सु** का अर्थ भी **परिमाण** ही है। दो परिमाणों में **द्रोण** का **परिमाण** अर्थ **विशेषण** और **सु** का परिमाण अर्थ **विशेष्य** है। पुनः **द्रोणः** विशेषण और **व्रीहिः** विशेष्य हुए। इस तरह से **द्रोण के रूप में जो परिमाण, उस परिमाण से नपा हुआ धान** यह अर्थ निश्चित हुआ। **व्रीहिः** में सु विभक्ति **प्रातिपदिकार्थमात्र** में और **द्रोणः** में **सु** विभक्ति **प्रातिपदिकार्थमात्र रहते हुए परिमाणमात्र की अधिकता** में हुई है, ऐसा समझना चाहिए।

यदि यहाँ पर परिमाण अर्थ में विभक्ति न की जाय तो अर्थात् प्रातिपदिकार्थ में ही विभक्ति मानी जाय तो **द्रोणो व्रीहिः** में **द्रोण** किसी वस्तु का मापक परिमाण का **व्रीहि**- धान्यविशेष जो माप्य=नापा जाने वाले के साथ **परिच्छेद्य-परिच्छेदक** (माप्य-मापक)**भाव** रूप सम्बन्ध नहीं होगा अपितु **नीलो घटः** की तरह अर्थात् **नीलाभिन्नो घटः**=नील गुण से अभिन्न घट की तरह **द्रोण** से अभिन्न **व्रीहि** ऐसे अभेद सम्बन्ध से अन्वय होने लगता, क्योंकि **नामार्थयोरभेदान्वयः**=एक नामार्थ=प्रातिपदिकार्थ का दूसरे नामार्थ के साथ में अभेदान्वय ही होता है, ऐसा नियम है। जो **द्रोणो व्रीहिः** में कथमपि सम्भव नहीं है क्योंकि- **द्रोण** नापने वाला मापक है और **व्रीहि** उससे नापी जाने वाली माप्य वस्तु है। **द्रोण** परिमाण और **व्रीहि** द्रव्य कभी भी एक नहीं हो सकते। अतः अभेदान्वय को बाधकर **परिच्छेद्य-परिच्छेदकभाव** रूप सम्बन्ध से अन्वय करने के लिए परिमाण अर्थ प्रथमा की जाती है।

संख्यामात्रे। एकः, द्वौ, बहवः। जैसे **एक** शब्द से **एकत्व** संख्या, **द्वि** शब्द से **द्वित्व** संख्या और **बहु** शब्द से **बहुत्व** संख्या का अर्थ स्वतः उपस्थित है। तात्पर्य यह है कि एक, द्वि, बहु आदि संख्यावाचक शब्दों से संख्या-अर्थ जो प्रातिपदिकार्थ है, वह उक्त है और उस उक्त अर्थ को बताने के लिए सु, औ आदि प्रत्यय नहीं किये जा सकते क्योंकि- **उक्तार्थानामप्रयोगः**, उक्तः=कहा गया है, अर्थः=अर्थ, जिन शब्दों का, ऐसे शब्दों का, अप्रयोगः=प्रयोग नहीं किया जा सकता, ऐसा नियम है। अतः एक, द्वि आदि से एकत्व, द्वित्व आदि संख्या रूप अर्थ के उक्त होने पर भी वचन-ग्रहणसामर्थ्य से **उक्तार्थानामप्रयोगः** इस नियम को बाधकर सु आदि प्रत्यय होते हैं। इसलिए **संख्यामात्रे** का उच्चारण किया। एक, द्वि, बहु ये स्वतः संख्यावाचक होते हुए भी में प्रथमा विभक्ति होनी ही चाहिए जिससे ये पद बन सकें। इन तीनों शब्दों से प्रातिपदिकार्थमात्र होते हुए संख्यामात्र की विशेषता में **प्रातिपदिकार्थलिङ्ग- परिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से प्रथमाविभक्ति हुई। **एक+सु**

कर्मसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

८९०. कर्तुरीप्सिततमं कर्म १।४।४९॥

कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

द्वितीयाविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

८९१. कर्मणि द्वितीया २।३।२॥

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात्। हरिं भजति।

अभिहिते तु कर्मादौ प्रथमा। हरिः सेव्यते। लक्ष्म्या सेवितः।

....

में रुत्वविसर्ग करके **एकः**। **द्वि+औ** में **त्यदादीनामः** से अत्व, **द्व+औ** बना। वृद्धि होकर **द्वौ** बना। **बहु+जस्** में **जसि च** से गुण करके अवादेश, रुत्वविसर्ग करके **बहवः** सिद्ध हुआ।

८८९- सम्बोधने च। सम्बोधने सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से **प्रथमा** की अनुवृत्ति आती है।

सम्बोधन में प्रथमाविभक्ति होती है।

हे राम! राम से सम्बोधन अर्थ में **सम्बोधने च** से प्रथमा, एकत्वविवक्षा में सु, उसका **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः** से लोप, हे का पूर्वप्रयोग करके **हे राम!** सिद्ध हुआ।

८९०- कर्तुरीप्सिततमं कर्म। अतिशयेन ईप्सितम् ईप्सिततमम्। कर्तुः षष्ठ्यन्तम्, ईप्सिततमं प्रथमान्तं, कर्म प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

कर्ता को अपनी क्रिया के द्वारा अत्यन्त इष्ट अर्थात् जिसे विशेषरूप से प्राप्त करना चाहता है, उस कारक की कर्मसंज्ञा होती है।

एक वाक्य में **कर्ता**, **कर्म** और **क्रिया** ये तीन या तीन से अधिक भी होते हैं। इसमें कर्म कौन सा है? यह जानने के लिए इस सूत्र का सहारा लिया जाता है। जैसे **रामः पुस्तकं पठति** इस वाक्य में **पठति** यह **क्रिया** है और **रामः** यह **कर्ता** है। राम कर्ता को पठनक्रिया द्वारा अत्यन्त इष्ट है **पुस्तक**, अतः **पुस्तक** की कर्मसंज्ञा होती है। इसी प्रकार **देवदत्तः पत्रं लिखति** में कर्ता देवदत्त को लेखनक्रिया द्वारा अत्यन्त अभीष्ट है **पत्र**, अतः **पत्र** की कर्मसंज्ञा हुई। कर्मसंज्ञा का फल **कर्मणि द्वितीया** से द्वितीया विभक्ति का विधान करना है।

८९१- कर्मणि द्वितीया। कर्मणि सप्तम्यन्तं, द्वितीया प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अनभिहिते** का अधिकार है। **अभिहित** का अर्थ **उक्त** होता है, न अभिहितः=अनभिहितः= अनुक्तस्तस्मिन् अनभिहिते।

अनुक्त कर्म में द्वितीयाविभक्ति होती है।

अनुक्त कर्म अर्थात् जिस कर्म-रूप अर्थ को **कृत्, तिङ्** आदि के द्वारा न कहा गया हो अर्थात् **कर्म** अर्थ में **कृत्** आदि प्रत्यय न हुए हों वह। **यस्मिन् प्रत्ययः स उक्तः।** जिस अर्थ में प्रत्यय होता है, वह उक्त होता है। मोटे तौर पर जैसे- **रामः पुस्तकं पठति** इस वाक्य में **पठ्** धातु से लट् लकार **लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः** के द्वारा **कर्ता** अर्थ में हुआ। इसलिए इस वाक्य का कर्ता **उक्त** हुआ। एक **उक्त** होता है तो शेष स्वतः **अनुक्त** हो जाते हैं। इसलिए इस वाक्य में जो **कर्मवाचक** शब्द है **पुस्तक**, वह अनुक्त

हुआ। कर्म के अनुक्त होने पर **कर्मणि द्वितीया** इस सूत्र के द्वारा द्वितीयाविभक्ति का विधान होता है तो **पुस्तक** से द्वितीया विभक्ति हुई-**पुस्तकम्**। इसी तरह सभी जगह समझना चाहिए। उक्त और अनुक्त की व्यवस्था को भलीभाँति समझ लेना चाहिए।

पहले तो कर्म क्या है यह जानना और उसके बाद कर्म उक्त है कि अनुक्त यह जानना चाहिए। कर्ता अर्थ में प्रत्यय हुआ है तो कर्ता उक्त तथा कर्म अनुक्त होता है और कर्म अर्थ में प्रत्यय हुआ है तो कर्म उक्त तथा कर्ता अनुक्त होता है। कर्ता उक्त है तो कर्म आदि सारे स्वतः अनुक्त हो जायेंगे। इस सूत्र से अनुक्त कर्म में ही द्वितीया विभक्ति होती है। यदि कर्म ही उक्त हो जाय तो कर्म में द्वितीया विभक्ति नहीं हो पाती। कर्म के उक्त हो जाने के बाद तो **प्रातिपदिकार्थमात्र** में प्रथमा विभक्ति ही होती है।

(देवदत्तः) हरिं भजति। देवदत्त हरि का भजन करता है। इस वाक्य में **भज्** धातु से लट् लकार अर्थात् **ति** कर्ता अर्थ में हुआ, अतः कर्ता **उक्त** है। कर्ता के उक्त होने से **कर्म** स्वतः **अनुक्त** हो जायेगा। इस वाक्य का **कर्म** क्या है? इस प्रश्न पर हमने **कर्तुरीप्सिततं कर्म** से पूछा तो उसने कहा- **कर्ता को क्रिया के द्वारा प्राप्त करने में जो अत्यन्त इष्ट है, वही कर्म है।** यहाँ पर **कर्ता देवदत्त** भजनक्रिया के द्वारा **हरि** को प्राप्त करना चाहता है, इसलिए **हरि** यह **कर्म** हुआ। **कर्म अनुक्त** है इसलिए हरि में **कर्मणि द्वितीया** से **द्वितीया** विभक्ति हुई। **हरि** से **अम्** और **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **हरिम्** सिद्ध होता है। **मकार** को **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार होकर **वा पदान्तस्य** से वैकल्पिक परसवर्ण हो जाता है तो **हरिम्भजति** बनता है। परसवर्ण न होने के पक्ष में **हरिं भजति**।

जब कोई विभक्ति प्राप्त न हो तो प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा विभक्ति हो जायेगी। जैसे **हरिः सेव्यते** इस वाक्य में सेव् धातु से कर्म अर्थ में प्रत्यय हुआ अतः कर्म उक्त हुआ। इसी प्रकार **लक्ष्म्या सेवितो हरिः** में क्त-प्रत्यय **तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः** से कर्म अर्थ में हुआ है। अतः कर्म के उक्त होने के कारण प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा विभक्ति होती है।

अनीप्सित कारक की भी **कर्मसंज्ञा** के लिए एक सूत्र है जो **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में पठित नहीं है। वह है- **तथायुक्तं चानीप्सितम्**। तथायुक्तं प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनीप्सितं प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** यह सम्पूर्ण पूर्वसूत्र अनुवृत्त होता है। इस सूत्र के **तथा** इस पद से पूर्व सूत्र में कथित विषय का ग्रहण है। **उस तरह के ईप्सिततम कर्म से युक्त अनीप्सित कारक की भी कर्मसंज्ञा होती है।**

ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति। देवदत्त गाँव को जाता हुआ तिनके को छूता है। मुख्य क्रिया **जाना** है और अमुख्य क्रिया **छूना** है। अतः ईप्सिततम कर्म **ग्राम** है, अतः उसकी पूर्वसूत्र से ही कर्मसंज्ञा हो जाती है किन्तु गाँव जाते हुए तिनके को **छूना** तो इप्सित नहीं है। अब उसमें कौन सी विभक्ति हो सकती है? इसी समस्या के समाधान के लिए यह सूत्र आकर अनीप्सित कारक **तृण** की भी कर्मसंज्ञा करता है जिससे **कर्मणि द्वितीया** से द्वितीया विभक्ति होकर **तृणम्** बन जाता है। ऐसे बहुत से उदाहरण मिल सकते हैं।

कर्मसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

८९२. अकथितं च १।४।५१॥

अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

दुह्-याच्-पच्-दण्ड्-रुधि-प्रच्छि-चि-ब्रू-शासु-जि-मथ्-मुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नी-हृ-कृष्-वहाम्॥

गां दोग्धि पयः। बलिं याचते वसुधाम्। तण्डुलानोदनं पचति। गर्गान् शतं दण्डयति। व्रजमवरुणद्धि गाम्। माणवकं पन्थानं पृच्छति। वृक्षमवचिनोति फलानि। माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा। शतं जयति देवदत्तम्। सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति। देवदत्तं शतं मुष्णाति। ग्राममजां नयति हरति कर्षति वहति वा।

अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा।

बलिं भिक्षते वसुधाम्। माणवकं धर्मं भाषते अभिधत्ते वक्तीत्यादि।

इति द्वितीया।

....

८९२- **अकथितं च**। अकथितं प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से **कर्म** की अनुवृत्ति आती है और **कारके** का अधिकार है।

अपादान आदि कारकों के द्वारा अविवक्षित कारक कर्मसंज्ञक होता है।

अकथित का तात्पर्य है **न कहना** अथवा कहने की इच्छा न करना। किसके द्वारा? **अपादान, सम्प्रदान, करण, अधिकरण** के द्वारा। यदि वक्ता की तत्तत् कारक के रूप में कहने की इच्छा न हुई तो उन कारकों को **अकथित** कहा जायेगा। ऐसे अकथित सामान्य कारकों की इस सूत्र से कर्मसंज्ञा हो जायेगी।

इस प्रकार से सभी **अकथित** की कर्मसंज्ञा प्राप्त हो रही थी तो इसके लिए श्लोक के द्वारा नियम बनाया कि- **जिस किसी भी धातु के योग में अकथितों की कर्मसंज्ञा नहीं होती किन्तु दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुध्, प्रच्छ्, चि, ब्रू, शास्, जि, मथ्, मुष्, नी, हृ, कृष्, वह् इन धातुओं के योग में ही जो अकथित अर्थात् वक्ता के द्वारा अपादान आदि विभक्ति के रूप में अविवक्षित हों उनकी कर्मसंज्ञा होती है, अन्यों की नहीं**। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अपादान आदि विभक्तियाँ होंगी ही नहीं। वे विभक्तियाँ तो होती ही हैं किन्तु जब वक्ता के द्वारा अपादान आदि तत्तद् रूप में कहने की इच्छा नहीं की गई, तब इस सूत्र के द्वारा उनकी कर्मसंज्ञा की जायेगी। उदाहरण आगे देखिये-

देवदत्तो गां पयः दोग्धि (देवदत्त गाय से दूध दुहता है) इस वाक्य में **कर्ता** है **देवदत्त**, क्रियापद है **दोग्धि** (दुह् धातु, अदादि, लट्, प्रथमपुरुष एकवचन), दोहनक्रिया द्वारा कर्ता को अत्यन्त अभीष्ट वस्तु है **पयः**=दूध। अतः **पयस्** को इष्टतम कर्म मानकर **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति पहले ही हो चुकी है। यहाँ वक्ता **गो** को अपादान के रूप में कहना नहीं चाहता अपितु **उपयुज्यमान पयः** के प्रति निमित्त

मानता है। इस प्रकार अपादान के रूप में कहने की इच्छा न होने के कारण **गो** यह अविवक्षित हुआ। उसकी **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा हो गई और **कर्मणि द्वितीया** से द्वितीयाविभक्ति भी हो गई- **गां दोग्धि पयः**। यहाँ पर अपादान होने के कारण पञ्चमीविभक्ति होकर **गोः दोग्धि पयः** भी हो सकता है। दो कर्म हो जाने से एक प्रधान कर्म होगा जिसे इप्टतम कर्म कहते हैं और एक अप्रधान कर्म होगा जिसे अकथित कर्म कहते हैं। दो कर्म होने के कारण यह धातु **द्विकर्मक** माना जाता है। जिस वाक्य में **अकथितं च** की प्रवृत्ति होती है, उस वाक्य का धातु द्विकर्मक ही होगा। ऐसे द्विकर्मक धातुओं की संख्या सोलह है। ये हैं- **दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुध्, प्रच्छ्, चि, ब्रू, शास्, जि, मथ्, मुष्, नी, हृष्, कृष्** और **वह्**।

इस सूत्र से की जाने वाली संज्ञा **अर्थनिबन्धना** है अर्थात् इन धातुओं से मिलते-जुलते अर्थ वाले अन्य धातुओं के योग में भी अकथित की कर्मसंज्ञा की जायेगी। अब आगे व्याख्या में उक्त सभी धातुओं के क्रमशः उदाहरण दे रहे हैं।

(देवदत्तः) गां दोग्धि पयः। इसका उदाहरण तो आपने ऊपर देख ही लिया है।

(वामनः) बलिं याचते वसुधाम्। वामन भगवान् बलि से पृथ्वी माँगते हैं। कर्ता **वामन**, क्रिया **याचते**, इष्टतम कर्म **वसुधा** और अकथित कर्म **बलि** है। इष्टतम कर्म में कर्मसंज्ञा और द्वितीया विभक्ति तो निर्विवाद है ही। यहाँ पर अपादान होने के कारण पञ्चमीविभक्ति प्राप्त होकर **बलेः वसुधां याचते** ऐसा ही सम्भव हो रहा था किन्तु कर्ता के द्वारा अपादान के रूप में कहने की इच्छा न रखने पर **अकथितं च** से **कर्मसंज्ञा** होकर **बलि** में द्वितीयाविभक्ति हुई। अतः **बलिं याचते वसुधाम्** भी बन गया।

(पाचकः) तण्डुलानोदनं पचति। रसोइया चावलों से भात पकाता है। कर्ता **पाचक**, क्रिया **पचति**, इष्टतम कर्म **ओदन** और अकथित कर्म **तण्डुल** है। यहाँ पर तण्डुल में करण होने के कारण तृतीया विभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर तण्डुल में द्वितीयाविभक्ति हुई- **तण्डुलान् ओदनं पचति**।

(प्रधानः) गर्गान् शतं दण्डयति। सरपंच गर्गों से सौ रुपये जुर्माना लगाता है। कर्ता **प्रधान**, क्रिया **दण्डयति**, इष्टतम कर्म **शत** और अकथित कर्म **गर्ग** है। यहाँ पर गर्ग में अपादान होने के कारण पञ्चमीविभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर गर्ग में द्वितीयाविभक्ति हुई- **गर्गाञ्छतं दण्डयति**।

(कृष्णः) व्रजमवरुणद्धि गाम्। श्रीकृष्ण व्रज में गौ को रोकते हैं। कर्ता कृष्ण, क्रिया अवरुणद्धि, इष्टतम कर्म गौ और अकथित कर्म व्रज है। यहाँ पर व्रज में अधिकरण होने के कारण सप्तमीवभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अधिकरण अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर व्रज में द्वितीयाविभक्ति हुई- **व्रजम् अवरुणद्धि गाम्**।

(पथिकः) माणवकं पन्थानं पृच्छति। पथिक बच्चे से मार्ग पूछता है। कर्ता पथिक, क्रिया पृच्छति, इष्टतम कर्म पन्था और अकथित कर्म माणवक है। यहाँ पर माणवक में अपादान की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अपादान अविवक्षित होने से अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर माणवक में द्वितीयाविभक्ति हुई- **माणवकं पन्थानं पृच्छति**।

(कृषकः) वृक्षमवचिनोति फलानि। कृषक वृक्ष से फल तोड़ता या चुनता है। कर्ता कृषक, क्रिया चिनोति, इष्टतम कर्म फल और अकथित कर्म वृक्ष है। यहाँ पर वृक्ष में अपादान होने के कारण पञ्चमीवभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता द्वारा अपादान अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर वृक्ष में द्वितीयाविभक्ति हुई- **वृक्षम् अवचिनोति फलानि।**

(पिता) माणवकं धर्मं ब्रूते, शास्ति वा। पिता बच्चे को (ब्रह्मचारी के लिए) धर्म बताता है। ब्रू और शास् धातु का योग। कर्ता पिता, क्रिया ब्रूते और शास्ति, इष्टतम कर्म धर्म और अकथित कर्म माणवक है। यहाँ पर माणवक में सम्प्रदान होने के कारण चतुर्थी विभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता से सम्प्रदान अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर माणवक में द्वितीया विभक्ति हुई- **माणवकं धर्मं ब्रूते, शास्ति वा।**

(यज्ञदत्तः) शतं जयति देवदत्तम्। यज्ञदत्त देवदत्त से सौ जीतता है। कर्ता यज्ञदत्त, क्रिया जयति, इष्टतम कर्म शत और अकथित कर्म देवदत्त है। यहाँ पर देवदत्त में अपादान होने के कारण पञ्चमीवभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अपादान अविवक्षित करने के कारण अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर देवदत्त में द्वितीयाविभक्ति हुई- **शतं जयति देवदत्तम्।**

(देवासुराः) सुधां क्षीरनिधिं मथ्नन्ति। देव और दानव क्षीरसागर से अमृत मथते हैं। कर्ता देवासुर, क्रिया मथ्नन्ति, इष्टतम कर्म सुधा और अकथित कर्म क्षीरनिधि है। यहाँ पर क्षीरनिधि में अपादान या अधिकरण होने के कारण पञ्चमीविभक्ति या सप्तमीविभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर **क्षीरनिधि** में द्वितीया विभक्ति हुई- **सुधां क्षीरनिधिं मथ्नन्ति।**

(रामदेवः) देवदत्तं शतं मुष्णाति। रामदेव देवदत्त से सौ रुपये चुराता है। कर्ता रामदेव, क्रिया मुष्णाति, इष्टतम कर्म शत और अकथित कर्म देवदत्त है। यहाँ पर देवदत्त में अपादान होने के कारण पञ्चमीवभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अपादान अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर देवदत्त में द्वितीया विभक्ति **देवदत्तं शतं मुष्णाति।**

(पशुपालः) ग्राममजां नयति, हरति, कर्षति, वहति। पशुपालक गाँव में बकरी को ले जाता है। यहाँ नी, हृष्, कृष् और वह् चार धातुओं का प्रयोग है। कर्ता पशुपाल, क्रिया नयति, हरति, कर्षति, वहति, इष्टतम कर्म अजा और अकथित कर्म ग्राम है। यहाँ पर ग्राम में अधिकरण होने के कारण सप्तमीवभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अधिकरण अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर ग्राम में द्वितीया विभक्ति हुई- **ग्रामम् अजां नयति, हरति, कर्षति वहति वा।**

अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा। इस **अकथितं च** सूत्र से जिन धातुओं के योग में कर्मसंज्ञा होती है, उन धातुओं का जो अर्थ, यदि वही अर्थ अन्य किसी धातु का भी हो तो उस धातु के योग में **अकथित कर्म** मान लिया जाता है। जैसे- **याच्** धातु का **माँगना** अर्थ है और **भिक्ष्** धातु का अर्थ भी **माँगना** ही है। इसलिए समानार्थक **भिक्ष्** धातु के योग में **कर्मसंज्ञा** होकर **बलिं भिक्षते वसुधाम्** बनता है। जैसे **ब्रू** धातु के योग में अकथित कर्म सम्भव है, उसी प्रकार से समानार्थक **भाष्, वच्, अभि+धा** के योग में भी अकथित

मानकर कर्मसंज्ञा करके **माणवकं धर्मं ब्रूते**, **शास्ति** की तरह **माणवकं धर्मं भाषते**, **वक्ति**, **अभिधत्ते** बना सकते हैं।

लघुसिद्धान्तकौमुदी में अपठित किन्तु अत्यन्त उपयोगी निम्न सूत्र को यहाँ दिया जा रहा है। छात्र इस पर अवश्य ध्यान दें- **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ**। गतिश्च बुद्धिश्च प्रत्यवसानञ्च गतिबुद्धिप्रत्यवसानानि, तानि अर्थः येषां ते गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थाः(धातवः)। शब्दः कर्म येषां ते शब्दकर्माणः। अविद्यमानं कर्म येषां ते अकर्मकाः। गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थाश्च शब्दकर्माणश्च अकर्मकाश्च ते गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ-शब्दकर्माकर्मकास्तेषाम्। न णिः अणिः, अणौ कर्ता अणिकर्ता। गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ-शब्दकर्माकर्मकाणां षष्ठ्यन्तम्, अणिकर्ता प्रथमान्तं, स प्रथमान्तं, णौ सप्तम्यन्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कारके** का अधिकार है और **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से **कर्म** की अनुवृत्ति आती है।

गति अर्थ वाले धातु, ज्ञान अर्थ वाले धातु, भोजन अर्थ वाले धातु, शब्द सम्बन्धी कर्म वाले धातु और अकर्मक धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञा होती है।

इस सूत्र के अर्थ को समझने के पहले **ण्यन्त-कर्ता** और **अण्यन्त कर्ता** को समझना जरूरी है। आपने **ण्यन्तप्रकरण** में देखा कि **पठति** से **पाठयति**, **चलति** से **चालयति**, **भवति** से **भावयति** आदि रूप बने थे। किसी भी धातु से प्रेरणा अर्थ में **णिच्** होकर पुनः उसकी धातुसंज्ञा होकर लट् आदि लकार आते हैं। **णिच्**-प्रत्यय लगने के बाद धातु **ण्यन्त** हो जाता है। **णिच्** नहीं हुआ है तो वह **अण्यन्त** कहलायेगा। सामान्य धातु का कर्ता अन्य कुछ होता है तो णिजन्त धातु का कर्ता अन्य ही होता है। जैसे **देवदत्तः पठति** (देवदत्त पढ़ता है) में पठ् धातु है और अण्यन्त है। अण्यन्त अवस्था का कर्ता **देवदत्तः** है। अब **पठ्** धातु से **णिच्** कर दें, **ण्यन्त** हो जायेगा, **पाठयति** बनेगा। पाठयति का अर्थ हुआ- **पढ़ाता है**। पढ़ने वाला देवदत्त था तो पढाने वाला अन्य कोई होगा। आचार्य पढ़ाते हैं, अतः पढ़ाने के कर्ता आचार्य हुए। तब वाक्य बना- **आचार्यः देवदत्तं पाठयति**। इस प्रकार से आपने देखा कि अण्यन्त अवस्था में जो **देवदत्त** कर्ता था वह ण्यन्त अवस्था में कर्म हुआ। **देवदत्तः पठति, आचार्यः तं देवदत्तं पाठयति**= देवदत्त पढ़ता है और आचार्य उस देवदत्त को पढ़ाते हैं। दो वाक्यों में एक अण्यन्त अवस्था का वाक्य है तो एक ण्यन्त अवस्था का वाक्य है। यह सूत्र अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञा करता है। उक्त वाक्य में अण्यन्त अवस्था का कर्ता देवदत्त था, उसी की इस सूत्र से कर्मसंज्ञा हुई। कर्मसंज्ञा का फल **कर्मणि द्वितीया** से द्वितीया विभक्ति करना है। इस वाक्य में पूर्व कर्ता **देवदत्त** में द्वितीया विभक्ति हुई- **आचार्यः देवदत्तं पाठयति**। अण्यन्त अवस्था में कर्ता के साथ क्रिया तो रहती ही है, इष्टतम कर्म भी रह सकता है और उसकी **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से कर्मसंज्ञा होकर उसमें द्वितीया विभक्ति होती है। वह इस सूत्र का विषय नहीं है।

सारे धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता को ण्यन्त में कर्मसंज्ञा नहीं करता किन्तु कुछ ही धातुओं में यह कार्य होता है। जैसे **गति अर्थ वाले धातु, ज्ञान अर्थ वाले धातु, भोजन अर्थ वाले धातु, शब्द सम्बन्धी कर्म वाले धातु** और **अकर्मक** धातु हों, उन्हीं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता को ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञा होती है। धातुपाठ में जिस धातु का अर्थ **गत्याम्, गतौ** आदि लिखा है ऐसे धातु, ज्ञान अर्थ वाले धातु, भोजन अर्थ वाले धातु,

जिन धातुओं का कर्म शब्द से सम्बन्ध रहता है, जैसे पढ़ाना आदि और जिन धातुओं में कर्म ही नहीं लगते ऐसे अकर्मक धातुओं के अण्यन्त की अवस्था को पहले देखना होगा। उसके बाद उन धातुओं में णिच् प्रत्यय अर्थात् ण्यन्त का रूप बनाना होगा। फिर अण्यन्त अवस्था के कर्ता को वर्तमान ण्यन्त अवस्था में इस सूत्र के द्वारा कर्मसंज्ञा की जायेगी। इनके उदाहरण क्रमशः बताये जा रहे हैं।

रामः कृष्णं गृहं गमयति। राम कृष्ण को घर भेजता है। यह गत्यर्थक **गम्** धातु का उदाहरण है। पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य बनाइये- **कृष्णः गृहं गच्छति।** कर्ता **कृष्णः**, इष्टतम कर्म **गृहम्**, क्रिया **गच्छति** है। जाने वाले **कृष्ण** को भेजने वाला **राम** है। **गच्छति** इस अण्यन्त रूप को **हेतुमति च** से णिच् करके ण्यन्त में बदल दिया। गच्छति से **गमयति** बना। अण्यन्त अवस्था में **कृष्ण** कर्ता था तो उसको भेजने वाला **राम** ण्यन्त में **कर्ता** बना। गत्यर्थक धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था के कर्ता **कृष्ण** की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ-शब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति हो गई **रामः कृष्णं गृहं गमयति।।**

आचार्यश्छात्रं कौमुदीं बोधयति। आचार्य छात्र को कौमुदी समझाता है। यह बुद्ध्यर्थक **बुध्** धातु का उदाहरण है। पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य बनाइये- **छात्रः कौमुदीं बुध्यते।**(बुध अवबोधने, दिवादि, आत्मनेपदी)। कर्ता **छात्रः**, इष्टतम कर्म **कौमुदीम्**, क्रिया **बुध्यते** है। समझने वाले छात्र को **समझाने** वाला **आचार्य** है। **बुध्यते** इस **अण्यन्त** रूप को **हेतुमति च** से णिच् करके ण्यन्त में बदल दिया। **बुध्यते से बोधयति** बना। अण्यन्त अवस्था में छात्र **कर्ता** था तो उसको समझाने वाला आचार्य **ण्यन्त** में **कर्ता** बना। बुद्ध्यर्थक धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था के कर्ता **छात्र** की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति हो गई- **आचार्यः छात्रं कौमुदीं बोधयति।**

माता पुत्रं क्षीरान्नं भोजयति। माता पुत्र को खीर खिलाती है। यह भोजनार्थक **भुज्** धातु का उदाहरण है। (**भुज पालनाभ्यवहारयोः**, रुधादि, भोजन अर्थ में आत्मनेपदी।) पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य बनाइये- **पुत्रः क्षीरान्नं भुङ्क्ते।** कर्ता **पुत्रः**, इष्टतम कर्म **क्षीरान्नं**, क्रिया **भुङ्क्ते** है। खाने वाले पुत्र को खिलाने वाली माता है। इस अण्यन्तरूप को **हेतुमति च** से णिच् करके ण्यन्त में बदल दिया। भुङ्क्ते से **भोजयति** बना। अण्यन्त अवस्था में पुत्र कर्ता था तो उसको खिलाने वाली माता ण्यन्त में **कर्ता** बनी। भोजनार्थक धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था के कर्ता पुत्र की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति हो गई- **माता पुत्रं क्षीरान्नं भोजयति।**

गुरुः शिष्यान् वेदार्थान् पाठयति। गुरु शिष्यों को वेदार्थ (वेदों के अर्थों को) पढाते हैं। यह **शब्दकर्मक पठ् धातु** का उदाहरण है। पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य बनाइये- **शिष्यः वेदार्थं पठति।** कर्ता शिष्यः, इष्टतम कर्म वेदार्थम्, क्रिया पठति है। पढ़ने वाले शिष्य को पढ़ाने वाला गुरु है। **पठति** इस अण्यन्त रूप को **हेतुमति च** से णिच् करके ण्यन्त में बदल दिया। पठति से **पाठयति** बना। अण्यन्त अवस्था में शिष्य कर्ता था तो उसको पढाने वाला गुरु ण्यन्त में कर्ता बना। शब्दकर्मक धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था के कर्ता शिष्य की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ- शब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति हो गई- **गुरुः शिष्यान् वेदार्थान् पाठयति।**

कर्तृसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

८९३. स्वतन्त्रः कर्ता १।४।५४॥

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्।

करणसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

८९४. साधकतमं करणम् १।४।४२॥

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात्।

....

कौशल्या रामं शाययति। कौशल्या राम को सुलाती है। यह अकर्मक (अदादि, आत्मनेपदी) **शी** धातु का उदाहरण है। पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य बनाइये- **रामः शेते।** कर्ता राम, अकर्मक धातु होने के कारण इष्टतम कर्म नहीं है, क्रिया शेते है। सोने वाले राम को सुलाने वाली कौशल्या है। शेते इस अण्यन्त रूप को ण्यन्त में अर्थात् **हेतुमति च** से णिच् करके ण्यन्त में बदल दिया। शेते से **शाययति** बना। अण्यन्त अवस्था में राम कर्ता था तो उसको सुलाने वाली कौशल्या ण्यन्त में कर्ता बनी। अकर्मक धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था के कर्ता राम की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ- शब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति हो गई- **कौशल्या रामं शाययति।**

क्रिया की सिद्धि अर्थात् निष्पत्ति में जो जो साधक अर्थात् निमित्त होते हैं उन्हें कारक कहते हैं। जैसे- **कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण।** इन कारकों में से जो सबसे स्वतन्त्र हो अर्थात् जो क्रिया का निष्पादन करता हो, उसको **कर्ता** कहा गया है। तात्पर्य यह है कि जैसे अन्य कारक कर्ता से प्रेरित होकर क्रिया का निष्पादन करते हैं वैसे कर्ता अन्य कारकों से प्रेरित होकर क्रिया का निष्पादन नहीं करता अपितु स्वतन्त्रतया क्रिया का जनक होता है। कर्तृवाच्य में जिस प्रकार से कर्ता के अनुसार क्रिया में भी पुरुष और वचन की व्यवस्था की जाती है, उस प्रकार कर्म आदि के अनुसार नहीं है। इसलिए क्रिया में कर्ता स्वतन्त्र विवक्षित होता है।

८९३- स्वतन्त्रः कर्ता। स्वतन्त्रः प्रथमान्तं, कर्ता प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

क्रिया में स्वतन्त्र रूप से विवक्षित अर्थ कर्तृसंज्ञक होता है।

वाक्य में कर्ता, कर्म, क्रिया आदि होते हैं। वाक्य में जो प्रधान होता है या क्रिया की सिद्धि जिससे होती है, वह जो वाक्य में प्रधानतया अवस्थित रहता है, जिसके विना क्रिया हो ही नहीं पाती है, ऐसे कारक की **कर्तृसंज्ञा**(कर्ता-संज्ञा) इस सूत्र से की जाती है। कर्ता ही क्रिया का जनक होता है। कर्ता के अनुसार ही क्रिया में लिङ्ग, संख्या आदि का निर्धारण होता है। **जैसे राम पढ़ता है** इस वाक्य में क्रिया है- **पढ़ता है**, इस क्रिया की सिद्धि में राम की अनिवार्य भूमिका है, उसके विना क्रिया की सिद्धि हो ही नहीं सकती। अतः **राम** को कर्ता माना गया।

८९४- साधकतमं करणम्। साधकतमं प्रथमान्तं, करणं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में भी **कारके** का अधिकार है।

क्रिया की सिद्धि में अत्यन्त सहायक कारक की करणसंज्ञा होती है।

श्यामः वाहनेन आपणं गच्छति- श्याम गाड़ी से बाजार जाता है। इस वाक्य में

तृतीयाविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

८९५. कर्तृकरणयोस्तृतीया २।३।१८॥

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात्।

रामेण बाणेन हतो बाली।

इति तृतीया।

सम्प्रदानसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

८९६. कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् १।४।३२॥

दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात्।

....

श्याम के बाजार पहुँचने में अत्यन्त सहायक है **वाहन**। अतः **वाहन** की इस सूत्र से करणसंज्ञा हुई। करणसंज्ञा का फल तृतीया-विभक्ति करना है। वाहन में करणसंज्ञा होकर तृतीया विभक्ति हो गई- **वाहनेन**।

८९५- **कर्तृकरणयोस्तृतीया**। कर्ता च करणं च कर्तृकरणे, तयोः। कर्तृकरणयोः सप्तम्यन्तं, तृतीया प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अनभिहिते** का अधिकार है। अनभिहिते का अर्थ है- **अनुक्ते**।

अनुक्त कर्ता और अनुक्त करण में तृतीया-विभक्ति होती है।

रामेण बाणेन हतो बाली। राम के द्वारा बाण से बाली मारा गया। यहाँ हननक्रिया में स्वतन्त्रतया विवक्षित होने से **स्वतन्त्रः कर्ता** के अनुसार राम **कर्ता** है। इसी प्रकार हननक्रिया में अत्यन्त सहायक होने से **साधकतमं करणम्** से बाण की **करणसंज्ञा** हुई है। यहाँ पर हन् धातु से **तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः** से कर्म अर्थ में क्त प्रत्यय होकर **हतः** बना है। कर्म अर्थ में प्रत्यय होने के कारण कर्म उक्त हुआ और कर्ता, करण आदि स्वतः अनुक्त हुए। **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से अनुक्त कर्ता राम और अनुक्त करण बाण दोनों में तृतीयाविभक्ति हो गई- **रामेण बाणेन हतो बाली**। इस वाक्य में बाली कर्म है। कर्म के उक्त होने के कारण **कर्मणि द्वितीया** से **द्वितीया-विभक्ति** नहीं हुई, किन्तु **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाण- वचनमात्रे प्रथमा** से प्रातिपदिकार्थमात्र में **प्रथमा** विभक्ति हुई-**बाली**।

छात्रों को समझाने के लिए करण-तृतीया और दे रहे हैं-

बालकः कन्दुकेन क्रीडति। बालक गेंद से खेलता है। इस वाक्य में खेलन रूप क्रिया में स्वतन्त्र विवक्षित **बालक** है। **क्रीड्** धातु से **कर्ता** अर्थ में लकार हुआ है। अतः इस वाक्य में कर्ता **उक्त** है। **कर्ता** उक्त हुआ तो कर्म, करण आदि स्वतः अनुक्त हुए। बालक के खेलने में अत्यन्त सहायक है **गेंद**। अतः **गेंद** का वाचक **कन्दुक** शब्द **साधकतमं करणम्** से **करणसंज्ञक** है। **करणसंज्ञा** का फल **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से तृतीया विभक्ति करना है। अतः कन्दुक में तृतीया विभक्ति हो गई- **बालकः कन्दुकेन क्रीडति**।

८९६- **कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्**। कर्मणा तृतीयान्तं, यं द्वितीयान्तम्, अभिप्रैति तिङन्तं क्रियापदं, स प्रथमान्तं, सम्प्रदानं प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कारके** का अधिकार है।

चतुर्थीविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

८९७. चतुर्थी सम्प्रदाने २।३।१३।।

विप्राय गां ददाति।

चतुर्थीविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

८९८. नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च २।३।१६।।

एभिर्योगे चतुर्थी। हरये नमः। प्रजाभ्यः स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्। तेन दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः समर्थः शक्त इत्यादि।

इति चतुर्थी।

....

कर्ता, दान आदि कर्म के द्वारा जिससे सम्बन्ध करना चाहता है, उसकी सम्प्रदानसंज्ञा होती है।

सम्यक् प्रदानं सम्प्रदानम्, इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसको वापस न लेने के लिए ही दिया जाता है, उसकी ही **सम्प्रदानसंज्ञा** होती है। जैसे- **विप्राय गां ददाति** में विप्र को गाय हमेशा के लिए दी गई, इसलिए विप्र की सम्प्रदानसंज्ञा होती है किन्तु **रजकस्य वस्त्रं ददाति** में धोबी को कपड़ा वापस लेने के लिए ही दिया जाता है। इसलिए रजक की सम्प्रदानसंज्ञा नहीं होती है। अतः **रजकस्य वस्त्रं ददाति** होता है।

८९७- **चतुर्थी सम्प्रदाने।** चतुर्थी प्रथमान्तं, सम्प्रदाने सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अनभिहिते** का अधिकार है।

अनुक्त सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति का विधान होती है।

(यजमानः) विप्राय गां ददाति। (यजमान) विप्र को गौ देता है। कर्ता यजमान, क्रिया ददाति, दानक्रिया के द्वारा इष्टतम कारक गो, अतः गो को इष्टतम कारक मानकर उसकी कर्मसंज्ञा, द्वितीयाविभक्ति। यहाँ पर दानकर्म के द्वारा अभिप्रेत है **विप्र**, उसकी **कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्** से सम्प्रदानसंज्ञा और **चतुर्थी सम्प्रदाने** से चतुर्थीविभक्ति हुई, **विप्राय गां ददाति।** ददाति में लट्-लकार कर्ता अर्थ में है, कर्ता अर्थ में प्रत्यय होने के कारण कर्ता उक्त है, अतः कर्म आदि सभी अनुक्त हुए तो सम्प्रदान भी अनुक्त हुआ। **रजकस्य वस्त्रं ददाति** में धोबी को कपड़ा वापस लेने के लिए ही दिया जाता है। इसलिए रजक की सम्प्रदानसंज्ञा न होने से चतुर्थी भी नहीं हुई। अतः सम्बन्ध-सामान्य में षष्ठी हो गई, **रजकस्य वस्त्रं ददाति।**

८९८- **नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च।** नमश्च स्वस्तिश्च स्वाहा च स्वधा च अलं च वषट् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषडः, तेषां योगो नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगस्तस्मान्नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगात्। **चतुर्थी सम्प्रदाने** से **चतुर्थी** की अनुवृत्ति आती है।

नमस्, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं, वषट् के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है।

इस सूत्र के द्वारा सम्प्रदानसंज्ञा की अपेक्षा नहीं की जाती और कारक की भी

अपादानसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

८९९. ध्रुवमपायेऽपादानम् १।४।२४॥

अपायो विश्लेषस्तस्मिन् साध्ये यद् ध्रुवमवधिभूतं कारकं तदपादानसंज्ञं स्यात्।

....

अपेक्षा नहीं होती। जैसे कर्मसंज्ञा, करणसंज्ञा कारक की ही होती है, वैसे यहाँ नहीं है। **नमस्** आदि ये शब्द जिस शब्द के साथ सम्बन्ध रखते हैं, उनमें चतुर्थी हो जायेगी। किसी पद-विशेष को देखकर होने वाली विभक्ति को **उपपदविभक्ति** कहते हैं और कारक को मानकर होने वाली विभक्ति को **कारकविभक्ति** कहते हैं। इस सूत्र से विधीयमान विभक्ति **उपपदविभक्ति** है।

हरये नमः। हरि को नमस्कार है। यहाँ पर हरि-शब्द **नमः** से सम्बन्धित अथवा युक्त है क्योंकि हरि को ही नमस्कार किया गया है। अतः **नमस्स्वस्तिस्वाहा-स्वधालंवषड्योगाच्च** से **हरि** में चतुर्थी विभक्ति हो गई- **हरये नमः**।

प्रजाभ्यः स्वस्ति। प्रजाओं का कल्याण हो। यहाँ पर स्वस्ति-शब्द प्रजा-शब्द से सम्बन्धित अथवा युक्त है क्योंकि प्रजाओं का ही कल्याण कहा जा रहा है। अतः **नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च** से **प्रजाभ्यः** में चतुर्थी विभक्ति हो गई- **प्रजाभ्यः स्वस्ति**।

अग्नये स्वाहा। यह अग्नि के लिए हवि(आहुति)। यहाँ पर स्वाहा-शब्द अग्नि-शब्द से सम्बन्धित अथवा युक्त है क्योंकि हवि अग्नि का नामोच्चारण करके ही दी जा रही है। अतः **नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च** से **अग्नये** में चतुर्थी विभक्ति हुई- **अग्नये स्वाहा**।

पितृभ्यः स्वधा। पितरों को यह अन्न और जल। यहाँ पर स्वधा-शब्द पितृ-शब्द से सम्बन्धित अथवा युक्त है क्योंकि तर्पण आदि पितरों के लिए ही दिया जाता है। अतः **नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च** से **पितृभ्यः** में चतुर्थी विभक्ति हो गई- **पितृभ्यः स्वधा**।

अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्। इस सूत्र में **अलम्** से **पर्याप्ति** अर्थात् **समर्थ** अर्थ वाले शब्दों का ग्रहण किया गया है। जैसे **अलम्** का अर्थ **समर्थ** है, उसी प्रकार **प्रभु, समर्थ, शक्त** का अर्थ भी समर्थ=पर्याप्त है, अतः उन सभी के योग में चतुर्थी की जाती है। जैसे- **दैत्येभ्यो हरिरलं, दैत्येभ्यो हरिः प्रभुः, दैत्येभ्यो हरिः समर्थः, दैत्येभ्यो हरिः शक्तः** इत्यादि वाक्यों में **अलम्, प्रभुः, समर्थः, शक्तः** के योग में चतुर्थी हुई। **दैत्यों को जीतने के लिए हरि समर्थ हैं।**

८९९- ध्रुवमपायेऽपादानम्। ध्रुवं प्रथमान्तम्, अपाये सप्तम्यन्तम्, अपादानं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

अपाय(अलगाव) होने में जो ध्रुव है, उसकी अपादान-संज्ञा होती है।

वियोग, जुदाई, अलग होने को **अपाय** कहते हैं और वह अलगाव जिससे होता है उसे ध्रुव कहा गया है। ध्रुव का अर्थ अटल या अचल नहीं है, उसका अर्थ केवल वियोग जिससे होता है, वह है। इसलिए **धावतोऽश्वात् पतति** में पतन-क्रिया चलते हुए घोड़े से होने पर भी घोड़े की अपादानसंज्ञा होती है। इस अलग होने में जो ध्रुव उसकी अपादानसंज्ञा इस सूत्र से हो जाती है। अपादानसंज्ञा का फल **अपादाने पञ्चमी** से पञ्चमीविभक्ति होना है।

पञ्चमीविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

९००. अपादाने पञ्चमी २।३।२८॥

ग्रामादायाति। धावतोऽश्वात् पतति।

इति पञ्चमी।

षष्ठीविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

९०१. षष्ठी शेषे २।३।५०॥

कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिसम्बन्धः शेषस्तत्र षष्ठी। राज्ञः पुरुषः।

कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव।

सतां गतम्। सर्पिषो जानीते। मातुः स्मरति। एधो दकस्योपस्कुरुते। भजे शम्भोश्चरणयोः।

इति षष्ठी।

....

९००- **अपादाने पञ्चमी**। अपादाने सप्तम्यन्तं, पञ्चमी प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

अपादान में पञ्चमी होती है।

(पथिकः) ग्रामाद् आयाति। पथिक गाँव से आता है। यहाँ कर्ता **पथिक** है, **आयाति** क्रिया है और **पथिक** का **ग्राम** से अलगाव हो रहा है इसलिए पृथक्करण अथवा वियोग होना हुआ। गाँव से अलगाव हो रहा है, इसलिए गाँव ही ध्रुव है, अतः **ग्राम** की **ध्रुवमपायेऽपादानम्** से **अपादानसंज्ञा** और उससे ही **अपादाने पञ्चमी** से **पञ्चमीविभक्ति** हुई- **ग्रामादायाति।**

(अश्वारोही) धावतोऽश्वात् पतति। घुड़सवार दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है। इस वाक्य में **दौड़ता हुआ घोड़ा** ध्रुव है अर्थात् दौड़ते हुए घोड़े से अलगाव हो रहा है, अतः उसकी अपादानसंज्ञा और पञ्चमीविभक्ति होकर **धावतोऽश्वात् पतति** बना। **धावत्** इस शतृ-प्रत्ययान्त शब्द में तो **अश्वात्** के **विशेषण** होने के कारण पञ्चमी है।

९०१- **षष्ठी शेषे**। षष्ठी प्रथमान्तं, शेषे सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

कारक और प्रातिपदिकार्थ से भिन्न स्व-स्वामिभावादि सम्बन्ध को शेष कहते हैं। उस शेष अर्थ में षष्ठी विभक्ति होती है।

शेष अर्थात् बचा हुआ, प्रातिपदिकार्थ, कर्म, करण, अपादान, अधिकरण आदि संज्ञायें जहाँ नहीं हुई हों वह शेष है। शेष कई प्रकार के सम्बन्धों से जुड़ा है। जैसे- **स्वस्वामिभावसम्बन्ध**(एक स्वामी और दूसरी वस्तु), **अवयवावयविभावसम्बन्ध**(एक अङ्ग और दूसरा अङ्गी), **जन्यजनकभावसम्बन्ध**(एक पैदा करने वाला और दूसरा पैदा होने वाला), **प्रकृतिविकृतिभावसम्बन्ध**(एक प्रकृति और दूसरी उससे होने वाली विकृति, विकार) आदि। सम्बन्ध एक होता है किन्तु द्विष्ठ अर्थात् दो में एक साथ रहता है। षष्ठी को कारक नहीं माना जाता है और इसके विधान में किसी संज्ञा की आवश्यकता नहीं होती है।

राज्ञः पुरुषः। राजा का आदमी। यहाँ राजा **स्वामी** है और पुरुष स्व है। **स्वस्वामिभाव सम्बन्ध** मानकर **षष्ठी शेषे** से **राजन्**-शब्द में षष्ठी हुई- **राज्ञः पुरुषः।**

अधिकरणसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

९०२. आधारोऽधिकरणम् १।४।४५॥

कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणं स्यात्।

....

मम गृहम्। मेरा घर। **मैं** स्वामी हूँ और **घर स्व** है। स्वस्वामिभावसम्बन्ध मानकर **षष्ठी शेषे** से अस्मत्-शब्द में **षष्ठी** विभक्ति हुई- **मम गृहम्।**

वृक्षस्य शाखा। वृक्ष की डाल। डाल अङ्ग है और वृक्ष अङ्गी, अवयवावयविभावसम्बन्ध मानकर **षष्ठी शेषे** से षष्ठी विभक्ति हुई- **वृक्षस्य शाखा।**

पितुः पुत्रम्। पिता का पुत्र। पिता जनक है और पुत्र जन्य। जन्यजनकभावसम्बन्ध में **षष्ठी शेषे** से षष्ठी हुई- **पितुः पुत्रम्।**

सुवर्णस्य कङ्कणम्। सोने का कंगन। सोना प्रकृति और उसको विकृत करके निर्मित कंगन विकृति है। प्रकृति-विकृतिभाव सम्बन्ध में **षष्ठी शेषे** से षष्ठी हुई- **सुवर्णस्य कङ्कणम्।**

कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव। कर्म आदि में भी सम्बन्धमात्र की विवक्षा करने पर षष्ठी होती है।

सतां गतम्। सज्जनों का गमन। इस वाक्य में **सत्** शब्द से सम्बन्ध की विवक्षा करने पर षष्ठी हुई। यहाँ गमन-क्रिया करने वाला होने से **सज्जन** कर्ता है और वह अनुक्त भी है। अतः अनुक्त कर्ता में **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से तृतीया होकर **सद्भिः** होना चाहिए, परन्तु जब गमन-क्रिया और सज्जन कर्ता में क्रिया-कर्तृभाव सम्बन्ध की विवक्षा की जाती है तो सम्बन्ध-सामान्य में षष्ठी होकर **सतां गतम्** सिद्ध होता है।

सर्पिषो जानीते। घी के लिए प्रवृत्त होता है। इसमें **सत्** शब्द से सम्बन्ध की विवक्षा करने पर षष्ठी हुई। यहाँ पर **घी** के कारण भोजन में प्रवृत्त होता है, अतः **सर्पिष्**(घी) करण था। इसलिए तृतीया प्राप्त थी किन्तु सम्बन्ध के रूप में विवक्षा करने के कारण षष्ठी हो जाती है।

मातुः स्मरति। माता का स्मरण करता है। यहाँ क्रिया-कर्मभाव सम्बन्ध की विवक्षा की गई अतः **मातृ** से षष्ठी हो गई। इसी तरह **एधो दकस्योपस्कुरुते।** लकड़ी जल का गुण ग्रहण करता है। इस वाक्य में कर्म **दक** की सम्बन्धत्वेन विवक्षा करने से षष्ठी हो गई- **दकस्य।** एवं प्रकारेण **भजे शम्भोश्चरणयोः।** शम्भु के चरणों का भजन करता हूँ। कर्म में सम्बन्ध की विवक्षा करने के कारण **चरणयोः** में षष्ठी हुई है।

मूलकार ने **कर्तृकर्मणोः कृति** यह सूत्र नहीं पढ़ा है। छात्रों के अध्ययन के लिए अति उपयुक्त समझकर हम यहाँ व्याख्या में दे रहे हैं।

कर्तृकर्मणोः कृति। कर्ता च कर्म च कर्तृकर्मणी, तयोः कर्तृकर्मणोः। कर्तृकर्मणोः षष्ठ्यन्तं, कृति सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **षष्ठी** की अनुवृत्ति आती है।

कृत् के योग होने पर कर्ता और कर्म में षष्ठी होती है।

कृष्णस्य कृतिः। कृष्ण की रचना। कृ धातु से क्तिन् प्रत्यय होकर **कृतिः** बना है। इसके योग में **कर्ता कृष्ण** में **कर्तृकर्मणोः कृति** से **षष्ठी** हुई।

जगतः कर्ता कृष्णः। संसार के कर्ता कृष्ण हैं। कृ धातु से तृच् प्रत्यय होकर **कर्ता** बना है। इसके योग में कर्म **जगत्** में **कर्तृकर्मणोः कृति** से षष्ठी हुई।

९०२- आधारोऽधिकरणम्। आधारः प्रथमान्तम्, अधिकरणं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

सप्तमीविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

९०३. सप्तम्यधिकरणे च २।३।३६॥

अधिकरणे सप्तमी स्यात्, चकाराद् दूरान्तिकार्थेभ्यः।
औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा।
कटे आस्ते। स्थाल्यां पचति। मोक्षे इच्छास्ति। सर्वस्मिन्नात्मास्ति।
वनस्य दूरे अन्तिके वा।

इति सप्तमी।

इति विभक्त्यर्था:॥३७॥

....

कर्ता कर्म के द्वारा उनमें रहने वाली क्रिया का आधार जो कारक वह अधिकरणसंज्ञक होता है।

क्रिया साक्षात् किसी आधार में नहीं रहती किन्तु कर्ता या कर्म द्वारा रहती है। जैसे **देवदत्तः कटे आस्ते** में **आसन**(रहना) क्रिया देवदत्त कर्ता के द्वारा **कट** में है और **स्थाल्यां तण्डुलं पचति** में पाक क्रिया **तण्डुल** कर्म के द्वारा **स्थाली**(पात्र) में है।

जिस में वस्तु स्थित रहे, वह **आधार** है। आधार में रहने वाली वस्तु **आधेय** होती है। जैसे बरतन में चावल। चावल के लिए बरतन आधार है, बरतन में रहने वाला चावल आधेय हुआ। इस सूत्र से आधार की **अधिकरणसंज्ञा** होती है।

९०३- **सप्तम्यधिकरणे च**। सप्तमी प्रथमान्तम्, अधिकरणे सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है तथा दूर और समीप वाचक शब्दों में सप्तमीविभक्ति होती है।

आधार के तीन भेद हैं- **औपश्लेषिक, वैषयिक** और **अभिव्यापक।**

औपश्लेषिक आधार- कटे आस्ते। स्थाल्यां पचति। यहाँ पर **कट** और **स्थाली** की अधिकरण संज्ञा होकर **सप्तम्यधिकरणे च** से सप्तमी विभक्ति हो जाती है।

उप=समीपे, श्लेषः संयोगादिसम्बन्ध उपश्लेषः। उपश्लेषसम्बन्धी आधार **औपश्लषिक आधार**। जहाँ आधार का आधेय के साथ संयोग आदि सम्बन्ध हो वहाँ **औपश्लेषिक आधार** होता है। जैसे- **कटे आस्ते।** चटाई पर है। यहाँ पर कट का बैठने वाले के साथ **संयोगसम्बन्ध** है, अतः कटे आस्ते में **औपश्लेषिक-आधार** है। इसी प्रकार **स्थाल्यां पचति** में भी समझना चाहिए।

वैषयिक आधार- मोक्षे इच्छास्ति। व्याकरणे रुचिः।

विषय का अर्थात् **विषयता-सम्बन्ध** से **आधार**। यह आधार बुद्धिस्थ होता है। जैसे- **मोक्षे इच्छास्ति**। मोक्ष के विषय में इच्छा है। यहाँ पर मोक्ष इच्छा का विषय है। इसी प्रकार **शास्त्रे रुचिः, नारायणे भक्तिः** आदि में भी समझना चाहिए।

अभिव्यापक आधार- सर्वस्मिन्नात्मास्ति।

जहाँ आधार के प्रत्येक स्थल पर आधेय की स्थिति हो वहाँ **अभिव्यापक आधार** समझना चाहिए। जैसे- **सर्वस्मिन् आत्मा अस्ति।** आत्मा सर्वत्र, सभी में है अर्थात् ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ आत्मा नहीं हो। यहाँ पर व्यापकता अर्थात् अभिव्यापक है।

इसलिए अभिव्यापक सम्बन्ध को लेकर सप्तमीविभक्ति हुई- **सर्वस्मिन्नात्मास्ति।** इसी प्रकार **तिलेषु तैलम्, दुग्धे घृतम्** आदि भी समझना चाहिए।

वनस्य दूरे। ग्रामस्य समीपे। सप्तम्यधिकरणे च इस सूत्र में चकार के पढ़ने से यह अर्थ निकाला गया है कि इस सूत्र के पहले **दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च** से जिन शब्दों से द्वितीया का विधान किया गया, उन्हीं शब्दों से सप्तमी भी हो। ऐसे दूर और अन्तिक वाचक दूर और समीप शब्दों से सप्तमी विभक्ति हुई- **वनस्य दूरे। ग्रामस्य समीपे।**

कारकप्रकरण भाषाविज्ञान की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। पाणिनीय अष्टाध्यायी में अथवा वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में इस प्रकरण को लगभग सवा सौ सूत्रों और वार्तिकों से पूर्ण किया गया है। ऐसे विशाल प्रकरण को यहाँ कुछ ही सूत्रों से ही बताया गया है। अत: यहाँ पर अत्यन्त संक्षिप्त कथन ही हो पाया है। इसलिए यह केवल दिग्दर्शनमात्र है।

अष्टाध्यायी का पारायण आप निरन्तर कर ही रहे होंगे। उसके प्रथम अध्याय में कर्म, करण आदि संज्ञा करने वाले सारे सूत्र आ जाते हैं तथा दूसरे अध्याय में विभक्ति के विधान के लिए सूत्र हैं। अत: इस प्रकरण को समझने के बाद अन्य सूत्र याद हों तो अलग से भी समझा जा सकता है।

अब इस प्रकरण के बाद समास प्रकरण में प्रवेश करना है। हमारी **लघुसिद्धान्तकौमुदी** की यात्रा धीरे-धीरे पूर्णता की ओर है। सबसे पहले **संज्ञाप्रकरण**, उसके बाद **सन्धिप्रकरण**, उसके बाद **षड्लिङ्गप्रकरण,** उसके बाद **धातुप्रकरण**, उसके बाद **कृदन्तप्रकरण** और उसके बाद **कारकप्रकरण** तक के पड़ाव हमने पूरे किये। अब इसके बाद **समासप्रकरण** और **तद्धितप्रकरण** दो पड़ाव बीच में आयेंगे। उसके बाद **स्त्रीप्रत्यय** अन्तिम पड़ाव है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि नवीन पड़ाव में पहुँचने पर पुरानी बातें विस्मृत सी हो जाती हैं। कहीं ऐसा यहाँ पर भी न हुआ हो! एतदर्थ आप प्रतिदिन पुराने प्रकरणों को भी देखते रहें।

परीक्षा

द्रष्टव्य:- प्रत्येक प्रश्न पाँच-पाँच अंक के हैं और अनिवार्य भी हैं।

१- प्रथमाविभक्ति के किन्हीं पाँच शब्दों की सिद्धि दिखाइये ५
२- द्वितीयाविभक्ति के किन्हीं पाँच शब्दों की सिद्धि दिखाइये ५
३- तृतीयाविभक्ति के किन्हीं पाँच शब्दों की सिद्धि दिखाइये ५
४- चतुर्थीविभक्ति के किन्हीं पाँच शब्दों की सिद्धि दिखाइये ५
५- पञ्चमीविभक्ति के किन्हीं पाँच शब्दों की सिद्धि दिखाइये ५
६- षष्ठीविभक्ति के किन्हीं पाँच शब्दों की सिद्धि दिखाइये ५
७- सप्तमीविभक्ति के किन्हीं पाँच शब्दों की सिद्धि दिखाइये ५
८- षष्ठी विभक्ति को कारक क्यों नहीं माना जाता और प्रातिपदिक से आप क्या समझते हैं? ५
९- उपपदविभक्ति क्या है? दो उदाहरण सहित बताइये। ५
१०- कारकप्रकरण पर एक पेज का एक लेख लिखिए। ५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का विभक्त्यर्थ (कारक) प्रकरण पूर्ण हुआ।३७।।

अथ समासाः

तत्रादौ केवल-समासः

समासः पञ्चधा। तत्र समसनं समासः।
स च विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः॥१॥
प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावो द्वितीयः॥२॥
प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषस्तृतीयः।
तत्पुरुषभेदः कर्मधारयः। कर्मधारयभेदो द्विगुः॥३॥
प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिश्चतुर्थः॥४॥
प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः॥५॥

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **समासप्रकरण** का आरम्भ होता है। समासज्ञान के विना संस्कृत का ज्ञान हो ही नहीं सकता। इसलिए समास का ज्ञान सन्धिज्ञान के साथ ही आवश्यक है। हिन्दी आदि भाषाओं में भी समास होता ही है। जैसे **रामनाम** इस वाक्य में राम का नाम= रामनाम, गङ्गा का जल=गङ्गाजल, देश का भक्त=देशभक्त, मत का अधिकार=मताधिकार आदि। हम हिन्दी आदि भाषाओं में समास हुए शब्दों का प्रयोग तो करते हैं, किन्तु यह नहीं जानते कि समास क्या होता है। आइये, समास के विषय में थोड़ी चर्चा करते हैं।

समास एक संज्ञा है। **अनेकपदानामेकपदीभवनं समासः**। अनेक पद मिलकर एकपद होना समास है। समास का विग्रह है- **समसनं समासः** अर्थात् संक्षिप्त होने को समास कहते हैं। दो या दो से अधिक शब्द जहाँ एक जगह, एकपद, एक अर्थ वाले बन जाते हैं, उसे समास कहते हैं। जैसे **गङ्गायाः जलम्** में **गङ्गायाः** षष्ठ्यन्त अलग पद है और **जलम्** प्रथमान्त अलग पद है। **गङ्गायाः** का अर्थ है- **गङ्गा का** और **जलम्** का अर्थ है **पानी**। ये पद भी अलग हैं और अर्थ भी अलग हैं। समास करके एक पद हो जायेगा- **गङ्गाजलम्** और अर्थ भी एक ही होगा- **गङ्गाजल**। इसलिए कहा जाता है कि समास में एकार्थीभाव-रूप सामर्थ्य रहता है। जहाँ पदार्थों की एक साथ उपस्थिति होती है, पृथक्-पृथक् नहीं, वहाँ एकार्थीभाव-रूप सामर्थ्य होता है। समास दो या दो से अधिक शब्दों के साथ होता है। समास के पाँच भेद होते हैं- **केवल** या **सामान्यसमास, अव्ययीभावसमास, तत्पुरुषसमास, बहुव्रीहिसमास** और **द्वन्द्वसमास**।

केवल-समास

इस समास में समास तो होता है किन्तु समासविशेष की संज्ञा नहीं होती है। इसीलिए इसे केवल-समास कहा जाता है। इसका उदाहरण है- **भूतपूर्वः**।

अव्ययीभाव-समास

इस समास में प्रायः **अव्यय** पूर्व में होता है। समास होने के बाद पूरा शब्द **अव्ययीभावश्च** से **अव्यय** बन जाता है। इस समास में पूर्वपद के अर्थ की प्रधानता होती है। इसका उदाहरण है- **उपकृष्णम्**=कृष्ण के समीप।

तत्पुरुष-समास

तत्पुरुषसमास में उत्तरपद अथवा परपद अर्थात् दूसरा या अन्तिम पद का अर्थ प्रधान होता है। इसका विग्रह करना भी सरल ही है। जैसे-

सः	पुरुषः	तत्पुरुषः	तं	पुरुषः	तत्पुरुषः
तेन	पुरुषः	तत्पुरुषः	तस्मै	पुरुषः	तत्पुरुषः
तस्मात्	पुरुषः	तत्पुरुषः	तस्य	पुरुषः	तत्पुरुषः

तस्मिन् पुरुषः तत्पुरुषः आदि।

बहुव्रीहि-समास-

इस समास में पूर्वपद का अर्थ भी प्रधान नहीं होता और उत्तरपद का अर्थ भी प्रधान नहीं होता किन्तु किसी अन्य ही पद का अर्थ प्रधान होता है। जैसे **पीतानि अम्बराणि यस्य सः पीताम्बरः**, पीले कपड़े हैं जिसके वह **कृष्ण**। समास होने के बाद यहाँ पर पीत का अर्थ भी प्रधान नहीं है और अम्बर का अर्थ भी प्रधान नहीं है किन्तु अन्य पदार्थ **कृष्ण** का अर्थ प्रधान हो गया। इसलिए बहुव्रीहिसमास अन्यपदार्थप्रधान माना जाता है।

द्वन्द्व-समास-

समास के लिए जितने शब्द लिये गये हैं, उन सभी शब्दों का अर्थ प्रधान होता है, अर्थात् उभयपदार्थप्रधान **द्वन्द्वसमास** होता है। इसके उदाहरण हैं- **रामश्च कृष्णश्च रामकृष्णौ**।

इसके अतिरिक्त भी **नञ्, कर्मधारय, द्विगु, उपपदसमास** आदि अनेक समास माने गये हैं किन्तु इन्हीं पाँचों के अन्तर्गत आने के कारण पृथक् नहीं बताया गया है। इस प्रकार से यहाँ दिग्दर्शन मात्र कराया गया है, विशेष रूप से तो उन्हीं प्रकरणों में देखेंगे।

विग्रहः-

समास में विग्रह बनाया जाता है। आपने विग्रह कृदन्त में भी बनाया है और आगे तद्धित में भी बनायेंगे। **कृत्, तद्धित, समास आदि की वृत्तियों के अर्थबोध कराने के लिए जो वाक्य या पदावली होती है, उसे विग्रह कहते हैं**। जैसे- **राज्ञः पुरुषः** यह राजपुरुष का विग्रह है। इसी प्रकार **पीतानि अम्बराणि यस्य** यह पीताम्बर का विग्रह है। विग्रह भी दो प्रकार के होते हैं- **लौकिक विग्रह** और **अलौकिक विग्रह**। लोक में प्रयुक्त होने वाला विग्रह **लौकिक विग्रह** है। जैसे- **राज्ञः पुरुषः** कहने से राजा का आदमी यह अर्थ लोक का सामान्य आदमी कर लेता है। **अलौकिक विग्रह** केवल व्याकरण की प्रक्रिया के लिए होता है। जैसे- **राजन् ङस् पुरुष सु**। राज्ञः में जो विभक्ति है, वह ङस् है और पुरुषः में जो विभक्ति है वह सु है। हम लोक में **राजन् ङस् पुरुष सु** का प्रयोग नहीं कर सकते। सबके समझने के लिए **राज्ञः पुरुषः** ही बोलना पड़ेगा। इसी प्रकार **देवदत्तः गृहं**

परिभाषासूत्रम्

९०४. समर्थः पदविधिः २।१।१॥

पदसम्बन्धी यो विधिः स समर्थाश्रितो बोध्यः।

समाससंज्ञाधिकारविधायकमधिकारसूत्रम्

९०५. प्राक्कडारात्समासः २।१।३॥

'कडारा कर्मधारये' इत्यतः प्राक् **समास** इत्यधिक्रियते।

....

गच्छति के लिए **देवदत्त+सु, गृह+अम्, गच्छ्+लट्** ऐसा नहीं बोल सकते। इससे यह ज्ञात हुआ कि लोक में प्रयोग करने योग्य विग्रह को **लौकिक विग्रह** और केवल व्याकरणशास्त्र की प्रक्रिया को सिद्ध करने के लिए बनाये गये विग्रह को **अलौकिक विग्रह** कहते हैं। समास के सूत्र अलौकिक विग्रह में ही लगते हैं।

९०४- समर्थः पदविधिः। पदस्य विधिः पदविधिः(षष्ठीतत्पुरुषः)। समर्थः प्रथमान्तं, पदविधिः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। नियम करने के कारण यह परिभाषा सूत्र है। इसको परिभाषा मानकर के ही यह नियम बनता है कि- **सम्पूर्ण पाणिनीय-अष्टाध्यायी में जहाँ कहीं भी पदों से सम्बन्धी कार्य कहा जायेगा, वह कार्य समर्थ पदों के आश्रय पर ही होगा, असमर्थ पदों के नहीं।**

आकांक्षा आदि के द्वारा पदार्थों में परस्पर सम्बन्ध होने की योग्यता होना ही सामर्थ्य है। जैसे **सुवर्णस्य** कहने के बाद यह आकांक्षा होती है कि **सुवर्ण का क्या?** उत्तर में कहा जाता है- **कङ्कणम्।** सोने का क्या? कंगना। **सोने का क्या?** की आकांक्षा **कंगना** से पूर्ण हो जाती है। इस तरह सुवर्णस्य और कङ्कणम् ये दोनों पद परस्पद **आकांक्षायुक्त** हैं। इन दोनों पद में **सामर्थ्य** है, इसलिए इनमें पदसम्बन्धी कार्य समास आदि हो जायेंगे। **भार्या सुवर्णस्य कङ्कणं राज्ञः** में **भार्या** का **सुवर्ण** के साथ और **कङ्कण** का **राज्ञः** के साथ परस्पर **आकांक्षा** न होने से **सामर्थ्य** नहीं है। अतः इन दो पदों का समास नहीं होता। सामर्थ्य दो प्रकार का होता है- **व्यपेक्षा** और **एकार्थीभाव।** **१.** वाक्य में परस्पर अन्वय होने की योग्यता रूप जो सामर्थ्य होता है, उसे **व्यपेक्षा** रूप सामर्थ्य कहा जाता है और **२.** समास हो जाने के बाद समस्त पदों के द्वारा जो विशिष्ट अर्थ की उपस्थिति होती है, उसे **एकार्थीभाव** रूप सामर्थ्य कहा जाता है। इसी प्रकार **कृत्, तद्धित** आदि प्रत्यय सम्बन्धी कार्य भी पदकार्य हैं। अतः वे भी समर्थ पदों में ही होते हैं।

९०५- प्राक्कडारात्समासः। प्राक् अव्ययपदं, कडारात् पञ्चम्यन्तं, समासः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। यह अधिकारसूत्र है।

कडाराः कर्मधारये इस सूत्र से पूर्व तक इस सूत्र का अर्थात् समासः इस पद का अधिकार चलता है।

यथा- **''सह सुपा''** यह सूत्र **प्राक्कडारात्समासः** सूत्र से लेकर **कडाराः कर्मधारये** इन दोनों सूत्रों के **मध्य** में आता है, अतः इस सूत्र में भी **समासः** का अधिकार होने से इस सूत्र में **समास** पद आता है। जहाँ-जहाँ भी **समासः** का अधिकार जाता है और उन सूत्रों से जो कार्य होता है, उसे समास कहते हैं।

समासविधायकं विधिसूत्रम्

९०६. सह सुपा २।१।४॥

सुप् सुपा सह सह वा समस्यते। समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुक्। परार्थाभिधानं वृत्तिः। कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः। वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः। स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा। तत्र पूर्वं भूत इति लौकिकः। पूर्व अम् भूत सु इत्यलौकिकः। भूतपूर्वः। **भूतपूर्वे चरडिति** निर्देशात् पूर्वनिपातः।

वार्तिकम्- **इवेन सह समासो विभक्त्यलोपश्च।** वागर्थौ इव वागर्थाविव।

इतिः केवलसमासः॥३८॥

....

९०६- **सह सुपा।** सह अव्ययपदं, सुपा तृतीयान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे** से **सुप्** और **प्राक्कडारात्समासः** से **समासः** की अनुवृत्ति आती है। **समर्थः पदविधिः** इस परिभाषासूत्र से समास के सभी सूत्रों में **समास समर्थाश्रित होना चाहिए,** यह नियम आता ही है।

सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है।

समास होने के बाद **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा होती है और प्रातिपदिक के अवयव सुप् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् होता है।

परार्थाभिधानं वृत्तिः। समास आदि में जब पद अपने स्वार्थ को पूर्णतया या अंशतः छोड़कर एक विशिष्ट अर्थ को कहने लग जाते हैं तो उसे आचार्यों ने वृत्ति कहा है। वृत्ति में शब्दों का अर्थ मिश्रित होकर एकाकार अर्थ का रूप धारण कर लेता है। यह **वृत्ति** पाँच प्रकार की है- **कृदन्तवृत्ति, तद्धितवृत्ति, समासवृत्ति, एकशेषवृत्ति** और **सनाद्यन्तधातुवृत्ति।**

वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः। स च लौकिकोऽलौकिकश्च। वृत्ति के अर्थ का बोध कराने के लिए जो वाक्य होता है उसे विग्रह कहते हैं, वह लौकिक और अलौकिक दो प्रकार का होता है। जो लोक के लिए समझने लायक विग्रह होता है, उसे **लौकिक विग्रह** और जो केवल व्याकरण में सूत्रादि के प्रवृत्ति के लिए अर्थात् शास्त्रीयनिर्वाह के लिए विग्रह होता है, उसे **अलौकिक विग्रह** कहते हैं।

भूतपूर्वः। (जो पहले हुआ हो।) **पूर्वं भूतः** यह लौकिक विग्रह और **पूर्व अम् भूत सु** यह अलौकिक विग्रह है। अलौकिक विग्रह में **पूर्व** के बाद **अम्** विभक्ति है और **भूत** के बाद **सु** विभक्ति है। लौकिक विग्रह में विभक्ति को जोड़कर प्रयोग किया गया है और अलौकिक विग्रह में विभक्ति को अलग ही रखा गया है। **पूर्व अम् भूत सु** इस अलौकिक विग्रह में समास करने के लिए सूत्र लगा- **सह सुपा।** सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है। **सुबन्त** है- **पूर्व अम्,** इसके साथ एकार्थीभाव सामर्थ्य रखने वाला समर्थ सुबन्त है- **भूत सु।** इस सूत्र से **'पूर्व अम् भूत सु'** का समास हो गया अर्थात् यह **पूरा समुदाय** समाससंज्ञा को प्राप्त हो गया। **समास** करने के बाद **'पूर्व अम् भूत सु'** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से **प्रातिपदिकसंज्ञा** हो गई, **'पूर्व अम् भूत**

सु' यह पूरा समुदाय **प्रातिपदिक** कहलाया। इसलिए इसमें लगे हुए प्रत्यय प्रातिपदिक के अवयव बन गये। **अम्** और सु इन दो प्रत्ययों का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **पूर्व भूत** बना। **भूतपूर्वे चरट्**। इस सूत्र में **भूत** का पहले प्रयोग और पूर्व का बाद में प्रयोग किया है। पाणिनि जी के इस निर्देश को मानकर हम भी **भूत** शब्द का पहले प्रयोग करते हैं। **भूतपूर्व** बना। पहले **'पूर्व अम् भूत सु'** की **प्रातिपदिकसंज्ञा** की गई थी किन्तु वह सब बदल गया, **भूतपूर्व** बना, फिर भी वह प्रातिपदिक बना हुआ है, क्योंकि एक परिभाषा है- **एकदेशविकृतमनन्यवत्**। एक भाग में कोई विकार आ जाय तो वह कोई दूसरा नहीं बन जाता, वह ही रहता है अथात् किसी कुत्ते की पूँछ कट जाय तो वह कुत्ता ही रहता है, अन्य प्राणी नहीं कहलाता। इस परिभाषा के बल पर पहले के प्रातिपदिक में विकृति आने पर भी **प्रातिपदिकत्व** बना रहता है। अतः **भूतपूर्व** को प्रातिपदिक मानकर **सु** विभक्ति आई, उसको रुत्व और विसर्ग हुआ- **भूतपूर्वः**।

इवेन सह समासो विभक्त्यलोपश्च। यह वार्तिक है। **इव शब्द के साथ सुबन्त का समास होता है और विभक्ति का लोप नहीं होता।**

यह सूत्र समास करने के साथ-साथ **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से प्राप्त विभक्ति के लुक् का निषेध भी करता है।

वागर्थाविव। (वाणी और अर्थ की तरह।) **वागर्थौ इव** यह लौकिक विग्रह और **वागर्थ औ इव** यह अलौकिक विग्रह है। अलौकिक विग्रह में समास करने के लिए वार्तिक लगा- **इवेन सह समासो विभक्त्यलोपश्च**। इसके द्वारा समास होने के बाद **वागर्थ औ इव** की प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई और बीच में विद्यमान **औ विभक्ति** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् प्राप्त हुआ तो इसी वार्तिक के द्वारा उसके अलुक् का विधान हुआ। **वागर्थौ इव** बना। औकार के स्थान पर **एचोऽयवायावः** से आव् आदेश होकर **वागर्थाविव** बन गया।

समास की प्रक्रिया में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें-

१- समास हमेशा समर्थ अर्थात् परस्पर आकांक्षा वाले पदों में ही होता है।

२- समास में लौकिक और अलौकिक दो प्रकार के विग्रह होते हैं और अलौकिक विग्रह में ही समास करने वाला सूत्र लगता है।

३- समास करने के लिए किसी सूत्र या वार्तिक की प्रवृत्ति होती है।

४- समास करने के बाद सम्पूर्ण समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा होती है।

५- समास के बाद दो शब्दों में किस का पूर्वनिपात अर्थात् पूर्व में प्रयोग हो, यह निर्णय किया जाता है जो आगे के प्रकरणों में बताया जा रहा है जिसमें उपसर्जनसंज्ञा और उपसर्जनसंज्ञक का पूर्वनिपात आदि का समावेश है।

६- अन्त में समास के प्रातिपदिकसंज्ञक होने के कारण पुनः **सु** आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है किन्तु अब किये जाने वाले सु आदि प्रत्ययों का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् नहीं होगा क्योंकि ये अब प्रातिपदिक के अवयव नहीं हैं। समास के लिए बनाये गये विग्रह में समास होने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा होने से वे प्रातिपदिक के अवयव होते हैं।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- प्रत्येक प्रश्न दस-दस अंक के हैं।

१- समास कितने होते हैं? उसका वर्णन कीजिए।

२- वृत्ति का क्या अर्थ है और कितने प्रकार की होती है? समझाइये।

३- **विग्रह** के सम्बन्ध में स्पष्टतया समझाइये।

४- **समर्थः पदविधिः** की व्याख्या कीजिए।

५- **भूतपूर्वः** इस समस्त शब्द की शुरु से सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का केवल-समास पूर्ण हुआ।

अथ-अव्ययीभावः

अधिकारसूत्रम्

९०७. अव्ययीभावः २।१।५॥

अधिकारोऽयं प्राक्तत्पुरुषात्।

समासविधायकं विधिसूत्रम्

९०८. अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु २।१।६॥

विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते सोऽव्ययीभावः। प्रायेणाविग्रहो नित्यसमासः, प्रायेणास्वपदविग्रहो वा।

विभक्तौ- **'हरि ङि अधि'** इति स्थिते-

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **अव्ययीभाव-समास** का आरम्भ होता है। प्रायः करके इस समास में एक पद **अव्ययसंज्ञक** होता है और एक पद अनव्यय। उस अव्यय के साथ समास होने पर पुनः उस समस्त शब्द की भी **अव्ययीभावश्च** से **अव्ययसंज्ञा** होती है अर्थात् **अव्ययीभाव समास** होने के बाद शब्द **अव्यय** बन जाता है। **इस समास में पूर्वपद के अर्थ की प्रधानता होती है।**

९०७- **अव्ययीभावः**। अव्ययीभावः प्रथममान्तम्, एकपदमिदं सूत्रम्। यह अधिकार सूत्र है।

तत्पुरुषः इस सूत्र से पहले तक अव्ययीभावः का अधिकार है।

यह सूत्र **तत्पुरुषः** से पहले तक के सभी सूत्रों में जा कर कहता है कि तुमने जो समास किया है- उसे **अव्ययीभाव-समास** कहते हैं।

९०८- **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु**। विभक्तिश्च, समीपं च समृद्धिश्च, व्यृद्धिश्च अर्थाभावश्च, अत्ययश्च, असम्प्रतिश्च, शब्दप्रादुर्भावश्च, पश्चाच्च, यथा च, आनुपूर्व्यञ्च, यौगपद्यञ्च, सादृश्यञ्च, सम्पत्तिश्च, साकल्यञ्च, अन्तवचनञ्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनानि, तेषु। अव्ययं प्रथमान्तं, विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-

उपसर्जनसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

९०९. प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् १।२।४३॥

समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात्।

पूर्वप्रयोगविधायकं विधिसूत्रम्

९१०. उपसर्जनं पूर्वम् २।२।३०॥

समासे उपसर्जनं प्राक्प्रयोज्यम्। इत्यधे: प्राक्प्रयोग:।

सुपो लुक्, एकदेशविकृतन्यायस्यानन्यत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वाद्युत्पत्ति:।

अव्ययीभावश्चेत्यव्ययत्वात् सुपो लुक्। अधिहरि।

....

सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे** से **सुप्** तथा **सह सुपा** से सह की अनुवृत्ति आती है। **समर्थ: पदविधि:** परिभाषा सूत्र का अर्थ भी उपस्थित रहता है।

विभक्ति, समीप, समृद्धि(ऋद्धि का आधिक्य), व्यृद्धि(वृद्धि का अभाव), अर्थाभाव, अत्यय(नष्ट होना), असम्प्रति(अब युक्त न होना), शब्दप्रादुर्भाव(शब्द का प्रकाश या प्रसिद्धि), पश्चात्(पीछे), यथा(योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्ति और सादृश्य), आनुपूर्व्य(क्रमश:), यौगपद्य(एकसाथ होना), सादृश्य(सदृश), सम्पत्ति, साकल्य(सम्पूर्णता) और अन्त(समाप्ति) अर्थों में विद्यमान अव्यय का समर्थ सुबन्त के साथ नित्य से समास होता है।

९०९- प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्। प्रथमया निर्दिष्टं प्रथमानिर्दिष्टम्। प्रथमानिर्दिष्टं प्रथमान्तं, समासे सप्तम्यन्तम्, उपसर्जनं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

समासविधायक सूत्र में प्रथमान्त जो पद, उसके द्वारा निर्दिष्ट शब्द उपसर्जनसंज्ञक होता है।

समास करने वाले सूत्रों में अथवा अनुवृत्ति लाकर बनाई गई वृत्ति में जो शब्द प्रथमाविभक्ति वाला है, उसके द्वारा निर्दिष्ट जो पद उसकी यह सूत्र **उपसर्जनसंज्ञा** करता है। जैसे **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तेवचनेषु** यह सूत्र समासविधायक है। इस सूत्र में प्रथमान्तपद है- **अव्ययम्।** इस पद से जिस का ग्रहण किया जाता है उसकी उपसर्जनसंज्ञा की जाती है तो आगे के प्रयोगों में अधि आदि पद अव्ययम् से गृह्यमाण हैं, अत: उनकी उपसर्जनसंज्ञा हो जायेगी।

९१०- उपसर्जनं पूर्वम्। उपसर्जनं प्रथमान्तं, पूर्वं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

उपसर्जनसंज्ञक का पूर्व में प्रयोग होता है।

यह सूत्र जिसकी **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हुई उसे पूर्व में प्रयोग करने का निर्देश देता है।

अधिहरि (हरि में) यह विभक्ति अर्थ में समास का उदाहरण है। इस प्रयोग में अधि शब्द सप्तमीविभक्ति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। **हरौ इति** यह लौकिक विग्रह और **हरि ङि अधि** यह अलौकिक विग्रह है। सूत्र अलौकिक विग्रह में ही लगते हैं। **हरि ङि**

नपुंसकलिङ्गविधायकं संज्ञासूत्रम्

९११. अव्ययीभावश्च २।४।१८॥

अयं नपुंसकं स्यात्।

सुपो लुङ्निषेधविधायकम् अमादेशविधायकं च विधिसूत्रम्

९१२. नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः २।४।८३॥

अदन्तादव्ययीभावात्सुपो न लुक्, तस्य पञ्चमीं विना अमादेशश्च स्यात्। गाः पातीति गोपास्तस्मिन्नित्यधिगोपम्।

....

अधि इस अलौकिक विग्रह में समास करने के लिए सूत्र लगा- **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य- यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु**। अव्यय का विभक्ति आदि अर्थों में समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है। यह अव्यय है- **अधि,** इसके साथ सामर्थ्य रखने वाला समर्थ सुबन्त है- **हरि ङि**। इस सूत्र से **हरि ङि अधि** का समास हो गया अर्थात् यह पूरा समुदाय **समाससंज्ञा** को प्राप्त हो गया। समास करने के बाद **हरि ङि अधि** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई, **हरि ङि अधि** यह पूरा समुदाय प्रातिपदिक कहलाया। इसलिए इसमें लगा ङि-प्रत्यय प्रातिपदिक का अवयव बन गया। **ङि** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **लुक्** हुआ। **हरि अधि** बना। **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** इस समासविधायक सूत्र में प्रथमान्तपद है- **अव्ययम्,** इस पद से निर्दिष्ट है- **अधि**, अतः **अधि** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **अधि** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **अधिहरि** बना। पहले **हरि ङि अधि** की प्रातिपदिकसंज्ञा की गई थी किन्तु वह सब बदल गया, **अधिहरि** बना, फिर भी वह प्रातिपदिक बना हुआ है। **एकदेशविकृतमनन्यवत्** के बल से विकृति होने पर भी वह प्रातिपदिक बना रहता है। अतः **अधिहरि** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और अव्ययप्रकरण के **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञक होने के कारण **अधिहरि** इस प्रातिपदिक से आई विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हुआ- **अधिहरि**।

९११- अव्ययीभावश्च। अव्ययीभावः प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **स नपुंसकम्** से **नपुंसकम्** की अनुवृत्ति आती है।

अव्ययीभाव-समास होने के बाद सिद्ध शब्द नपुंसकलिङ्ग वाला हो जाता है।

एक जैसे आनुपूर्वी वाले दो सूत्र दो स्थान पर भिन्न-भिन्न कार्य के लिए पढ़े गये हैं। एक तो अव्ययप्रकरण में है जो अव्ययसंज्ञा करता है और दूसरा इस प्रकरण में है जो नपुंसकलिङ्ग का विधान करता है।

९१२- नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः। न अव्ययपदम्, अव्ययीभावात् पञ्चम्यन्तम्, अतः पञ्चम्यन्तम्, अम् प्रथमान्तं, तु अव्ययपदम्, अपञ्चम्याः षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

इस सूत्र में **अव्ययादाप्सुपः** से **सुपः** और **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से लुक् की अनुवृत्ति आती है।

अदन्त अव्ययीभाव से परे सुप् का लुक् नहीं होता साथ ही पञ्चमी विभक्ति को छोड़कर के अन्य विभक्तियों के स्थान पर अम् आदेश होता है।

यह सूत्र **अव्ययादाप्सुपः** से प्राप्त सुप् के लुक् का निषेध करता है और साथ-साथ **सुप् विभक्ति** के स्थान पर **अम्** आदेश भी करता है किन्तु **पञ्चमी विभक्ति** के स्थान पर नहीं करता अर्थात् पञ्चमी विभक्ति को छोड़कर शेष विभक्तियों के स्थान पर **अम्** आदेश करता है, फिर भी इस सूत्र से **सुप्** के लुक् का निषेध तो पञ्चमी में भी होता ही है। **अम्** यह सु आदि प्रत्यय के स्थान में होने वाला आदेश है, अतः स्थानिवद्भावेन **अम्** में प्रत्ययत्व आ जायेगा जिससे **हलन्त्यम्** से प्राप्त मकार की इत्संज्ञा का **न विभक्तौ तुस्माः** से निषेध हो जायेगा। इसलिए पूरा **अम्** ही आदेश के रूप में रहेगा।

अधिगोपम्। गाः पातीति गोपाः, तस्मिन् गोपि इति, अधिगोपम्। **गोपि इति** लौकिकविग्रहः, **गोपा ङि अधि** इति अलौकिकविग्रहः। **गोपा ङि अधि** यह विभक्ति अर्थ में समास का उदाहरण है। इस प्रयोग में अधि शब्द सप्तमीविभक्ति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। **गोपा ङि अधि** इस अलौकिक विग्रह में समास करने के लिए सूत्र लगा- **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि- व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव- पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति- साकल्यान्तवचनेषु**। अव्यय का विभक्ति आदि अर्थों में समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है। अव्यय है- **अधि,** इसके साथ सामर्थ्य रखने वाला समर्थ सुबन्त है- **गोपा ङि**। इस सूत्र से **गोपा ङि अधि** का समास हो गया अर्थात् यह पूरा समुदाय समाससंज्ञा को प्राप्त हो गया। समास करने के बाद **गोपा ङि अधि** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई, **गोपा ङि अधि** यह पूरा समुदाय प्रातिपदिक कहलाया। इसलिए इसमें लगा **ङि**-प्रत्यय प्रातिपदिक का अवयव बन गया। **ङि** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **गोपा अधि** बना। **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावा-त्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्त-वचनेषु** इस समासविधायक सूत्र में प्रथमान्त पद है- **अव्ययम्,** इस पद से निर्दिष्ट है- **अधि,** अतः **अधि** की **उपसर्जनसंज्ञा** हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **अधि** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् **पर** में था **पूर्व** में आ गया- **अधिगोपा** बना। **अव्ययीभावश्च** से नपुंसक हुआ और **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से **अधिगोपा** में पा के आकार को ह्रस्व होकर **अधिगोप** बना। इसकी **अव्ययीभावश्च**(द्वितीय सूत्र) से अव्ययसंज्ञा हुई। पहले **गोपा ङि अधि** की प्रातिपदिकसंज्ञा की गई थी किन्तु वह सब बदल गया और **अधिगोप** बना है, फिर भी वह प्रातिपदिक बना हुआ है क्योंकि- **एकदेशविकृतमनन्यवत्** के बल से विकृति होने पर भी वह प्रातिपदिक बना रहता है। अतः **अधिगोप** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और अव्ययसंज्ञक होने के कारण **अधिगोप** इस प्रातिपदिक से आई सु आदि विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो उसे निषेध करने के लिए सूत्र लगा- **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः**। इस सूत्र से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **अधिगोप+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **अधिगोपम्**। इस सूत्र से पञ्चमी को छोड़कर सर्वत्र अम् आदेश होता है किन्तु सुप् लुक् का निषेध पञ्चमी में भी होता है।

बहुलेनाम्भावविधायकं विधिसूत्रम्

९१३. तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् २।४।८४॥

अदन्तादव्ययीभावात्तृतीयासप्तम्योर्बहुलमम्भावः स्यात्। अधिगोपम्, अधिगोपेन, अधिगोपे वा। कृष्णस्य समीपम् उपकृष्णम्। मद्राणां समृद्धिः- सुमद्रम्। यवनानां व्यृद्धिः- दुर्यवनम्। मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम्। हिमस्यात्ययोऽतिहिमम्। निद्रा सम्प्रति न युज्यत इत्यतिनिद्रम्। हरिशब्दस्य प्रकाश इतिहरि। विष्णोः पश्चाद्- अनुविष्णु। योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः। रूपस्य योग्यमनुरूपम्। अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम्। शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति।

....

इसलिए पञ्चमी को छोड़कर शेष विभक्तियों में समान रूप अर्थात् **अधिगोपम्** ही बनेंगे किन्तु पञ्चमी में **अधिगोपात्, अधिगोपाभ्याम्, अभिगोपेभ्यः** बनेंगे। तृतीया और सप्तमी विभक्ति में **तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्** से विकल्प से अम् आदेश होने के कारण **अधिगोपेन, अधिगोपाभ्याम्, अधिगोपैः** तथा **अधिगोपे, अधिगोपयोः, अधिगोपेषु** ये रूप भी अधिक बनते हैं। वैकल्पिक विधान करने वाले सूत्र को भी देखिये-

९१३- तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्। तृतीया च सप्तमी च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्तृतीयासप्तम्यौ, तयोः। तृतीयासप्तम्योः षष्ठ्यन्तं, बहुलं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से **अव्ययीभावात्, अतः** और **अम्** की अनुवृत्ति आती है।

अदन्त अव्ययीभाव से परे तृतीया और सप्तमी के स्थान पर बहुल से अम् आदेश होता है।

नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः से नित्य से प्राप्त **अम्** आदेश को **तृतीया** और **सप्तमी** विभक्ति के स्थान पर विकल्प से करता है। इस कार्य के उदाहरण ऊपर बताये जा चुके हैं। अब एक बार **अधिगोप** के सारे रूपों को तालिका में देखते हैं-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अधिगोपम्	अधिगोपम्	अधिगोपम्
द्वितीया	अधिगोपम्	अधिगोपम्	अधिगोपम्
तृतीया	अधिगोपम्, अधिगोपेन	अधिगोपम्, अधिगोपाभ्याम्	अधिगोपम्, अधिगोपैः
चतुर्थी	अधिगोपम्	अधिगोपम्	अधिगोपम्
पञ्चमी	अधिगोपात्	अधिगोपाभ्याम्	अधिगोपेभ्यः
षष्ठी	अधिगोपम्	अधिगोपम्	अधिगोपम्
सप्तमी	अधिगोपम्, अधिगोपे	अधिगोपम्, अधिगोपयोः	अधिगोपम्, अधिगोपेषु
सम्बोधन	हे अधिगोपम्	हे अधिगोपम्	हे अधिगोपम्

इसी तरह मालायाम् इति- **अतिमालम्,** खट्वायाम् इति- **अतिखट्वम्** आदि बनाइये।

उपकृष्णम्। कृष्ण के समीप। **कृष्णस्य समीपम्** यह लौकिक विग्रह और **कृष्ण**

ङस् उप अलौकिक विग्रह है। समीप अर्थ में विद्यमान **उप** के साथ **कृष्ण ङस् उप** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **कृष्ण ङस् उप** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **ङस्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **कृष्ण उप** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **उप** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से **उपसर्जनसंज्ञा** हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **उप** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **उपकृष्ण** बना। **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर उपकृष्ण को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और अव्ययप्रकरण के **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञक होने के कारण सु विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही **सु** के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ **उपकृष्ण+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **उपकृष्णम्**। पञ्चमी को छोड़कर सर्वत्र अम् आदेश और तृतीया और सप्तमी विभक्ति में **तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्** से विकल्प से अम् आदेश होने के कारण अम् के अभाव में **उपकृष्णम्, उपकृष्णेन, उपकृष्णाभ्याम्, उपकृष्णैः। उपकृष्णे, उपकृष्णयोः, उपकृष्णेषु** और अम् होने के पक्ष में सर्वत्र **उपकृष्णम्** ही बनता है।

उपकृष्ण की ही तरह कूपस्य समीपम्- **उपकूपम्,** वृक्षस्य समीपम् **उपवृक्षम्** आदि भी बनाइये।

सुमद्रम्। मद्रदेशवासियों की समृद्धि। **मद्राणां समृद्धिः** यह लौकिक विग्रह और **मद्र आम् सु** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर **सु** विभक्ति नहीं है अपितु **प्रादि** वाला **सु** है। समृद्धि के अर्थ में **सु** के साथ **मद्र+आम्+सु** में **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्था-भावा-त्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **मद्र+आम्+सु** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **आम्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **मद्र+सु** बना। प्रथमानिर्दिष्ट सु की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक सु का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **सु+मद्र** बना। **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **सुमद्र** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और **अव्ययप्रकरण** के **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञक होने के कारण सु विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **सुमद्र+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **सुमद्रम्**। शेष रूप **अधिगोप** की तरह बनते हैं।

सुमद्रम् की तरह **भिक्षाणां समृद्धिः**- **सुभिक्षम्** आदि भी बनाइये।

दुर्यवनम्। यवनों की समृद्धि का अभाव। **यवनानां व्यृद्धिः** यह लौकिक विग्रह और **यवन आम् दुर्** यह अलौकिक विग्रह है। वृद्धि का अभाव अर्थ में **यवन+आम्+दुर्** में **अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **यवन+आम्+दुर्** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो

गई। आम् का सुपो धातुप्रातिपदिकयोः से लुक् हुआ। **यवन+दुर्** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **दुर्** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **दुर्** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **दुर्+यवन** बना। रेफ का ऊर्ध्वगमन हुआ- **दुर्यवन** बना। **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **दुर्यवन** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और अव्ययप्रकरण के **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञक होने के कारण **सु** विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही **सु** के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **दुर्यवन+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **दुर्यवनम्।** शेष रूप **अधिगोप** की तरह बनते हैं।

दुर्यवनम् की तरह **शकानां व्यृद्धिः- दुःशकम्** आदि भी बनाइये।

निर्मक्षिकम्। मक्खियों का अभाव। **मक्षिकाणाम् अभावः** यह लौकिक विग्रह और **मक्षिका+आम्+निर्** अलौकिक विग्रह है। **वस्तु के अभाव** अर्थ में **निर्** के साथ **मक्षिका+आम्** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **मक्षिका+आम्+निर्** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। आम् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **मक्षिका+निर्** बना। प्रथमानिर्दिष्ट निर् की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **निर्** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **निर्+मक्षिका** बना। रेफ का ऊर्ध्वगमन हुआ- **निर्मक्षिका** बना। **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **निर्मक्षिका** को प्रातिपदिक मान कर सु विभक्ति आई और **अव्ययीभावश्च** से नपुंसकलिङ्ग हुआ और **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से का में आकार को ह्रस्व होकर **निर्मक्षिक** बना। अव्ययसंज्ञक होने के कारण सु विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर अम् आदेश भी हुआ- **निर्मक्षिक+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **निर्मक्षिकम्।** शेष रूप अधिगोप की तरह बनते हैं।

इसी तरह **मशकानाम् अभावः- निर्मशकम्, विघ्नानाम् अभावः- निर्विघ्नम्** आदि भी बनाने की चेष्टा करें।

अतिहिमम्। हिम का अत्यय अर्थात् ध्वंस, नाश। **हिमस्यात्ययः** यह लौकिक विग्रह और **हिम+ङस्+अति** यह अलौकिक विग्रह है। अत्यय अर्थ में अति के साथ **हिम+ङस्** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **हिम+ङस्+अति** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **ङस्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **हिम+अति** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **अति** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **अति** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **अतिहिम** बना। **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **अतिहिम** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, सु विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो

ही गया साथ ही सु के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **अतिहिम+अम्** बना। अमि पूर्वः से पूर्वरूप हुआ- **अतिहिमम्**। शेष रूप **अधिगोप** की तरह बनते हैं।

अतिहिमम् की तरह **शीतस्य अत्ययः- अतिशीतम्** आदि भी बना सकते हैं।

अतिनिद्रम्। निद्रा इस समय उचित नहीं है। **निद्रा सम्प्रति न युज्यते** यह लौकिक विग्रह और **निद्रा+ङस्+अति** यह अलौकिक विग्रह है। असम्प्रति अर्थात् **इस समय उचित नहीं** इस अर्थ में **अति** के साथ **निद्रा+ङस्** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **निद्रा+ङस्+अति** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **निद्रा+अति** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **अति** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से **उपसर्जनसंज्ञा** हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक अति का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **अतिनिद्रा** बना एवं **अव्ययीभावश्च** से नपुंसकलिङ्ग, **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से द्रा के आकार को ह्रस्व होकर **अतिनिद्र** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञक होकर **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई, उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **अतिनिद्र+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **अतिनिद्रम्**। शेष रूप **अधिगोप** की तरह बनते हैं।

अतिनिद्रम् की तरह **कम्बलं सम्प्रति न युज्यते- अतिकम्बलम्** आदि भी जानिये।

इतिहरि। हरिनाम की प्रसिद्धि। **हरिशब्दस्य प्रकाशः** यह लौकिक विग्रह और **हरि+ङस्+इति** यह अलौकिक विग्रह है। **शब्दप्रादुर्भाव** अर्थात् **नाम की प्रसिद्धि** इस अर्थ में **इति** के साथ **हरि+ङस्** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावा-त्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य- यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **हरि+ङस्+इति** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **हरि+इति** बना। प्रथमानिर्दिष्ट इति की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **इति** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **इतिहरि** बना। **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **इतिहरि** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हुआ **इतिहरि**।

इतिहरि की तरह **पाणिनिशब्दस्य प्रकाशः- इतिपाणिनि, ज्ञानशब्दस्य प्रकाशः- इतिज्ञानम्** आदि भी आप बना सकेंगे।

अनुविष्णु। विष्णु के पीछे। **विष्णोः पश्चात्** यह लौकिक विग्रह और **विष्णु+ङस्+अनु** यह अलौकिक विग्रह है। **पश्चात्** अर्थात् **पीछे** इस अर्थ में अनु के साथ **विष्णु+ङस्** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **विष्णु+ङस्+अनु** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो

गई। ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **विष्णु+अनु** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **अनु** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **अनु** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **अनुविष्णु** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **अनुविष्णु** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हुआ **अनुविष्णु**।

इसी तरह **अनुरथम्, अनुशिष्यम्, अनुगोपालम्** आदि अनेकों प्रयोगों को भी आप बनाने का प्रयत्न करें तो कठिन नहीं लगेंगे।

योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः। अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु इस सूत्र में यथा के अर्थ में विद्यमान अव्यय के साथ समास का विधान हुआ है। यथा के चार अर्थ माने गये हैं- **योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्ति** और **सादृश्य। योग्यता** अर्थात् योग्य, उचित होना, **वीप्सा**- बारम्बार होना, **पदार्थानतिवृत्ति**- पद के अर्थ का उल्लंघन न करना और **सादृश्य** का अर्थ एक जैसा होना। यहाँ पर चारों अर्थों में समास का उदाहरण दिखाया जा रहा है।

अनुरूपम्। रूप के योग्य। **रूपस्य योग्यम्** यह लौकिक विग्रह और **रूप+ङस्+अनु** यह अलौकिक विग्रह में यथा के योग्यता अर्थ में विद्यमान अनु के साथ **रूप+ङस्** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य- यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **रूप+ङस्+अनु** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **ङस्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **रूप+अनु** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **अनु** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **अनु** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **अनुरूप** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **अनुरूप** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर अम् आदेश भी हुआ- **अनुरूप+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **अनुरूपम्**। शेष **अधिगोपम्** की तरह बनते हैं।

इसी तरह **गुणानां योग्यम्- अनुगुणम्, लेखस्य योग्यम्- अनुलेखम्, विद्यालयस्य योग्यम्- अनुविद्यालयम्** आदि में भी समास करने का प्रयत्न करें।

प्रत्यर्थम्। प्रत्येक अर्थ के प्रति। **अर्थमर्थं प्रति** लौकिक विग्रह और **अर्थ+अम्+प्रति** इस अलौकिक विग्रह में **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से यथा के वीप्सा अर्थ में विद्यमान **प्रति** के साथ **रूप+ङस्** का समास हो गया। समास करने के बाद **अर्थ+अम्+प्रति** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। अम् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **अर्थ+प्रति** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **प्रति** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **प्रति** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **प्रति+अर्थ** बना। **इको यणचि** से यण्

सादेशविधायकं विधिसूत्रम्

९१४. अव्ययीभावे चाकाले ६।३।८१॥

सहस्य सः स्यादव्ययीभावे न तु काले।

हरेः सादृश्यं सहरि। जेष्ठस्यानुपूर्व्येणेति अनुजेष्ठम्।

चक्रेण युगपत् सचक्रम्। सदृशः सख्या ससखि। क्षत्राणां सम्पत्तिः सक्षत्रम्। तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमत्ति। अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते साग्नि।

....

होकर **प्रत्यर्थ** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **प्रत्यर्थ** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर अम् आदेश भी हुआ- **प्रत्यर्थ+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **प्रत्यर्थम्।** शेष रूप अधिगोपम् की तरह बनते हैं।

इसी तरह **छात्रं छात्रं प्रति- प्रतिछात्रम्, जनं जनं प्रति- प्रतिजनम्, गृहं गृहं प्रति- प्रतिगृहम्** आदि बनाने में आप सक्षम हो सकते हैं।

यथाशक्ति। शक्ति के अनुसार अर्थात् शक्ति के उल्लंघन के विना। **शक्तिम् अनतिक्रम्य** लौकिक विग्रह और **शक्ति अम् यथा** अलौकिक विग्रह में यथा के **पदार्थानतिवृत्ति** अर्थात् **पद के अर्थ का उल्लंघन न करना** इस अर्थ में विद्यमान **यथा** के साथ **शक्ति+अम्** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **शक्ति+अम्+यथा** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। अम् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **शक्ति+यथा** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **यथा** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **यथा** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **यथाशक्ति** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **यथाशक्ति** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हुआ- **यथाशक्ति।**

एवं प्रकारेण **बुद्धिम् अनतिक्रम्य- यथाबुद्धि, ज्ञानम् अनतिक्रम्य- यथाज्ञानम्** आदि जगहों पर समास करना चाहिए।

९१४- अव्ययीभावे चाकाले। अव्ययीभावे सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदम्, अकाले सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सहस्य सः संज्ञायाम्** से **सहस्य सः** की अनुवृत्ति आती है।

यदि काल का वाचक शब्द उत्तरपद में न हो तो अव्ययीभावसमास में सह के स्थान पर स आदेश होता है।

सहरि। हरि के सदृश। **हरेः सादृश्यम्** यह लौकिक विग्रह और **हरि+ङस्+सह** यह अलौकिक विग्रह है। **यथा** के सदृश अर्थ में विद्यमान सह के साथ **हरि+ङस्** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **हरि+ङस्+सह** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो

गई। ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **हरि+सह** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **सह** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **सह** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **सह+हरि** बना। **अव्ययीभावे चाकाले** से सह के स्थान पर स आदेश हुआ- **सहरि** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **सहरि** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हुआ- **सहरि।**

अनुज्येष्ठम्। ज्येष्ठ के क्रम से। **ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण** लौकिक विग्रह और **ज्येष्ठ+ङस्+अनु** अलौकिक विग्रह में **आनूपूर्व्य** अर्थ में विद्यमान **अनु** के साथ **ज्येष्ठ+ङस्** का **अव्ययं विभक्तिसमीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **ज्येष्ठ+ङस्+अनु** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **ङस्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **ज्येष्ठ+अनु** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **अनु** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **अनु** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **अनुज्येष्ठ** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **अनुज्येष्ठ** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **अनु+ज्येष्ठ बना। अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **अनुज्येष्ठम्।** शेष **अधिगोप** की तरह बनते हैं।

इसी तरह **वृद्धस्य आनुपूर्व्येण- अनुवृद्धम्** आदि भी बनते हैं।

सचक्रम्। चक्र के साथ एक ही काल में। **चक्रेण युगपत्** लौकिक विग्रह और **चक्र+टा+सह** अलौकिक विग्रह में **यौगपद्य** अर्थात् **एक साथ एक ही काल में** इस अर्थ को लेकर **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से **चक्र+टा+सह** में समास हो गया। समास करने के बाद **चक्र+टा+सह** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **टा** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **चक्र+सह** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **सह** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **सह** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **सह+चक्र** बना। **अव्ययीभावे चाकाले** से सह के स्थान पर **स** आदेश हुआ- **सचक्र** बना। एकदेशविकृतमनन्यवत् से प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, अव्ययसंज्ञक होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से सु का लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **सचक्र**+**अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **सचक्रम्।** शेष रूप **अधिगोप** की तरह बनते हैं।

ससखि। सखा के समान। **सदृशः सख्या** लौकिक विग्रह और **सखि+टा+सह** अलौकिक विग्रह में सूत्र के द्वारा निर्दिष्ट सादृश्य अर्थात् समान अर्थ में **सखि+टा+सह** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास

करने के बाद **सखि+टा+सह** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **टा** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **सखि+सह** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **सह** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **सह** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **सह+सखि** बना। **अव्ययीभावे चाकाले** से **सह** के स्थान पर **स** आदेश हुआ- **ससखि** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **ससखि** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हुआ- **ससखि।**

विशेषः- पहले **यथा** के चार अर्थों में से एक **सादृश्य** अर्थ समास बताया जा चुका है। पुनः यहाँ सादृश्य अर्थ में ही समास क्यों किया जा रहा है? अर्थात् **यथार्थ सादृश्य** और **सूत्रस्थ सादृश्य** में क्या अन्तर है? इसका उत्तर यह है कि जहाँ सादृश्य अर्थ गौण=अप्रधान हो, वहाँ पर भी समास हो जाय। इस लिए दुबारा सादृश्य का ग्रहण किया गया। जब हम कहते हैं कि **वह अपने मित्र के सदृश है** तो यहाँ पर सादृश्य गौण होता है और सादृश्य वाला व्यक्ति प्रधान होता है। जब हम कहते हैं कि **उसमें अपने मित्र की समानता है** तो यहाँ सादृश्य प्रधान होता है और सादृश्य वाला व्यक्ति गौण। इस तरह सादृश गौण हो अथवा प्रधान, दोनों अवस्थाओं में समास के लिए दो बार सादृश्य अर्थ में समास का विधान किया गया।

सक्षत्रम्। क्षत्रियों के अनुरूप आत्मभाव की वृद्धि। **क्षत्राणां सम्पत्तिः** लौकिक विग्रह और **क्षत्र+भिस्+सह** अलौकिक विग्रह में अनुरूप आत्मभाव की वृद्धि रूप सम्पत्ति अर्थ में विद्यमान **सह** का **क्षत्र भिस्** के साथ **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति- शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **क्षत्र+भिस्+सह** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **आम्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **क्षत्र+सह** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **सह** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **सह** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **सह+क्षत्र** बना। **अव्ययीभावे चाकाले** से सह के स्थान पर स आदेश हुआ- **स+क्षत्र** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **सक्षत्र+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **सक्षत्रम्।** शेष रूप **अधिगोप** की तरह बनते हैं।

सतृणम्(अत्ति) तिनके को भी छोड़े विना सम्पूर्ण खाता है। **तृणम् अपि अपरित्यज्य** लौकिक विग्रह और **तृण+टा+सह** अलौकिक विग्रह में **साकल्य** अर्थात् सम्पूर्ण अर्थ में विद्यमान **सह** का **तृण टा** के साथ **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावा-त्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **तृण+टा+सह** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **टा** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **तृण+सह** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **सह** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **सह** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात्

समासविधायकं विधिसूत्रम्

९१५. नदीभिश्च २।१।२०॥

नदीभिः सह संख्या समस्यते।

वार्तिकम्- **समाहारे चायमिष्यते।**

पञ्चगङ्गम्। द्वियमुनम्।

....

पर में था पूर्व में आ गया- **सह+तृण** बना। **अव्ययीभावे चाकाले** से सह के स्थान पर **स** आदेश हुआ- **सतृण** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतो-ऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **सतृण+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **सतृणम्**। शेष रूप अधिगोप की तरह बनते हैं।

सागिन (अधीते) अग्निग्रन्थ की समाप्ति तक पढ़ता है। **अग्निग्रन्थपर्यन्तम्** लौकिक विग्रह और **अग्नि+टा+सह** अलौकिक विग्रह में **अन्त** अर्थात् **यहाँ तक** इस अर्थ में विद्यमान **सह** का **अग्नि टा** के साथ **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावा-त्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **अग्नि+टा+सह** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **टा** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **अग्नि+सह** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **सह** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **सह** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **सह+अग्नि** बना। **अव्ययीभावे चाकाले** से सह के स्थान पर स आदेश हुआ- **स+अग्नि** बना। सवर्णदीर्घ हुआ- **सागिन** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर सागिन को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हुआ **सागिन।**

९१५- नदीभिश्च। नदीभिस्तृतीयान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **सङ्ख्या वंश्येन** से **सङ्ख्या** की अनुवृत्ति आती है और **सुप्, सह सुपा, प्राक्कडारात् समासः, अव्ययीभावः** इन पदों का अधिकार आ ही रहा है।

सङ्ख्यावाचक सुबन्त शब्द का नदीवाचक सुबन्त शब्दों के साथ समास होता है, और वह अव्ययीभाव समास कहलाता है।

समाहारे चायमिष्यते। यह वार्तिक है। **यह समास समाहार अर्थ में ही इष्ट है।**

पञ्चगङ्गम्। पाँच गङ्गाओं का समूह। **पञ्चानां गङ्गानां समाहारः** यह लौकिक विग्रह है और **पञ्चन् आम् गङ्गा आम्** यह अलौकिक विग्रह है। ऐसी अवस्था में **नदीभिश्च** से समास हो जाता है। समासविधायक सूत्र **नदीभिश्च** में अनुवृत्त पद **सङ्ख्या** यह प्रथमान्त है और इसके द्वारा निर्दिष्ट शब्द **पञ्चन् आम्** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से **उपसर्जनसंज्ञा** हो जाती है और उसी का पूर्वनिपात भी होता है। **पञ्चन्+आम्+गङ्गा+आम्** की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से **प्रातिपदिकसंज्ञा** करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से विभक्तियों का लुक् होकर **पञ्चन्+गङ्गा** बना। विभक्ति के लुक्

तद्धितसंज्ञासूत्रम् अधिकारसूत्रञ्च

९१६. तद्धिताः ४।१।७६॥

आपञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम्।

समासान्तटज्विधायकं विधिसूत्रम्

९१७. अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः ५।४।१०७॥

शरदादिभ्यष्टच् स्यात् समासान्तोऽव्ययीभावे।

शरदः समीपमुपशरदम्। प्रतिविपाशम्।

गणसूत्रम्- **जराया जरश्च।** उपजरसमित्यादि।

....

हो जाने पर भी प्रत्ययलक्षण द्वारा **पञ्चन्** में पदत्व मानकर के नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **पञ्चगङ्गा** बना। **अव्ययीभावश्च** से नपुंसक मानकर के **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से **गङ्गा** के **आकार** को **ह्रस्व** करके **पञ्चगङ्ग** बना। **सु** उसका लुक् प्राप्त, उसे बाधकर के **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से **अम्** आदेश, पूर्वरूप होकर **पञ्चगङ्गम्** सिद्ध हुआ।

द्वियमुनम्। दो यमुना नदियों का समूह। **द्वयोर्यमुनयोः समाहारः** यह लौकिक विग्रह है और **द्वि ओस् यमुना ओस्** यह अलौकिक विग्रह है। ऐसी अवस्था में **नदीभिश्च** से समास हो जाता है। समासविधायक सूत्र **नदीभिश्च** में अनुवृत्त पद **सङ्ख्या** यह प्रथमान्त है और इसके द्वारा निर्दिष्ट शब्द **द्वि ओस्** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से **उपसर्जनसंज्ञा** हो जाती है और उसी का पूर्वनिपात भी होता है। **द्वि+ओस्+यमुना+ओस्** की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से **प्रातिपदिकसंज्ञा** करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से विभक्तियों का लुक् होकर **द्वि+यमुना** बना। **अव्ययीभावश्च** से नपुंसक मानकर के **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से **यमुना** के **आकार** को **ह्रस्व** करके **द्वियमुन** बना। **सु** उसका लुक् प्राप्त, उसे बाधकर के **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से **अम्** आदेश, पूर्वरूप होकर **द्वियमुनम्** सिद्ध हुआ।

९१६- **तद्धिताः**। तद्धिताः प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्।

यह सूत्र ४.१.७६ से लेकर पाँचवें अध्याय की समाप्ति तक तद्धितसंज्ञा का अधिकार करता है।

इसको **अधिकारसूत्र** और **संज्ञासूत्र** भी माना गया है। पञ्चम अध्याय की समाप्ति पर्यन्त जो-जो प्रत्यय बतायेंगे, उन सबकी यह **तद्धितसंज्ञा** करता यद्यपि यह सूत्र तद्धितप्रकरण का है, अतः वहीं पर इसको देना चाहिए, तथापि समास करने के बाद कुछ सूत्र कुछ विशेष प्रत्ययों का विधान करते हैं, जिनको **समासान्त प्रत्यय** कहा जाता है। पाणिनि जी ने समासान्त प्रत्ययों को भी **तद्धिताः** इस सूत्र के अधिकार में पढ़ा है। अतः समासान्त प्रत्ययों की भी **तद्धितसंज्ञा** होती है, यह दिखाने के लिए **तद्धिताः** यह सूत्र यहाँ पर पढ़ा गया है।

९१७- **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः**। शरत् प्रभृतिर्येषां ते शरत्प्रभृतयः। अव्ययीभावे सप्तम्यन्तं, शरत्प्रभृतिभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से **टच्** की अनुवृत्ति आती है

और **तद्धिताः, समासान्ताः, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्** का अधिकार आ रहा है।

शरत् आदि शब्दों से समासान्त तद्धितसंज्ञक टच् प्रत्यय होता है अव्ययीभाव में।

टच् में **टकार** और **चकार** इत्संज्ञक हैं, **अकार** शेष रहता है। इससे हलन्त शब्द भी अजन्त वन जाता है। **शरदादिगण** है। इसके अन्तर्गत शरद्, विपाश्, अनस्, मनस्, उपानह्, दिव्, हिमवत्, अनडुह्, दिश्, दृश्, विश्, चेतस्, चतुर्, त्यद्, तद्, यद्, कियत् ये शब्द आते हैं।

उपशरदम्। शरद् (ऋतु) के समीप वाली ऋतु। **शरदः समीपम्** लौकिक विग्रह और **शरद्+ङस्+उप** अलौकिक विग्रह में **समीप** इस अर्थ में विद्यमान **उप** का **शरद् ङस्** के साथ **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **शरद्+ङस्+उप** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **शरद्+उप** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **सह** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **उप** का पूर्वप्रयोग हुआ **उप+शरद्** बना। **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** से समासान्त **टच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **उपशरद्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उपशरद** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **उपशरद** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ, किन्तु **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति अलुक् हुआ और सु के स्थान पर नपुंसकत्वात् **अम्** आदेश होकर पूर्वरूप करने पर **उपशरदम्** बना।

प्रतिविपाशम्। विपाश(नदी) के सम्मुख। **विपाशं विपाशं (विपाशाया अभिमुखम्) प्रति** लौकिक विग्रह और **विपाश्+अम्+प्रति** अलौकिक विग्रह में **सम्मुख** इस अर्थ में विद्यमान **प्रति** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **विपाश्+अम्+प्रति** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। अम् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **विपाश्+प्रति** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **प्रति** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **प्रति** का पूर्वप्रयोग हुआ **प्रति+विपाश्** बना। **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** से समासान्त **टच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **प्रतिविपाश्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **प्रतिविपाश** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **प्रतिविपाश** को **प्रातिपदिक** मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ, किन्तु **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति अलुक् हुआ और **सु** से स्थान पर नपुंसकत्वात् **अम्** आदेश होकर पूर्वरूप करने पर **प्रतिविपाशम्** बना।

जराया जरश्च। यह गणसूत्र **शरत्प्रभृति** में पठित है। **अव्ययीभाव समास में जराशब्द से समासान्त टच् के साथ ही जरस् आदेश भी होता है।**

समासान्तटज्विधायकं विधिसूत्रम्

११८. अनश्च ५।४।१०८।।

अन्नन्तादव्ययीभावाट्टच् स्यात्।

भस्य टेर्लोपविधायकं विधिसूत्रम्

११९. नस्तद्धिते ६।४।१४४।।

नान्तस्य भस्य टेर्लोपस्तद्धिते। उपराजम्। अध्यात्मम्।।

....

उपजरसम्। बुढ़ापे के निकट। **जरायाः समीपम्** लौकिक विग्रह और **जरा ङस् उप** अलौकिक विग्रह है। समीप अर्थ में **उप** का **जरा ङस्** के साथ **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **जरा+ङस्+उप** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **ङस्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **जरा+उप** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **उप** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **उप** का पूर्वप्रयोग हुआ **उप+जरा** बना। **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** से समासान्त **टच्** प्रत्यय और **जराया जरश्च** इस गणसूत्र से **जरा** के स्थान पर **जरस्** आदेश होकर **उपजरस्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उपजरस** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **उपजरस** को **प्रातिपदिक** मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ, किन्तु **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति का अलुक् हुआ और **सु** के स्थान पर **अम्** आदेश होकर पूर्वरूप करने पर **उपजरसम्** बना।

११८- अनश्च। अनः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से **टच्** तथा **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** से विभक्तिविपरिणाम करके **अव्ययीभावात्** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, समासान्ताः, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्** का अधिकार चल रहा है। **अनः** यह **अव्ययीभावात्** का विशेषण है।

अन् अन्त वाले अव्ययीभाव से समास के अन्त में तद्धितसंज्ञक टच् प्रत्यय होता है।

११९- नस्तद्धिते। नः षष्ठ्यन्तं, तद्धिते सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **टेः** इस सूत्र की और **अल्लोपोऽनः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है। **भस्य** का अधिकार है।

तद्धित परे होने पर नकारान्त शब्द के भसंज्ञक टि का लोप होता है।

उपराजम्। राजा के समीप। **राज्ञः समीपम्** लौकिक विग्रह और **राजन्+ङस्+उप** अलौकिक विग्रह में **समीप** इस अर्थ में विद्यमान **उप** का **राजन् ङस्** के साथ **अव्ययं विभक्ति-समीप- समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **राजन्+ङस्+उप** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **ङस्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **राजन्+उप** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **उप** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **उप** का

विकल्पेन टज्विधायकं विधिसूत्रम्

९२०. नपुंसकादन्यतरस्याम् ५।४।१०९॥

अन्नन्तं यत् क्लीबं तदन्तादव्ययीभावाट्टज् वा स्यात्। उपचर्मम्। उपचर्म।

....

पूर्वप्रयोग हुआ **उप+राजन्** बना। **अनश्च** से समासान्त टच् प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **उपराजन्+अ** बना। **अ** के परे होने पर **उपराजन्** की **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई और **उपराजन्** में विद्यमान टि **अन्** का **नस्तद्धिते** से लोप हो गया- **उपराज्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उपराज** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **उपराज** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ, किन्तु **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति का अलुक् हुआ और सु के स्थान पर **अम्** आदेश होकर पूर्वरूप करने पर **उपराजम्** बना।

अध्यात्मम्। आत्मा में, आत्मा के विषय में। **आत्मनि** लौकिक विग्रह और **आत्मन्+ङि+अधि** अलौकिक विग्रह में **विभक्ति** इस अर्थ में विद्यमान उप का **आत्मन् ङि** के साथ **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **आत्मन्+ङि+अधि** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **ङि** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **आत्मन्+अधि** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **अधि** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **अधि** का पूर्वप्रयोग हुआ **अधि+आत्मन्** बना। **अधि+आत्मन्** में **इको यणचि** से यण् होकर **अध्यात्मन्** बना। **अनश्च** से समासान्त टच् प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **अध्यात्मन्+अ** बना। **अ** के परे होने पर **अध्यात्मन्** की **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई और **अध्यात्मन्** में विद्यमान टि **अन्** का **नस्तद्धिते** से लोप हो गया- **अध्यात्म्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अध्यात्म** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **अध्यात्म** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ, किन्तु **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति का अलुक् हुआ और सु के स्थान पर **अम्** आदेश होकर पूर्वरूप करने पर **अध्यात्मम्** बना।

९२०- **नपुंसकादन्यतरस्याम्**। नपुंसकात् पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनश्च** से **अनः** की **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** से विभक्तिविपरिणाम करके **अव्ययीभावात्**, की तथा **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से **टच्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** का अधिकार है।

अन् अन्त वाला जो नपुंसक लिङ्ग, तदन्त अव्ययीभाव से विकल्प से तद्धितसंज्ञक टच् प्रत्यय होता है।

उपचर्मम्, उपचर्म। चमड़े के समीप। **चर्मणः समीपम्** लौकिक विग्रह और **चर्मन्+ङस्+उप** अलौकिक विग्रह में **समीप** इस अर्थ में विद्यमान **उप** का **चर्मन्** के साथ**अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास

विकल्पेन तटज्विधायकं विधिसूत्रम्

९२१. झयः ५।४।१११॥

झयन्तादव्ययीभावाट्टज् वा स्यात्। उपसमिधम्, उपसमित्।

इत्यव्ययीभावप्रकरणम्॥३९॥

....

करने के बाद **चर्मन्+ङस्+उप** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **ङस्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **चर्मन्**+**उप** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **उप** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **उप** का पूर्वप्रयोग हुआ **उप+चर्मन्** बना। **चर्मन्** नपुंसक है, अतः **नपुंसकादन्यतरस्याम्** से विकल्प से समासान्त **टच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **उपचर्मन्+अ** बना। **अ** के परे होने पर **उपचर्मन्** की **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई और **उपचर्मन्** में विद्यमान टि **अन्** का **नस्तद्धिते** से लोप हो गया- **उपचर्म्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उपचर्म** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **उपचर्म** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ, किन्तु **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति का अलुक् हुआ और सु के स्थान पर **अम्** आदेश होकर पूर्वरूप करने पर **उपचर्मम्** बना। **टच्** न होने के पक्ष में **उपचर्मन्** है उससे सु के आने के बाद उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् और **नकार** का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करके **उपचर्म** बनता है। इस तरह दो रूप बन गये।

९२१- झयः। झयः पञ्चम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** से विभक्तिविपरिणाम करके **अव्ययीभावात्** और **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से **टच्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** का अधिकार है।

झय् प्रत्याहार वाला वर्ण अन्त में हो ऐसे अव्ययीभाव से विकल्प से तद्धितसंज्ञक टच् प्रत्यय होता है।

उपसमिधम्, उपसमित्। समिधा के पास(हवन की लकड़ी को समिधा कहते हैं)। **समिधः समीपम्** लौकिक विग्रह और **समिध्+ङस्+उप** अलौकिक विग्रह में **समीप** इस अर्थ में विद्यमान **उप** का **समिध् ङस्** के साथ **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य- यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **समिध्+ङस्+उप** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **ङस्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **समिध्+उप** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **उप** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **उप** का पूर्वप्रयोग हुआ **उप+समिध्** बना। **झयः** से विकल्प से समासान्त **टच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **उपसमिध्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उपसमिध** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **उपसमिध** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ, किन्तु **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति का अलुक् हुआ और सु के स्थान पर **अम्** आदेश होकर पूर्वरूप करने पर **उपसमिधम्** बना। **टच्** न होने के पक्ष में **उपसमिध्** है।

उससे सु के आने के बाद उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् करके धकार को जश्त्व और **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **उपसमित्, उपसमिद्** ये सिद्ध हो जाते हैं।

अव्ययीभाव समास में यह ध्यान रखना चाहिए कि किस अर्थ में किस शब्द के साथ समास हो रहा है और लौकिक विग्रह क्या है और अलौकिक विग्रह क्या है? इसके अतिरिक्त यदि शब्द अदन्त है तो सुप् का अलुक् और उसके स्थान पर अम् आदेश होगा नहीं तो नहीं होगा। पञ्चमी के स्थान पर अम् आदेश नहीं होता है और **तृतीया** तथा **सप्तमी** विभक्ति के स्थान पर **अम्** आदेश **विकल्प** से होता है। **सह** है तो **स** आदेश होता है।

परीक्षा

१. इस प्रकरण में समास करने वाला एक ही सूत्र है, उसके सभी अर्थों में समास के उदाहरण लिखकर दिखाइये। यह सम्पूर्ण ५० अंक का है।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का अव्ययीभाव समास पूर्ण हुआ।

अथ तत्पुरुषः

तत्पुरुषसंज्ञार्थमधिकारसूत्रम्

१२२. तत्पुरुषः २।१।२२॥

अधिकारोऽयं प्राग्बहुव्रीहेः।

तत्पुरुषसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१२३. द्विगुश्च २।१।२३॥

द्विगुरपि तत्पुरुषसंज्ञकः स्यात्।

द्वितीयातत्पुरुष-समासविधायकं विधिसूत्रम्

१२४. द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः २।१।२४॥

द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते, स च तत्पुरुषः। कृष्णं श्रितः कृष्णश्रित इत्यादि।

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **तत्पुरुषसमास** का आरम्भ होता है। तत्पुरुषसमास में उत्तरपद के अर्थ की प्रधानता होती है। इसमें समास करने के लिए अनेक सूत्र हैं। समास के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् होता है, उसके बाद उपसर्जनसंज्ञा और उपसर्जन का पूर्वप्रयोग होता है। **एकदेशविकृतन्यायेन** प्रातिपदिक मानकर सु आदि विभक्तियों की उत्पत्ति होती है।

१२२- **तत्पुरुषः**। तत्पुरुषः प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। यह अधिकारसूत्र है, **शेषो बहुव्रीहिः**२।२।२३॥ तक इसका अधिकार जाता है और प्रत्येक सूत्र में जाकर कहता है कि तुमने जो समास किया है, उसका नाम तत्पुरुष है। इसीसे **तत्पुरुष** एक संज्ञा भी मान ली जाती है।

१२३- **द्विगुश्च**। द्विगुः प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्। **तत्पुरुषः** का अधिकार है।

द्विगु भी तत्पुरुषसंज्ञक होता है।

समास में यदि पूर्वपद संख्यावाचक शब्द हो तो उसकी **सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः** इस सूत्र से **द्विगुसंज्ञा** होती है। द्विगु भी तत्पुरुष कहलाता है। जैसे **पञ्चराजम्, द्व्यङ्गुलम्** आदि द्विगु-समास को तत्पुरुष भी कहा जाता है।

१२४- **द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः।** श्रितश्च अतीतश्च, पतितश्च गतश्च अत्यस्तश्च प्राप्तश्च आपन्नश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नास्तैः। द्वितीया प्रथमान्तं, श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः तृतीयान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे** से **सुप्** की और **सह सुपा** से **सुपा** की अनुवृत्ति आती है। पीछे से **समासः** और **तत्पुरुषः** का अधिकार तो है ही।

द्वितीयाविभक्ति से युक्त समर्थ सुबन्त का श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त और आपन्न ऐसी प्रकृति है जिन की, ऐसे समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक कहलाता है।

स्मरण रहे कि समास हमेशा अलौकिक विग्रह में ही होता है। इस सूत्र में **प्रथमान्तपद** है **द्वितीया** अर्थात् **रमा** की तरह द्वितीया भी **प्रथमा विभक्ति** का रूप है। इस सूत्र में **द्वितीया** शब्द के द्वारा द्वितीयान्त सुबन्त शब्द का ग्रहण होगा और उसकी **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से **उपसर्जनसंज्ञा** होती है। **उपसर्जनसंज्ञा** के बाद प्रायः उस पद का **पूर्वनिपात** अर्थात् **पूर्व में प्रयोग** होता है। समास न होने के पक्ष में **कृष्णं श्रितः** ऐसा वाक्य ही रह जाता है।

विशेष स्मरणीयः- कृष्णं श्रितः(कृष्ण अम् श्रित सु) विग्रह करके समास करने पर या **श्रितः कृष्णम्**(श्रित सु कृष्ण अम्) विग्रह करके भी समास करने पर समास करने वाले **द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः** में जो प्रथमान्त **द्वितीया** पद है, उससे निर्दिष्ट **कृष्ण अम्** है। उसीका पूर्वप्रयोग करने के लिए यहाँ **उपसर्जनसंज्ञा** की जाती है और उसीका प्रयोग भी किया जाता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग का फल समझना चाहिए। तात्पर्य यह है कि विग्रह दोनों तरह से किये जाते हैं- **कृष्णं श्रितः** या **श्रितः कृष्णम्** इसी तरह **राज्ञः पुरुषः** या **पुरुषो राज्ञः** आदि। परन्तु समासशास्त्र(समासविधायक सूत्र) में विद्यमान जो प्रथमान्त पद, उससे निर्दिष्ट का ही पूर्वप्रयोग होता है।

समास के बाद **पहले उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वप्रयोग करके विभक्ति का लुक्** अथवा **पहले विभक्ति का लुक् करके उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग**, इस तरह दोनों प्रकार की प्रक्रियाएँ आचार्यों ने अपनाई हैं। यहाँ व्याख्या में भी कहीं पहली प्रक्रिया और कहीं दूसरी प्रक्रिया अपनाई गई है। वैसे ज्यादातर आचार्य पहले उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वप्रयोग करके बाद में विभक्ति का लुक् करते हैं।

कृष्णाश्रितः। कृष्ण का आश्रय लिया हुआ। **कृष्णं श्रितः** लौकिक विग्रह और **कृष्ण अम्+श्रित सु** अलौकिक विग्रह में **द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः** से समास हुआ। यहाँ पर द्वितीयान्त पद है **कृष्ण+अम्** और श्रितादि-प्रकृतिक समर्थ सुबन्त है **श्रित+सु**। समास के बाद **कृष्ण अम्+श्रित सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से अम् और सु इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **कृष्ण+श्रित** बना। समासविधायक सूत्र में **द्वितीया** इस प्रथमान्तपद के द्वारा निर्दिष्ट शब्द कृष्ण है, उसकी **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हुई और **उपसर्जनं पूर्वम्** से कृष्ण इस पूर्व में स्थित शब्द का पूर्व में ही प्रयोग हुआ- **कृष्णश्रित** बना। यदि **श्रितः कृष्णम्** विग्रह करके समास किया जाय तो भी पर में स्थित **कृष्ण अम्** का ही पूर्वप्रयोग होता है। सु विभक्ति और उसको रुत्व और विसर्ग करके **कृष्णश्रितः** सिद्ध हुआ। इसके रूप रामशब्द

की तरह **कृष्णश्रितः, कृष्णश्रितौ, कृष्णश्रिताः** आदि बनते हैं। स्त्रीलिङ्ग में टाप् करके **कृष्णश्रिता** बनता है और रमा शब्द की तरह रूप बनते हैं। अब इसी तरह **लक्ष्मीश्रितः, हरिश्रितः** आदि बनाइये।

अतीत आदि शब्दों के साथ भी समास की प्रक्रिया को देखिये-

अरण्यातीतः। वन को पार किया हुआ। **अरण्यम् अतीतः** लौकिक विग्रह और **अरण्य अम्+अतीत सु** अलौकिक विग्रह में **द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः** से समास हुआ। यहाँ पर द्वितीयान्त पद है **अरण्य+अम्** और श्रितादि-प्रकृतिक समर्थ सुबन्त है **अतीत+सु**। समास के बाद **अरण्य अम्+अतीत सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से अम् और सु इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **अरण्य+अतीत** बना। प्रथमानिर्दिष्ट अरण्य की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग करके सवर्णदीर्घ होकर **अरण्यातीत** बना उससे सु विभक्ति आई और उसको रुत्व और विसर्ग करके **अरण्यातीतः** सिद्ध हुआ। इसके रूप रामशब्द की तरह **अरण्यातीतः, अरण्यातीतौ, अरण्यातीताः** आदि बनते हैं।

कूपपतितः। कुएँ में गिरा हुआ। **कूपं पतितः** यह लौकिक विग्रह और **कूप अम्+ पतित+सु** यह अलौकिक विग्रह में **द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः** से समास हुआ। यहाँ पर द्वितीयान्त पद है **कूप+अम्** और श्रितादि-प्रकृतिक समर्थ सुबन्त है **पतित+सु**। समास के बाद **कूप अम्+पतीत सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से अम् और सु इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **कूप+पतित** बना। प्रथमानिर्दिष्ट कूप की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर **कूपपतित** बना और सु विभक्ति आई, उसको रुत्व और विसर्ग करके **कूपपतितः** सिद्ध हुआ।

ग्रामगतः। गाँव गया हुआ। **ग्रामं गतः** लौकिक विग्रह और **ग्राम अम्+गत+सु** इस अलौकिक विग्रह में **द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः** से समास हुआ। यहाँ पर द्वितीयान्त पद है **ग्राम+अम्** और श्रितादि-प्रकृतिक समर्थ सुबन्त है **गत+सु**। समास के बाद **ग्राम अम्+गत सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से अम् और सु इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **ग्राम+गत** बना। प्रथमानिर्दिष्ट ग्राम की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्व का पूर्व में ही प्रयोग कर **ग्रामगत** बना उसके बाद सु विभक्ति हुई और उसको रुत्व और विसर्ग करके **ग्रामगतः** सिद्ध हुआ।

सुखप्राप्तः। सुख को पाया हुआ। **सुखं प्राप्तः** यह लौकिक विग्रह और **सुख+अम् प्राप्त+सु** इस अलौकिक विग्रह में **द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त- प्राप्तापन्नैः** से समास हुआ। यहाँ पर द्वितीयान्तपद है **सुख+अम्** और श्रितादि-प्रकृतिक समर्थ सुबन्त है **प्राप्त+सु**। समास के बाद **सुख+अम् प्राप्त+सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से अम् और सु इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **सुख+प्राप्त** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **सुख** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर **सुखप्राप्त** बना इससे सु विभक्ति और उसको रुत्व और विसर्ग करके **सुखप्राप्तः** सिद्ध हुआ।

दुःखापन्नः। दुःख को प्राप्त हुआ। **दुःखम् आपन्नः** यह लौकिक विग्रह और **दुःख+अम् आपन्न+सु** इस अलौकिक विग्रह में **द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः** से समास हुआ। यहाँ पर द्वितीयान्तपद है **दुःख+अम्** और श्रितादि-प्रकृतिक समर्थ सुबन्त है **आपन्न+सु**। समास के बाद **दुःख+अम् आपन्न+सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से अम् और सु इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ-

तृतीयातत्पुरुष-समासविधायकं विधिसूत्रम्

९२५. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन २।१।३०॥

तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनार्थेन च सह वा प्राग्वत्।

शङ्कुलया खण्डः शण्कुलाखण्डः। धान्येनार्थो धान्यार्थः।

तत्कृतेति किम्? अक्ष्णा काणः।

तृतीयातत्पुरुषसमासविधायकं विधिसूत्रम्

९२६. कर्तृकरणे कृता बहुलम् २।१।३२॥

कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत्।

हरिणा त्रातो हरित्रातः। नखैर्भिन्नो नखभिन्नः।

परिभाषा- **कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्।** नखनिर्भिन्नः।

....

दुःख+आपन्न बना। प्रथमानिर्दिष्ट **दुःख** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग करके **सवर्णदीर्घ** करने पर **दुःखापन्न** बना। उससे सु विभक्ति, अनुबन्धलोप एवं स् को रुत्वविसर्ग होने पर- **दुःखापन्नः** बना।

९२५- **तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन।** तृतीया प्रथमान्तं, तत्कृत लुप्ततृतीयाकम्, अर्थेन तृतीयान्तं, गुणवचनेन तृतीयान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **समासः, सुप्, सह सुपा, विभाषा, तत्पुरुषः** आदि की अनुवृत्ति एवं अधिकार है।

तृतीयान्त समर्थ सुबन्त शब्द का तृतीयान्त शब्द का जो अर्थ उसके द्वारा किये गये गुण के वाचक शब्दों के साथ और अर्थ शब्द के साथ समास होता है और वह तत्पुरुष समास कहलाता है।

इससे समास होने पर भी प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, उपसर्जनसंज्ञा, उपसर्जन का पूर्व में प्रयोग, सु आदि विभक्ति के कार्य आदि होंगे। इस सूत्र में प्रथमान्तपद है- **तृतीया।** इसके द्वारा निर्दिष्ट पद की उपसर्जनसंज्ञा होगी।

शङ्कुलाखण्डः। सरोते से किया गया टुकड़ा। **शङ्कुलया खण्डः** लौकिक विग्रह और **शङ्कुला टा+खण्ड सु** इस अलौकिक विग्रह में **तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन** से समास हुआ। यहाँ पर तृतीयान्तपद है **शङ्कुला+टा** और तृतीयार्थ सरोता, उसके द्वारा किया गया गुण वाचक शब्द है **खण्ड सु** वह समर्थ सुबन्त है। समास के बाद **शङ्कुला टा+खण्ड सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **टा** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **शङ्कुला+खण्ड** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **शङ्कुला** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर **शङ्कुलाखण्ड** बना। सु विभक्ति और उसको रुत्व और विसर्ग करके **शङ्कुलाखण्डः** सिद्ध हुआ। यह तो **तत्कृतार्थेन गुणवचनेन** का उदाहरण है। अब आगे **अर्थशब्देन सह** का उदाहरण देखिये।

धान्यार्थः। धान्य से प्रयोजन। **धान्येन अर्थः** लौकिक विग्रह और **धान्य टा+अर्थ सु** अलौकिक विग्रह में **तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन** से समास हुआ। यहाँ पर तृतीयान्त पद है **धान्य+टा** और समर्थ सुबन्त अर्थशब्द है **अर्थ+सु।** समास के बाद **धान्य टा+अर्थ सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **टा** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों

चतुर्थीतत्पुरुषसमासविधायकं विधिसूत्रम्

९२७. चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः २।१।३६॥

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत्तद्वाचिना अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वद्।

यूपाय दारु यूपदारु।

तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः। तेनेह न रन्धनाय स्थाली।

वार्तिकम्- **अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्।**

द्विजार्थः सूपः। द्विजार्था यवागूः। द्विजार्थं पयः।

भूतबलिः। गोहितम्। गोसुखम्। गोरक्षितम्।

....

का लुक् हुआ- **धान्य+अर्थ** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **धान्य** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर सवर्णदीर्घ करके **धान्यार्थ** बना है। सु विभक्ति और उसको रुत्व और विसर्ग करके **धान्यार्थः** सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार से **विद्यया अर्थः-विद्यार्थः, पुण्येन अर्थः- पुण्यार्थः, धनेन अर्थः- धनार्थः, हिरण्येन अर्थः- हिरण्यार्थः** आदि भी बनते हैं।

९२६- कर्तृकरणे कृता बहुलम्। कर्ता च करणं च तयोः समाहारद्वन्द्वः कर्तृकरणं, तस्मिन् कर्तृकरणे। कर्तृकरणे सप्तम्यन्तं, कृता तृतीयान्तं, बहुलं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन** से **तृतीया** की अनुवृत्ति आती है। **समासः, सुप्, सह सुपा, विभाषा, तत्पुरुषः** आदि की अनुवृत्ति एवं अधिकार है।

कर्ता और करण अर्थ में हुए तृतीयान्त समर्थ सुबन्त का कृदन्तप्रकृतिक सुबन्त शब्दों के साथ बहुल से समास होता है और वह तत्पुरुष समास कहलाता है।

हरिणा त्रातो हरित्रातः। हरि के द्वारा रक्षित। **हरिणा त्रातः** लौकिक विग्रह और **हरि टा+त्रात सु** अलौकिक विग्रह में **कर्तृकरणे कृता बहुलम्** से समास हुआ। यहाँ पर कर्ता अर्थ में हुई तृतीया-विभक्तियुक्त पद है **हरि+टा** और समर्थ सुबन्त शब्द है **त्रात+सु।** समास के बाद **हरि टा+त्रात सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से टा और सु इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **हरि+त्रात** बना। सूत्रार्थ करते समय प्रथमान्त पद वृत्ति में **तृतीया** यह है, उससे निर्दिष्ट **हरि** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग करके **हरित्रात** बना है। सु विभक्ति और उसको रुत्व और विसर्ग करके **हरित्रातः** सिद्ध हुआ।

नखैर्भिन्नो नखभिन्नः। नाखूनों से चीरा गया। **नखैः भिन्नः** लौकिक विग्रह और **नख भिस्+भिन्न सु** अलौकिक विग्रह में **कर्तृकरणे कृता बहुलम्** से समास हुआ। यहाँ पर करण अर्थ में हुई तृतीया-विभक्तियुक्त पद है **नख+भिस्** और समर्थ सुबन्त शब्द है **भिन्न+सु।** समास के बाद **नख भिस्+भिन्न सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से भिस् और सु इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **नख+भिन्न** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **नखभिन्न** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग करके **नखभिन्न** बना है। सु विभक्ति और उसको रुत्व और विसर्ग करके **नखभिन्नः** सिद्ध हुआ।

कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्। कृदन्त ग्रहणस्थल में गतिपूर्वक और कारकपूर्वक कृदन्त का भी ग्रहण होता है। इस परिभाषा के बल पर गति और कारक पूर्वक

सुबन्तों के साथ भी समास किया जा सकता है। अतः **नखैः निर्भिन्नः** में भी **कर्तृकरणे कृता बहुलम्** से समास होता है। यहाँ **भिन्न** इस कृदन्त के पूर्व गतिसंज्ञक **निर्** के लगने के बाद भी समास होने में आपत्ति नहीं है। अतः **नखैः निर्भिन्नः** इस लौकिक विग्रह के **नख भिस्+निर्भिन्न सु** इस अलौकिक विग्रह में उक्त परिभाषा के बल पर समास होकर **नखनिर्भिन्नः** आदि भी सिद्ध होते हैं।

९२७- **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः।** चतुर्थी प्रथमान्तं, तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः तृतीयान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में भी **समासः, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, विभाषा** इत्यादि पदों की अनुवृत्ति और अधिकार है।

चतुर्थ्यन्त शब्द का चतुर्थ्यन्त के लिए जो वस्तु, तद्वाचक शब्द के साथ तथा अर्थ, बलि, हित, सुख और रक्षित शब्दों के साथ विकल्प से समास होता है और उसे तत्पुरुषसमास कहते हैं।

तदर्थ का तात्पर्य यहाँ पर पूर्वपद में निर्दिष्ट। पूर्वपद चतुर्थी के प्रत्यय होने से तदन्त होकर चतुर्थ्यन्त होता है और उस चतुर्थ्यन्त के लिए जो है, तद्वाचक शब्द के साथ समास होता है। जैसे **यूपाय दारु** (खम्भे के लिए लकड़ी) इसमें चतुर्थ्यन्त है **यूप,** उसका अर्थ है खम्भा, उसके लिए जो है वह है **पेड़,** तद्वाचक शब्द हुआ- **दारु।** उसके साथ समास होगा, साथ ही अर्थ, बलि आदि शब्दों के साथ भी समास होगा। इस सूत्र में प्रथमान्त पद है- **चतुर्थी,** उसके द्वारा निर्दिष्ट पद की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग आदि होंगे।

यूपाय दारु। खम्भे के लिए लकड़ी। **यूपाय दारु** लौकिक विग्रह और **यूप ङे+दारु सु** अलौकिक विग्रह में **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः** से समास हुआ। यहाँ पर चतुर्थ्यन्त पद है **यूप+ङे** और समर्थ चतुर्थ्यन्तार्थ शब्द है **दारु सु।** समास के बाद **यूप ङे+दारु सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **ङे** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **यूप+दारु** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **यूप** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **यूपदारु** बना है। सु विभक्ति आई और दारुशब्द के नपुंसक होने के कारण उसका **स्वमोर्नपुंसकात्** से लुक् होकर **यूपदारु** सिद्ध हुआ। इसके रूप **मधु**-शब्द की तरह बनते हैं।

इसी तरह आप गृहाय दारु- गृहदारु, कङ्कणाय सुवर्णम्- कङ्कणसुवर्णम् आदि अनेक स्थलों पर समास कर सकते हैं।

यहाँ पर विशेष बात बता रहे हैं- **तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः। तेनेह न रन्धनाय स्थाली।** अर्थात् **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः** इस सूत्र में **तदर्थ** शब्द से प्रत्येक तदर्थ का ग्रहण अभीष्ट नहीं है अपितु **प्रकृतिविकृतिभाव तदर्थ** ही ग्रहण किया जाना चाहिए अर्थात् प्रकृति से विकृति को प्राप्त होने वाले तदर्थ ही लिया जाना चाहिए। जैसे कि **लकड़ी रूप** प्रकृति से **दारु रूप** विकृति। अतः **रन्धनाय स्थाली** अर्थात् **पकाने के लिए बरतन** आदि जो **स्थाली रूप प्रकृति और पकाना रूप विकृति नहीं है,** में तदर्थ मान कर समास नहीं किया जायेगा, जिससे **रन्धनाय स्थाली** यह वाक्य ही रह जाता है।

अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। **अर्थ शब्द के साथ नित्य समास होता है और विशेष्य के अनुसार उसका लिङ्ग भी होता है,** ऐसा **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः** इस सूत्र में कहना चाहिए।

पञ्चमीतत्पुरुषसमासविधायकं विधिसूत्रम्

९२८. पञ्चमी भयेन २।१।३७।।

चोराद्भयं चोरभयम्।

....

चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः से अर्थ शब्द के साथ समास तो होता है, किन्तु विकल्प से। अतः नित्य समास के लिए वार्तिक का अवतरण है साथ ही **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से **पर** में विद्यमान शब्द का लिङ्ग ही तत्पुरुष समास के बाद लिङ्ग होता है, यह नियम **अर्थ** शब्द के साथ समास होने पर नहीं होता किन्तु विशेष्य की तरह ही लिङ्ग होता है।

द्विजार्थः (सूपः) ब्राह्मण के लिए (दाल)। **द्विजाय अयम्** लौकिक विग्रह और **द्विज ङे+अर्थ सु** (यहाँ पर **के लिए** इस अर्थ के लिए अर्थ-शब्द का प्रयोग किया गया है) अलौकिक विग्रह में **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः** से **अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्** के अनुसार नित्यसमास और विशेष्यलिङ्गता का विधान हुआ। यहाँ पर चतुर्थ्यन्त पद है **द्विज+ङे** और समर्थ अर्थ शब्द है **अर्थ सु**। समास के बाद **द्विज ङे+अर्थ सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **ङे** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **द्विज+अर्थ** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **द्विज** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग करके सवर्णदीर्घ करने पर **द्विजार्थ** बना है। सु विभक्ति आई और रुत्वविसर्ग हुआ- **द्विजार्थः**। यहाँ पर विशेष्य-शब्द **सूपः** के पुँल्लिङ्ग होने के कारण **द्विजार्थः** भी पुँल्लिङ्ग ही हुआ। विशेष्य के अन्य लिङ्ग में होने कारण विशेषण भी अन्यलिङ्ग अर्थात् स्त्रीलिङ्ग या नपुंसकलिङ्ग का होगा। जैसे- **द्विजार्था यवागूः** ब्राह्मण के लिए लप्सी(स्त्रीलिङ्ग), **द्विजार्थं पयः** ब्राह्मण के लिए दूध(नपुंसकलिङ्ग) आदि। पुँल्लिङ्ग में रामशब्द की तरह, स्त्रीलिङ्ग में रमाशब्द की तरह और नपुंसकलिङ्ग में ज्ञानशब्द की तरह रूप चलते हैं।

भूतबलि। भूतों के लिए बलि। **भूतेभ्यो बलिः** लौकिक विग्रह और **भूत भ्यस्+बलि सु** अलौकिक विग्रह में **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः** से समास हुआ। यहाँ पर चतुर्थ्यन्त पद है **भूत भ्यस्** और समर्थ शब्द है **बलि सु**। समास के बाद **भूत भ्यस्+बलि सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **भ्यस्** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **भूत+बलि** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **भूत** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **भूतबलि** बना। सु विभक्ति आई और अनुबन्धलोप और सकार को रुत्वविसर्ग करके **भूतबलिः** सिद्ध हुआ।

गोहितम्। गौओं का हित। **गोभ्यो हितम्** लौकिक विग्रह और **गो भ्यस्+हित सु** अलौकिक विग्रह में **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः** से समास हुआ। यहाँ पर चतुर्थ्यन्त पद है **गो भ्यस्** और समर्थ **हित** शब्द है ही। समास के बाद **गो भ्यस्+हित सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **भ्यस्** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **गो+हित** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **गो** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **गोहित** बना। सु विभक्ति आई और नपुंसकलिङ्ग होने के कारण ज्ञान शब्द की तरह सु के स्थान पर अम् आदेश और पूर्वरूप होकर सिद्ध हुआ- **गोहितम्**।

इसी तरह **गोभ्यः सुखम्- गोसुखम्** और **गोभ्यो रक्षितम्- गोरक्षितम्** आदि जगहों पर भी समास कीजिए।

पञ्चमीतत्पुरुषसमासविधायकं विधिसूत्रम्

९२९. स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन २।१।३९॥

अलुग्विधायकं विधिसूत्रम्

९३०. पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ६।३।२॥

अलुगुत्तरपदे। स्तोकान्मुक्तः। अन्तिकादागतः। अभ्याशादागतः। दूरादागतः। कृच्छ्रादागतः।

....

९२८- **पञ्चमी भयेन**। पञ्चमी प्रथमान्तं, भयेन तृतीयान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में भी **समासः, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, विभाषा** इत्यादि पदों की अनुवृत्ति है या अधिकार विद्यमान है।

पञ्चम्यन्त शब्द का भयवाचक समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है।

इसमें प्रथमान्तपद **पञ्चमी** है। अतः उसके द्वारा निर्दिष्टपद की उपसर्जनसंज्ञा होगी।

चोरभयम्। चोर से डर। **चोराद् भयम्** लौकिक विग्रह और **चोर ङसि+भय सु** अलौकिक विग्रह में **पञ्चमी भयेन** से समास हुआ। यहाँ पर पञ्चम्यन्त पद है **चोर+ङसि** और समर्थ भयवाचक-शब्द है **भय+सु**। समास के बाद **चोर ङसि+भय सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **ङसि** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **चोर+भय** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **चोर** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **चोरभय** बना। सु विभक्ति आई और नपुंसकलिङ्ग होने के कारण **ज्ञान** शब्द की तरह **सु** के स्थान पर **अम्** आदेश और पूर्वरूप हो कर सिद्ध हुआ- **चोरभयम्**।

भाष्यकार ने **पञ्चमी भयेन** का योगविभाग करके पञ्चम्यन्त का किसी भी सुबन्त के साथ में समास कहा है। अतः **वृकाद् भीर्वृकभीः**(भेड़िये से भय)। **भयाद् भीतो भयभीतः** (भय से डरा हुआ)। **सिंहाद् भीतिः सिंहभीतिः**(शेर से डर) आदि जगहों पर भी इस प्रकार ही समास करें।

९२९- **स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन**। स्तोकञ्च अन्तिकञ्च दूरञ्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः स्तोकान्तिकदूराणि, तेषामर्थाः स्तोकान्तिकदूरार्थाः। स्तोकान्तिकदूरार्थाश्च कृच्छ्रञ्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि। स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि प्रथमान्तं, क्तेन तृतीयान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **पञ्चमी भयेन** से **पञ्चमी** की अनुवृत्ति है और **समासः, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, विभाषा** आदि पीछे से आ रहे हैं।

स्तोकार्थक, अन्तिकार्थक, दूरार्थक तथा कृच्छ्रशब्द पञ्चम्यन्त सुबन्तों क्तप्रत्ययान्त समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है, उसे तत्पुरुष समास कहते हैं।

स्तोक=अल्प, कम, **अन्तिक**=समीप और **दूर** अर्थ वाले शब्दों के साथ **कृच्छ्र** शब्द के साथ भी यह समास हो जाता है। **द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते** अर्थात् द्वन्द्व के अन्त में स्थित पद द्वन्द्व के सभी शब्दों के साथ में योग करता है। इसलिए **दूर** के बाद आये हुए अर्थ शब्द का स्तोक, अन्तिक और दूर इन तीनों के साथ जुड़ता है।

९३०- **पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः**। स्तोकः आदिर्येषां ते स्तोकादयस्तेभ्यः। पञ्चम्याः षष्ठ्यन्तं,

स्तोकादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अलुगुत्तरपदे** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है।

स्तोक आदियों से परे पञ्चमी विभक्ति का लुक् नहीं होता, उत्तरपद के परे होने पर।

यह **अलुक्समास** का सूत्र है। समस्त(समास किये गये) पदों में जो अन्तिम पद होता है, वही **उत्तरपद** कहलाता है।

विभक्ति के लुक् न होने से समस्त पद और असमस्त पद के रूपों में तो अन्तर नहीं दीखता तो भी उदात्त आदि स्वर का अन्तर रहता ही है। इसीलिए समास किया जाता है। समास का अन्त स्वर उदात्त होता है।

स्तोकान्मुक्तः। थोड़े से मुक्त हुआ, थोड़े से छूटा। **स्तोकात् मुक्तः** लौकिक विग्रह और **स्तोक ङसि मुक्त सु** अलौकिक विग्रह में **स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन** से **स्तोकार्थक** के साथ **क्तान्तप्रकृतिक सुबन्त** के साथ समास हुआ। **पञ्चमी** इस अनुवर्तित प्रथमान्त पद से निर्दिष्ट शब्द **स्तोक ङसि** की ही उपसर्जन संज्ञा और उसी का पूर्वनिपात करके **स्तोक ङसि मुक्त सु** होता है। उसकी **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **सु** का लुक् हुआ और **ङसि** इस पञ्चमी विभक्ति का लुक् प्राप्त था तो **पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः** से निषेध हुआ। अतः **ङसि** के स्थान पर **टाङसिङसामिनात्स्याः** से **आत्** आदेश होकर **स्तोकात्+मुक्त** बना। तकार के स्थान पर **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** से अनुनासिक आदेश होकर **स्तोकान्मुक्त** बना। इससे सु, रुत्व, विसर्ग होने के बाद **स्तोकान्मुक्तः** यह रूप सिद्ध हुआ।

अन्तिकादागतः। समीप से आया हुआ। **अन्तिकाद् आगतः** यह लौकिक विग्रह और **अन्तिक ङसि आगत सु** अलौकिक विग्रह में **स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन** से समास हुआ। **पञ्चमी** इस अनुवर्तित प्रथमान्त पद से निर्दिष्ट शब्द **अन्तिक ङसि** की ही उपसर्जन संज्ञा और उसी का पूर्वनिपात करके **अन्तिक ङसि आगत सु** की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **सु** का लुक् हुआ और **ङसि** इस पञ्चमी विभक्ति का लुक् प्राप्त था तो **पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः** से अलुक् हुआ। अतः **ङसि** के स्थान पर **टाङसिङसामिनात्स्याः** से **आत्** आदेश होकर **अन्तिकात्+आगत** बना। तकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से **जश्त्व** होकर **अन्तिकादागत** बना। इससे सु, रुत्व, विसर्ग होने के बाद **अन्तिकादागतः** यह रूप सिद्ध हुआ।

अभ्याशादागतः। समीप से आया हुआ। **अभ्याशात् आगतः** लौकिक विग्रह और **अभ्याश ङसि आगत सु** अलौकिक विग्रह में **स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन** से समास हुआ। **पञ्चमी** इस अनुवर्तित प्रथमान्त पद से निर्दिष्ट शब्द **अभ्याश ङसि** की ही उपसर्जन संज्ञा और उसी का पूर्वनिपात करके **अभ्याश ङसि आगत सु** की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **सु** का लुक् हुआ और **ङसि** इस पञ्चमी विभक्ति का लुक् प्राप्त था तो **पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः** से अलुक् हुआ। अतः **ङसि** के स्थान पर **टाङसिङसामिनात्स्याः** से **आत्** आदेश होकर **अभ्याशात्+आगत** बना। तकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से **जश्त्व** होकर **अभ्याशादागत** बना। इससे सु, रुत्व, विसर्ग होने के बाद **अभ्याशादागतः** यह रूप सिद्ध हुआ।

दूरादागतः। दूर से आया हुआ। **दूरात् आगतः** लौकिक विग्रह और **दूर ङसि आगत सु** अलौकिक विग्रह में **स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन** से समास हुआ। **पञ्चमी**

षष्ठीतत्पुरुष-समासविधायकं विधिसूत्रम्

९३१. षष्ठी २।२।८॥

सुबन्तेन प्राग्वत्। राजपुरुषः।

....

इस अनुवर्तित प्रथमान्त पद से निर्दिष्ट शब्द **दूर ङसि** की ही उपसर्जन संज्ञा और उसी का पूर्वनिपात करके **दूर ङसि आगत सु** की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **सु** का लुक् हुआ और **ङसि** इस पञ्चमी विभक्ति का लुक् प्राप्त था तो **पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः** से अलुक् हुआ। अतः **ङसि** के स्थान पर **टाङसिङसामिनात्स्याः** से **आत्** आदेश होकर **दूरात्+आगत** बना। तकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से **जश्त्व** होकर **दूरादागत** बना। इससे सु, रुत्व, विसर्ग होने के बाद **दूरादागतः** यह रूप सिद्ध हुआ।

कृच्छ्रादागतः। कष्ट से आया हुआ। **कृच्छ्रात् आगतः** लौकिक विग्रह और **कृच्छ्र ङसि आगत सु** अलौकिक विग्रह में **स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन** से समास हुआ। **पञ्चमी** इस अनुवर्तित प्रथमान्त पद से निर्दिष्ट शब्द **कृच्छ्र ङसि** की उपसर्जन संज्ञा और उसी का पूर्वनिपात करके **कृच्छ्र ङसि आगत सु** की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **सु** का लुक् हुआ और **ङसि** इस पञ्चमी विभक्ति का लुक् प्राप्त था तो **पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः** से अलुक् हुआ। अतः **ङसि** के स्थान पर **टाङसिङसामिनात्स्याः** से **आत्** आदेश होकर **कृच्छ्रात्+आगत** बना। तकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से **जश्त्व** होकर **कृच्छ्रादागत** बना। इससे सु, रुत्व, विसर्ग होने के बाद **कृच्छ्रादागतः** यह रूप सिद्ध हुआ।

९३१- षष्ठी। षष्ठी प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में भी **समासः, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, विभाषा** इत्यादि पदों की अनुवृत्ति और अधिकार है।

षष्ठ्यन्त का समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है।

यह सूत्र षष्ठ्यन्त के साथ किसी शब्दविशेष की अपेक्षा नहीं करता। अतः किसी भी शब्द के साथ समास करता है। षष्ठी शब्द में ही प्रथमा है और इसके द्वारा निर्दिष्ट शब्द की उपसर्जनसंज्ञा होगी।

राजपुरुषः। राजा का आदमी, सेवक। **राज्ञः पुरुषः** लौकिक विग्रह और **राजन् ङस्+पुरुष सु** अलौकिक विग्रह में **षष्ठी** से समास हुआ। यहाँ पर षष्ठ्यन्त पद है **राजन् ङस्** और समर्थ सुबन्त है **पुरुष सु**। समास के बाद **राजन् ङस्+पुरुष सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **ङस्** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **राजन्+पुरुष** बना। **राजन् ङस्** में षष्ठी थी जिसका लोप हो गया था, प्रत्ययलक्षण से विभक्तित्व लाकर पदसंज्ञा करके **राजन्** को पद मान लिया जाता है। पद के अन्त में विद्यमान **नकार** का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करके **राज+पुरुष** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **राज** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **राजपुरुष** बना है। सु विभक्ति आई और रुत्वविसर्ग करके **राजपुरुषः** सिद्ध हुआ। इसके रूप रामशब्द की तरह चलते हैं।

षष्ठीसमास के और उदाहरण देखें-

आत्मज्ञानम्। आत्मा का ज्ञान। **आत्मनः ज्ञानम्** लौकिक विग्रह और **आत्मन्**

षष्ठीसमासविधायकं विधिसूत्रम्

१३२. पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे २।२।१॥

अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ते, एकत्वसङ्ख्याविशिष्टश्चेदवयवी। षष्ठीसमासापवादः। पूर्वं कायस्य पूर्वकायः। अपरकायः। एकाधिकरणे किम्? पूर्वश्छात्राणाम्।

....

ङस्+ज्ञान सु अलौकिक विग्रह में **षष्ठी** से समास हुआ। यहाँ पर षष्ठ्यन्त पद है **आत्मन् ङस्** और समर्थ सुबन्त है **ज्ञान सु**। समास के बाद **आत्मन् ङस्+पुरुष सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **ङस्** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **आत्मन्+ज्ञान** बना। आत्मन् ङस् में जो षष्ठी लुप्त हुई थी, उसे प्रत्ययलक्षणेन लाकर पदसंज्ञा करके **आत्मन्** को पद मान लिया जाता है। पद के अन्त में विद्यमान **नकार** का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करके **आत्म+ज्ञान** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **आत्म** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **आत्मज्ञान** बना है। सु विभक्ति आई और अम् आदेश, पूर्वरूप करके ज्ञानम् के जैसे **आत्मज्ञानम्** आदि भी बना सकते हैं।

मनोविकारः। मन का विकार। **मनसः विकारः** लौकिक विग्रह और **मनस् ङस्+विकार सु** अलौकिक विग्रह में **षष्ठी** से समास हुआ। यहाँ पर षष्ठ्यन्त पद है **मनस् ङस्** और समर्थ सुबन्त है **विकार सु**। समास के बाद **मनस् ङस्+विकार सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **ङस्** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **मनस्+विकार** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **मनस्** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **मनस् विकार** बना है। **मनस्** के सकार का **ससजुषो रुः** से **रु** और **रु** के स्थान पर **हशि च** से **उत्व** करके **मन+उ+विकार**= बना। **मन+उ** में **आद्गुणः** से गुण होकर **मनोविकार** बना। सु विभक्ति आई और रुत्वविसर्ग करके **मनोविकारः** सिद्ध हुआ। इसके रूप रामशब्द की तरह चलते हैं।

सतां सङ्गतिः लौकिक विग्रह और **सत् आम्+सङ्गति सु** अलौकिक विग्रह में भी षष्ठीसमास करके **सत्सङ्गतिः** बनाइये।

१३२- **पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे**। पूर्वञ्च परञ्च अधरञ्च उत्तरञ्च तेषां समाहारद्वन्द्वः पूर्वापराधरोत्तरम्। एकदेशोऽस्यास्तीति एकदेशी, तेन एकदेशिना। एकं च तद् अधिकरणम् एकाधिकरणम्, कर्मधारयः, तस्मिन्। **समासः, सुप्, सह सुपा, विभाषा, तत्पुरुषः** इन सबों का अधिकार है।

यदि अवयवी एकत्व संख्या से युक्त हो तो तद्वाचक सुबन्त के साथ पूर्व, अपर, अधर, उत्तर इन सुबन्त समर्थ शब्दों का विकल्प से समास होता है और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक होता है।

यह सूत्र **षष्ठी** का अपवाद है। यदि **षष्ठी** से समास होने दिया जाय तो **षष्ठी** इस प्रथमान्त पद से निर्दिष्ट शब्द का पूर्वनिपात होकर अनिष्ट रूप बन सकता है, अतः इस सूत्र का कथन किया है।

पूर्वकायः। शरीर का अगला आधा भाग। **पूर्वं कायस्य** लौकिक विग्रह और **काय ङस् पूर्व सु** अलौकिक विग्रह है। **पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे** से समास

अर्धशब्देन समासार्थं विधिसूत्रम्

९३३. अर्धं नपुंसकम् २।२।२॥

समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्लीबे स प्राग्वत्। अर्धं पिप्पल्या अर्धपिप्पली।

....

हुआ। समास विधायक इस सूत्र में प्रथमान्त पद है- **पूर्वापराधरोत्तरम्** और इसके द्वारा निर्दिष्ट पद है- **पूर्व सु**। अतः इसी की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा होती है और उसका **उपसर्जनं पूर्वम्** से पूर्वनिपात हो जाता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पूर्वकाय** बना। स्वादिकार्य करके **पूर्वकायः** सिद्ध हुआ।

अपरकायः। शरीर का दूसरा आधा भाग। **अपरं कायस्य** लौकिक विग्रह और **काय ङस् अपर सु** अलौकिक विग्रह है। **पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे** से समास हुआ। समास विधायक इस सूत्र में प्रथमान्त पद है- **पूर्वापराधरोत्तरम्** और इसके द्वारा निर्दिष्ट पद है- **अपर सु**। अतः इसी की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा होती है और उसका **उपसर्जनं पूर्वम्** से पूर्वनिपात हो जाता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अपरकाय** बना। स्वादिकार्य करके **अपरकायः** सिद्ध हुआ।

एकाधिकरणे किम्? पूर्वश्छात्राणाम्। इस समासविधायक सूत्र **पूर्वापराधरोत्तर-मेकदेशिनैकाधिकरणे** में एकत्वसंख्या से युक्त कहना आवश्यक है जिससे एकत्वसंख्या वाले अवयवी के साथ तो समास होगा किन्तु बहुत्व संख्या वाले अवयवी के साथ नहीं। जैसा कि **पूर्वश्छात्राणाम्** में अवयवी **छात्राणाम्** बहुवचन युक्त है। अतः समास नहीं हुआ। भिन्न-भिन्न पद ही रहे- **पूर्वश्छात्राणाम्**।

९३३- **अर्धं नपुंसकम्**। अर्धं प्रथमान्तं, नपुंसकं प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **पूर्वापराधरोत्तर-मेकदेशिनैकाधिकरणे** से **एकाधिकरणे** और **एकदेशिना** की अनुवृत्ति आती है। **समासः, सुप्, सह सुपा, विभाषा, तत्पुरुषः** इन सबों का अधिकार है।

सम अंश (ठीक आधा भाग) का वाचक अर्ध शब्द नपुंसक है। नित्य नपुंसक यह अर्ध शब्द का एकत्व संख्या से युक्त अवयवी सुबन्त शब्दों के साथ विकल्प से समास होता है और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक होता है।

अर्ध शब्द जब **अंश** भाग आदि का वाचक रहता है तो वह पुँल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में प्राप्त होता है किन्तु जब **समांश** अर्थात् **ठीक आधे भाग** अर्थ में प्रयुक्त होता है तो **नित्य नपुंसक** लिङ्ग वाला होता है। इस सूत्र से इस नित्य नपुंसक अर्ध सुबन्त का एकत्वसंख्याविशिष्ट अवयवी सुबन्त के साथ विकल्प से तत्पुरुषसमास हो जाता है।

अर्धपिप्पली। पिपली का आधा भाग। **अर्धं पिप्पल्याः** लौकिक विग्रह और **पिप्पली ङस् अर्ध सु** अलौकिक विग्रह है। **पिप्पली ङस्** इस एकत्वसंख्याविशिष्ट अवयवी सुबन्त के साथ **अर्ध सु** का **अर्धं नपुंसकम्** से समास हुआ। समास विधायक इस सूत्र में प्रथमान्त पद है- **अर्धम्** और इसके द्वारा निर्दिष्ट पद है- **अर्ध सु**। अतः इसी की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा होती है और उसका **उपसर्जनं पूर्वम्** से पूर्वनिपात हो जाता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अर्धपिप्पली** बना। सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** नहीं — **हल्ङ्यादिलोप** करके **अर्धपिप्पली** सिद्ध हुआ। इसी तरह **आसनस्यार्धम् आसनार्धम्, शरीरस्यार्धम् शरीरार्धम्, पणस्य अर्धं पणार्धम्** आदि इसके अन्य उदाहरण हैं।

सप्तमीतत्पुरुष-समासविधायकं विधिसूत्रम्

१३४. सप्तमी शौण्डैः २।१।४०॥

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वत्।

अक्षेषु शौण्डः, अक्षशौण्ड इत्यादि।

द्वितीयातृतीयेत्यादियोगविभागादन्यत्रापि तृतीयादिविभक्तीनां प्रयोगवशात् समासो ज्ञेयः।

....

१३४- **सप्तमी शौण्डैः**। सप्तमी प्रथमान्तं, शौण्डैः तृतीयान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में भी **समासः, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, विभाषा** इत्यादि पदों की अनुवृत्ति और अधिकार है।

सप्तम्यन्त का शौण्ड आदि समर्थ शब्दों के साथ समास होता है।

इस सूत्र में प्रथमान्त-पद **सप्तमी** है। अतः उसके द्वारा निर्दिष्ट पद की उपसर्जनसंज्ञा होगी।

अक्षशौण्डः। पासाओं से खेलने में चतुर। **अक्षेषु शौण्डः** लौकिक विग्रह और **अक्ष सुप्+शौण्ड सु** अलौकिक विग्रह में **सप्तमी शौण्डैः** से समास हुआ। यहाँ पर सप्तम्यन्त-पद है **अक्ष+सुप्** और समर्थ शब्द है **शौण्ड+सु**। समास के बाद **अक्ष सुप्+शौण्ड सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **सुप्** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **अक्ष+शौण्ड** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **अक्ष** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **अक्षशौण्ड** बना है। सु विभक्ति आई और उसको रुत्वविसर्ग हुआ- **अक्षशौण्डः**।

सप्तमीसमास के अन्य उदाहरण-

काव्यनिपुणः। काव्यशास्त्र में निपुण। **काव्ये निपुणः** लौकिक विग्रह और **काव्य ङि+निपुण सु** अलौकिक विग्रह में **सप्तमी शौण्डैः** से समास हुआ। यहाँ पर सप्तम्यन्त पद है **काव्य+ङि** और समर्थ शौण्डादि शब्द है **निपुण सु**। समास के बाद **काव्य ङि+निपुण सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **ङि** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **काव्य+निपुण** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **काव्य** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **काव्यनिपुण** बना। सु विभक्ति आई और उसको रुत्वविसर्ग हुआ- **काव्यनिपुणः**।

समासविधायक सूत्रों में योगविभाग की कल्पना-

शिष्टों के द्वारा प्रयोग किये गये ऐसे बहुत कुछ तत्पुरुषसमास के प्रयोग मिलते हैं जिनका समास **द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः, तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन, चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः, पञ्चमी भयेन, सप्तमी शौण्डैः** इन सूत्रों से सम्भव नहीं हो सकता क्योंकि इन सूत्रों में श्रित, बलि, भय आदि शब्दों के साथ ही समास का विधान किया गया है। अतः वहाँ पर सूत्रों का विभाजन करके उन विविध प्रयोगों की सिद्धि की गई है। सूत्रों में पदों के विभाजन को **योगविभाग** कहते हैं। जैसे **द्वितीया श्रितातीतपतित-गतात्यस्तप्राप्तापन्नैः** यह सूत्र द्वितीयान्त का श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त और आपन्न शब्दों के साथ ही समास करता है। शेष समर्थ शब्दों के साथ तो समास नहीं हो पायेगा। इसलिए इस सूत्र का योगविभाग करके दो सूत्र बनाते हैं। प्रथमसूत्र **द्वितीया** और

दिक्सङ्ख्याशब्दसमासविधायकं नियमसूत्रम्

९३५. दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम् २।१।५०॥

संज्ञायामेवेति नियमार्थं सूत्रम्। पूर्वेषुकामशमी। सप्तर्षयः।
तेनेह न- उत्तरा वृक्षाः। पञ्च ब्राह्मणाः।

....

द्वितीयसूत्र **श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः** हो जाता है। प्रथमसूत्र **द्वितीया** में **समासः, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, विभाषा** इत्यादि पदों की अनुवृत्ति और अधिकार आ जायेंगे। इस प्रकार से **द्वितीया** इस सूत्र का अर्थ बनता है- **द्वितीयान्त का समर्थ सुबन्त के साथ समास हो जाय।** यहाँ पर द्वितीयान्त के साथ समास करने के लिए किसी शब्दविशेष की अपेक्षा नहीं रहती है। अतः अनेक जगहों पर समास हो सकेगा। यही प्रक्रिया **तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन, चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः, पञ्चमी भयेन, सप्तमी शौण्डैः** इन सूत्रों में भी अपनाई जायेगी और योगविभाग वाले सूत्रों का स्वरूप होगा **तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी** और **सप्तमी**, जिससे शब्दविशेष की अपेक्षा न होने के कारण अनेक जगहों पर समास की प्रक्रिया हो सकेगी। योगविभाग करके समास किये गये कुछ प्रयोगों का दिग्दर्शन मात्र करते हैं-

वेदं विद्वान् लौकिक विग्रह और **वेद अम्+विद्वस् सु** अलौकिक विग्रह में **द्वितीया** से समास करके **वेदविद्वान्** बनता है। (वेद को जानने वाला)। इसी प्रकार **मदेन अन्धः** लौकिक विग्रह और **मद टा+अन्ध सु** अलौकिक विग्रह में **तृतीया** से समास करके **मदान्धः** बनता है। (मद से अन्धा)। ऐसे ही **धर्माय नियमः** लौकिक विग्रह और **धर्म ङे+नियम सु** अलौकिक विग्रह में **चतुर्थी** से समास करके **धर्मनियमः** बनता है। (धर्म के लिए नियम)। **द्विजाद् इतरः** लौकिक विग्रह और **द्विज ङसि+इतर सु** अलौकिक विग्रह में **पञ्चमी** से समास करके **द्विजेतरः** बनता है। (ब्राह्मण से अलग)। इसी तरह **भुवने विदितः** लौकिक विग्रह और **भुवन ङि+विदित सु** अलौकिक विग्रह में **सप्तमी** से समास करके **भुवनविदितः** बनता है। (संसार में प्रसिद्ध)।

९३५- दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम्। दिक् च सङ्ख्या च तयोरितरेतरद्वन्द्वो दिक्सङ्ख्ये। दिक्सङ्ख्ये प्रथमान्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः** से **समानाधिकरणेन** की अनुवृत्ति और **समासः, सुप्, सह सुपा, तत्पुरुषः** इन पदों की अनुवृत्ति और अधिकार है।

दिशावाची और संख्यावाची सुबन्त का समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास होता है संज्ञा अर्थ गम्यमान होने पर और वह तत्पुरुष समास कहलाता है।

यह नियमार्थ सूत्र है। नियम कैसे? **संज्ञा** और **असंज्ञा** दोनों में अग्रिम सूत्र **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समानाधिकरण में समास होता है। उससे **सप्तर्षयः** आदि में भी समास सिद्ध हो सकता है तो इस सूत्र की क्या आवश्यकता है? उत्तर यह है कि **सिद्धे सत्यारभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति।** सिद्ध होने पर भी उसी कार्य के लिए पुनः किसी सूत्र से विधान करना नियम के लिए होता है। यहाँ पर भी **दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम्** सूत्र नियमार्थ ही है। नियम इस तरह का होगा- **दिशा और सङ्ख्यावाची सुबन्त का यदि समानाधिकरण के साथ समास हो तो केवल संज्ञा में ही हो अन्यत्र नहीं।**

तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारसमासविधायकं विधिसूत्रम्

९३६. तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च २।१।५१॥

तद्धितार्थे विषये उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये दिक्सङ्ख्ये प्राग्वत्। पूर्वस्यां शालायां भवः, पूर्वा शाला इति समासे जाते-

वार्तिकम्- **सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः।**

....

दिशावाची शब्द के साथ संज्ञा का उदाहरण-

पूर्वेषुकामशमी। पूर्वेषुकामशमी नामक प्राचीन एक गाँव। **पूर्वा चासौ इषुकामशमी** लौकिक विग्रह और **पूर्वा सु इषुकामशमी सु** अलौकिक विग्रह है। दोनों में समान विभक्ति हैं। अतः समानाधिकरण है। **पूर्वा** यह दिशावाचक शब्द है। समास होने के बाद एक गांव के वाचक होने के कारण संज्ञा अर्थ भी है। अतः **दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम्** से समास हुआ। समासविधायक सूत्र में प्रथमान्त पद है **दिक्सङ्ख्ये** और उसके द्वारा निर्दिष्ट पद है **पूर्वा सु,** उसकी उपसर्जनसंज्ञा के बाद पूर्वनिपात करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पूर्वा+इषुकामशमी** बना। गुण होकर **पूर्वेषुकामशमी** बना। सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** ...

सप्तर्षयः। सात ऋषियों की संज्ञा। **सप्त च ते ऋषयः** लौकिक विग्रह और **सप्तन् जस् ऋषि जस्** अलौकिक विग्रह है। दोनों में समान विभक्ति हैं। अतः समानाधि करण है। **सप्त** यह संख्यावाचक शब्द है। समास होने के बाद **विश्वामित्र** आदि **सात ऋषियों के वाचक** होने के कारण संज्ञा अर्थ भी है। अतः **दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम्** से समास हुआ। समासविधायक सूत्र में प्रथमान्त पद है **दिक्सङ्ख्ये** और उसके द्वारा निर्दिष्ट पद है **सप्तन् जस्,** उसकी उपसर्जनसंज्ञा होने के बाद पूर्व का पूर्वनिपात करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और नकार का लोप करके **सप्त+ऋषि** बना। गुण, रपर होकर **सप्तर्षि** बना। बहुवचन में जस्, **जसि च** से गुण होकर **सप्तर्षयः** सिद्ध हुआ। यह भी एक संज्ञा ही है।

संज्ञा में विधान होने के कारण **उत्तरा वृक्षाः** उत्तर दिशा के वृक्ष और **पञ्च ब्राह्मणाः** पाँच ब्राह्मण आदि में यह समास नहीं हुआ क्योंकि **उत्तर दिशा के वृक्ष** यह संज्ञा नहीं है और **पाँच ब्राह्मण** भी संज्ञा अर्थात् किसी का नाम नहीं है।

९३६- तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च। तद्धितस्य अर्थः तद्धितार्थः, उत्तरं च तत्पदम् उत्तरपदं। तद्धितार्थश्च उत्तरपदञ्च समाहारश्च तेषां समाहारद्वन्द्वस्तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारम्, तस्मिन् तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे। तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **दिक्संख्ये संज्ञायाम्** से **दिक्संख्ये** और **पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन** से **समानाधिकरणेन** की अनुवृत्ति आती है तथा **समासः, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, विभाषा** इत्यादि पदों का अधिकार है।

तद्धित-प्रत्यय के अर्थ का विषय होने पर या उत्तरपद परे होने पर अथवा समाहार अर्थात् समूह अर्थ होने पर दिशा और संख्या के वाचक समर्थ सुबन्त का समानविभक्ति वाले सुबन्त के साथ समास होता है और वह तत्पुरुष समास है।

यह सूत्र तद्धितप्रत्यय का विषय होने पर समास कर देता है तथा उत्तरपद परे होने पर पूर्व के दो पदों का समास करता है एवं समूह अर्थ में समास करता है। इस सूत्र

ञप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१३७. दिक्पूर्वपदादसञ्ज्ञायां ञः ४।२।१०७॥

अस्माद् भवाद्यर्थे ञः स्यादसंज्ञायाम्।

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

१३८. तद्धितेष्वचामादेः ७।२।११७॥

ञिति णिति च तद्धितेष्वचामादेरचो वृद्धिः स्यात्। **यस्येति च।**

पौर्वशालः। पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ-

वार्तिकम्- **द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्।**

....

के द्वारा किये गये समास को **तद्धितार्थ तत्पुरुष समास, उत्तरपदसमास** एवं **समाहारतत्पुरुषसमास** कहते हैं।

पूर्वा और **शाला** इन दोनों स्त्रीलिंगी शब्दों में समास होने पर पुंवद्भाव करने के लिए वार्तिक का अवतरण किया गया है-

सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः। अर्थात् सर्वनामसंज्ञक शब्दों में वृत्तिमात्र अर्थात् समास, तद्धित आदि सभी वृत्तियों के होने पर पुंवद्भाव हो जाता है। तात्पर्य यह है कि यदि दो या दो से अधिक स्त्रीलिङ्गी या नपुंसकलिङ्गी शब्दों में पूर्व में स्थित सर्वनामसंज्ञक शब्द में विद्यमान लिङ्गबोधक प्रत्यय हट कर पुँल्लिङ्ग की तरह का शब्द हो जाता है। जैसे- **पूर्वा शाला** में समासवृत्ति होने के बाद इस वार्तिक से पुंवद्भाव होकर **पूर्व-शाला** हो जाता है।

१३७- दिक्पूर्वपदादसञ्ज्ञायां ञः। दिक् पूर्वपदं यस्य स दिक्पूर्वपदं, तस्माद् दिक्पूर्वपदात्। न संज्ञा असंज्ञा, तस्याम् असंज्ञायाम्। दिक्पूर्वपदात् पञ्चम्यन्तम्, असंज्ञायां सप्तम्यन्तं, ञः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **शेषे** से **शेषे** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का पहले से ही अधिकार चल रहा है। यह तद्धित प्रकरण का सूत्र है।

दिशा-वाचक शब्द पूर्व में हो ऐसे प्रातिपदिक से भव आदि शैषिक अर्थों में ञ प्रत्यय होता है असंज्ञा में।

ञ यह तद्धित का प्रत्यय है। ञकार की **चुटू** से इत्संज्ञा होने के बाद लोप होकर **अकार** ही शेष रहता है। ञित् का फल **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि होना है। यह प्रत्यय संज्ञा में नहीं होता।

१३८- तद्धितेष्वचामादेः। तद्धितेषु सप्तम्यन्तम्, अचाम्, षष्ठ्यन्तम्, आदेः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अचो ञ्णिति** से **अचः, ञ्णिति** और **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की अनुवृत्ति आती है।

ञित् या णित् तद्धित प्रत्ययों के परे होने पर अचों में आदि अच् की वृद्धि होती है।

यह सूत्र तद्धितप्रकरण में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसके साथ ही **किति च** भी है, जो कित् के परे वृद्धि करता है। **ञ** प्रत्यय के तद्धित होने के कारण उसके परे वृद्धि करने के लिए समास के बीच में इस सूत्र को दिया है।

समासान्तटज्विधायकं विधिसूत्रम्

९३९. गोरतद्धितलुकि ५।४।९२॥

गोऽन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात् समासान्तो न तु तद्धितलुकि। पञ्चगवधनः।

....

पौर्वशालः। पूर्वदिशा वाली शाला में होने वाला। **पूर्वस्यां शालायां भवः** लौकिक विग्रह और **पूर्वा ङि+शाला ङि** अलौकिक विग्रह में तद्धित के लिए तैयार किये गये वाक्य होने के कारण तद्धितार्थ विषय मान कर **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समास हुआ। दोनों पदों में समानविभक्ति **ङि** ही है। समास के बाद **पूर्वा ङि शाला ङि** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों प्रत्ययों का लुक् हुआ- **पूर्वा+शाला** बना। प्रथमानिर्दिष्ट दिशावाचक शब्द **पूर्वा** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **पूर्वा शाला** बना। **सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः** से समासवृत्ति को मान कर सर्वादि **पूर्वा** को पुंवद्भाव होकर **पूर्वशाला** बना। अब तद्धित प्रत्यय होने के लिए सूत्र लगा- **दिक्पूर्वपदात्संज्ञायां ञः**। इससे ञ प्रत्यय होकर अनुबन्धलोप करने पर **पूर्वशाला अ** बना। अकार ञित् है, अतः **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि में विद्यमान अच् **पू** के ऊकार को वृद्धि होकर **पौर्वशाला अ** बना। अब **यस्येति च** से लकारोत्तरवर्ती भसंज्ञक **आकार** का लोप हुआ। **पौर्वशाल्+अ=पौर्वशाल** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसको रुत्वविसर्ग हुआ- **पौर्वशालः**।

द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्। यह वार्तिक है। **पञ्चगवधनः** आदि तीन पदों में पहले **अनेकमन्यपदार्थे** सूत्र त्रिपद-बहुव्रीहि समास होकर बाद में उसके अन्तर्गत आने वाले पहले के दो पदों का इस **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से नित्य से समास होता है। तत्पुरुष समास महाविभाषा अर्थात् वैकल्पिक है। अतः नित्य से समास करने के लिए इस वार्तिक का अवतरण किया गया है। अर्थ- **उत्तरपद के परे होने पर यदि द्वन्द्व और तत्पुरुष समास हो तो वह नित्य से हो, ऐसा कहना चाहिए।**

९३९- गोरतद्धितलुकि। तद्धितस्य लुक् तद्धितलुक्, न तद्धितलुक् अतद्धितलुक्, तस्मिन् अतद्धितलुकि। गोः पञ्चम्यन्तम्, अतद्धितलुकि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से **टच्** की और **तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः** से वचनविपरिणाम करके **तत्पुरुषात्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** का अधिकार आ ही रहा है।

गो-शब्द अन्त में हो ऐसे तत्पुरुष समास से परे समासान्त टच् प्रत्यय होता है यदि तद्धित का लुक् न हुआ हो तो।

पञ्चगवधनः। पाँच गाय धन है जिसका, वह व्यक्ति। **पञ्च गावो धनं यस्य** यह तीन पदों का लौकिक विग्रह और **पञ्चन् जस्+गो जस्+धन सु** यह अलौकिक विग्रह है। इस स्थिति में **अनेकमन्यपदार्थे** से बहुव्रीहि समास हो जाता है। उसके बाद **पञ्चन्** और **गो** में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से महाविभाषा के अन्तर्गत वैकल्पिक समास प्राप्त था तो **द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्** की सहायता से उत्तरपद **धन+सु** के परे रहते नित्य से समास हुआ। समास के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करने पर **पञ्चन् गो धन** बना। लुप्त हुई विभक्ति को अन्तर्वर्तिनी विभक्ति मानकर पद और पद के अन्त नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **पञ्चगो धन** बना। **गोरतद्धितलुकि**

कर्मधारयसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

९४०. तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः १।२।४२॥

द्विगुसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

९४१. सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः २।१।५२॥

तद्धितार्थेत्यत्रोक्तस्त्रिविधः सङ्ख्यापूर्वो द्विगुसंज्ञः स्यात्।

एकत्वप्रतिपादकं विधिसूत्रम्

९४२. द्विगुरेकवचनम् २।४।१॥

द्विग्वर्थः समाहार एकवत् स्यात्।

नपुंसकत्वविधायकं विधिसूत्रम्

९४३. स नपुंसकम् २।४।१७॥

समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात्।

पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवम्।

....

से **धन** उत्तरपद के परे रहते **पञ्चगो** से **टच्** प्रत्यय होकर अनुबन्धलोप करने पर **पञ्चगो+अ+धन** बना। **एचोऽयवायावः** से **ओकार** के स्थान पर **अव्** आदेश होकर **पञ्चगवधन** बना। यद्यपि धन-शब्द **नपुंसकलिङ्गी** है तथापि बहुव्रीहि समास होने पर अन्यपदार्थ(पाँच गाय रूपी धन वाला) पुरुष का विशेषण होने से वह पुँल्लिङ्ग का वाचक बन गया है। अतः यह पुँल्लिङ्ग में प्रयुक्त है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक भी है। उससे सु विभक्ति लाकर उसके स्थान पर रुत्वविसर्ग करने पर **पञ्चगवधनः** सिद्ध हुआ।

९४०- **तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः**। तत्पुरुषः प्रथमान्तं, समानाधिकरणः प्रथमान्तं, कर्मधारयः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

जिस समास में पूर्वपद और उत्तरपद एक ही विभक्ति के हों, उस समास की कर्मधारयसंज्ञा होती है।

कर्मधारयसंज्ञा के साथ तत्पुरुष भी बना रहता है इसीलिए कर्मधारय को तत्पुरुष का एक भेद माना जाता है।

९४१- **सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः**। सङ्ख्या पूर्वो यस्य स सङ्ख्यापूर्वः। सङ्ख्यापूर्वः प्रथमान्तं, द्विगुः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च इस सूत्र में कथित त्रिविध समास में यदि संख्यावाचक शब्द पूर्व पद में हो तो ऐसे समास की द्विगुसंज्ञा होती है।

कर्मधारयसंज्ञा का एक भेद द्विगु है। अतः द्विगु, कर्मधारय के साथ तत्पुरुष भी बना रहता है इसीलिए द्विगु-कर्मधारय को तत्पुरुष का एक भेद माना जाता है।

९४२- **द्विगुरेकवचनम्**। द्विगुः प्रथमान्तम्, एकवचनं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

द्विगु समास का अर्थ समाहार एकवचन होता है।

समासविधायकं विधिसूत्रम्

१४४. विशेषणं विशेष्येण बहुलम् २।१।५७।।

भेदकं भेद्येन समानाधिकरणेन बहुलं प्राग्वत्।
नीलमुत्पलं नीलोत्पलम्। **बहुलग्रहणात्क्वचिन्नित्यम्।** कृष्णसर्पः।
क्वचिन्न- रामो जामदग्न्यः।

....

१४३- स नपुंसकम्। सः प्रथमान्तं, नपुंसकं प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्।

समाहार में द्विगु और द्वन्द्व नपुंसक होता है।

पञ्चगवम्। पाँच गायों का समूह। **पञ्चानां गवां समाहारः** लौकिक विग्रह और **पञ्चन् आम्+गो आम्** यह अलौकिक विग्रह है। समाहारवाच्य में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समास हुआ। समास के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करने पर **पञ्चन् गो** बना। लुप्त हुई विभक्ति को अन्तर्वर्तिनी विभक्ति मानकर पद और पद के अन्त नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **पञ्चगो** बना। **गोरतद्धितलुकि** से **पञ्चगो** से **टच्** प्रत्यय होकर अनुबन्धलोप करने पर **पञ्चगो+अ** बना। **एचोऽयवायावः** से ओकार के स्थान पर अव् आदेश होकर **पञ्चगव** बना। पूर्व में संख्यावाचक शब्द होने के कारण **सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः** से **द्विगुसंज्ञा** होने के बाद **स नपुंसकम्** से नपुंसकलिङ्ग का कथन हुआ। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक भी है। **द्विगुरेकवचनम्** से एकवचन का विधान हुआ। अतः उससे एकवचन सु विभक्ति लाकर उसके स्थान पर अम् आदेश और पूर्वरूप करने पर **पञ्चगवम्** बन गया।

१४४- विशेषणं विशेष्येण बहुलम्। विशेषणं प्रथमान्तं, विशेष्येण तृतीयान्तं, बहुलं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन** से **समानाधिकरणेन** की अनुवृत्ति आती है। **समासः, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, विभाषा** आदि पदों की अनुवृत्ति और अधिकार है।

समान विभक्ति वाले भेदक=विशेषण का भेद्य=विशेष्य के साथ बहुलता से समास होता है।

नीलोत्पलम्। नील कमल। **नीलम् उत्पलम्** अथवा **नीलं च तद् उत्पलम्** लौकिक विग्रह और **नील सु+उत्पल सु** अलौकिक विग्रह में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास हुआ। यहाँ पर विशेषणपद है **नील सु** और विशेष्यपद है **उत्पल सु।** दोनों प्रथमान्त एकवचन हैं। इसलिए समानाधिकरण है। **नील सु+उत्पल सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लुक्, **नील+उत्पल** बना। **विशेषणम्** इस प्रथमान्तपद से निर्दिष्ट शब्द **नील** है, उसकी उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग हुआ। **नील+उत्पल** में गुण करके **नीलोत्पल** बना। प्रथमा का एकवचन सु आया, नपुंसक होने के कारण **अम्** आदेश हुआ और पूर्वरूप करके **नीलोत्पलम्** सिद्ध हुआ।

इस समास के अन्य उदाहरण-

निर्मलगुणाः। निर्मल गुण। **निर्मला गुणाः** अथवा **निर्मलाश्च ते गुणाः** लौकिक विग्रह और **निर्मल जस्+गुण जस्** इस अलौकिक विग्रह में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास हुआ। यहाँ पर विशेषणपद है **निर्मल जस्** और विशेष्यपद है **गुण जस्।** दोनों पद

सोपमानकर्मधारयसमासविधायकं विधिसूत्रम्

९४५. उपमानानि सामान्यवचनैः २।१।५५।।

घन इव श्यामो घनश्यामः।

वार्तिकम्- **शाकपार्थिवादीनां सिद्धय उत्तरपदलोपस्योपसङ्ख्यानम्।**

शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिवः। देवपूजको ब्राह्मणो देवब्राह्मणः।

....

प्रथमान्त बहुवचन के हैं, अतः समानाधिकरण है। **निर्मल जस्+गुण जस्** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों जस् का लुक्, **निर्मल+गुण** में **विशेषणम्** इस प्रथमान्तपद से निर्दिष्ट शब्द **निर्मल** है, उसकी उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग हुआ। **निर्मलगुण** से प्रथमा का बहुवचन **जस्** आया और **रामाः** की तरह **निर्मलगुणाः** बन गया। यह पुँल्लिङ्ग का उदाहरण है।

कृष्णचतुर्दशी। कृष्णपक्ष वाली चतुर्दशी। **कृष्णा चतुर्दशी** अथवा **कृष्णा चासौ चतुर्दशी** लौकिक विग्रह और **कृष्णा सु+चतुर्दशी सु** इस अलौकिक विग्रह में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास हुआ। यहाँ पर विशेषणपद है **कृष्णा सु** और विशेष्यपद है **चतुर्दशी सु**। दोनों पद प्रथमान्त एकवचन के हैं, अतः समानाधिकरण है। **कृष्णा सु+चतुर्दशी सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लुक्, **कृष्णा+चतुर्दशी** में **विशेषणम्** इस प्रथमान्तपद से निर्दिष्ट शब्द **कृष्णा** है, उसकी उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग हुआ। **स्त्रियाः पुवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** सूत्र के द्वारा कृष्णा को पुंवद्भाव होकर **कृष्णचतुर्दशी** बना। उससे प्रथमा का एकवचन सु आया और नदीशब्द की तरह **कृष्णचतुर्दशी** बन गया। यह स्त्रीलिङ्ग का उदाहरण है।

अखिलभूषणानि। सारे आभूषण। **अखिलानि भूषणानि** अथवा **अखिलानि च तानि भूषणानि** लौकिक विग्रह और **अखिल जस्+भूषण जस्** अलौकिक विग्रह में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास हुआ। यहाँ पर विशेषणपद है **अखिल जस्** और विशेष्यपद है **भूषण जस्**। दोनों पद प्रथमान्त बहुवचन के हैं, अतः समानाधिकरण है। **अखिल जस्+भूषण जस्** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों जस् का लुक्, **अखिल+भूषण** में **विशेषणम्** इस प्रथमान्तपद से निर्दिष्ट शब्द **अखिल** है, उसकी उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग हुआ। **अखिलभूषण** से प्रथमा का बहुवचन **जस्** आया और नपुंसकलिङ्ग होने के कारण **ज्ञानानि** की तरह **अखिलभूषणानि** बन गया। यह नपुंसकलिङ्ग का उदाहरण है।

कर्मधारयसमास में सामानाधिकरण्य को दिखाने के लिए लौकिकविग्रह प्रायः दो प्रकार से किया जाता है- केवल समास किये जाने वाले पदों के द्वारा जैसे **नीलम् उत्पलम्** अथवा चकार लगाकर **नीलं च तद् उत्पलम्** और **वृद्धो नरः** अथवा **वृद्धश्चासौ नरः** आदि।

बहुलग्रहणात्क्वचिन्नित्यम्। कृष्णसर्पः। **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** इस सूत्र में **बहुलम्** का विशेष अर्थ है। अतः **कृष्णश्चासौ सर्पः** में नित्य से समास किया गया है और **राम सु जामदग्न्य सु** में समानाधिकरण होते हुए भी **बहुल** का आश्रय लेकर के समास नहीं किया गया- **रामो जामदग्न्यः** ही रह गया। स्मरण रहे कि **बहुल** के चार अर्थ होते हैं- **कहीं**

नित्य से प्रवृत्त होना, कहीं नित्य से अप्रवृत्त होना, कहीं विकल्प से करना और कहीं कुछ भिन्न अर्थात् विचित्र सा ही कार्य करना। यहाँ पर **कृष्णश्चासौ सर्पः** में विकल्प से प्राप्त समास को इसने नित्य से कर दिया और **रामश्चासौ जागदग्न्यः** में प्राप्त होने की स्थिति है, फिर भी प्रवृत्त नहीं हुआ।

९४५- उपमानानि सामान्यवचनैः। उपमानानि प्रथमान्तं, सामान्यवचनैः तृतीयान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन** से **समानाधिकरणेन** की अनुवृत्ति आती है, इसके अतिरिक्त **समासः, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, विभाषा** इत्यादि पदों की अनुवृत्ति और अधिकार है ही।

उपमानवाचक सुबन्त का समान-विभक्तिक सामान्यवचन वाले सुबन्तों के साथ समास होता है।

उपमा तीन वस्तुओं से होती है- उपमान, उपमेय और समानता। जिनके द्वारा किसी अन्य वस्तु की तुल्यता या समानता दिखाई जाती है, उनको उपमान कहते हैं और जिनके लिए तुल्यता दिखाई जाती है वे उपमेय है। समानता तो उपमान और उपमेय में सादृश्य रूप में विद्यमान एक धर्म है। जैसे **चन्द्र इव मुखं यस्याः** (चन्द्रमा की तरह सुन्दर मुख वाली) में चन्द्र उपमान है, मुख उपमेय है और दोनों में विद्यमान सुन्दरता सादृश्य अर्थात् समानता है। यही उपमा है। सामान्य का अर्थ- समानानां भावः अर्थात् दोनों में विद्यमान समानता को लिया गया है। इस सूत्र में प्रथमान्तपद **उपमानानि** है, इससे निर्दिष्ट की उपसर्जनसंज्ञा होगी।

घनश्यामः। बादल की तरह श्यामवर्ण वाला, श्रीकृष्ण। **घन इव श्यामः** लौकिक विग्रह और **घन सु+श्याम सु** अलौकिक विग्रह में **उपमानानि सामान्यवचनैः** से समास हुआ। यहाँ पर उपमान है **घन सु** और समान श्याम गुण वाला सुबन्त है **श्याम सु**। दोनों पद प्रथमान्त एकवचन के हैं, अतः समानाधिकरण है। **घन सु+श्याम सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लुक्, **घन+श्याम** में **उपमानानि** इस प्रथमान्तपद से निर्दिष्ट शब्द **घन** है, उसकी उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग हुआ। **घनश्याम** से प्रथमा का एकवचन सु आया और **रामः** की तरह **घनश्यामः** बन गया।

अन्य उदाहरण-

कर्पूरगौरः। कपूर की तरह श्वेतवर्ण वाला। **कर्पूर इव गौरः** लौकिक विग्रह और **कर्पूर सु+गौर सु** में **उपमानानि सामान्यवचनैः** से समास हुआ। यहाँ पर उपमान है **कर्पूर सु** और समान-गुण वाला सुबन्त है **गौर सु**। दोनों पद प्रथमान्त एकवचन के हैं, अतः समानाधिकरण है। **कर्पूर सु+गौर सु** की समाससंज्ञा और प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लुक्, **कर्पूर+गौर** में **उपमानानि** इस प्रथमान्तपद से निर्दिष्ट शब्द **कर्पूर** है, उसकी उपसर्जनसंज्ञा और पूर्व का पूर्व में ही प्रयोग हुआ। **कर्पूरगौर** से प्रथमा का एकवचन **सु** आया और **रामः** की तरह **कर्पूरगौरः** बन गया।

शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसङ्ख्यानम्। यह वार्तिक है। **शाकप्रियः पार्थिवः** आदि में उत्तरपद प्रियः का लोप करने पर ही शाकपार्थिवः बनता है। शाकपार्थिव आदि की सिद्धि के लिए उत्तरपद का लोप किया जाना चाहिए, जिससे अनेक शब्दों की सिद्धि होती है। इस वार्तिक के द्वारा किये गये कार्य को **उत्तरपदलोपी समास** कहते हैं। समास तो **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से ही हो जाता है। इस वार्तिक से केवल उत्तरपदलोप किया जाता है।

नञ्समासविधायकं विधिसूत्रम्

९४६. नञ् २।२।६॥

नञ् सुपा सह समस्यते।

नकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

९४७. नलोपो नञः ६।३।७३॥

नञो नस्य लोप उत्तरपदे। न ब्राह्मणः अब्राह्मणः।

नुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

९४८. तस्मान्नुडचि ६।३।७४॥

लुप्तनकारान्नञ उत्तरपदस्याजादेर्नुडागमः स्यात्। अनश्वः।

नैकधेत्यादौ तु न-शब्देन सह सुप्सुपेति समासः।

....

शाकपार्थिवः। शाक को प्रिय मानने वाला राजा। **शाकप्रियः पार्थिवः** लौकिक विग्रह और **शाकप्रिय सु+पार्थिव सु** अलौकिक विग्रह में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास हुआ। यहाँ पर विशेषणपद है **शाकप्रिय सु** और विशेष्यपद है **पार्थिव सु**। दोनों पद प्रथमान्त बहुवचन के हैं, अतः समानाधिकरण है। **शाकप्रिय सु+पार्थिव सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लुक्, **शाकप्रिय+पार्थिव** में **विशेषणम्** इस प्रथमान्तपद से निर्दिष्ट शब्द **शाकप्रिय** है, उसकी उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वपूर्वप्रयोग हुआ। **शाकप्रिय** में भी दो शब्दों का समास है- **शाक+प्रिय**। **शाकः प्रियः अस्ति यस्य स शाकप्रियः** ऐसा बहुव्रीहिसमास होता है। इस समास में उत्तरपद **प्रिय** है। उस उत्तरपद **प्रिय** का **शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसङ्ख्यानम्** से लोप हो गया- **शाकपार्थिव** बना। प्रथमा का एकवचन सु आया और रामः की तरह **शाकपार्थिवः** बन गया। इसी प्रकार **देवपूजको ब्राह्मणः** लौकिक विग्रह और **देवपूजक सु+ब्राह्मण सु** अलौकिक विग्रह में समास करके उत्तरपद **पूजक** का लोप, सु विभक्ति, अनुबन्धलोप और रुत्वविसर्ग होने पर **देवब्राह्मणः** बन जाता है।

९४६- **नञ्**। नञ् प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सह सुपा** से **सुपा** की अनुवृत्ति और **तत्पुरुषः** एवं **समासः** का अधिकार है।

नञ् इस अव्यय का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है।

यह भी तत्पुरुषसमास ही है। **नञ्** यह प्रथमान्तपद है, अतः इसके द्वारा निर्दिष्ट **न** ही उपसर्जनसंज्ञक होता है।

९४७- **नलोपो नञः**। नलोपः प्रथमान्तं, नञः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अलुगुत्तरपदे** से **उत्तरपदे** की अनुवृत्ति आती है।

उत्तरपद के परे होने पर नञ् के नकार का लोप होता है।

अब्राह्मणः। ब्राह्मण से भिन्न ब्राह्मण जैसा क्षत्रिय आदि। **न ब्राह्मणः** लौकिक विग्रह और **न+ब्राह्मण सु** अलौकिक विग्रह है। इसमें **नञ्** सूत्र से समास हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **न+ब्राह्मण** बना। न की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग। **नलोपो नञः**

गतिसमासविधायकं विधिसूत्रम्

१४९. कुगतिप्रादयः २।२।१८॥

एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते। कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः।

....

से **ब्राह्मण** इस उत्तरपद के परे होने पर **न** के **नकार** का लोप हुआ, **अ+ब्राह्मण=अब्राह्मण** बना। सु आदि कार्य करके **अब्राह्मणः** सिद्ध हुआ।

१४८- **तस्मान्नुडचि**। तस्मात् पञ्चम्यन्तं, नुट् प्रथमान्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **नलोपो नञः** से **नञः** तथा **अलुगुत्तरपदे** से **उत्तरपदे** की अनुवृत्ति आती है।

जिसके नकार का लोप हो चुका है, ऐसे नञ् से परे अजादि उत्तरपद को नुट् का आगम होता है।

उकार और टकार की इत्संज्ञा होती है। टित् होने के कारण अच् के आदि में बैठेगा। यहाँ **तस्मात्** से **नलोपभूतात् नञः** यह अर्थ लिया जाता है।

अनश्वः। अश्व अर्थात् घोड़े से भिन्न घोड़े के सदृश गधा, खच्चर आदि। **न अश्वः** लौकिक विग्रह और **न+अश्व सु** अलौकिक विग्रह है। इसमें **नञ्** सूत्र से समास हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **न+अश्व** बना। **न** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग। **नलोपो नञः** से **अश्व** इस उत्तरपद के परे होने पर न के न् का लोप हुआ, **अ+अश्व** बना। **तस्मान्नुडचि** से अश्व को नुट् का आगम, अनुबन्धलोप, **अ न् अश्व** में वर्णसम्मेलन करके **अनश्व** बना। सु आदि कार्य करके **अनश्वः** सिद्ध हुआ।

नैकधेत्यादौ तु न-शब्देन सह सुप्सुपेति समासः। यदि **न अश्वः** में **नञ्** समास होने के कारण **नुट्** होकर **अनश्वः** बनता है तो **न एकधा** में नुट् होकर **अनेकधा** बनना चाहिए किन्तु **नैकधा** ऐसा प्रयोग देखा जाता है क्यों? इसका उत्तर यह है कि **न** और **नञ्** ये भिन्न-भिन्न निषेधार्थक अव्यय हैं। **नञ्** यह समासविधायक सूत्र **नञ्** के साथ में समास करता है, **न** के साथ में नहीं। **नलोपो नञः** भी **नञ्** के नकार का लोप करता है, **न** के नकार का नहीं। **तस्मान्नुडचि** भी **नञ्** से पर अजादि को **नुट्** का आगम करता है, **न** से परे नहीं। **नैकधा** में **न एकधा** का जो **न** है, वह **नञ्** का **न** नहीं है अपितु स्वतन्त्र **न** है। अतः **नञ्** से समास न हो सका साथ ही नकार का लोप और नुट् का आगम, ये दो भी नहीं हो सके। फलतः **सह सुपा** से समास करके **नैकधा** बन गया है। **न** के साथ समास के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं- **न चिरम्=नचिरम्, न एकः=नैकः** इत्यादि।

१४९- **कुगतिप्रादयः**। प्र आदौ येषान्ते प्रादयः, कुश्च गतिश्च प्रादयश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः कुगतिप्रादयः। कुगतिप्रादयः प्रथमान्तमेकपदं सूत्रम्। **नित्यं क्रीडाजीविकयोः** से **नित्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **समासः, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, विभाषा** इत्यादि पदों की अनुवृत्ति और अधिकार है ही।

समर्थ सुबन्त शब्दों के साथ कु-शब्द, गतिसंज्ञक शब्द और प्र आदि का समास होता है।

इस सूत्र के द्वारा किये गये कार्य को **गतिसमास** या **प्रादिसमास** कहा जाता है। प्रायः अन्य सूत्रों के द्वारा किया गया समास वैकल्पिक होता है अर्थात् एक पक्ष में लौकिक विग्रह वाला वाक्य ही रह जाता है किन्तु इस सूत्र में **नित्यम्** की अनुवृत्ति लाकर नित्य से समास का विधान किया गया है।

गतिसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

९५०. ऊर्यादिच्विडाचश्च १।४।६१॥

ऊर्यादयश्च्व्यन्ता डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः।

ऊरीकृत्य। शुक्लीकृत्य। पटपटाकृत्य। सुपुरुषः।

वार्तिकम्- **प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया।** प्रगत आचार्यः प्राचार्यः।

वार्तिकम्- **अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया।** अतिक्रान्तो मालामिति विग्रहे-

....

कुपुरुषः। निन्दित पुरुष। **कुत्सितः पुरुषः** लौकिक विग्रह और **कु+पुरुष सु** अलौकिक विग्रह है। कुत्सित अर्थ में **कु** है। ऐसी स्थिति में **कुगतिप्रादयः** से समास हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **कु+पुरुष** बना। पूरा सूत्र ही प्रथमान्त है, अतः उसके द्वारा निर्दिष्ट **कु** की उपसर्जनसंज्ञा और उसका पूर्वप्रयोग। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सुविभक्ति करके **कुपुरुषः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **कुत्सिता माता कुमाता, कुत्सिता दृष्टिः कुदृष्टिः** आदि भी समझना चाहिए। ये **कु-शब्द** के साथ समास का उदाहरण हैं। गतिसंज्ञक के साथ समास का उदाहरण आगे अग्रिम सूत्र से गतिसंज्ञा करके देखिये।

क्रिया के योग में **प्र** आदियों की **उपसर्गाः क्रियायोगे** से **उपसर्गसंज्ञा** होती है तो **गतिश्च** से ऐसी ही स्थिति में **गतिसंज्ञा** भी होती है। इस संज्ञा के लिए अन्य सूत्र भी पढ़े गये हैं। एतदर्थ ही अगला सूत्र है।

९५०- **ऊर्यादिच्विडाचश्च**। ऊरी आदिर्येषां ते ऊर्यादयः। ऊर्यादयश्च च्विश्च डाच् च तेषामितरतेरद्वन्द्व ऊर्यादिच्विडाचः। ऊर्यादिच्विडाचः प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **उपसर्गाः क्रियायोगे** से **क्रियायोगे** और **गतिश्च** से वचनविपरिणाम करके **गतयः** की अनुवृत्ति आती है।

ऊरी आदि गणपठित शब्द, च्वि-प्रत्ययान्त शब्द और डाच्-प्रत्ययान्त शब्द क्रिया के योग में गतिसंज्ञक होते हैं।

ऊर्यादिगण में ऊरी, उररी, तन्थी, ताली, आताली, बेताली, धूली, धूसी, शकला, श्रौषट्, वौषट्, वषट्, स्वाहा, स्वधा आदि अनेक शब्द पढ़े गये हैं। **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से कृ, भू, अस् धातुओं के योग में **च्वि** तथा **अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** से **डाच्** प्रत्यय होता है। **प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्** इस परिभाषा के बल पर प्रत्यय के ग्रहण में प्रत्ययान्त का ग्रहण किया जाता है। ऊर्यादि-गणपठित च्विप्रत्ययान्त और डाच्-प्रत्ययान्त शब्दों की क्रिया के योग में इस सूत्र से गतिसंज्ञा की जाती है। गतिसंज्ञा का फल **कुगतिप्रादयः** से गतिसमास करना है। समास के बाद कृदन्तप्रकरण में हुए **क्त्वा** प्रत्यय के स्थान पर **ल्यप्** आदेश होता है।

ऊरीकृत्य। स्वीकार करके। **उरी कृत्वा** ऐसा अलौकिक विग्रह है। यहाँ कोई **सुप्** विभक्ति नहीं है, क्योंकि दोनों पद अव्यय हैं। अतः अव्यय से आये हुए प्रत्ययों का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो गया है। **ऊरी** गणपाठ का शब्द है और **कृत्वा** यह **कृ** धातु से **क्त्वा** प्रत्यय करके बनाया गया है। **कृत्वा** के योग में **ऊरी** की **ऊर्यादिच्विडाचश्च** से **गतिसंज्ञा** करने के बाद **कुगतिप्रादयः** से समास हो जाता है। तदनन्तर प्रातिपदिकसंज्ञा होती है। सुप् न होने के कारण सुप् के लुक् का प्रसंग नहीं है। **ऊरीकृत्वा** बन गया है। अब

कृदन्त में **समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्** से **क्त्वा** के स्थान पर **ल्यप्** आदेश होकर, अनुबन्ध लोप होने के बाद **ऊरीकृत्य** बन जाता है। प्रथमानिर्दिष्ट **ऊरी** का ही पूर्वप्रयोग होता है। समास होने के बाद पुनः **सु** विभक्ति, उसका भी अव्ययत्वेन लुक् करके **ऊरीकृत्य** सिद्ध हो जाता है।

च्विप्रत्ययान्त का उदाहरण **शुक्लीकृत्य**। सफेद करके अर्थात् अशुक्ल को शुक्ल करके। **अशुक्लं शुक्लं कृत्वा** ऐसे में **शुक्ल अम्+कृत्वा** लौकिक विग्रह है। **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से कृ धातु के योग में **च्वि** प्रत्यय, तद्धितान्त होने के कारण प्रातिपदिकसंज्ञा होकर उसके अवयव अम् विभक्ति का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् होकर **शुक्ली+कृत्वा** बना है। **कृत्वा** अव्यय है। अतः अव्यय से आये हुए प्रत्ययों का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो गया है। **कृत्वा** के योग में **शुक्ली** की **ऊर्यादिच्विडाचश्च** से **गतिसंज्ञा** करने के बाद **कुगतिप्रादयः** से समास हो जाता है। तदनन्तर प्रातिपदिकसंज्ञा होती है। सुप् न होने के कारण सुप् के लुक् का प्रसंग नहीं है। **शुक्लीकृत्वा** बन गया है। अब कृदन्त में **समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्** से **क्त्वा** के स्थान पर **ल्यप्** आदेश होकर, अनुबन्धलोप होने के बाद **शुक्लीकृत्य** बन जाता है। प्रथमानिर्दिष्ट **शुक्ली** का पूर्वप्रयोग होता है। समास होने के बाद पुनः **सु** विभक्ति, उसका भी **अव्ययत्वेन** लुक् करके **शुक्लीकृत्य** सिद्ध हो जाता है।

डाच्-प्रत्ययान्त का उदाहरण **पटपटाकृत्य**। *पटत्* इस प्रकार का शब्द करके। **पटत् कृत्वा** ऐसे में **पटत्** से **अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** सूत्र से **डाच्** प्रत्यय की विवक्षा में **डाचि बहुलं द्वे भवतः** से द्वित्व, फिर टाप्, टिलोप, पररूप आदि करके **पटपटा+कृत्वा** बना है। **कृत्वा** के योग में **पटपटा** की **ऊर्यादिच्विडाचश्च** से **गतिसंज्ञा** करने के बाद **कुगतिप्रादयः** से समास हो जाता है। तदनन्तर प्रातिपदिकसंज्ञा होती है। सुप् न होने के कारण सुप् के लुक् का प्रसंग नहीं है। **पटपटाकृत्वा** बन गया है। अब कृदन्त में **समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्** से **क्त्वा** के स्थान पर **ल्यप्** आदेश होकर, कृ धातु को तुक् का आगम, अनुबन्धलोप होने के बाद **पटपटाकृत्य** बन जाता है। प्रथमानिर्दिष्ट गतिसंज्ञक **पटपटा** का पूर्वप्रयोग होता है। समास होने के बाद पुनः सु विभक्ति, उसका भी अव्ययत्वेन लुक् करके **पटपटाकृत्य** सिद्ध हो जाता है।

प्रादिसमास का उदाहरण है- **सुपुरुषः**। सुन्दर पुरुष। **शोभनः पुरुषः** लौकिक विग्रह और **सु+पुरुष सु** अलौकिक विग्रह है। ऐसी स्थिति में **कुगतिप्रादयः** से प्रादि सु के साथ समर्थ सुबन्त **पुरुष+सु** का समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **सु+पुरुष** बना। पूरा सूत्र ही प्रथमान्त है, अतः उसके द्वारा निर्दिष्ट **सु** की उपसर्जनसंज्ञा और उसका पूर्वप्रयोग। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सुविभक्ति करके **सुपुरुषः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **शोभनो राजा सुराजा, दुष्टो जनो दुर्जनः, निन्दितं दिनं दुर्दिनम्, सुष्ठु भाषितं सुभाषितम्** आदि भी समझना चाहिए।

अब **कुगतिप्रादयः** इस सूत्र से किये गये प्रादिसमासों का ही अर्थविशेषों में समास करने के लिए विस्तार किया जा रहा है-

प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया। यह वार्तिक है। **गत आदि अर्थों में वर्तमान प्र आदि निपातों का प्रथमान्त सुबन्त के साथ नित्य समास होता है और वह तत्पुरुष समास कहलाता है।**

प्रादिसमास के क्षेत्र को फैलाने के लिए ही यह वार्तिक है।

प्राचार्यः। प्रगत आचार्यः। दूर गया हुआ आचार्य, श्रेष्ठ आचार्य, अपने विषय में

उपसर्जनसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

९५१. एकविभक्ति चापूर्वनिपाते १।२।४४।।

विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जनसंज्ञं स्यान्न तु तस्य पूर्वनिपातः।

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

९५२. गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य १।२।४८।।

उपसर्जनं यो गोशब्दस्त्रीप्रत्ययान्तञ्च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात्। अतिमालः।

वार्तिकम्- **अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया।** अवक्रुष्टः कोकिलया अवकोकिलः।

वार्तिकम्- **पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या।** परिग्लानोऽध्ययनाय पर्यध्ययनः।

वार्तिकम्- **निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या।** निष्क्रान्तः कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बिः।

....

दक्ष आचार्य या आचार्य का भी आचार्य। **प्रगतः आचार्यः** यह लौकिक विग्रह और **प्र आचार्य सु** अलौकिक विग्रह है। **प्र** इस प्रादि निपात का **आचार्य सु** इस सुबन्त के साथ **प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया** से समास हुआ, **प्र** की उपसर्जनसंज्ञा, उसी का पूर्वनिपात, सुप् का लुक् करके **प्र+आचार्य** बना। दीर्घ हुआ- **प्राचार्य**। सु, रुत्वविसर्ग करके **प्राचार्यः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **प्रगतः पितामहः=प्रपितामहः, विरुद्धः पक्षः= विपक्षः, प्रकृष्टो वीरः=प्रवीरः** आदि जगहों पर इस वार्तिक से समास किया जा सकता है।

अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया। यह वार्तिक है। **क्रान्त अर्थात् पार गया हुआ, लांघ चुका, पारगामी आदि अर्थों में वर्तमान अति आदि निपातों का द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है और उसे तत्पुरुष समास कहा जाता है।**

९५१. एकविभक्ति चापूर्वनिपाते। एका (नियता) विभक्तिर्यस्य तत् एकविभक्ति। **समासे** और **उपसर्जनम्** की अनुवृत्ति आती है।

विग्रह में जो नियत विभक्ति वाला है, उसकी उपसर्जन संज्ञा होती है किन्तु उसका पूर्वनिपात नहीं होता।

अतिक्रान्तः मालाम्, अतिक्रान्तेन मालाम्, अतिक्रान्ताय मालाम्, अतिक्रान्तात् मालाम्, अतिक्रान्तस्य मालाम् आदि विग्रह करने पर **मालाम्** में द्वितीया ही विभक्ति बनी हुई है किन्तु **अतिक्रान्त** शब्द में विभक्ति बदल रही है। अतः **माला+अम्** नियत अर्थात् निश्चित विभक्ति वाला है। **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** के अनुसार **अति** की उपसर्जनसंज्ञा और उसी का पूर्वनिपात होता है तो फिर **माला अम्** इस नियत विभक्ति वाले की उपसर्जनसंज्ञा करने के लिए आचार्य ने **एकविभक्ति चापूर्वनिपाते** इस सूत्र को बनाकर यह बताया कि **विग्रह में जो नियत विभक्ति वाला है, उसी की उपसर्जन संज्ञा होती है और उसका पूर्वनिपात नहीं किया जाता।** अब प्रश्न यह उठता है कि उपसर्जन संज्ञा तो पूर्वप्रयोग के लिए होता है। यदि पूर्वप्रयोग नहीं करना है तो संज्ञा का क्या प्रयोजन? उत्तर यह है कि ऐसी स्थिति में उपसर्जनसंज्ञा का प्रयोजन अन्य ही होगा। जैसे कि अग्रिमसूत्र **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** से **ह्रस्व** करना।

९५२- गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य। गौश्च स्त्री च तयोरितरेतरद्वन्द्वो गोस्त्रियौ, तयोर्गोस्त्रियोः।

गोस्त्रियोः षष्ठ्यन्तम्, उपसर्जनस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से **प्रातिपदिकस्य** और **ह्रस्वः** की अनुवृत्ति आती है।

उपसर्जनसंज्ञक गोशब्द और उपसर्जनसंज्ञक स्त्रीलिङ्ग प्रातिपदिक को ह्रस्व होता है।

स्त्री-प्रत्यय से **स्त्रियाम्** सूत्र के अधिकार में किये जाने वाले टाप्, डाप्, चाप्, ङीष्, ङीन् आदि प्रत्यय लिये जाते हैं।

अतिमालः। माला का अतिक्रमण करने वाला, सुगन्ध से माला आदि को मात दे चुका कोई पदार्थ। **मालाम् अतिक्रान्तः** यह लौकिक विग्रह और **माला अम् अति** अलौकिक विग्रह है। **अति** इस प्रादि निपात का **माला अम्** इस सुबन्त के साथ **अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **माला अति** बनने के बाद **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से **अति** की उपसर्जनसंज्ञा होकर पूर्वप्रयोग हुआ, फिर ह्रस्व करने के लिए **एकविभक्ति चापूर्वनिपाते** से **माला** की भी उपसर्जनसंज्ञा हुइ और **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** से उपसर्जन **माला** को ह्रस्व होकर **अतिमाल** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **अतिमालः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **अतिक्रान्तो मानुषम् अतिमानुषः**, **अतिक्रान्तः अर्थम् अत्यर्थः** आदि जगहों पर इस वार्तिक से समास किया जा सकता है।

अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया। यह भी वार्तिक है। **क्रुष्ट (कूजित, आहूत) आदि अर्थों में वर्तमान अव आदि निपातों का तृतीयान्त सुबन्त के साथ नित्य समास होता है और वह तत्पुरुष समास कहलाता है।**

अवकोकिलः। कोयली से कूजित प्रदेश आदि। **अवक्रुष्टः कोकिलया** लौकिक विग्रह और **कोकिला टा अव** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर **अव** यह निपात **क्रुष्ट** अर्थ में विद्यमान है, अतः **कोकिला टा** इस सुबन्त के साथ में **अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया** से समास हुआ। **अव+कोकिला टा** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अव कोकिला** बना। **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से **अव** की उपसर्जनसंज्ञा होकर पूर्वप्रयोग हुआ, फिर ह्रस्व करने के लिए **एकविभक्ति चापूर्वनिपाते** से **कोकिला** की उपसर्जनसंज्ञा हुई और उसका पूर्वनिपात नहीं हुआ। **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** से उपसर्जन **कोकिला** को ह्रस्व होकर **अवकोकिल** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **अवकोकिलः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **नियुक्तो मुनिना निमुनिः**, **संगतम् अर्थेन समर्थम्** आदि जगहों पर इस वार्तिक से समास किया जा सकता है।

पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या। यह वार्तिक है। **ग्लान (खिन्न, दुःखी, थका हुआ) आदि अर्थों में वर्तमान परि आदि निपातों का चतुर्थ्यन्त सुबन्त के साथ नित्य से समास होता है और वह तत्पुरुष समास कहलाता है।**

पर्यध्ययनः। अध्ययन से थका हुआ, घबराया हुआ। **परिग्लानः अध्ययनाय** लौकिक विग्रह और **अध्ययन ङे परि** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर **परि** यह निपात **ग्लान** अर्थ में विद्यमान है, अतः **अध्ययन टा** इस सुबन्त के साथ में **पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या** से समास हुआ। **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से **परि** की उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वनिपात **परि+अध्ययन टा** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके यण् करने पर **पर्यध्ययन** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **पर्यध्ययनः** सिद्ध हुआ।

निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या। यह भी वार्तिक है। **क्रान्त (निकला हुआ, पार**

उपपदसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

९५३. तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ३।१।९२॥

सप्तम्यन्ते पदे कर्मणीत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत् कुम्भादि, तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं स्यात्।

उपपदसमासविधायकं विधिसूत्रम्

९५४. उपपदमतिङ् २।२।१९॥

उपपदं सुबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते। अतिङन्तश्चायं समासः। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। अतिङ् किम्? मा भवान् भूत्। **माङि लुङ्** इति सप्तमीनिर्देशान्माङुपपदम्।

परिभाषा- **गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः।**

व्याघ्री। अश्वक्रीती। कच्छपीत्यादि।

....

किया हुआ) आदि अर्थों में वर्तमान निर् आदि निपातों का पञ्चम्यन्त सुबन्त के साथ नित्य से समास होता है और वह तत्पुरुष समास कहलाता है।

निष्कौशाम्बिः। कौशाम्बी नगरी से निकला हुआ। **निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः** लौकिक विग्रह और **कौशाम्बी ङसि निर्** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर **निर्** यह निपात **क्रान्त** अर्थ में विद्यमान है, अतः **कौशाम्बी ङसि** इस सुबन्त के साथ में **निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या** से समास हुआ। **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से **निर्** की उपसर्जनसंज्ञा, उसका पूर्वनिपात करके **निर् कौशाम्बी ङसि** प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **निर्+कौशाम्बी** बना। **कौशाम्बी** की **एकविभक्ति चापूर्वनिपाते** से उपसर्जनसंज्ञा हुई और उसका फल **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** से उपसर्जन **कौशाम्बी** को ह्रस्व होकर **निर्+कौशाम्बि** बना। **रेफ** का **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से विसर्ग और उसके स्थान पर **इदुदुपधस्य चाप्रत्ययः** से **षकार** आदेश होकर **निष्कौशाम्बि** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **निष्कौशाम्बिः** सिद्ध हुआ।

९५३- तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्। तत्र सप्तम्यन्तम्, उपपदं प्रथमान्तं, सप्तमीस्थं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। अष्टाध्यायी में **धातोः** के बाद यह सूत्र आता है।

धातोः सूत्र के अधिकार के अन्तर्गत कर्मण्यण् आदि सूत्रों में सप्तमी विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट कुम्भ आदि तद्वाचक पद की उपपदसंज्ञा होती है।

तात्पर्य यह है कि **कर्मण्यण्** आदि सूत्रों में **कर्मणि** आदि सप्तम्यन्त पद आते हैं। उसमें **कुम्भ** आदि वाच्य रूप से रहता है। पद में अर्थ वाच्य रूप से रहता है और अर्थ में पद वाचक रूप में रहता है। इस लिए उस अर्थ का वाचक पद **कुम्भ** आदि **कुम्भं करोतीति कुम्भकारः** इत्यादि उदाहरण में आते हैं। उनकी इससे उपपदसंज्ञा होती है।

उपपदसंज्ञा का प्रयोग कृदन्त, समास और तद्धित में होता है। जैसे **कुम्भं करोति** में **कर्मण्यण्** इस सूत्र के **कर्मणि** इस सप्तम्यन्त के द्वारा निर्दिष्ट पद है कुम्भं (द्वितीयान्त), उसकी उपपदसंज्ञा हुई।

९५४- उपपदमतिङ्। उपपदं प्रथमान्तम्, अतिङ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में

सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे से **सुप्** की और **नित्यं क्रीडाजीविकयोः** से **नित्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **समर्थः, तत्पुरुषः** और **समासः** का अधिकार है ही।

उपपदसंज्ञक सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ नित्य से समास होता है।

अतिङ् यह पद तिङन्त के साथ समास को निषेध करने के लिए पठित है।

कुम्भकारः। घड़े को बनाने वाला। **कुम्भं करोति** लौकिक विग्रह और **कुम्भ अम् कृ** इस अलौकिक विग्रह में **कुम्भ** की **उपपदमतिङ्** से उपपदसंज्ञा करके **कर्मण्यण्** इस कृत्प्रकरण के सूत्र से अण् प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप, वृद्धि करके **कार** बन गया है। उसके बाद समास का लौकिक विग्रह **कुम्भस्य कारः** और अलौकिक विग्रह **कुम्भ ङस्+कार** में **उपपदमतिङ्** से समास, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कुम्भकार** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **कुम्भकारः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **सूत्रं करोतीति सूत्रकारः** भी बन जाता है।

अतिङ् किम्? मा भवान् भूत्। माङि लुङ् इति सप्तमीनिर्देशान्माङुपदम्। यहाँ पर ग्रन्थकार यह समझा रहे हैं कि **माङि लुङ्** यह जो माङ् के योग में लुङ् लकार का विधान करने वाला सूत्र है, इसमें **माङि** इस सप्तम्यन्त पद को देखते हुए इसके द्वारा निर्दिष्ट **माङ्** की **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** से **उपपदसंज्ञा** होने के कारण **मा भवान् भूत्** इस वाक्य में **मा** का कहीं **भूत्** इस तिङन्तपद के साथ समास न हो जाय, एतदर्थ इसे अतिङन्तसमास अर्थात् तिङ् के साथ समास का निषेध करना आवश्यक है। यहाँ उच्चारण के प्रचलन की दृष्टि से **मा भवान् भूत्** ऐसा उदाहरण दिया गया। वस्तुतः **माङ्** का सम्बन्ध क्रियापद **भूत्** के साथ में होने से **भवान् मा भूत्** ऐसा प्रयोग होना चाहिए और ऐसी स्थिति में **मा** का **भूत्** के साथ समास हो सकता था। अतः उसको रोकने के लिए सूत्र में **अतिङ्** पढ़ा गया है।

गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः। यह प्राचीन आचार्यों के द्वारा पठित परिभाषा है। **गति, कारक और उपपद इन का कृदन्तों के साथ समास करना हो तो कृदन्तों से सुप् विभक्ति लाने से पूर्व ही अर्थात् असुबन्त अवस्था में ही समास करना चाहिए।**

समास के प्रारम्भ में **सह सुपा** के द्वारा एक यह नियम बन गया था कि समस्यमान दोनों पद सुबन्त होंगे अर्थात् समर्थ सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ समास होगा। अब यहाँ **गति, कारक** और **उपपद** इन तीन का कृदन्त के साथ समास करते समय उक्त नियम शिथिल होगा और **असुबन्त कृदन्त** के साथ ही समास होगा। इसका प्रयोजन आगे स्पष्ट होगा।

व्याघ्री। विशेष रूप से सूँघने वाली। **विशेषेण जिघ्रति** लौकिक विग्रह है। यहाँ पर पहले **आ** उपसर्ग पूर्वक **घ्रा** धातु है, उससे **आतश्चोपसर्गे** के द्वारा **क** प्रत्यय होकर **आ+घ्र** बना। इससे विभक्ति आने के पूर्व ही **गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः** के नियम से **उपपदमतिङ्** से समास हो जाता है। इस तरह **आघ्र** बन जाता है। इसके बाद **गतिसंज्ञक वि** के साथ **कुगतिप्रादयः** से समास होकर **वि+आघ्र** बना। यण होकर **व्याघ्र** बना। अब इससे स्त्रीलिङ्ग का प्रत्यय आना है। **व्याघ्र** एक जाति है। अतः **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से जातिलक्षण **ङीष्** करके **व्याघ्री** बनाकर सु, हल्ङ्यादिलोप करके **व्याघ्री** बन जाता है। इस तरह यहाँ पर दो समास किये गये- **उपपदसमास** और

समासान्ताज्विधायकं विधिसूत्रम्

९५५. तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः ५।४।८६॥

सङ्ख्याव्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य समासान्तोऽच् स्यात्।

द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य द्व्यङ्गुलम्। निर्गतमङ्गुलिभ्यो निरङ्गुलम्।

....

गतिसमास। दोनों समास असुबन्त की स्थिति में ही हुए। यदि यह परिभाषा न होती तो- **कृदन्तों** से **सुबुत्पत्ति** के बाद समास होता तो सुप् के आने के पहले **घ्र** इस कृदन्त से स्त्रीप्रत्यय करना पड़ता। ऐसी स्थिति में **घ्र** के जातिवाचक न होने के कारण **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से जातिलक्षण **ङीष्** न हो पाता। फलतः **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् करके **व्याघ्रा** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

अश्वक्रीती। घोड़े के द्वारा खरीदी गई वस्तु, भूमि आदि। **अश्वेन क्रीता** यह लौकिक विग्रह है। **क्री** धातु से **क्त** प्रत्यय होकर **क्रीत** बनता है। **गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः** के नियम से **क्रीत** शब्द से सुप् आने के पहले ही समास होता है। अतः **अश्व टा+क्रीत** में **कर्तृकरणे कृता बहुलम्** से समास हो गया। प्रातिपदिकसंज्ञा, तृतीया का लुक् आदि करके **अश्वक्रीत** बन गया। उससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **क्रीतात् करणपूर्वात्** से **ङीष्** होकर **अश्वक्रीती** बनता है। यहाँ समास से पूर्व कृदन्त **क्रीत** शब्द से यदि सुप् लाते तो उससे पूर्व स्त्रीप्रत्यय अवश्य करना होता, क्योंकि लिङ्गबोधक प्रत्यय के आने के बाद ही संख्या-कारक आदि के बोधक सु आदि प्रत्यय किये जाते हैं। अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में **क्रीत** शब्द से **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** हो जाता, **क्रीतात् करणपूर्वात्** से ङीष् नहीं, क्योंकि तब अकेला ही **क्रीत** रहता। अकेले में किसी से पूर्व या किसी से पर यह व्यवस्था नहीं बनती। फलतः **क्रीता** शब्द बन जाता और **अश्वेन क्रीता अश्वक्रीता** ऐसा अनिष्ट प्रयोग सिद्ध होता।

कच्छपी। कच्छ से पीने वाली। **कच्छेन पिबति** लौकिक विग्रह है। यहाँ पर **कच्छ टा+ पा**(पा पाने धातु) में **सुपि स्थः** से **क** प्रत्यय होकर **प** बना है। **प** यह कृदन्त है। **गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः** के नियम से **प** इस कृदन्त के साथ **सुप्** के आने के पहले ही **उपपदमतिङ्** से समास हो जाता है। समास के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **कच्छप** बन जाता है। अब इससे स्त्रीलिङ्ग का प्रत्यय आना है। **कच्छप** एक जाति है। अतः **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से जातिलक्षण **ङीष्** करके **कच्छपी** बना। सु, हल्ङ्यादिलोप करके **कच्छपी** बन जाता है। यदि यह परिभाषा न होती तो- **कृदन्तों** से **सुबुत्पत्ति** के बाद समास होता और सुप् के आने के पहले **प** इस कृदन्त से स्त्रीप्रत्यय करना पड़ता। ऐसी स्थिति में **प** के जातिवाचक न होने के कारण **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से जातिलक्षण **ङीष्** न हो पाता। फलतः **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् करके **कच्छपा** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

९५५- तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः। सङ्ख्या च अव्ययं च तयोः समाहारद्वन्द्वः सङ्ख्याव्ययम्, सङ्ख्याव्ययम् आदि यस्य सः सङ्ख्याव्ययादिस्तस्य। तत्पुरुषस्य षष्ठ्यन्तम्, अङ्गुलेः षष्ठ्यन्तं, सङ्ख्याव्ययादेः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः** से **अच्** की अनुवृत्ति आती है। **समासान्ताः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

समासान्ताज्विधायकं विधिसूत्रम्

९५६. अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः ५।४।८७॥

एभ्यो रात्रेरच् स्याच्चात् सङ्ख्याव्ययादेः। अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम्।

पुँल्लिङ्गविधायकं नियमसूत्रम्

९५७. रात्राह्नाहाः पुंसि २।४।२९॥

एतदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ पुंस्येव।

अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रः। सर्वरात्रः। सङ्ख्यातरात्रः।

वार्तिकम्- **सङ्ख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्।** द्विरात्रम्। त्रिरात्रम्।

....

सङ्ख्यावाचक शब्द या अव्ययशब्द जिसके आदि में तथा अंगुलिशब्द जिसके अन्त में हो, ऐसे समाससंज्ञक तत्पुरुष समासान्त अच् प्रत्यय होता है।

द्व्यङ्गुलम्। दो अंगुल के बराबर नाप वाली लकड़ी आदि। **द्वे अङ्गुली प्रमाणम् अस्य** लौकिक विग्रह है। यहाँ पर **प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः** से **मात्रच्** प्रत्यय करने से पहले ही **द्वि औ अङ्गुलि औ** इस अलौकिक त्रिग्रह में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समास हो जाता है। प्रथमानिर्दिष्ट सङ्ख्यावाचक शब्द **द्वि औ** से **उपसर्जनसंज्ञा** करके उसका ही पूर्वनिपात, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **द्वि+अङ्गुलि** बना। यण् होकर **द्व्यङ्गुलि** बना। **तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः** से समासान्त **अच्** प्रत्यय होकर **अङ्गुलि** के इकार का **यस्येति च** से लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **द्व्यङ्गुल** बना। सु, अम् होकर **द्व्यङ्गुलम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह **तिस्रः अङ्गुलयः प्रमाणमस्य** आदि विग्रह करके **त्र्यङ्गुलम्** आदि बनाये जा सकते हैं।

निरङ्गुलम्। निकल गई अंगुली से जो अंगुठी आदि। **निर्गतम् अङ्गुलिभ्यः** लौकिक विग्रह और **निर्+अङ्गुलि भ्यस्** अलौकिक विग्रह है। **निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्याः** इस वार्तिक से समास हो जाता है। प्रथमानिर्दिष्ट **निर्** इस निपात की **उपसर्जनसंज्ञा** करके उसका ही पूर्वनिपात, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **निर्+अङ्गुलि=निरङ्गुलि** बना। **तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः** से समासान्त **अच्** प्रत्यय होकर **अङ्गुलि** के इकार का **यस्येति च** से लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **निरङ्गुल** बना। सु, अम् होकर **निरङ्गुलम्** सिद्ध हुआ।

९५६- **अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः।** अहश्च सर्वश्च एकदेशश्च सङ्ख्यातश्च पुण्यश्च तेषां समाहारः- अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्यम्, तस्मात्। अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्यात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, रात्रेः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः** से **तत्पुरुषस्य, अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः** से **अच्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, समासान्ताः** का अधिकार आ ही रहा है।

अहन्, सर्व, एकदेशवाचक, सङ्ख्यात और पुण्य इन शब्दों से तथा चकारात् सङ्ख्यावाचक एवं अव्यय शब्दों से परे भी जो रात्रि शब्द, उससे समासान्त अच् प्रत्यय होता है।

इस सूत्र में पठित **अहन्** शब्द का उदाहरण द्वन्द्वसमास में मिलेगा।

९५७- **रात्राह्नाहाः पुंसि।** रात्रश्च अह्नश्च अहश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो रात्राह्नाहाः। रात्राह्नाहाः

प्रथमान्तं, पुंसि सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से विभक्तिविपरिणाम करके **द्वन्द्वतत्पुरुषौ** की अनुवृत्ति आती है।

रात्र, अह्न और अहन् ये अन्त में हो ऐसे द्वन्द्व और तत्पुरुष समास पुँल्लिङ्ग ही हो जाता है।

अग्रिम सूत्र **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से उत्तरपद के अनुसार ही लिङ्गविधान होने पर और **स नपुंसकम्** से नपुंसकलिङ्ग की प्राप्ति होने पर अपवाद रूप यह सूत्र पठित है।

अहोरात्रः। दिन-रात। **अहन् च रात्रिश्च, अनयोः समाहारः** लौकिक विग्रह है और **अहन् सु+रात्रि सु** अलौकिक विग्रह है। यहाँ **चार्थे द्वन्द्वः** से द्वन्द्वसमास होता है। यह प्रयोग पुँल्लिङ्ग के विधान हेतु यहाँ पर दर्शाया गया है। समास के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अहन्+रात्रि** बना। **रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम्** से **अहन्** के नकार को रुत्व हुआ और रेफ के स्थान पर **हशि च** से उत्व होकर **अह+उ+रात्रि** बना। गुण होकर **अहोरात्रि** बना। **अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः** से समासान्त अच् प्रत्यय होकर **यस्येति च** से **रात्रि** के इकार के लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **अहोरात्र बना।** अब अग्रिम सूत्र **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से उत्तरपद का ही लिङ्गविधान होने पर **स नपुंसकम्** से नपुंसकलिङ्ग की प्राप्ति हो रही थी। उसको भी बाधकर **रात्राह्नाहाः पुंसि** से पुँल्लिङ्ग हुआ। इससे सु, रुत्व, विसर्ग करके **अहोरात्रः** सिद्ध हुआ।

सर्वरात्रः। सारी रात। **सर्वा चासौ रात्रिः,** लौकिक विग्रह है और **सर्वा सु+रात्रि सु** अलौकिक विग्रह है। यहाँ **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास होता है। समास के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सर्वा+रात्रि** बना। **सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः** से **सर्वा** को पुंवद्भाव होकर **सर्वरात्रि** बना। **अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः** से समासान्त अच् प्रत्यय होकर **यस्येति च** से **रात्रि** के इकार के लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **सर्वरात्र बना।** अब अग्रिम सूत्र **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से उत्तरपद का ही लिङ्गविधान होने पर उसका बाधक **स नपुंसकम्** से नपुंसकलिङ्ग की प्राप्ति हो रही थी। उसको भी बाधकर **रात्राह्नाहाः पुंसि** से पुँल्लिङ्ग हुआ। इसके सु, रुत्व, विसर्ग करके **सर्वरात्रः** सिद्ध हुआ।

पूर्वरात्रः। रात का पहला भाग। **पूर्वं रात्रेः**, लौकिक विग्रह है और **पूर्व सु+रात्रि ङस्** अलौकिक विग्रह है। यहाँ **पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे** समास होता है। समास के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पूर्व की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग करके **पूर्व+रात्रि** बना। **अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः** से समासान्त अच् प्रत्यय होकर **यस्येति च** से **रात्रि** के इकार के लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **पूर्वरात्र बना।** अब अग्रिम सूत्र **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से उत्तरपद का ही लिङ्गविधान होने पर उसका बाधक **स नपुंसकम्** से नपुंसकलिङ्ग की प्राप्ति हो रही थी। उसको भी बाधकर **रात्राह्नाहाः पुंसि** से पुँल्लिङ्ग हुआ। इसके सु, रुत्व, विसर्ग करके **पूर्वरात्रः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **उत्तरं रात्रेः**(रात्रि का दूसरा भाग) में भी यही प्रक्रिया करके पुँल्लिङ्ग का विधान किया जाता है जिससे **उत्तररात्रः** बन जाता है।

सङ्ख्यातरात्रः। गिनी गई रात। **सङ्ख्याता च चासौ रात्रिः** लौकिक विग्रह है और **सङ्ख्याता सु+रात्रि सु** अलौकिक विग्रह है। यहाँ **पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन** से समास होता है। समास के बाद उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वप्रयोग, प्रातिपदिकसंज्ञा,

टच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९५८. राजाहःसखिभ्यष्टच् ५।४।९१॥

एतदन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात्। परमराजः।

....

सुप् का लुक् करके **सङ्ख्याता+रात्रि** बना। **पुंवत् कर्मधारयजातीयदेशीयेषु** से पूर्वपद में पुंवद्भाव अर्थात् पुँल्लिङ्ग का विधान होने पर टाप् वाले आकार की निवृत्ति होकर **सङ्ख्यातरात्रि** बना। **अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः** से समासान्त अच् प्रत्यय होकर **यस्येति च** से **रात्रि** के इकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **सङ्ख्यातरात्र बना**। अब अग्रिम सूत्र **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से उत्तरपद का ही लिङ्गविधान होने पर **स नपुंसकम्** से नपुंसकलिङ्ग की प्राप्ति हो रही थी। उसको भी बाधकर **रात्राह्नाहाः पुंसि** से पुँल्लिङ्ग हुआ। इसके बाद सु, रुत्व, विसर्ग करके **सङ्ख्यातरात्रः** सिद्ध हुआ।

सङ्ख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्। यह वार्तिक है। **यदि रात्र शब्द से सङ्ख्यावाचक शब्द पूर्व में हो तो उक्त सूत्र के द्वारा पुँल्लिङ्ग न होकर नपुंसकलिङ्ग हो जाता है।**

द्विरात्रम्। दो रातों का समूह। **द्वयो रात्र्योः समाहारः** लौकिक विग्रह और **द्वि ओस्+रात्रि ओस्** अलौकिक विग्रह में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समाहार वाच्य में समास होकर विभक्ति का लुक्, समासान्त अच् प्रत्यय, भसंज्ञक इकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **द्विरात्र** बना है। **रात्राह्नाहाः पुंसि** से पुँल्लिङ्ग का विधान था किन्तु इस वार्तिक के द्वारा नपुंसक ही होना निश्चित हुआ। अतः सु के बाद अम् आदेश, पूर्वरूप होकर **द्विरात्रम्** बना। इसी तरह **त्रिरात्रम्** तीन रातों का समूह। **तिसृणां रात्रीणां समाहारः** लौकिक विग्रह और **त्रि आम्+ रात्रि आम्** अलौकिक विग्रह में उक्त प्रक्रिया करके **त्रिरात्रम्** बनता है।

९५८- राजाहःसखिभ्यष्टच्। राजा च अहश्च सखा च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो राजाहःसखायस्तेभ्यः। राजाहःसखिभ्यः पञ्चम्यन्तं, टच् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः** से विभक्तिविपरिणाम करके **तत्पुरुषात्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, समासान्ताः** का अधिकार पीछे से आ रहा है।

राजन्, अहन् और सखि अन्त में हो, ऐसे शब्दों से समास हो जाने के बाद समास के अन्त में टच् प्रत्यय होता है।

टकार और चकार इत्संज्ञक हैं, अकार शेष रहता है।

परमराजः। उत्तम या श्रेष्ठ राजा। **परमश्चासौ राजा** लौकिक विग्रह और **परम सु राजन् सु** अलौकिक विग्रह में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास हुआ अर्थात् **परम सु+राजन् सु** की समाससंज्ञा हुई, उसके बाद प्रातिपदिकसंज्ञा हुई, सुप् का लुक् हुआ, प्रथमानिर्दिष्ट परम की उपसर्जनसंज्ञा और उसी का पूर्वप्रयोग **परमराजन्** बना। यह राजन् अन्त वाला समास है तो **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से **टच्** हुआ, अनुबन्धलोप होने के बाद **परमराजन् अ** बना। **परमराजन्** में अन् की **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा करके **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक **अन्** का लोप हुआ तो **परमराज्+अ** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **परमराज** बना। सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **परमराजः** सिद्ध हुआ।

आकारान्तादेशविधायकं विधिसूत्रम्

९५९. आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः ६।३।४६॥

महत आकारोऽन्तादेशः स्यात् समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीये च परे। महाराजः। **प्रकारवचने जातीयर्।** महाप्रकारो महाजातीयः।

....

दूसरा उदाहरण-

योगिराजः। योगियों में श्रेष्ठ। **योगिषु राजा** लौकिक विग्रह और **योगिन् सुप् राजन् सु** अलौकिक विग्रह में **सप्तमी शौण्डैः** से समास हुआ अर्थात् **योगिन् सुप्+राजन् सु** की समाससंज्ञा हुई, उसके बाद प्रातिपदिकसंज्ञा हुई, सुप् का लुक् हुआ, प्रथमानिर्दिष्ट **योगिन्** की उपसर्जनसंज्ञा और उसी का पूर्वप्रयोग करके **योगिन्** के **नकार** का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ तो **योगिराजन्** बना। यह राजन् अन्त वाला समास है तो **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से **टच्** हुआ, अनुबन्धलोप होने के बाद **योगिराजन् अ** बना। **योगिराजन्** में **अन्** की **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा करके **नस्तद्धिते** से भसंज्ञक और टिसंज्ञक **अन्** का लोप हुआ तो **योगिराज्+अ** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **योगिराज** बना। सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **योगिराजः** सिद्ध हुआ।

९५९- आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः। समानाधिकरणं च जातीयश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः समानाधिकरणजातीयौ, तयोः समानाधिकरणजातीययोः। आत् प्रथमान्तं, महतः षष्ठ्यन्तं, समानाधिकरणजातीययोः सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अलुगुत्तरपदे** से **उत्तरपदे** की अनुवृत्ति है।

समानाधिकरण(समानविभक्ति वाला) पद उत्तर में हो या जातीयर् प्रत्यय परे हो तो महत् शब्द के अन्त्य वर्ण तकार के स्थान पर आकार अन्तादेश होता है।

महाराजः। महान् या श्रेष्ठ राजा। **महान् चासौ राजा** लौकिक विग्रह और **महत् सु राजन् सु** अलौकिक विग्रह में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास हुआ अर्थात् **महत् सु+राजन् सु** की समाससंज्ञा हुई, उसके बाद प्रातिपदिकसंज्ञा हुई, सुप् का लुक् हुआ, प्रथमानिर्दिष्ट **महत्** की उपसर्जनसंज्ञा और उसी का पूर्वप्रयोग **महत् राजन्** बना। **आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः** से **महत्** के **तकार** के स्थान पर **आकार** आदेश होकर **मह+आ** में सवर्णदीर्घ होकर **महाराजन्।** यह **राजन् अन्त** वाला समास है तो **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से **टच्** हुआ, अनुबन्धलोप होने के बाद **महाराजन् अ** बना। **महाराजन्** में **अन्** की **अचोऽन्त्यादि टि** से **टिसंज्ञा** करके **नस्तद्धिते** से लोप हुआ तो **महाराज्+अ** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **महाराज** बना। **सु** विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **महाराजः** सिद्ध हुआ।

महाजातीयः। महत्त्व से युक्त। यह समास का उदाहरण नहीं है अपितु **जातीयर्** प्रत्यय के परे होने पर **आत्त्व** को दर्शाने के लिए यहाँ कथन किया गया है। **प्रकारवचने जातीयर्** यह **जातीयर्** प्रत्यय करने वाला सूत्र है। **महत्** शब्द से **जातीयर्** प्रत्यय होकर **महत्+जातीय** बना है। **आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः** से तकार के स्थान पर **आकार** आदेश होकर सवर्णदीर्घ करके **महाजातीय** बना। विभक्तिकार्य के बाद **महाजातीयः** सिद्ध हुआ।

आकारान्तादेशविधायकं विधिसूत्रम्

९६०. द्व्यष्टनः सङ्ख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः ६।३।४७॥

आत् स्यात्। द्वौ च दश च द्वादश। अष्टाविंशतिः।

त्रयादेशविधायकं विधिसूत्रम्

९६१. त्रेस्त्रयः ६।३।४८॥

त्रयोदश। त्रयोविंशतिः। त्रयस्त्रिंशत्।

....

९६०- द्व्यष्टनः सङ्ख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः। द्वि च अष्ट च द्व्यष्ट, तस्माद् द्व्यष्टनः। बहुव्रीहिश्च अशीतिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो बहुव्रीह्यशीती, तयोर्बहुव्रीह्यशीत्योः। न बहुव्रीह्यशीत्योः अबहुव्रीह्यशीत्योः। द्व्यष्टनः पञ्चम्यन्तं, सङ्ख्यायां सप्तम्यन्तम्, अबहुव्रीह्यशीत्योः सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः** से **आत्** तथा **अलुगुत्तरपदे** से **उत्तरपदे** की अनुवृत्ति आती है।

द्वि और अष्टन् शब्दों को आकार अन्तादेश होता है सङ्ख्यावाचक शब्द उत्तरपद में हो तो, किन्तु बहुव्रीहि समास और उत्तरपद के परे होने पर यह कार्य नहीं होता।

द्वादश। बारह। **द्वौ च दश च** लौकिक विग्रह और **द्वि औ दशन् जस्** अलौकिक विग्रह है। **चार्थे द्वन्द्वः** से द्वन्द्वसमास, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर अल्प अच् वाले **द्वि** का पूर्वप्रयोग हुआ। **द्वि+दशन्** में **द्व्यष्टनः सङ्ख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः** से **द्वि** के इकार के स्थान पर आकार आदेश होकर **द्वादशन्** बना। यह बहुवचनान्त ही होता है, अतः जस् आया। **ष्णान्ता षट्** से **द्वादशन्** की **षट्संज्ञा** होकर **षड्भ्यो लुक्** से जस् का लुक् करके **द्विद्वादशन्** बना। **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप करके **द्वादश** सिद्ध हुआ। इसी तरह **द्वाविंशतिः, द्वात्रिंशत्** आदि भी समझना चाहिए। यह द्वन्द्वसमास का उदाहरण है किन्तु आत्व को दर्शाने के लिए यहाँ पर पढ़ा गया।

अष्टाविंशतिः। अठ्ठाइस। **अष्ट च विंशतिश्च** लौकिक विग्रह और **द्वि औ विंशति सु** अलौकिक विग्रह है। **चार्थे द्वन्द्वः** से द्वन्द्वसमास, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर अल्प अच् वाले **अष्टन्** का पूर्वप्रयोग हुआ। **अष्टन्+विंशति** में **द्व्यष्टनः सङ्ख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः** से **अष्टन्** के नकार के स्थान पर आकार आदेश होकर सवर्णदीर्घ करने पर **अष्टाविंशति** बना। यह एकवचनान्त ही होता है, अतः **सु** आया। उसके स्थान पर रुत्वविसर्ग होने पर **अष्टाविंशतिः** सिद्ध हुआ।

९६१- त्रेस्त्रयः। त्रेः षष्ठ्यन्तं, त्रयः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **द्व्यष्टनः सङ्ख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः** से **सङ्ख्यायाम्** और **अबहुव्रीह्यशीत्योः** एवं **अलुगुत्तरपदे** से **उत्तरपदे** की अनुवृत्ति आती है।

त्रि-शब्द के स्थान पर त्रयस् आदेश होता है, संख्यावाचक शब्द उत्तरपद में रहते किन्तु यह कार्य बहुव्रीहिसमास एवं अशीति के परे रहते नहीं होता।

त्रयोदश। तेरह। **त्रयश्च दश च** लौकिक विग्रह और **त्रि जस् दशन् जस्** अलौकिक विग्रह है। **चार्थे द्वन्द्वः** से द्वन्द्वसमास, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर अल्प अच् वाले **त्रि** का पूर्वप्रयोग हुआ। **दशन्** इस संख्यावाचक शब्द के उत्तरपद में रहते हुए **त्रेस्त्रयः** से **त्रि** के स्थान पर **त्रयस्** आदेश होकर **त्रयस्+दश** बना। **त्रयस्** के सकार को रुत्व, उत्व, गुण होकर **त्रयोदशन्** बना। इससे बहुवचन में जस् आया और उसका **षड्भ्यो**

परवल्लिङ्गविधायकं विधिसूत्रम्

९६२. परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः २।४।२६॥

एतयोः परपदस्येव लिङ्गं स्यात्।

कुक्कुटमयूर्याविमे। मयूरीकुक्कुटाविमौ। अर्धपिप्पली।

वार्तिकम्- **द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः।**

पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः पुरोडाशः।

....

लुक् से लुक् हुआ और नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **त्रयोदश** सिद्ध हुआ।

त्रयोविंशतिः। तेईस। **त्रयश्च विंशतिश्च** लौकिक विग्रह और **त्रि जस् विंशति सु** अलौकिक विग्रह है। पूर्वोक्त प्रक्रिया से समास करके **त्रेस्त्रयः** से **त्रयस्** आदेश करने पर **त्रयोविंशति** बन जाता है। **विंशत्याद्याः सदैकत्वे** अर्थात् **विंशति** आदि शब्द एकवचन में ही प्रयुक्त होते हैं, इस नियम के अनुसार **सु** के योजन से **त्रयोविंशतिः** बन जाता है।

त्रयस्त्रिंशत्। तैंतीस। **त्रयश्च त्रिंशत् च** लौकिक विग्रह और **त्रि जस् त्रिंशत् सु** अलौकिक विग्रह है। पूर्वोक्त प्रक्रिया से समास करके **त्रेस्त्रयः** से **त्रयस्** आदेश करने पर **त्रयस्+त्रिंशत्** बन जाता है। सकार को रुत्व करके विसर्ग हो जाता है, पुनः **विसर्जनीयस्य सः** से विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश होकर **त्रयस्त्रिंशत्** बन जाता है। **विंशत्याद्याः सदैकत्वे** अर्थात् **विंशति** आदि एकवचन में ही प्रयुक्त होते हैं, इस नियम के अनुसार **सु** के योजन एवं उसके **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** ...

९६२- परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः। परस्य इव परवत्। द्वन्द्वश्च तत्पुरुषश्च द्वन्द्वतत्पुरुषौ, तयोर्द्वन्द्वतत्पुरुषयोः। परवत् अव्ययं, लिङ्गं प्रथमान्तं, द्वन्द्वतत्पुरुषयोः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। यह सूत्र समास में लिङ्ग का निर्धारण करता है।

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में पर के पद की तरह ही लिङ्ग होता है।

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में सबसे अन्तिम पद का जो लिङ्ग हो, समास हो जाने के बाद उस समस्त शब्दसमुदाय का भी परवल्लिङ्ग अर्थात् वही लिङ्ग बने अर्थात् इन समासों में उत्तरपद का जो लिङ्ग, वही समास का लिङ्ग माना जाता है।

अर्धपिप्पली। पिप्पली का आधा। **अर्धं पिप्पल्याः** में **अर्धं नपुंसकम्** से समास होने के बाद यह संशय उपस्थित हुआ अर्ध इस नपुंसकलिङ्ग के अनुसार समास का लिङ्ग हो या पिप्पली इस स्त्रीलिङ्ग के अनुसार लिङ्ग हो तो **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से परपद पिप्पली के समान स्त्रीलिङ्ग हुआ- **अर्धपिप्पली**। यह उदाहरण तत्पुरुष का है, द्वन्द्व का उदाहरण आगे बता रहे हैं-

कुक्कुटमयूर्यौ इमे। मुर्गा और मोरनी। **कुक्कुटश्च मयूरी च** लौकिक विग्रह और **कुक्कुट सु+मयूरी सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ और प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक् करने के बाद अब यहाँ पर सन्देह हुआ कि **कुक्कुट** इस पुँल्लिङ्ग के अनुसार समस्त पद का लिङ्ग हो या **मयूरी** इस स्त्रीलिङ्ग के अनुसार समस्त पद का लिङ्ग हो? तो **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से परवल्लिङ्ग अर्थात् **मयूरी** शब्द के समान स्त्रीलिङ्ग हुआ **कुक्कुटमयूर्यौ इमे**। इन्ही शब्दों को आगे पीछे करके अर्थात् विपरीत

समासविधायकं विधिसूत्रम्

९६३. प्राप्तापन्ने च द्वितीयया २।२।४॥

समस्येते। अकारश्चानयोरन्तादेशः। प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविकः। आपन्नजीविकः। अलं कुमार्यै अलंकुमारिः। अत एव ज्ञापकात् समासः। निष्कौशाम्बिः।

....

करके **मयूरी च कुक्कुटश्च** करके विग्रह करने पर पुँल्लिङ्ग **कुक्कुट** शब्द पर है अतः उपर्युक्त नियम से कुक्कुट शब्द की तरह समास में भी पुँल्लिङ्ग ही हुआ- **मयूरीकुक्कुटौ इमौ।**

द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः। यह वार्तिक है। **द्विगुसमास एवं प्राप्त, आपन्न और अलम् पूर्व वाले तत्पुरुष समास एवं गतिसमास में परवल्लिङ्गता का निषेध कहना चाहिए।**

पञ्चकपालः पुरोडाशः। पाँच पात्रों में तैयार किया हुआ पुरोडाश, हवनीय पदार्थ। **पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः** यह लौकिक विग्रह और **पञ्चन् सुप् कपाल सुप्** यह अलौकिक विग्रह है। इस विग्रह में **संस्कृतं भक्षाः** से तद्धितप्रत्यय की विवक्षा में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समास करके उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वनिपात आदि होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अन्तर्वर्तिनी विभक्ति मानकर नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करने के बाद **पञ्चकपाल** बना है। इस स्थिति में **संस्कृतं भक्षाः** सूत्र से **अण्** प्रत्यय होकर **द्विगोर्लुगनपत्ये** से लुक् हुआ तो **पञ्चकपाल** ही बना। अब **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** के अनुसार पर पद **कपाल** के अनुसार **नपुंसकलिङ्ग** ही होना चाहिए था किन्तु **द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः** से इसका निषेध हुआ। अतः अपने विशेष्य पद **पुरोडाशः** के अनुसार पुँल्लिङ्ग हुआ। सु, रुत्वविसर्ग होकर के **पञ्चकपालः** सिद्ध हुआ।

९६३- प्राप्तापन्ने च द्वितीयया। प्राप्तं च आपन्नं च तयोरितरेतरद्वन्द्वः प्राप्तापन्ने। प्राप्तापन्ने प्रथमान्तं, द्वितीयया तृतीयान्तम्, अ लुप्तप्रथमाकं पदं, त्रिपदं सूत्रम्। **समासः, सुप्, सह सुपा, तत्पुरुषः** ये पहले से अधिकृत हैं।

प्राप्त और आपन्न सुबन्त शब्दों का द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास होता है और समास के अन्त्य वर्ण के स्थान पर अ आदेश भी होता है।

यह सूत्र **द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः** का अपवाद है। यदि उस सूत्र से समास होता तो **प्राप्त** और **आपन्न** का पूर्वप्रयोग न हो पाता क्योंकि वहाँ पर प्रथमान्त पद **द्वितीया** है, अतः द्वितीयान्त का ही पूर्वप्रयोग होता किन्तु इससे समास होने पर **प्राप्त** और **आपन्न** ही प्रथमानिर्दिष्ट हो जाते हैं। फलतः इनका ही पूर्वप्रयोग हो जायेगा।

प्राप्तजीविकः। जीविका को प्राप्त कर चुका व्यक्ति। **प्राप्तः जीविकाम्** लौकिक विग्रह और **प्राप्त सु जीविका अम्** अलौकिक विग्रह है। **प्राप्तापन्ने च द्वितीयया** से समास, समाससूत्र में प्रथमान्त पद **प्राप्तापन्ने** है, इससे निर्दिष्ट **प्राप्त सु** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग होने पर फिर नियतविभक्ति होने के कारण **एकविभक्ति चापूर्वनिपाते** से

जीविका अम् की उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वनिपात का अभाव, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **प्राप्तजीविका** बना है। उक्त सूत्र से ही **समासान्त वर्ण** के स्थान पर **अ** आदेश किया जाता है। अतः **आकार** के स्थान पर **अकार** आदेश होकर **प्राप्तजीविक** बना। यहाँ **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** के अनुसार परवल्लिङ्ग होने पर **जीविका** शब्द में स्त्रीलिङ्ग होने के कारण **प्राप्तजीविका** होना चाहिए था किन्तु **द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः** से निषेध हो जाने के कारण अपने विशेष्य पद के अनुसार पुँल्लिङ्ग ही हुआ। एकदेशविकृतन्यायेन **सु**, रुत्वविसर्ग आदि करके **प्राप्तजीविकः** सिद्ध हो जाता है।

आपन्नजीविकः। जीविका को प्राप्त कर चुका व्यक्ति। **आपन्नो जीविकाम्** लौकिक विग्रह और **आपन्न सु जीविका अम्** अलौकिक विग्रह है। **प्राप्तापन्ने च द्वितीयया** से समास, समाससूत्र में प्रथमान्त पद **प्राप्तापन्ने** है, इससे निर्दिष्ट **आपन्न सु** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग होने पर फिर नियतविभक्ति होने के कारण **एकविभक्ति चापूर्वनिपाते** से **जीविका अम्** की उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वनिपात का अभाव, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **आपन्नजीविका** बना है। उक्त सूत्र से ही **समासान्त वर्ण** के स्थान पर **अ** आदेश किया जाता है। अतः **आकार** के स्थान पर **अकार** आदेश होकर **आपन्नजीविक** बना। यहाँ पर भी **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** के अनुसार परवल्लिङ्ग होने पर **जीविका** शब्द में स्त्रीलिङ्ग होने के कारण **प्राप्तजीविका** होना चाहिए था किन्तु **द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः** से निषेध हो जाने के कारण अपने विशेष्य पद के अनुसार पुँल्लिङ्ग ही हुआ। एकदेशविकृतन्यायेन **सु**, रुत्वविसर्ग आदि करके **आपन्नजीविकः** सिद्ध हो जाता है।

अलङ्कुमारिः। कुमारी के लिए योग्य युवा, वर। **अलम् कुमार्यै** लौकिक विग्रह और **अलम् कुमारी ङे** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर तत्पुरुष समास होता है। समासविधायक सूत्र के विना समास कैसे होगा? इस प्रश्न पर कौमुदीकार लिखते हैं कि **द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः** इस वार्तिक में **अलं** के साथ परवल्लिङ्गता का निषेध किया गया है। यदि समास ही न होता तो परवल्लिङ्गता प्राप्त ही नहीं होती तो निषेध क्यों किया गया। वार्तिककार के निषेध से यह सिद्ध होता है कि **अलम्** के साथ तत्पुरुष समास की अनुमति है। इसी को ज्ञापन कहते हैं। **अलम् कुमारी ङे** में **ज्ञापकात्** तत्पुरुष समास हुआ, उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वनिपात, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से पर के पद **कुमारी** की तरह **स्त्रीलिङ्ग** की प्राप्ति थी किन्तु **द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः** से उसका निषेध हुआ तो **पुरुषः** आदि विशेष्य पद के अनुसार ही इसका लिङ्ग बना अर्थात् पुँल्लिङ्ग ही हुआ। यहाँ पर **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** से **कुमारी** को ह्रस्व होता है। **अलम्** के मकार को अनुस्वार और परसवर्ण होकर **अलङ्कुमारि** शब्द बन जाता है। सु, रुत्वविसर्ग होकर **अलङ्कुमारिः**। **पञ्चकपालः, प्राप्तजीविकः, आपन्नजीविकः, अलङ्कुमारिः** ये उदाहारण **द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः** इस वार्तिक के हैं। गतिसमास में परवल्लिङ्गता के निषेध का उदाहरण है- **निष्कौशाम्बिः**। परवल्लिङ्गता होती तो समास के बाद इस शब्द को स्त्रीलिङ्ग ही होना चाहिए था किन्तु इस वार्तिक के कारण अपने विशेष्य पद के अनुसार ही इसका लिङ्ग हुआ।

उभयलिङ्गविधायकं विधिसूत्रम्

९६४. अर्धर्चाः पुंसि च २।४।३१।।

अर्धर्चादयः शब्दाः पुंसि क्लीबे च स्युः। अर्धर्चः, अर्धर्चम्।

एवं ध्वज-तीर्थ-शरीर-मण्डप-यूप-देहाङ्कुश-पात्र-सूत्रादयः।

वार्तिकम्- **सामान्ये नपुंसकम्।** मृदु पचति। प्रातः कमनीयम्।

इति तत्पुरुषः।।४०।।

९६४- अर्धर्चाः पुंसि च। अर्धर्चाः प्रथमान्तं, पुंसि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अर्धं नपुंसकम्** से **नपुंसकम्** की अनुवृत्ति आती है। अर्धर्चादि गण है।

अर्धर्च आदि गण में पढ़े गये सभी शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों होते हैं।

जैसे **ऋचः अर्धम्** में समास करके समासान्त अच् प्रत्यय करके **अर्धर्च** बन जाता है और इस सूत्र से दोनों लिङ्गों का विधान होने से पुँल्लिङ्ग में **अर्धर्चः** और नपुंसकलिङ्ग में **अर्धर्चम्** ये दो रूप बन जाते हैं। इसी प्रकार **ध्वजः-ध्वजम्, तीर्थः-तीर्थम्, शरीरः-शरीरम्, मण्डपः-मण्डपम्, यूपः-यूपम्, देहः-देहम्, अङ्कुशः-अङ्कुशम्, पात्रः-पात्रम्, सूत्रः-सूत्रम्** आदि में भी समास हो या न हो उभयलिङ्ग अर्थात् दोनों लिङ्ग होते हैं।

सामान्ये नपुंसकम्। यह वार्तिक है, जहाँ किसी लिङ्ग विशेष का विधान अथवा अपेक्षा न हो, समास या असमास कहीं भी सामान्यतया नपुंसकलिङ्ग ही होता है।

जैसे **मृदु पचति** (कोमल पकाता है) में जिस पदार्थ का पाचन हो रहा है, उसका स्पष्टतया लिङ्ग का निर्देश नहीं है। अतः सामान्य मानकर इस वार्तिक से नपुंसकलिङ्ग का विधान हुआ। मृदु शब्द नपुंसकलिङ्ग बन गया- मृदु पचति। इसी तरह **प्रातः कमनीयम्** (प्रातः काल सुन्दर होता है) प्रातः यह अव्यय और कमनीय यह अनीयर् प्रत्ययान्त में भी सामान्य विवक्षा में नपुंसक हुआ है।

परीक्षा

१-	अव्ययीभाव-समास और तत्पुरुष-समास में आपने क्या अन्तर पाया?	५
२-	उपसर्जनसंज्ञा किसकी होती है? उदाहरण एवं सूत्र सहित समझाइये।	५
३-	द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी एवं सप्तमी के किन्हीं तीन-तीन प्रयोगों में समासप्रक्रिया दिखाइये।	२०
४-	कर्मधारयसमास के किन्हीं पाँच प्रयोगों में समासप्रक्रिया दिखाइये।	५
५-	**उपमानानि सामान्यवचनैः** की व्याख्या कीजिए।	५
६-	परवल्लिङ्ग क्या है? समझाइये।	५
७-	नञ् समास के पाँच उदाहरण सूत्र सहित दर्शाइये।	५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का तत्पुरुषसमास पूर्ण हुआ।

अथ बहुव्रीहिः

बहुव्रीहिसमासाधिकारसूत्रम्

९६५. शेषो बहुव्रीहिः २।२।२३॥

अधिकारोऽयं प्राग्द्वन्द्वात्।

बहुव्रीहि-समासविधायकं विधिसूत्रम्

९६६. अनेकमन्यपदार्थे २।२।२४॥

अनेकं प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते, स बहुव्रीहिः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

समासप्रकरण में चौथे **बहुव्रीहिसमास** का आरम्भ करते हैं। इस समास में समास किये जाने वाले पदों से भिन्न अन्यपद का अर्थ प्रधान होता है, अतः इस समास को **अन्यपदार्थप्रधान-बहुव्रीहि-समास** कहा जाता है। अन्य पद का अर्थ प्रधान होने के कारण ही इस समास का लिङ्ग और वचन भी वही होता है जो अन्य पद का हुआ करता है। अन्यपदार्थप्रधान का उदाहरण देखिये- **पीतानि अम्बराणि सन्ति यस्य** ऐसे लौकिक विग्रह और **पीत जस्+अम्बर जस्** ऐसे अलौकिक विग्रह में समास करके **पीताम्बर** बन जाता है। अब यहाँ न तो पीत का अर्थ प्रधान है और न अम्बर का अर्थ प्रधान है अपितु **पीले वस्त्र वाले भगवान् विष्णु** यह अर्थ प्रधान हो जाता है। अतः **विष्णु** इस अन्य पद के लिङ्ग के अनुसार ही समास किये गये **पीताम्बर** शब्द के लिङ्ग एवं वचन होते हैं। इस समास में समस्यमान पद प्रायः प्रथमान्त ही होते हैं और केवल **यं, येन, यस्मै, यस्मात्, यस्य, यस्मिन्** आदि लगाकर तत्तद् विभक्तियों का बोध किया जाता है।

९६५- शेषो बहुव्रीहिः। शेषः प्रथमान्तं, बहुव्रीहिः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। इस सूत्र में **प्राक्कडारात्समासः** से **समासः** की अनुवृत्ति आती है।

द्वन्द्व समास से पहले का समास बहुव्रीहिसंज्ञक होता है।

यह अधिकारसूत्र है और इसका अधिकार **चार्थे द्वन्द्वः** तक रहता है। इसी सूत्र के अधिकार में होने वाले समास को **बहुव्रीहिसमास** कहा जाता है। **उक्तादन्यः शेषः** जो कहने के बाद बचे, उसे शेष कहते हैं। **अव्ययीभाव, तत्पुरुष** के बाद जो **शेष** है किन्तु द्वन्द्व नहीं वह **बहुव्रीहि** है।

९६६- अनेकमन्यपदार्थे। न एकम् अनेकम्। अन्यच्च तत्पदमन्यपदम्, तस्यार्थोऽन्यपदार्थस्तस्मिन्। अनेकं प्रथमान्तम्, अन्यपदार्थे सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में ऊपर से **समासः**, **विभाषा** और **बहुव्रीहिः** का अधिकार है।

पूर्वप्रयोगविधायकं विधिसूत्रम्

९६७. सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ २।२।३५॥

सप्तम्यन्तं विशेषणञ्च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात्।

अत एव ज्ञापनकाद् व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः।

अलुग्विधायकं विधिसूत्रम्

९६८. हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम् ६।३।९॥

हलन्तादन्ताच्च सप्तम्या अलुक्।

कण्ठेकालः। प्राप्तमुदकं यं स प्राप्तोदको ग्रामः।

ऊढरथोऽनड्वान्। उपहृतपशू रुद्रः। उद्धृतौदना स्थाली।

पीताम्बरो हरिः। वीरपुरुषो ग्रामः।

वार्तिकम्- **प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः।** प्रपतितः पर्णः प्रपर्णः।

वार्तिकम्- **नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः।** अविद्यमानः पुत्रः अपुत्रः।

....

अन्यपद के अर्थ में विद्यमान एक से अधिक प्रथमान्त पद परस्पर में विकल्प से समास को प्राप्त हों और उसे बहुव्रीहि समास कहा जाय।

बहुव्रीहि भी समास की एक संज्ञा है। समास होने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सु आदि विभक्ति की उत्पत्ति आदि पूर्ववत् ही होंगे।

९६७- सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ। सप्तमी च विशेषणञ्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः सप्तमीविशेषणे। सप्तमीविशेषणे प्रथमान्तं, बहुव्रीहौ सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **उपसर्जनं पूर्वम्** से **पूर्वम्** की अनुवृत्ति आती है।

बहुव्रीहिसमास में सप्तम्यन्त शब्द तथा विशेषण शब्द का पूर्व में प्रयोग होता है।

अतः समस्यमान शब्दों में जो शब्द विशेषण बना हुआ है उसका और जो शब्द सप्तमी विभक्ति से युक्त है, उसका पूर्व में प्रयोग करना चाहिए। **सप्तमी** का पूर्वप्रयोग इस सूत्र से हुआ है, इससे यह ज्ञात होता है कि कभी-कभी बहुव्रीहिसमास में भिन्न-भिन्न विभक्ति वाले पदों का भी समास होता है, केवल समानाधिकरण अर्थात् समान विभक्ति की ही आवश्यकता नहीं।

९६८- हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्। हल् च अत् च तयोः समाहारद्वन्द्वो हलत्, हलत् अन्ते यस्य स हलदन्तः, तस्माद् हलदन्तात्। हलदन्तात् पञ्चम्यन्तं, सप्तम्याः षष्ठ्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अलुगुत्तरपदे** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है।

संज्ञा गम्यमान होने पर उत्तरपद के परे रहते हलन्त और ह्रस्व अकारान्त शब्दों से परे सप्तमी विभक्ति का लुक् नहीं होता।

बहुव्रीहिसमास में समस्यमान दोनों शब्द प्रायः **प्रथमान्त** ही होते हैं किन्तु उपर्युक्त दो सूत्रों में **बहुव्रीहि** के साथ **सप्तमी** शब्द का उच्चारण करके सप्तमी के अलुक्

के विधान से दोनों पदों में भिन्न-भिन्न विभक्ति होने पर भी कहीं कहीं समास हो जाता है, यह ज्ञापन होता है। अत एव **कण्ठेकालः** में **कण्ठे कालो यस्य** इस विग्रह में पूर्व पद **कण्ठ ङि** सप्तम्यन्त है और उत्तरपद **काल सु** प्रथमान्त है। इस तरह समानाधिकरण न होकर व्यधिकरण हुआ। ऐसी स्थिति में व्यधिकरण में भी उक्त ज्ञापक के द्वारा समास हुआ।

कण्ठेकालः। कण्ठ में काल या नीलवर्ण है जिसका वह (नीलकण्ठ शंकर जी या नोलकण्ठ पक्षी। **कण्ठे कालो यस्य** लौकिक विग्रह और **कण्ठ ङि+काल सु** अलौकिक विग्रह है। इस भिन्नविभक्ति अर्थात् व्यधिकरण में उक्त ज्ञापक के द्वारा समास हुआ। सप्तम्यन्त पद **कण्ठ ङि** का **सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ** से पूर्वप्रयोग हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् प्राप्त था किन्तु **हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्** से सप्तमी का अलुक् अर्थात् लुक् का निषेध हुआ। साथ ही उत्तरपद में विद्यमान सु के लुक् मे कोई बाधा भी नहीं हुई। इस तरह **कण्ठेकाल** बना। स्वादिकार्य करके **कण्ठेकालः** सिद्ध हो गया।

प्राप्तोदकः। प्राप्त हो गया है जल जिसको। अन्यपदार्थ ग्राम के अर्थ में **प्राप्तम् उदकं यं(ग्रामम्)** लौकिक विग्रह और **प्राप्त सु+उदक सु** इस अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **प्राप्त+उदक** बना। गुण करने पर **प्राप्तोदक** बना। इसका अन्यपदार्थ **ग्राम** होने के कारण तत्सदृश ही पुँल्लिङ्ग बनता है। **एकदेशविकृतन्यायेन** प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **प्राप्तोदकः** सिद्ध हो जाता है। आगे **ग्रामः** को देखते हुए **सु** को **रुत्व,** उसको **हशि च** से **उत्व** हो जाने के बाद **प्राप्तोदक+उ ग्रामः** बना। **आद्गुणः** से गुण करके **प्राप्तोदको ग्रामः** सिद्ध हुआ।

ऊढरथः। ढो चुका है रथ जिसने(घोड़े ने)। अन्य पदार्थ घोड़े के अर्थ में **ऊढः रथः येन(हयेन)** लौकिक विग्रह और **ऊढ सु+रथ सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **ऊढ+रथ** बना। इसका अन्यपदार्थ **हय** अर्थात् घोड़ा होने के कारण तत्सदृश ही पुँल्लिङ्ग बनता है। **एकदेशविकृतन्यायेन** प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **ऊढरथः** सिद्ध हो जाता है। आगे **हयः** को देखते हुए **सु** को **रु,** उसको **हशि च** से **उत्व** और **आद्गुणः** से गुण करके **ऊढरथो हयः** बन गया।

उपहृतपशुः। जिसको पशु भेंट चढ़ाया गया है वह **शम्भु**। अन्यपदार्थ **शम्भु** के अर्थ में **उपहृतः पशुः यस्मै(शम्भवे)** लौकिक विग्रह और **उपहृत सु+पशु सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **उपहृत+पशु** बना। इसका अन्यपदार्थ शम्भु होने के कारण तत्सदृश ही पुँल्लिङ्ग बनता है। **एकदेशविकृतन्यायेन** प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **उपहृतपशुः शम्भुः** सिद्ध हो जाता है।

इसी तरह- **दत्तद्रव्यः**। जिसको द्रव्य दिया गया है वह व्यक्ति। अन्यपदार्थ **जन** के अर्थ में **दत्तो द्रव्यो यस्मै(जनाय)** लौकिक विग्रह और **दत्त सु+द्रव्य सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों **सु** का लोप करके **दत्त+द्रव्य** बना। इसका अन्यपदार्थ **जन** होने के कारण तत्सदृश ही पुँल्लिङ्ग बनता है। **एकदेशविकृतन्यायेन** प्रातिपदिक मानकर **सु** विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **दत्तद्रव्यो जनः** सिद्ध हो जाता है।

उद्धृतौदना। निकाल लिया गया है भात जिससे वह **बटलोई**। अन्यपदार्थ **स्थाली** के अर्थ में **उद्धृतः ओदनः यस्याः(स्थाल्याः)** लौकिक विग्रह और **उद्धृत सु+ओदन सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **उद्धृत+ओदन** बनने के बाद वृद्धि होकर **उद्धृतौदन** बना। इसका अन्यपदार्थ **स्थाली** होने के कारण तत्सदृश ही स्त्रीलिङ्ग बनता है। अतः टाप् होकर **उद्धृतौदना** एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मान कर सु विभक्ति, अम् आदेश, पूर्वरूप करके **उद्धृतौदना स्थाली** सिद्ध हो जाता है।

पीताम्बरः। पीले वस्त्र हैं जिसके वह **विष्णु**। अन्यपदार्थ **विष्णु** के अर्थ में **पीतम् अम्बरम् (अस्ति) यस्य (विष्णोः)** लौकिक विग्रह और **पीत सु+अम्बर सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **पीत+अम्बर** बना। **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ करके **पीताम्बर** बना। इसका अन्यपदार्थ **विष्णु** होने के कारण तत्सदृश ही पुँल्लिङ्ग बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, विष्णु के परे रहने पर सु को रुत्व, उत्व, गुण करके **पीताम्बरो विष्णुः** सिद्ध हो जाता है। इसका विग्रह बहुवचन में भी किया जाता है- **पीतानि अम्बराणि यस्य। पीत जस्+अम्बर जस्=पीताम्बरः।**

वीरपुरुषः। वीर पुरुष हैं जिस **(ग्राम)** में। अन्यपदार्थ **ग्राम** के अर्थ में **वीराः पुरुषाः सन्ति यस्मिन्(ग्रामे)** लौकिक विग्रह और **वीर जस्+पुरुष जस्** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों **जस्** विभक्तियों का लोप करके **वीरपुरुष** बना। इसके अन्यपदार्थ **ग्राम** होने के कारण तत्सदृश ही पुँल्लिङ्ग बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, **ग्राम** के परे रहने पर सु को रुत्व, उत्व, गुण करके **वीरपुरुषो ग्रामः** सिद्ध हो जाता है।

इसी तरह- **समृद्धपुरुषाणि**। समृद्ध पुरुष हैं जिन नगरों में, वे नगर। अन्यपदार्थ **नगर** के अर्थ में **समृद्धाः पुरुषाः सन्ति येषु(नगरेषु)** लौकिक विग्रह और **समृद्ध जस्+पुरुष जस्** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों जस् का लोप करके **समृद्धपुरुष** बना। इसका अन्यपदार्थ **नगर** होने के कारण तत्सदृश ही पुँल्लिङ्ग बनता है साथ **नगराणि** बहुवचन होने के कारण **समृद्धपुरुष** से भी बहुवचन होना चाहिए। अतः एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर **जस्** विभक्ति के आने के बाद **ज्ञानानि** की तरह **समृद्धपुरुषाणि नगराणि** सिद्ध हो जाता है।

प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः। यह वार्तिक है। **प्र आदियों से परे जो धातुज अर्थात् कृदन्त शब्द, तदन्त का समर्थ सुबन्त के साथ अन्यपदार्थ में समास होता है और उत्तरपद का विकल्प से लोप भी होता है।**

धातुज का अर्थ है **धातु से उत्पन्न कृदन्त शब्द।** इस वार्तिक से समास में तीन शब्दों की अपेक्षा होती है। वैसे भी समास में पूर्वपद और उत्तरपद तो रहता ही है किन्तु इस वार्तिक के लिए पूर्वपद भी ऐसा होना चाहिए, जिसका दूसरे पद के साथ में समास हो चुका हो अर्थात् प्र आदि के साथ **कुगतिप्रादयः** से प्रादि समास हो चुका हो और उसके बाद बहुव्रीहिसमास के लिए अन्य एक पद के साथ अन्वित हो रहा हो।

प्रपतितः पर्णः(यस्मात् सः) प्रपर्णः। जिसके पत्ते अच्छी तरह से झड़ चुके हैं,

पुंवद्भावविधायकं विधिसूत्रम्

९६९. स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणी-प्रियादिषु ६।३।३४॥

उक्तपुंस्कादनूङ् ऊङोऽभावोऽस्यामिति बहुव्रीहिः। निपातनात् पञ्चम्या अलुक् षष्ठ्याश्च लुक्। तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तपुंस्कं तस्मात्पर ऊङोऽभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवाचकस्येव रूपं स्यात् समानाधिकरणे स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे न तु पूरण्यां प्रियादौ च परतः। **गोस्त्रियो**रिति ह्रस्वः। चित्रगुः। रूपवद्भार्यः।

अनूङ् किम्? वामोरूभार्यः। पूरण्यां तु-

....

ऐसा वृक्ष। पहले **प्रकर्षेण पतितः** विग्रह में **प्र** का **पतित** के साथ **कुगतिप्रादयः** से समास होकर **प्रपतितः** बना। **प्रपतित** में **प्र** पूर्वपद और **पतित** उत्तरपद है। समास होने के बाद तो **प्रपतित** एक ही पद हुआ किन्तु शास्त्रीय प्रक्रिया में आवश्यकता के अनुसार **प्रपतित** जैसे स्थलों पर पूर्वपद और उत्तरपद के रूप में कार्य होता है। अब **प्रपतितः पर्णो यस्मात्** अथवा **प्रपतितानि पर्णानि यस्मात्** ऐसे लौकिक विग्रह और **प्रपतित जस् पर्ण जस्** अलौकिक विग्रह है। **अनेकमन्यपदार्थे** से समास, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **प्रपतित पर्ण** बना। अब **प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः** से पूर्वपद **प्रपतित** के उत्तर पद का लोप विकल्प से हुआ तो **प्र+पर्ण, प्रपर्ण** बना। स्वादिकार्य से **प्रपर्णः** सिद्ध हुआ। उक्त वार्तिक से लोप न होने के पक्ष में **प्रपतितपर्णः** भी बनता है। इसी तरह **विगतो धवो यस्याः सा विधवा, निर्गता जना यस्मात् स निर्जनो प्रदेशः, निर्गता गुणा यस्मात् स निर्गुणः, निर्गतं फलं यस्मात् तत् निष्फलं कर्म, निर्गतोऽर्थो यस्मात् तत् निरर्थकम्** आदि अनेक शब्द बनाये जा सकते हैं।

नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः। यह वार्तिक है। **नञ् से परे जो अस्त्यर्थ अर्थात् विद्यमान अर्थ वाला शब्द, तदन्त का समर्थ सुबन्त के साथ अन्यपदार्थ में समास होता होता है और उत्तरपद का विकल्प से लोप भी होता है।**

यह भी समास किये हुए पूर्वपद में विद्यमान उत्तरपद का ही विकल्प से लोप करता है किन्तु वह उत्तरपद **अस्ति** का जो अर्थ है विद्यमानता आदि, उस अर्थ वाला हो और वह शब्द **नञ्** के साथ समास को प्राप्त हो चुका हो।

अविद्यमानः पुत्रः अपुत्रः। जिसका पुत्र नहीं है वह पुत्रहीन पुरुष। पहले **न विद्यमानः** में **नञ् तत्पुरुष** समास करने के बाद **अविद्यमान** बना है। उसके बाद **अविद्यमानः पुत्रो यस्य** लौकिक विग्रह और **अविद्यमान सु पुत्र सुः** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर **अनेकमन्यपदार्थे** से समास, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अविद्यमान पुत्र** बना। पूर्वपद **अविद्यमान** में जो उत्तरपद **विद्यमान**, उसका **नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः** से लोप हुआ तो **अपुत्र** बना। इससे स्वादिकार्य करने पर **अपुत्रः** बना। लोप न होने के पक्ष में **अविद्यमानपुत्रः** भी बनेगा। इसी तरह **अविद्यमानो नाथो यस्य स अनाथः, अविद्यमानः क्रोधो यस्य स अक्रोधः** आदि अनेक इस वार्तिक के द्वारा सिद्ध किये जा सकते हैं।

९६९- स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु। पुंसि इव पुंवत्। भाषितः पुमान् येन स भाषितपुंस्कः, बहुव्रीहिः। तस्मात् भाषितपुंस्काद्। न ऊङ्-ऊङोऽभावः अनूङ्। भाषितपुंस्काद् अनूङ् यस्यां सा भाषितपुंस्कादनूङ्। निपातनात् पञ्चमी की अलुक् और षष्ठी का लुक् हुआ है। अत **भाषितपुंस्कादनूङ्** यह लुप्तषष्ठीक पद है। स्त्रियाः षष्ठ्यन्तं, पुंवद् अव्ययपदं, भाषितपुंस्कादनूङ् लुप्तषष्ठ्यन्तं, समानाधिकरणे सप्तम्यन्तं, स्त्रियाम् सप्तम्यन्तं, पूरणीप्रियादिषु सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अलुगुत्तरपदे** से **उत्तरपदे** की अनुवृत्ति आती है। यह सूत्र स्त्रीलिङ्ग को पुँल्लिङ्ग करने का कार्य करता है। इस सूत्र के अर्थ को समझने के लिए पहले शब्दार्थ समझना आवश्यक है।

पुंवत् का अर्थ है- **पुँल्लिङ्ग के समान हो जाय** अर्थात् पुँल्लिङ्ग की तरह रूप बन जाय।

भाषितपुंस्क क्या है? प्रत्येक शब्द का अपने अर्थ का बोधन कराने के लिए कोई न कोई निमित्त अवश्य ही होता है। उस निमित्त को **प्रवृत्तिनिमित्त** कहते हैं। जैसे **घट** शब्द में घड़े को बोध कराने का निमित्त **घटत्व** है। यदि उसमें **घटत्व** नहीं मिलता तो उसे कोई **घट** नहीं कहता अर्थात् जिस विशेषता के कारण कोई शब्द अपने अर्थ को जनाता है, उस शब्द की वह विशेषता ही उसका **प्रवृत्तिनिमित्त** होता है। जो शब्द जिस प्रवृत्तिनिमित्त को लेकर पुँल्लिङ्ग में प्रवृत्त होता है वह उसी प्रवृत्तिनिमित्त को लेकर अन्य लिङ्ग में भी प्रवृत्त हो तो उसे **भाषितपुंस्क** कहते हैं।

अनूङ्- ऐसे भाषितपुंस्क शब्द से परे ऊङ्-प्रत्यय न हुआ हो।

पूरणीप्रियादि- मट्, डट् आदि पूरणार्थक प्रत्यय हैं और प्रिय आदि शब्द हैं।

सूत्रार्थ- **प्रवृत्तिनिमित्त समान होते हुए जो उक्तपुंस्क शब्द उससे परे ऊङ् प्रत्यय जहाँ न किया गया हो ऐसे स्त्रीवाचक शब्द का पुंवाचक शब्द के समान रूप होता है, समान विभक्तिक स्त्रीलिंगशब्द उत्तरपद परे होने पर, किन्तु पूरणार्थक प्रत्ययान्त शब्दों तथा प्रिया आदि शब्दों के परे रहते नहीं होता।**

इस तरह यह सूत्र पुंवद्भाव करता है।

चित्रगुः। चित्र वर्ण वाली गौओं वाला व्यक्ति। **चित्राः गावः यस्य** लौकिक विग्रह और **चित्रा जस्+गो जस्** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों जसों का लोप करके **चित्रा+गो** बना। गायों का वाचक **गो-शब्द** स्त्रीलिङ्ग है और **चित्रा** भी स्त्रीलिङ्ग है, दोनों में समान ही विभक्ति लगी थी, इसलिए समानविभक्तिक भी हैं। ऊङ्-प्रत्यय हुआ नहीं है और पूरणी अर्थ के वाचक प्रत्यय वाले शब्द और प्रियादि शब्द भी परे नहीं हैं। **चित्रा** शब्द पुँल्लिङ्ग में भी बनता है, जैसे **चित्रः, चित्रौ** आदि। इसलिए **भाषिकपुंस्क** है। अतः **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** से **गो** शब्द के परे होने पर **चित्रा** को पुंवत् (पुंवद्भाव) हुआ अर्थात् पुँल्लिङ्ग की तरह **चित्र** के रूप में परिवर्तन हुआ।, **चित्र+गो** बना। इसके बाद **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** से **गो** के **ओकार** को ह्रस्व हो गया। स्मरण रहे कि **ओकार** को ह्रस्व **उकार** होता है। अतः **गो से गु** बना। **चित्रगु** बन गया। **चित्रा** और **गो** दोनों शब्द स्त्रीलिङ्ग के थे किन्तु समास करने से समासशक्ति के बल पर समस्त शब्द पुँल्लिङ्ग में बदल गया। अब एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **चित्रगुः** सिद्ध हुआ।

रूपवद्भार्यः। रूपवती स्त्री वाला पुरुष। **रूपवती भार्या अस्ति यस्य** लौकिक विग्रह और **रूपवती सु+भार्या सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **रूपवती+भार्या** बना। **रूपवती** स्त्रीलिङ्ग है और **भार्या** भी स्त्रीलिङ्ग है, दोनों में समान ही विभक्ति लगी थी, इसलिए समानविभक्तिक भी हैं। ऊङ्-प्रत्यय नहीं हुआ है और पूरणी और प्रियादि भी परे नहीं हैं। रूपवती यह शब्द पुँल्लिङ्ग में रूपवान् ऐसा बनता है, इसलिए **भाषिकपुंस्क** भी है। अतः **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** से भार्या शब्द के परे होने पर रूपवती को **पुंवत्** (पुंवद्भाव) हुआ। अतः पुँल्लिङ्ग की तरह **रूपवत्** हुआ। **रूपवत्+भार्या** बना। भार्या के भकार के परे होने पर **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर दकार बन गया, **रूपवद्+भार्या** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **रूपवद्भार्या** बना। इसके बाद **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** से **भार्या** में जो स्त्रीप्रत्यय टाप् वाला आकार है, उसको ह्रस्व हो गया- **रूपवद्भार्य** बना। रूपवती और भार्या दोनों शब्द स्त्रीलिङ्ग के थे किन्तु समास करने से समासशक्ति के बल पर समस्त शब्द पुँल्लिङ्ग में बदल गया। **रूपवती भार्या है जिस पुरुष की, वह पुरुष**। अब एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **रूपवद्भार्यः** सिद्ध हुआ।

अन्य उदाहरण देखें-

दीर्घजङ्घः। लम्बी जांघ वाला पुरुष। **दीर्घे जङ्घे स्तः यस्य(पुरुषस्य)** लौकिक विग्रह और **दीर्घा औ+ जङ्घा औ** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों **औ** का लोप करके **दीर्घा+जङ्घा** बना। **दीर्घा** स्त्रीलिङ्ग है और **जङ्घा** भी स्त्रीलिङ्ग है, दोनों में समान ही विभक्ति लगी थी, इसलिए समानविभक्तिक भी है। ऊङ्-प्रत्यय नहीं हुआ है और पूरणी और प्रियादि भी परे नहीं है। **दीर्घा** यह शब्द पुँल्लिङ्ग में **दीर्घः** बन चुका है, इसलिए भाषितपुंस्क है। अतः **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** से **जङ्घा** शब्द के परे होने पर **दीर्घा** को पुंवत्(पुंवद्भाव) हुआ अर्थात् पुँल्लिङ्ग की तरह **दीर्घ** के रूप में परिवर्तित हुआ, **दीर्घ+जङ्घा** बना। इसके बाद **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** से **जङ्घा** में जो स्त्रीप्रत्यय टाप् वाला आकार है, उसको ह्रस्व हो गया- **दीर्घजङ्घ** बना। दीर्घा और जङ्घा दोनों शब्द स्त्रीलिङ्ग के थे किन्तु समास करने से समासशक्ति के बल पर समस्त शब्द पुँल्लिङ्ग में बदल गया। **लम्बी जंघाएँ हैं जिस पुरुष की, वह पुरुष**। अब एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **दीर्घजङ्घः** सिद्ध हुआ।

सुन्दरभार्यः। सुन्दरी स्त्री वाला पुरुष। **सुन्दरी भार्या अस्ति यस्य** लौकिक विग्रह और **सुन्दरी सु+भार्या सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **सुन्दरी+भार्या** बना। **सुन्दरी** स्त्रीलिङ्ग है और **भार्या** भी स्त्रीलिङ्ग है, दोनों में समान ही विभक्ति लगी थी इसलिए समानविभक्तिक भी हैं। ऊङ्-प्रत्यय नहीं हुआ है और पूरणी और प्रियादि परे भी नहीं हैं। **सुन्दरी** यह शब्द पुँल्लिङ्ग में **सुन्दरः** बनता है इसलिए भाषिकपुंस्क है। अतः **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** से भार्या शब्द के परे होने पर **सुन्दरी** को पुंवत्(पुंवद्भाव) हुआ। पुँल्लिङ्ग की तरह **सुन्दर** होकर **सुन्दर+भार्या** बना। इसके बाद **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** से **भार्या** में जो स्त्रीप्रत्यय टाप् वाला आकार है, उसको

अप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९७०. अप् पूरणीप्रमाण्योः ५।४।११६॥

पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत् स्त्रीलिङ्गं, तदन्तात् प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप् स्यात्।

कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ता कल्याणीपञ्चमा रात्रयः। स्त्री प्रमाणी यस्य स्य स्त्रीप्रमाणः। अप्रियादिषु किम्? कल्याणीप्रिय इत्यादि।

....

ह्रस्व हो गया- **सुन्दरभार्य** बना। सुन्दरी और भार्या दोनों शब्द स्त्रीलिङ्ग के थे किन्तु समास करने से समासशक्ति के बल पर समस्त शब्द पुँल्लिङ्ग में बदल गया। **सुन्दरी भार्या है जिस पुरुष की, वह पुरुष**। अब एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **सुन्दरभार्यः** सिद्ध हुआ।

अनूङ् किम्? वामोरूभार्यः। यदि **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** में **अनूङ्** न कहते तो क्या होता? उत्तर देते हैं- **वामोरूभार्यः**। यहाँ **वाम** शब्द पूर्वक ऊरु शब्द से **संहितशफलक्षणवामादेश्च** से **ऊङ्** प्रत्यय हुआ है। उसके बाद **वामोरूः भार्या यस्य** में समास होकर दीर्घ ऊकार वाला **वामोरूभार्यः** बनता है। इसमें भी उक्त सूत्र से पुंवद्भाव होकर ह्रस्व उकार वाला **वामोरुभार्यः** ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता।

अव पूरणी प्रत्ययान्त समानाधिकरण उत्तर पद के परे रहने पर पुंवद्भाव नहीं होता है तो क्या होता है? इस पर अग्रिम सूत्र का अवतरण करते हैं।

९७०- अप् पूरणीप्रमाण्योः। पूरणी च प्रमाणी च तयोरितरेतरद्वन्द्वः पूरणीप्रमाण्यौ, तयोः। अप् प्रथमान्त, पूरणीप्रमाण्योः षष्ठ्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से **बहुव्रीहौ** की अनुवृत्ति आती है।

पूरणार्थकप्रत्ययान्त जो स्त्रीलिङ्ग, तदन्त बहुव्रीहि से तथा प्रमाणीशब्दान्त बहुव्रीहि से समासान्त अप् प्रत्यय होता है।

एकस्य पूरणः प्रथमः, द्वयोः पूरणो द्वितीयः, त्रयाणां पूरणः तृतीयः, चतुर्णां पूरणश्चतुर्थः। संख्यावाचक शब्दों से तद्धित पूरणार्थक प्रत्यय होकर जैसे हिन्दो में भी एक से पहला, दो से दूसरा, तीन से तीसरा आदि के रूप में प्रयुक्त होते हैं, उसी तरह संस्कृत में भी पूरणप्रत्यान्त **प्रथमः, द्वितीयः, तृतीयः, चतुर्थः, पञ्चमः** आदि शब्द बनते हैं। ऐसे शब्दों के साथ में समास होने पर पुंवद्भाव न होकर समासान्त अप् प्रत्यय इस सूत्र के द्वारा किया जाता है।

कल्याणीपञ्चमा रात्रयः। जिन रातों में पांचवीं रात कल्याणदायिनी है, ऐसी सभी रातें। **कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणाम्** लौकिक विग्रह और **कल्याणी सु पञ्चमी सु** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर **पञ्चन्** इस संख्यावाचक शब्द से पूरणार्थक प्रत्यय होकर स्त्रीलिङ्ग में **पञ्चमी** बना है। **अनेकमन्यपदार्थे** से समास होकर, सुप् के लुक् होने के बाद **कल्याणी पञ्चमी** हुआ है। यहाँ पर समानाधिकरण स्त्रीलिङ्ग के उत्तरपद परे होने पर भी **अपूरणीप्रियादिषु** से निषेध होने के कारण **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** से पुंवद्भाव नहीं हुआ किन्तु **अप् पूरणीप्रमाण्योः** से **समासान्त**

षच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्।

९७१. बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् ५।४।११३॥

स्वाङ्गवाचिसक्थ्यक्ष्यन्ताद् बहुव्रीहेः षच् स्यात्। दीर्घसक्थः। जलजाक्षी। स्वाङ्गात् किम्? दीर्घसक्थि शकटम्। स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः। अक्ष्णोऽदर्शनादिति वक्ष्यमाणोऽच्।

....

अप् प्रत्यय होकर **कल्याणीपञ्चमी अ** बना। **यस्येति च** से ईकार का लोप, वर्णसम्मेलन होकर **कल्याणीपञ्चम** बना। अब **अजाद्यतष्टाप्** से टाप्, अनुबन्धलोप, दीर्घ होकर **कल्याणीपञ्चमा** बना। जस् विभक्ति का रूप **कल्याणीपञ्चमाः** सिद्ध हुआ।

स्त्रीप्रमाणः। स्त्री जिसके लिए प्रमाण हो, वह पुरुष। **स्त्री प्रमाणी यस्य सः** लौकिक विग्रह और **स्त्री सु प्रमाणी सु** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर **अनेकमन्यपदार्थे** से समास होकर, सुप् के लुक् होने के बाद **स्त्रीप्रमाणी** बना है। यहाँ पर **स्त्री** शब्द भाषितपुंस्क नहीं है। अतः पुंवद्भाव प्राप्त नहीं है। अप् करने वाले सूत्र ने प्रमाणी शब्द के परे भी अप् प्रत्यय किया है। अतः उसी का उदाहरण है। अतः **अप् पूरणीप्रमाण्योः** से **समासान्त अच्** प्रत्यय होकर **स्त्रीप्रमाणी अ** बना। **यस्येति च** से ईकार का लोप, वर्णसम्मेलन होकर **स्त्रीप्रमाण** बना। सु विभक्ति का रूप **स्त्रीप्रमाणः(पुरुषः)** सिद्ध हुआ।

अप्रियादिषु किम्? कल्याणीप्रियः। यह पूर्वसूत्र का प्रत्युदाहरण है। वहाँ पर **अपूरणीप्रियादिषु** लिखा है। वहाँ पूरणार्थक प्रत्ययान्त शब्द तथा प्रियादि शब्द के परे होने पर पुंवद्भाव का निषेध किया गया है तो प्रियादि के परे होने पर निषेध करने का फल क्या है? उसके उत्तर में कहा गया **कल्याणीप्रियः**। यदि **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** में **अप्रियादिषु** यह नहीं कहते तो **प्रिय आदि** के परे होने पर भी पूर्व में विद्यमान स्त्रीलिङ्गी शब्द में पुंवद्भाव होकर **कल्याणप्रियः** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। क्योंकि उस सूत्र के प्रवृत्त होने में अन्य जो निमित्त आवश्यक हैं, वे सब यहाँ पर मिलते हैं।

९७१- बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्। सक्थि च अक्षि च तयोरितरेतरद्वन्द्वः सक्थ्यक्षिणी, तयोः सक्थ्यक्ष्णोः। बहुव्रीहौ सप्तम्यन्तं, सक्थ्यणोः षष्ठ्यन्तं, स्वाङ्गात् पञ्चम्यन्तं, षच् प्रथमान्तम् अनेकपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** का अधिकार आ रहा है।

स्वाङ्गवाची सक्थि या अक्षि शब्द जिसके अन्त में हो, ऐसे बहुव्रीहि से समासान्त षच् प्रत्यय होता है।

षकार का **षः प्रत्ययस्य** से और चकार का **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा हो जाने के बाद लोप जाता है। षकार की इत्संज्ञा होने से शब्द **षित्** हो जाता है। **षित्** का फल स्त्रीलिङ्ग में षित् को आधार बनाकर **षिद्गौरादिभ्यश्च** से **ङीष्** प्रत्यय होना है। **चित्** का फल स्वरप्रकरण में **अन्तोदात्त** है। इस सूत्र में आया हुआ **स्वाङ्ग** शब्द पारिभाषिक है जिसे **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** इस सूत्र की व्याख्या में बताया जायेगा। सामान्यतः समझना चाहिए कि **अस्थि** और **अक्षि** शब्द शरीर के अंगवाची ही हों, अन्य के वाचक न हों।

ष-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९७२. द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः ५।४।११५॥

आभ्यां मूर्ध्नः षः स्याद् बहुव्रीहौ। द्विमूर्धः। त्रिमूर्धः।

....

दीर्घसक्थः। दीर्घ ऊरुओं वाला पुरुष। **दीर्घे सक्थिनी स्तः यस्य(पुरुषस्य)** लौकिक विग्रह और **दीर्घ औ+सक्थि औ** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों **औ** का लोप करके **दीर्घ+सक्थि** बना। **सक्थि** शरीर का अंग है। अतः **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से समासान्त षच् प्रत्यय हुआ। षकार की **षः प्रत्ययस्य** से इत्संज्ञा और चकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होकर लोप हो जाने पर **अ** बचा। **यस्येति च** से **सक्थि** के इकार के लोप हो जाने के बाद **दीर्घसक्थ्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **दीर्घसक्थ** बना। दीर्घ और सक्थि दोनों शब्द नपुंसकलिङ्ग के थे किन्तु समास करने से समासशक्ति के बल पर समस्त शब्द पुँल्लिङ्ग में बदल गया। अब एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **दीर्घसक्थः** सिद्ध हुआ।

जलजाक्षी। कमल की तरह सुन्दर आँख वाली स्त्री। **जलजे इव अक्षिणी यस्याः** लौकिक विग्रह और **जलजा औ+अक्षि औ** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से उसी तरह समास आदि सभी कार्य करने के बाद **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से **षच्** करके **यस्येति च** से **अक्षि** के इकार का लोप करके **जलजाक्ष** शब्द बन जाता है। इससे स्त्रीत्व की विवक्षा में षिदन्त मानकर **षिद्गौरादिभ्यश्च** से **ङीष्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, पुनः **यस्येति च** से **जलजाक्ष** के अन्त्य अकार को लोप करके **जलजाक्षी** बनता है। प्रातिपदिक मानकर सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **गौरी** की तरह **जलजाक्षी** बन जाता है।

स्वाङ्गात् किम्? दीर्घसक्थि शकटम्। स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः। यदि **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** में **स्वाङ्गात्** न कहते तो **दीर्घसक्थि शकटम्** (लम्बे फड़ वाली गाड़ी, छकड़ा) और **स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः**(मोटी ग्रन्थियों वाली बाँस की छड़ी) यहाँ पर भी **षच्** होता और **दीर्घसक्थम्** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। **स्थूलाक्षा** यह **वेणुयष्टिः** का विशेषण है। अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में षित्त्वात् **षिद्गौरादिभ्यः** से **ङीष्** होकर के **स्थूलाक्षी** ऐसा अनिष्ट रूप बनता। अतः उक्त सूत्र में **स्वाङ्गात्** कहना पड़ा। अतः **षच्** नहीं हुआ फलतः **ङीष्** भी नहीं हुआ किन्तु **स्थूलाक्षा** में **अक्ष्णोऽदर्शनात्** सूत्र से **अ** प्रत्यय होकर **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होता है।

९७२- **द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः**। द्विश्च त्रिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो द्वित्री, ताभ्याम्। द्वित्रिभ्यां पञ्चम्यन्तं, षः लुप्तप्रथमाकं, मूर्ध्नः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से **बहुव्रीहौ** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** ये सब अधिकृत हैं।

बहुव्रीहि समास में द्वि और त्रि शब्दों से परे यदि मूर्धन् शब्द हो तो उससे समासान्त ष प्रत्यय होता है।

षकार इत्संज्ञक है, **अकार** बचता है। **षित्** का प्रयोजन पूर्ववत् **ङीष्विधान** ही है।

अप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९७३. अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः ५।४।११७।

आभ्यां लोम्नोऽप् स्याद् बहुव्रीहौ। अन्तर्लोमः। बहिर्लोमः।

....

द्विमूर्धः। दो सिर हैं जिसके वह पुरुष। **द्वौ मूर्धानौ यस्य सः** लौकिक विग्रह और **द्वि औ+मूर्धन् औ** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास आदि सभी कार्य करने के बाद **द्विमूर्धन्** बना। **द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः** से समासान्त **षच्** प्रत्यय करके **द्विमूर्धन्+अ** बना। **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक **अन्** का लोप करके **द्विमूर्ध्+अ= द्विमूर्ध** ऐसा अकारान्त शब्द बना। सु आदि प्रत्यय करके **राम** शब्द की तरह रूप बनते हैं- **द्विमूर्धः, द्विमूर्धौ, द्विमूर्धाः** आदि। स्त्रीत्व-विवक्षा में षित्त्वात् **षिद्गौरादिभ्यश्च** से **ङीष्** होकर **द्विमूर्धी, द्विमूर्ध्यौ, द्विमूर्ध्यः** आदि बनते हैं।

त्रिमूर्धः। तीन सिर हैं जिसके वह पुरुष। **त्रयो मूर्धानो यस्य सः** लौकिक विग्रह और **त्रि जस्+मूर्धन् जस्** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास आदि सभी कार्य करने के बाद **त्रिमूर्धन्** बना। **द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः** से समासान्त **षच्** प्रत्यय करके **त्रिमूर्धन्+अ** बना। **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक **अन्** का लोप करके **त्रिमूर्ध्+अ= त्रिमूर्ध** ऐसा अकारान्त शब्द बना। सु आदि प्रत्यय करके **राम** शब्द की तरह रूप बनते हैं- **त्रिमूर्धः, त्रिमूर्धौ, त्रिमूर्धाः** आदि। स्त्रीत्व-विवक्षा में षित्त्वात् **षिद्गौरादिभ्यश्च** से **ङीष्** होकर **त्रिमूर्धी, त्रिमूर्ध्यौ, त्रिमूर्ध्यः** आदि बनते हैं। स्मरण रहे कि केवल **मूर्धन्** शब्द के पुँल्लिङ्ग में **मूर्धा, मूर्धानौ, मूर्धानः** आदि रूप बनते हैं।

९७३- अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः। अन्तश्च बहिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः- अन्तर्बहिसौ, ताभ्याम्। अन्तर्बहिर्भ्यां पञ्चम्यन्तं, चाव्ययं, लोम्नः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अप् पूरणीप्रमाण्योः** से **अप्** और **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से **बहुव्रीहौ** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** ये सब अधिकृत् हैं।

बहुव्रीहि समास में अन्तर् और बहिस् इन अव्यय-शब्दों से परे लोमन् शब्द से समासान्त अप् प्रत्यय होता है।

पकार इत्संज्ञक है, अ शेष रहता है।

अन्तर्लोमः। अन्दर रोम है जिसके, ऐसा पुरुष या ऐसी चादर। **अन्तर्लोमानि यस्य सः** लौकिक विग्रह और **अन्तर्+लोमन् जस्** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास आदि सभी कार्य करने के बाद **अन्तर्लोमन्** बना। **अन्तर्बहिर्भ्याञ्च लोम्नः** से समासान्त **अप्** प्रत्यय करके **अन्तर्लोमन्+अ** बना। **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक **अन्** का लोप करके **अन्तर् लोम्+अ= अन्तर्लोम** ऐसा अकारान्त शब्द बन जाता है। रेफ का ऊर्ध्वगमन होता है। सु आदि प्रत्यय करके **राम** शब्द की तरह रूप बनते हैं। **अन्तर्लोमः, अन्तर्लोमौ, अन्तर्लोमाः** आदि। केवल **लोमन्** शब्द नपुंसकलिङ्ग में है और उसके रूप **लोम, लोमनी, लोमानि** आदि होते हैं।

बहिर्लोमः। बाहर रोम है जिसके, ऐसा वस्त्र। **बहिर्लोमानि यस्य सः** लौकिक विग्रह और **बहिस्+लोमन् जस्** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास आदि सभी कार्य करने के बाद **बहिस् लोमन्** बना। **अन्तर्बहिर्भ्याञ्च लोम्नः** से समासान्त **अप्** प्रत्यय

लोपार्थं विधिसूत्रम्

९७४. पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ५।४।१३८॥

हस्त्यादिवर्जितादुपमानात् परस्य पादशब्दस्य लोपो स्याद् बहुव्रीहौ। व्याघ्रस्येव पादावस्य व्याघ्रपात्। अहस्त्यादिभ्यः किम्? हस्तिपादः। कुसूलपादः।

लोपार्थं विधिसूत्रम्

९७५. सङ्ख्यासुपूर्वस्य ५।४।१४०॥

पादस्य लोपः स्यात् समासान्तो बहुव्रीहौ। द्विपात्। सुपात्।

....

करके **बहिस् लोमन्**+**अ** बना। **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक **अन्** का लोप करके **बहिस् लोम्**+**अ**= **बहिस् लोम** बनने के बाद **बहिस्** के सकार को **ससजुषो रुः** से रुत्व करके रेफ के ऊर्ध्वगमन होने पर **बहिर्लोम** ऐसा अकारान्त शब्द बन जाता है। सु आदि प्रत्यय करके **राम** शब्द की तरह रूप बनते हैं। **बहिर्लोमः, बहिर्लोमौ, बहिर्लोमाः।**

९७४- पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः। हस्ती आदिर्येषां ते हस्त्यादयः, न हस्त्यादयः अहस्त्यादयस्तेभ्यः। पादस्य षष्ठ्यन्तं, लोपः प्रथमान्तम्, अहस्त्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **उपमानाच्च** से **उपमानात्** और **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से **बहुव्रीहौ** की अनुवृत्ति आती है।

हस्ती आदि शब्दों से भिन्न उपमानवाचक शब्द से परे पाद शब्द का समासान्त लोप होता है बहुव्रीहि समास में।

अलोऽन्त्यस्य परिभाषा के द्वारा **पाद** के अन्त्य वर्ण **अकार** का ही लोप हो पाता है।

विशेषः- यद्यपि लोप अभावरूप है तथापि स्थानी के द्वारा समासान्त माना जाता है। यदि इसे समासान्त न कहा जाय तो **उपमानात्** इस पञ्चम्यन्त से परे पाद-शब्द के लोप-विध ान होने से **आदेः परस्य** की सहायता से पाद के आदि वर्ण पकार का लोप होने लगेगा और बहुव्रीहि समास में अन्य समासान्त न हुआ हो तो **शेषाद्विभाषा** से सामान्यतः विकल्प से कप् होने लगेगा जिससे अनिष्ट रूप सिद्ध होगा। लोप को समासान्त मानने पर ये दोष नहीं आयेंगे।

व्याघ्रपात्। बाघ के पैरों की तरह पैर वाला। **व्याघ्रपादौ इव पादौ यस्य सः** लौकिक विग्रह और **व्याघ्रपाद औ+पाद औ** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** के अन्तर्गत **सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च** इस वार्तिक से समास और पूर्वपद के उत्तरपद **पाद** का लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने के बाद **व्याघ्रपाद** बना। **पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः** से **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से **पाद** के अकार का समासान्त लोप करके **व्याघ्रपाद्** बना। इससे सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और वैकल्पिक चर्त्व होकर **व्याघ्रपात्-व्याघ्रपाद्, व्याघ्रपादौ, व्याघ्रपादः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अहस्त्यादिभ्यः किम्? हस्तिपादः, कुसूलपादः। यदि **पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः** इस सूत्र में **अहस्त्यादिभ्यः** न कहते तो **हस्तिपाद, कुसूलपाद** आदि शब्दों में भी **पाद** के अकार का लोप होने लगता, जिससे **हस्तिपात्, कुसूलपात्** ऐसे अनिष्ट रूप बनने लगते।

९७५- सङ्ख्यासुपूर्वस्य। सङ्ख्या च सुश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः सङ्ख्यासू, सङ्ख्यासू पूर्वौ यस्य स

लोपार्थं विधिसूत्रम्

९७६. उद्विभ्यां काकुदस्य ५।४।१४८।।

लोपः स्यात्। उत्काकुत्। विकाकुत्।

....

सङ्ख्यासुपूर्वः, तस्य। सङ्ख्यासुपूर्वस्य षष्ठ्यन्तम् एकपदं सूत्रम्। **पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः** से **लोपः** और **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से **बहुव्रीहौ** की अनुवृत्ति आती है।

सङ्ख्यावाचक शब्द पूर्वक और सु अव्यय पूर्वक पाद शब्द का समासान्त लोप होता है बहुव्रीहि समास में।

यहाँ पर भी **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से **पाद** में अन्त्य वर्ण **अकार** का ही लोप होता है।

द्विपात्। दो पैरों वाला। **द्वौ पादौ यस्य सः** लौकिक विग्रह और **द्वि औ+पाद औ** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने के बाद **द्विपाद** बना। **सङ्ख्यासुपूर्वस्य** से **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से **पाद** के अकार का समासान्त लोप करके **द्विपाद्** बना। इससे सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और वैकल्पिक चर्त्व होकर **द्विपात्-द्विपाद्, द्विपादौ, द्विपादः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं।

सुपात्। सुन्दर पैरों वाला। **सु शोभनौ पादौ यस्य सः** लौकिक विग्रह और **सु+पाद औ** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने के बाद **द्विपाद** बना। **सङ्ख्यासुपूर्वस्य** से **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से समासान्त **पाद** के अकार का लोप करके **सुपाद्** बना। इससे सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और वैकल्पिक चर्त्व होकर **सुपात्-सुपाद्, सुपादौ, सुपादः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं।

९७६- उद्विभ्यां काकुदस्य। उत् च विश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- उद्वी, ताभ्याम्। उद्विभ्यां पञ्चम्यन्तं, काकुदस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **ककुदस्यावस्थायां लोपः** से **लोपः** और **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से **बहुव्रीहौ** की अनुवृत्ति आती है। **समासान्ताः** का अधिकार है।

उद् और वि इन उपसर्गों से परे काकुद शब्द का समासान्त लोप होता है बहुव्रीहि समास में।

यहाँ पर भी **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से अन्त्य वर्ण **काकुद** के अकार का ही लोप होता है।

उत्काकुत्। उठे हुए तालु वाला। **उद्गतं काकुदं यस्य सः** लौकिक विग्रह और **उत्+काकुद सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने के बाद **उत्काकुद** बना। **उद्विभ्यां काकुदस्य** के द्वारा **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से समासान्त **काकुद** के अकार का लोप करके **उत्काकुद्** बना। इससे सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और वैकल्पिक चर्त्व होकर **उत्काकुत्-उत्काकुद्, उत्काकुदौ, उत्काकुदः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं।

विकाकुत्। विकृत तालु वाला। **विकृतं काकुदं यस्य सः** लौकिक विग्रह और **वि+काकुद सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने के बाद **विकाकुद** बना। **उद्विभ्यां काकुदस्य** के द्वारा **अलोऽन्त्यस्य** की

लोपार्थं विधिसूत्रम्

९७७. पूर्णाद्विभाषा ५।४।१४९।।

पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः।

निपातनार्थं सूत्रम्

९७८. सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः ५।४।१५०।।

सुदुर्भ्यां हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते। सुहृन्मित्रम्। दुर्हृदमित्रः।

....

सहायता से समासान्त **काकुद** के अकार का लोप करके **विकाकुद्** बना। इससे सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और वैकल्पिक चर्त्व होकर **विकाकुत्-विकाकुद्, विकाकुदौ, विकाकुदः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं।

९७७- **पूर्णाद्विभाषा।** पूर्णात् पञ्चम्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **उद्विभ्यां काकुदस्य** से **काकुदस्य** और **ककुदस्यावस्थायां लोपः** से **लोपः** और **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से **बहुव्रीहौ** की अनुवृत्ति आती है। **समासान्ताः** का अधिकार है।

पूर्ण शब्द से परे काकुद शब्द का विकल्प से समासान्त लोप होता है बहुव्रीहि समास में।

पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः। पूर्ण तालु वाला। **पूर्णं काकुदं यस्य सः** लौकिक विग्रह और **पूर्ण सु+काकुद सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने के बाद **पूर्णकाकुद** बना। **पूर्णाद्विभाषा** के द्वारा **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से समासान्त **काकुद** के अकार का विकल्प से लोप करके **पूर्णकाकुद्** बना। इससे सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और वैकल्पिक चर्त्व होकर **पूर्णकाकुत्-विकाकुद्** और लोप न होने के पक्ष में **पूर्णकाकुदः** बनता है।

९७८- **सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः।** सुहृच्च दुर्हृच्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः सुहृद्दुर्हृदौ, मित्रञ्च अमित्रश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो मित्रामित्रौ, तयोः। सुहृद्दुर्हृदौ प्रथमान्तं, मित्रामित्रयोः सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से **बहुव्रीहौ** की अनुवृत्ति आती है और **समासान्ताः** का अधिकार है।

क्रमशः मित्र और शत्रु अर्थों में बहुव्रीहि समास में सु और दुर् इन उपसर्गों से परे हृदय शब्द के स्थान पर हृद् आदेश का निपातन किया जाता है।

आचार्य ने **हृद्** आदेश करने के बाद जो रूप सिद्ध होता है, उस रूप को सूत्र में ही पढ़ दिया है। अतः यह निपातन है।

सुहृत्। (सुहृन्मित्रम्) शोभन हृदय वाला, मित्र। **सु शोभनं हदयं यस्य** लौकिक विग्रह और **सु+हृदय सु** अलौकिक विग्रह है। **अनेकमन्यपदार्थे** से समास होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सुहृदय** बना। **सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः** से **हृदय** के स्थान पर **हृद्** आदेश का निपातन करके **सुहृद्** बना। इस प्रातिपदिक से सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** ... **हल्ङ्यादिलोप** करके विकल्प से दकार को चर्त्व करने पर **सुहृत्, सुहृद्** बनते हैं। आगे **सुहृदौ, सुहृदः** आदि बनाने में कोई परेशानी नहीं है। **सुहृत्+मित्रम्** में तकार को **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** से अनुनासिक होकर **सुहृन्मित्रम्** बन जाता है।

कप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९७९. उरः प्रभृतिभ्यः कप् ५।४।१५१॥

सकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

९८०. सोऽपदादौ ८।३।३८॥

पाशकल्पककाम्येषु विसर्गस्य सः।

षकारादेश-सकारादेशार्थं विधिसूत्रम्

९८१. कस्कादिषु च ८।३।४८॥

एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षोऽन्यस्य तु सः। इति सः। व्यूढोरस्कः।

....

दुर्हृत्। (**दुर्हृदमित्रः**) दुष्ट हृदय वाला, शत्रु। **दुर् दुष्टं हृदयं यस्य** लौकिक विग्रह और **दुर्+हृदय सु** अलौकिक विग्रह है। **अनेकमन्यपदार्थे** से समास होकर प्रादिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दुर्हृदय** बना। **सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः** से **हृदय** के स्थान पर **हृद्** आदेश का निपातन करके **दुर्हृद्** बना। रेफ का ऊर्ध्वगमन हुआ- **दुर्हृद्** इस प्रातिपदिक से सु, उसका **हल्ङ्यादिलोप** करके विकल्प से दकार को चर्त्व करने पर **दुर्हृत्, दुर्हृद्** बनते हैं। आगे **दुर्हृदौ, दुर्हृदः** आदि बनाने में कोई परेशानी नहीं है।

९७९- उरः प्रभृतिभ्यः कप्। उरः प्रभृतिः (आदिः) येषां ते उरःप्रभृतयः, तेभ्यः। उरःप्रभृतिभ्यः पञ्चम्यन्तं, कप् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से विभक्तिविपरिणाम करके **बहुव्रीहेः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** का अधिकार आ रहा है। **उरःप्रभृत्यन्ताद् बहुव्रीहेः कप् स्यात् समासान्तः।**

उरस् आदि जिसके अन्त में हो ऐसे बहुव्रीहिसमास से समासान्त कप् प्रत्यय **[illegible]ाता है।**

पकार ही इत्संज्ञक है। **क** शेष रहता है। **लशक्वतद्धिते** में **अतद्धिते** कहा गया है। अतः तद्धित के ककार की इत्संज्ञा नहीं होती है। **उरःप्रभृति** में उरस्, सर्पिस्, उपानह्, पुमान्, अनड्वान्, पयः, नौ, लक्ष्मी, दधि, मधु, शालि आदि शब्द पढ़े गये हैं।

९८०- सोऽपदादौ। पदम् आदिर्यस्य स पदादिः, न पदादिरपदादिस्तस्मिन् अपदादौ। सः प्रथमान्तम्, अपदादौ सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **विसर्जनीयस्य सः** से **विसर्जनीयस्य** और **कुप्वोः ≍क ≍पौ च** से **कुप्वोः** एवं **तयोर्य्वावचि संहितायाम्** से **संहितायाम्** की अनुवृत्ति आती है।

पाश, कल्प, क, काम्य इन चार प्रत्ययों के परे रहते विसर्ग के स्थान पर स आदेश होता है।

अपदादौ का वचनविपरिणाम करके **कुप्वोः** का विशेषण बनाया जाता है। इस तरह **अपदाद्योः कुप्वोः** बन जाता है। अर्थ बनता है- **अपदादि कवर्ग और पवर्ग के परे होने पर।** अपदादि कवर्ग और पवर्ग के परे रहना केवल **पाश, कल्प, क, काम्य** इन चार प्रत्ययों में ही सम्भव है। अतः मूलकार ने अर्थ में **अपदाद्योः कुप्वोः** का अर्थ **पाश, कल्प, क, काम्य प्रत्ययों के परे होने पर** ऐसा कहा। यह सूत्र **कुप्वोः ≍क ≍पौ च** से प्राप्त जिह्वामूलीय और उपध्मानीय विसर्ग का बाधक है।

षकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

९८२. इणः षः ८।३।३९॥

इण उत्तरस्य विसर्गस्य षः पाशकल्पककाम्येषु परेषु। प्रियसर्पिष्कः।

पूर्वनिपातार्थं विधिसूत्रम्

९८३. निष्ठा २।२।३६॥

निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात्। युक्तयोगः।

....

९८१- **कस्कादिषु च।** कस्कः आदिर्येषां ते कस्कादयस्तेषु। **इणः षः** इस पूरे सूत्र एवं **विसर्जनीयस्य सः** से **विसर्जनीयस्य** की, **सोऽपदादौ** से **सः** की, **कुप्वोः ⌢क ⌢पौ च** से **कुप्वोः** एवं **तयोर्य्वावचि संहितायाम्** से **संहितायाम्** की अनुवृत्ति आती है।

कस्क आदि गणपठित शब्दों में इण् प्रत्याहार से परे विसर्ग को षकार आदेश होता है अन्यत्र सकार आदेश होता है।

विशेषः- यह सूत्र दो कार्य करता है- सकार आदेश और षकार आदेश। जहाँ विसर्ग से पूर्व में इण् प्रत्याहारस्थ वर्ण हैं, वहाँ मूर्धन्य षकार और जहाँ इण् नहीं हैं वहाँ दन्त्य सकार आदेश करता है।

व्यूढोरस्कः। चौड़ी छाती वाला पुरुष। **व्यूढम् उरो यस्य(पुरुषस्य)** लौकिक विग्रह और **व्यूढ सु+उरस् सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **व्यूढ+उरस्** बना। **आद्गुणः** से गुण होकर **व्यूढोरस्** बना। **उरःप्रभृतिभ्यः कप्** से समासान्त कप् प्रत्यय हुआ- **व्यूढोरस्+क** बना। अब सकार को **ससजुषोः रुः** से रुत्व होकर **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से विसर्ग हुआ। **व्यूढोरःक** बना। विसर्ग के स्थान पर **कुप्वोः ⌢क ⌢पौ च** से जिह्वामूलीय विसर्ग प्राप्त था, उसे बाध कर **कस्कादिषु च** की सहायता से **सोऽपदादौ** से **सकार** आदेश हुआ- **व्यूढोरस्+क** ही बना। वर्णसम्मेलन होकर **व्यूढोरस्क** बना। अब एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **व्यूढोरस्कः** सिद्ध हुआ।

९८२- **इणः षः।** इणः पञ्चम्यन्तं, षः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **विसर्जनीयस्य सः** से **विसर्जनीयस्य** की, **सोऽपदादौ** से **सः** की, **कुप्वोः ⌢क ⌢पौ च** से **कुप्वोः** एवं **तयोर्य्वावचि संहितायाम्** से **संहितायाम्** की अनुवृत्ति आती है।

इण् से परे विसर्ग के स्थान पर षकार आदेश होता है पाश, कल्प, क, काम्य के परे होने पर।

प्रियसर्पिष्कः। जिसे घी प्रिय है अर्थात् घी का प्रेमी व्यक्ति। **प्रियम् सर्पिः यस्य(पुरुषस्य)** लौकिक विग्रह और **प्रिय सु+सर्पिस् सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **प्रिय+सर्पिस्** बना। **सर्पिस्** भी **उरःप्रभृति** में आता है, अतः **उरःप्रभृतिभ्यः कप्** से समासान्त कप् प्रत्यय हुआ- **प्रियसर्पिस्+क** बना। सकार को रुत्व, विसर्ग करके विसर्ग के स्थान पर **इणः षः** से **षकार आदेश** होकर **प्रियसर्पिष्क** बना। अब एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **प्रियसर्पिष्कः** सिद्ध हुआ।

विकल्पेन कप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९८४. शेषाद्विभाषा ५।४।१५४॥

अनुक्तसमासान्ताद् बहुव्रीहेः कब्वा। महायशस्कः, महायशाः।

इति बहुव्रीहिः॥४१॥

....

९८३- **निष्ठा**। प्रथमान्तमेकपदं सूत्रम्। **सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ** से **बहुव्रीहौ** और **उपसर्जनं पूर्वम्** से **पूर्वम्** की अनुवृत्ति आती है।

बहुव्रीहि समास में निष्ठाप्रत्ययान्त शब्द का पूर्व में प्रयोग होता है।

क्तक्तवतू निष्ठा से **क्त** और **क्तवतु** प्रत्ययों की **निष्ठा** संज्ञा की गई है। **प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्** अर्थात् **प्रत्यय के ग्रहण में प्रत्ययान्त का ग्रहण होता है** इस नियम के अनुसार **क्त** या **क्तवतु** प्रत्ययान्त शब्द का इस सूत्र पर ग्रहण होगा। इस तरह **बहुव्रीहि समास** में **क्तप्रत्ययान्त** एवं **क्तवतुप्रत्ययान्त** का ही पूर्वनिपात होता है।

युक्तयोगः। सफल हुआ है योग जिसका। **युक्तो योगो यस्य** लौकिक विग्रह और **युक्त सु योग सु** अलौकिक विग्रह है। **युज्** धातु से **क्त** प्रत्यय होकर **युक्त** बना है। ऐसी स्थिति में **अनकेमन्यपदार्थे** से समास हुआ और **निष्ठा** से **क्त** प्रत्ययान्त **युक्त** का पूर्वनिपात हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **युक्तयोग** बना। स्वादिकार्य से **युक्तयोगः** सिद्ध हुआ।

इसी तरह अनेक उदाहरण इसके हो सकते हैं। जैसे कि **कृतकृत्यः**। कर लिया अपना कर्तव्य जिसने। **कृतं कृत्यं येन** लौकिक विग्रह और **कृत सु कृत्य सु** अलौकिक विग्रह है। **कृ** धातु से **क्त** प्रत्यय होकर **कृत** बना है। ऐसी स्थिति में **अनकेमन्यपदार्थे** से समास हुआ और **निष्ठा** से **क्त** प्रत्ययान्त **कृत** का पूर्वनिपात हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कृतकृत्य** बना। स्वादिकार्य से **कृतकृत्यः** सिद्ध हुआ।

९८४- **शेषाद्विभाषा**। शेषात् पञ्चम्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से विभक्तिविपरिणाम करके **बहुव्रीहेः** तथा **उरःप्रभृतिभ्यः कप्** से **कप्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** का अधिकार आ रहा है।

जिस बहुव्रीहि में कोई समासान्त न कहा गया हो तो उससे कप् प्रत्यय होता है विकल्प से।

उक्तादन्यः शेषः। कथन के बाद बाकी जो है, उसे शेष कहते हैं। यहाँ पर जिन शब्दों का बहुव्रीहि में कोई समासान्त प्रत्यय नहीं कहे गये हैं, ऐसे शब्द **शेष** कहलाते हैं।

महायशस्कः, महायशाः। बड़े यश वाला व्यक्ति। **महद् यशः यस्य(पुरुषस्य)** लौकिक विग्रह और **महत् सु+यशस् सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **महत्+यशस्** बना। **आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः** से **महत्** के **तकार** के स्थान पर **आकार** आदेश होकर **मह+आ** में सवर्णदीर्घ करके **महायशस्** बना। इस शब्द से बहुव्रीहि में अन्य कोई समासान्त प्रत्यय का विधान नहीं किया गया है। अतः यह शेष है। इस लिए **शेषाद्विभाषा** से विकल्प से समासान्त कप् प्रत्यय हुआ- **महायशस्+क** बना। अब एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **महायशस्कः** सिद्ध

हुआ। कप् न होने के पक्ष में **महायशस्+स्** है। सु के सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप, **अत्वसन्तस्य चाधातोः** से उपधादीर्घ करके **महायशास्** बना। **सकार** को रुत्वविसर्ग करके **महायशाः** बन गया।

बहुव्रीहि समास अत्यन्त सरल है, एक ही सूत्र **अनेकमन्यपदार्थे** से अनेक स्थलों पर समास किया जाता है। यद्यपि **पाणिनीयाष्टाध्यायी** में अन्य चार सूत्र भी हैं इस समास में किन्तु अन्य सूत्र कुछ शब्दों में समास करने की योग्यता रखते हैं परन्तु यह सूत्र लगभग सभी बहुव्रीहियोग्य स्थलों पर समास करने की योग्यता रखता है। इसलिए **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में यह एक ही सूत्र निर्दिष्ट है।

यहाँ आकर आपको फिर स्मरण करा रहा हूँ कि आप **पाणिनीयाष्टाध्यायी** का नियमित पारायण कर ही रहे होंगे। एक महीने में एक अध्याय के नियम से पाठ करने पर विशेष प्रतिभासम्पन्न छात्र आठ ही माह में सम्पूर्ण अष्टाध्यायी कण्ठस्थ कर लेते हैं और जो सामान्य प्रतिभा वाले छात्र हैं वे भी दूसरी आवृत्ति अर्थात् सोलह महीने में अवश्य कण्ठस्थ कर लेंगे। यह मैंने अपने छात्रों से करवाया है। अतः अनुभूत है। इसके अच्छे परिणाम आये हैं। इसलिए आपको भी बार-बार निर्देश दे रहे हैं। अष्टाध्यायी के सारे सूत्र याद हो जाने चाहिए, तभी व्याकरण का ज्ञान पूर्ण हो सकता है। **लघुसिद्धान्तकौमुदी** और **पाणिनीयाष्टाध्यायी** दोनों साथ-साथ पूरी हो जायें तो अच्छा है।

परीक्षा

१- **तत्पुरुष-समास** और **बहुव्रीहि-समास** में आपने क्या अन्तर पाया? ५

२- बहुव्रीहि-समास के विग्रह में अधिकतर कौन कौन सी विभक्तियाँ होती हैं? ५

३- बहुव्रीहि-समास के किन्हीं बीस शब्दों की समास-प्रक्रिया दिखाइये। २०

४- पुंवद्भाव और ह्रस्व के किन्हीं पाँच उदाहरणों को प्रक्रिया सहित बताइये। ५

५- **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** इस सूत्र की व्याख्या कीजिए। १०

६- **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** की व्याख्या कीजिए। ५

७- नञ् समास के पाँच उदाहरण सूत्रसहित दर्शाइये। ५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का बहुव्रीहिसमास पूर्ण हुआ।

अथ द्वन्द्वः

द्वन्द्व-समासविधायकं विधिसूत्रम्

९८५. चार्थे द्वन्द्वः २।२।२९॥

अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते, स द्वन्द्वः।
समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः।
तत्र 'ईश्वरं गुरुं च भजस्व' इति परस्परनिरपेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः।
'भिक्षाम् अट गां चानय' इत्यन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेनान्वयोऽन्वाचयः।
अनयोरसामर्थ्यात् समासो न।
'धवखदिरौ छिन्धि' इति मिलितानामन्वय इतरेतरयोगः।
'संज्ञापरिभाषम्' इति समूहः समाहारः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **द्वन्द्वसमास** प्रारम्भ होता है। यह पाँचवाँ समास है। इस समास के लिए एक ही सूत्र है- **चार्थे द्वन्द्वः**। इस समास में समस्यमान पद प्राय: प्रथमान्त ही होते हैं और कहीं कहीं अन्य विभक्तियाँ भी हो सकती हैं किन्तु प्रथमान्त में ही समास करने की रीति ज्यादा प्रचलित है।

९८५- चार्थे द्वन्द्वः। चस्य अर्थश्चार्थः, (षष्ठीतत्पुरुषः) तस्मिन्। चार्थे सप्तम्यन्तं, द्वन्द्वः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अनेकमन्यपदार्थे** से **अनेकम्** तथा **सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे** से **सुप्** की अनुवृत्ति आती है। **समासः** और **विभाषा** का अधिकार पहले से ही चला आ रहा है।

चकार के अर्थ में वर्तमान अनेक सुबन्तों का समास होता है और उसकी द्वन्द्वसंज्ञा होती है।

अब जिज्ञासा होती है कि चकार का अर्थ (चार्थ) क्या है?

समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः। समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग और समाहार ये चार चकार के अर्थ हैं।

समुच्चय- जब परस्पर निरपेक्ष अनेक पद किसी एक में अन्वित होते हैं तो वहाँ **समुच्चय** नामक चार्थ रहता है। जैसे- **'ईश्वरं गुरुं च भजस्व'** ईश्वर को भजो और गुरु को भी। यहाँ पर एक कर्म **ईश्वर** का भजन-क्रिया के साथ अन्वय हो रहा है और उसी

क्रिया की आवृत्ति करके दूसरे कर्म **गुरु** का भी अन्वय होता है। यहाँ पर ईश्वर और गुरु दोनों परस्पर निरपेक्ष हैं। अतः दोनों का स्वतन्त्र रूप से भजन-क्रिया में अन्वय होता है। इस लिए यहाँ पर **समुच्चय** नामक **चार्थ** है। ईश्वर और गुरु दोनों पदों में समास होने के लिए सामर्थ्य नहीं है। अतः इस चार्थ में समास नहीं होता।

अन्वाचयः- जब समुच्चीयमान(जिनका समुच्चय हो रहा हो) पदार्थों में एक का आनुषंगिकतया (गौणरूप से) अन्वय हो, तब उसे **अन्वाचय** नामक चार्थ कहा जाता है। जैसे **'भिक्षाम् अट गां चानय'** भिक्षार्थ भ्रमण करो, यदि मार्ग में गाय मिले तो उसे भी लेते आना, इस वाक्य में भिक्षार्थ अटन अनिवार्य है और गाय का आनयन साथ में करना है अर्थात् आनुषंगिक गौण है। इस लिए यह **अन्वाचय** है। इन दोनों में क्रियाओं की भिन्नता और एक प्रधान और एक अप्रधान कर्म होने के कारण दोनों के कर्म में परस्पर आकांक्षा न होने से सामर्थ्य नहीं है। सामर्थ्य न होने पर समास भी नहीं होगा। **इतरेतरयोग** और **समाहार** में तो सामर्थ्य रहता है, इसलिए उनमें समास हो जाता है।

इतरेतरयोग- जब पदार्थ परस्पर में मिलकर आगे अन्वित होते हैं, तब उसे **इतरेतरयोग** चार्थ कहा जाता है। जैसे- **धवखदिरौ छिन्धि।** धव और खदिर के वृक्षों को काटो। यहाँ पर धव और खदिर दोनों मिलकर छिन्धि क्रिया में अन्वित हो जाते हैं। यह **इतरेयोग** है। यहाँ पर सामर्थ्य है। इतरेतरयोग में समास होने के बाद अन्तिम शब्द के अनुसार लिङ्ग और वचन की व्यवस्था होती है। जैसे **धवखदिरौ** में **धव** और **खदिर** दो हैं इसलिए द्विवचन और **रामकृष्णहरयः** में राम, कृष्ण और हरि तीन हैं, अतः बहुवचन हुआ।

धवश्च खदिरश्च लौकिक विग्रह और **धव सु+खदिर सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, **धवखदिर** बना। औ विभक्ति करके **रामौ** की तरह **धवखदिरौ** बन जाता है।

इसी तरह- **रामकृष्णौ। रामश्च कृष्णश्च** लौकिक विग्रह और **राम सु+कृष्ण सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, **रामकृष्ण** बना। **औ** विभक्ति करके **रामौ** की तरह **रामकृष्णौ** बन जाता है।

हरिकृष्णरामाः। हरिश्च कृष्णश्च रामश्च लौकिक विग्रह और **हरि+सु कृष्ण सु+राम+सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, **हरिकृष्णराम** बना। तीन संख्या होने के कारण बहुवचन **जस्** विभक्ति करके **हरिरामकृष्णाः।** बन जाता है।

समाहार- जब दो या दो से अधिक पदार्थों का अलग-अलग रूप से क्रिया में अन्वय न होकर समूहात्मक अर्थ का अन्वय होता है तो उसे **समाहार** नामक चार्थ कहा जाता है। समूह का नाम **समाहार** है। जैसे- **सञ्ज्ञापरिभाषम्।** सञ्ज्ञा और परिभाषा का समूह। **संज्ञा च परिभाषा च अनयोः समाहारः** लौकिक विग्रह और **संज्ञा सु+परिभाषा सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, **संज्ञापरिभाषा** बना। समाहार होने पर **स नपुंसकम्** से नपुंसकलिङ्ग और समूहार्थ के एक होने से एकवचन मात्र होता है। सु विभक्ति करके **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से **परिभाषा** के आकार को ह्रस्व करने पर **संज्ञापरिभाष** बना। **सु** के स्थान पर अम् आदेश, पूर्वरूप करके **ज्ञानम्** की तरह **सञ्ज्ञापरिभाषम्** बन जाता है।

हस्तचरणम्। हस्तश्च चरणश्च अथवा **हस्तौ च चरणौ च एतेषां समाहारः**

परप्रयोगविधायकं विधिसूत्रम्

९८६. राजदन्तादिषु परम् २।२।३१॥

एषु पूर्वप्रयोगार्हं परं स्यात्। दन्तानां राजानो राजदन्ताः।

वार्तिकम्- **धर्मादिष्वनियमः**। अर्थधर्मौ। धर्मार्थावित्यादि।

पूर्वप्रयोगविधायकं विधिसूत्रम्

९८७. द्वन्द्वे घि २।२।३२॥

द्वन्द्वे घिसंज्ञं पूर्वं स्यात्। हरिश्च हरश्च हरिहरौ।

....

यह लौकिक विग्रह और **हस्त सु+चरण सु** अथवा **हस्त औ चरण औ** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, **हस्तचरण** बना। समाहार होने पर नपुंसकलिङ्ग और एकवचन मात्र होता है। सु विभक्ति करके ज्ञानम् की तरह **हस्तचरणम्** बन जाता है।

विशेषः- प्रश्न- द्वन्द्व समास में किसका पूर्वप्रयोग किया जाय? उत्तर- द्वन्द्वसमास में समस्यमान दोनों पदों के अर्थ प्रधान होते हैं और समास करने वाले सूत्र **चार्थे द्वन्द्वः** में **अनेकम्** ऐसा अनुवृत्त प्रथमान्त पद से निर्दिष्ट सभी शब्द होते हैं। सबकी उपसर्जनसंज्ञा होकर सभी का पूर्वप्रयोग प्राप्त होता है। अतः इच्छानुसार किसी को भी पहले रखा जा सकता है किन्तु कहीं-कहीं विशेष जगहों पर इच्छानुसार पूर्वप्रयोग नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसके लिए विशेष नियम बनाये गये हैं, जो आगे दिये जा रहे हैं।

९८६- राजदन्तादिषु परम्। राजदन्त आदिर्येषां ते राजदन्तादयः, तेषु राजदन्तादिषु। राजदन्तादिषु सप्तम्यन्तं, परं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **उपसर्जनं पूर्वम्** से **पूर्वम्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रयुज्यते** इस क्रिया का अध्याहार किया जाता है।

राजदन्त आदि गण में पूर्वनिपात के योग्य पद का परनिपात होता है।

राजदन्ताः। दाँतों का राजा अर्थात् ऊपर सामने के दाँत। **दन्तानां राजा** लौकिक विग्रह और **दन्त आम्+राजन् सु** अलौकिक विग्रह है। ऐसे में **षष्ठी** सूत्र से तत्पुरुष समास, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **षष्ठी** इस प्रथमान्तपद से निर्दिष्ट **दन्त** की उपसर्जनसंज्ञा होकर उसका **उपसर्जनं पूर्वम्** से पूर्वनिपात प्राप्त था, उसे बाधकर के **राजदन्तादिषु परम्** से **परप्रयोग** अर्थात् **परनिपात** हुआ- **राजन्+दन्त** बना। **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से **नकार** का लोप, प्रातिपदिकत्वेन विभक्ति, जस्, दीर्घ, सकार को रुत्वविसर्ग आदि करके **राजदन्ताः** सिद्ध हुआ।

धर्मादिष्वनियमः। यह वार्तिक है। **धर्म आदि गणपठित शब्दों में पूर्वनिपात या परनिपात का कोई निश्चित नियम नहीं है।** अर्थात् इस गण में पढ़े गये सभी शब्दों में से किसी भी शब्द का पूर्वप्रयोग किया जा सकता है। अतः **धर्मश्च अर्थश्च** में द्वन्द्व-समास करके **धर्मार्थौ** या **अर्थधर्मौ** दोनों प्रयोग बन सकते हैं।

९८७- द्वन्द्वे घि। द्वन्द्वे सप्तम्यन्तं, घि प्रथमान्तम्। द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **उपसर्जनं पूर्वम्** से **पूर्वम्** की अनुवृत्ति आती है।

द्वन्द्वसमास में घिसंज्ञक शब्द पूर्व में प्रयुक्त होता है।

पूर्वप्रयोगविधायकं विधिसूत्रम्

९८८. अजाद्यदन्तम् २।२।३३॥

द्वन्द्वे पूर्वं स्यात्। ईशकृष्णौ।

....

इस सूत्र से यह विधान किया गया है कि यदि ऐसा घिसंज्ञक शब्द द्वन्द्व समास में आता है तो समास के बाद उस शब्द का आदि में अर्थात् पूर्व में प्रयोग करना चाहिए। स्मरण रहे कि **शेषो घ्यसखि** इस सूत्र से **ह्रस्व-इकारान्त** और **ह्रस्व उकारान्त** की **घिसंज्ञा** होती है।

हरिहरौ। हरि और हर (विष्णु और शिव)। **हरिश्च हरश्च** लौकिक विग्रह और **हरि सु+हर सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, **हरि+हर** बना। अब यहाँ पर प्रश्न आया कि पूर्वप्रयोग किसका होना चाहिए? तो **द्वन्द्वे घि** इस सूत्र ने निर्णय दिया कि **घिसंज्ञक** शब्द का पूर्वप्रयोग होना चाहिए। यहाँ इकारान्त होने के कारण हरि शब्द घिसंज्ञक है, अतः हरि का पूर्वप्रयोग हुआ **हरिहर** बना। यहाँ पर विग्रह में ही हरि शब्द का पूर्व में प्रयोग किया गया है। यदि कथंचित् **हरश्च हरिश्च** ऐसा विग्रह होता तो भी घिसंज्ञक हरि का ही पूर्वप्रयोग होता है अथवा यूँ कहा जाय कि **द्वन्द्वे घि** को देखते हुए विग्रह में **ही** घिसंज्ञक का पूर्वप्रयोग किया जाता है। **हरिहर** इस में दो की संख्या होने के कारण द्विवचन औ विभक्ति करके **रामौ** की तरह **हरिहरौ** बनाना चाहिए।

इसी प्रकार- **हरिहरगुरुवः**। हरि, हर और गुरु। **हरिश्च हरश्च गुरुश्च** लौकिक विग्रह और **हरि सु+हर सु+गुरु सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, **हरि+हर+गुरु** बना। अब यहाँ पर प्रश्न आया कि पूर्वप्रयोग किसका होना चाहिए तो **द्वन्द्वे घि** इस सूत्र ने निर्णय दिया कि घिसंज्ञक शब्द का पूर्वप्रयोग होना चाहिए। यहाँ **इकारान्त** होने के कारण **हरि** और **उकारान्त** होने के कारण **गुरु** शब्द **घिसंज्ञक** हैं, ऐसी स्थिति में किसी एक अधिक पूज्य अर्थ का वाचक घिसंज्ञक का पूर्वप्रयोग होकर अन्य घिसंज्ञक का बीच में या अन्त में कहीं प्रयोग कर सकते हैं। अतः दोनों घिसंज्ञकों में अधिक पूज्य **हरि** का पूर्वप्रयोग हुआ हरिहरगुरु बना। तीन की संख्या होने के कारण बहुवचन **जस्** आया और पूर्वसवर्णदीर्घ और रुत्वविसर्ग होकर **हरिहरगुरवः** सिद्ध हुआ।

९८८- **अजाद्यदन्तम्**। अच् आदिर्यस्य तद् अजादि। अत् अन्तो यस्य तद् अदन्तम्। अजादि च तददन्तम्- अजाद्यदन्तम्। अजाद्यदन्तं प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **द्वन्द्वे घि** से **द्वन्द्वे** की और **उपसर्जनं पूर्वम्** से **पूर्वम्** की अनुवृत्ति आती है।

द्वन्द्व-समास में जो शब्द अजादि और अदन्त हो तो उसका पूर्व में प्रयोग करना चाहिए।

ईशकृष्णौ। ईश और कृष्ण। **ईशश्च कृष्णश्च** लौकिक विग्रह और **ईश सु+कृष्ण सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, **ईश+कृष्ण** बना। यहाँ पर कोई भी शब्द घिसंज्ञक नहीं है। अतः **द्वन्द्वे घि** का विषय नहीं है तो पूर्व प्रयोग किस का हो? अब **अजाद्यदन्तम्** इस सूत्र ने निर्णय दिया कि जो शब्द अजादि भी हो और अदन्त भी हो, उसका ही पूर्व में प्रयोग होना चाहिए। **ईश+कृष्ण में ईश** शब्द अजादि और अदन्त दोनों है, अतः **ईश** का पूर्वप्रयोग हुआ। दो की संख्या है, इसलिए द्विवचन में **औ**, वृद्धि आदि करके **ईशकृष्णौ** सिद्ध हुआ।

पूर्वप्रयोगविधायकं विधिसूत्रम्

९८९. अल्पाच्तरम् २।२।३४॥

शिवकेशवौ।

पूर्वप्रयोगविधायकं विधिसूत्रम्

९९०. पिता मात्रा १।२।७०॥

मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते। माता च पिता च पितरौ मातापितरौ वा।

....

९८९- **अल्पाच्तरम्।** अल्पः अच् यस्य तद् अल्पाच् (पदम्) बहुव्रीहिः। अल्पाच् एव अल्पाल्तरम्, स्वार्थे तरप्। अल्पाच्तरं प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **द्वन्द्वे घि** से **द्वन्द्वे** और **उपसर्जनं पूर्वम्** से **पूर्वम्** की अनुवृत्ति आती है।

द्वन्द्व-समास के सभी शब्दों में जो शब्द अत्यन्त कम अच् वाला हो, उसका ही पूर्वप्रयोग होता है।

शिवकेशवौ। शिव और केशव। **शिवश्च केशवश्च** लौकिक विग्रह और **शिव सु+केशव सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, **शिवकेशव** बना। यहाँ पर कोई भी शब्द घिसंज्ञक नहीं है। अतः **द्वन्द्वे घि** का विषय नहीं है। अदन्त तो है किन्तु अजादि नहीं है, अतः **अजाद्यदन्तम्** का भी विषय नहीं है, तो पूर्व प्रयोग किस का हो? तब **अल्पाच्तरम्** इस सूत्र ने निर्णय दिया कि जिस शब्द में कमसे कम अच् हों उसका ही पूर्व में प्रयोग होना चाहिए। **शिव** में दो अच् हैं और **केशव** में तीन अच् हैं। दोनों में से अल्पाच्तर **शिव** शब्द है, इसलिए **शिव** का पूर्वप्रयोग हुआ। दो की संख्या है, इसलिए द्विवचन औ, वृद्धि आदि करके **शिवकेशवौ** सिद्ध हुआ।

९९०- **पिता मात्रा।** पिता प्रथमान्तं, मात्रा तृतीयान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ** से **शेषः** और **नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है।

मातृ-शब्द के साथ उच्चारित पितृ-शब्द का विकल्प से शेष होता है।

यह एकशेष समास का सूत्र है। यहाँ पर **शेष** का अर्थ है जिसके सम्बन्ध में कहा जा रहा है, उसका शेष और अन्यों का लोप। **मातृ** और **पितृ** इन दो शब्दों को समास में यदि एकयोग करके कहा जाय तो केवल **पितृ** ही शेष रहता है और **मातृ** का लोप होता है। इस सम्बन्ध में **सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ** का स्मरण करें। **यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी।** जो शेष रहता है वह लुप्त हुए शब्द के अर्थ का भी परिचायक होता है। अतः लुप्त पदों के अर्थ का भी ज्ञान हो जाता है।

अनेक आचार्य इस सूत्र के कार्य को द्वन्द्वसमास नहीं मानते। उनके अनुसार यह कार्य द्वन्द्व समास का अपवाद है। अर्थात् एकशेष भी स्वतन्त्र एक कार्य है। फिर भी लाघव के लिए यहाँ पर पहले द्वन्द्वसमास करके तब एकशेष की प्रक्रिया दिखाई गई है। आप द्वन्द्व के स्थान पर सीधे एकशेष भी कर सकते हैं।

पितरौ, मातापितरौ वा। माता और पिता। **माता च पिता च** लौकिक विग्रह और **मातृ सु पितृ सु** अलौकिक विग्रह है। **चार्थे द्वन्द्वः** से समास होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का

एकवचनविधायकं विधिसूत्रम्

९९१. द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् २।४।२।।

एषां द्वन्द्व एकवत्।

पाणिपादम्। मार्दङ्गिकवैणविकम्। रथिकाश्वारोहम्।

...

लुक् करके **पिता मात्रा** सूत्र से **पितृ** का शेष और **मातृ** का लोप हो जाता है और **यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी** के अनुसार **पितृ** से माता का भी कथन होने से द्विवचन की प्रतीति हो रही है। अतः **द्विवचन** में **पितरौ** बन जाता है। यह एकशेष कार्य वैकल्पिक है। एकशेष न होने के पक्ष में द्वन्द्वसमास होकर **मातापितरौ** ही बनता है। यहाँ पर **मातृ** शब्द का ही पूर्वप्रयोग होता है क्योंकि **पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते** अर्थात् पिता से माता दशगुण अधिक गौरवमयी होती है, इत्यादि वचनों से **माता** अभ्यर्हित अर्थात् पूज्या होने के कारण **अभ्यर्हितं च** वार्तिक से मातृशब्द का पूर्वप्रयोग होता है और **आनङ्ृतो द्वन्द्वे** सूत्र से **मातृ** के ऋकार के स्थान पर **आनङ्** आदेश होकर **मातापितृ** बनता है। द्वित्व की विवक्षा में द्विवचन औ एवं **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** से गुण करके **मातापितरौ** सिद्ध होता है।

९९१- द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्। प्राणी च तूर्यञ्च सेना तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः प्राणितूर्यसेनाः, तासामङ्गानि प्राणितूर्यसेनाङ्गानि, तेषां प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्। द्वन्द्वः प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, प्राणितूर्यसेनाङ्गानां षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **द्विगुरेकवचनम्** से **एकवचनम्** की अनुवृत्ति आती है।

प्राणी के अंग, वाद्य के अंग और सेना के अंगों में यदि द्वन्द्वसमास हो तो उनमें समाहार एकवचन ही हो।

प्राणी, तूर्य(वाद्ययन्त्र) और सेना इनके अङ्ग के वाचक शब्दों का द्वन्द्व एकवचनान्त होता है। **एकवद्भाव**=एकवचनान्त करने का तात्पर्य यह है कि इनका समाहार अर्थ में ही द्वन्द्वसमास होता है, इतरेतरयोग में नहीं। समाहारद्वन्द्व एकवचनान्त ही है, क्योंकि समाहार अर्थात् समूह एक ही होता है।

अतः इनके अंगों में समास के विग्रह बनाते समय ही समाहार का विग्रह बनाना चाहिए।

पाणिपादम्। हाथ और पैर का समूह। **पाणी च पादौ च तेषां समाहारद्वन्द्वः।** यहाँ **चार्थे द्वन्द्वः** समास करने के बाद **द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्** से एकवचन का विधान हुआ। सु-विभक्ति आई और समाहार होने के कारण **स नपुंसकम्** से नपुंसक हुआ। अतः अम् आदेश, पूर्वरूप करके **पाणिपादम्** सिद्ध हुआ। यदि यह सूत्र न होता तो बहुवचन होकर **पाणिपादाः** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध होता। यह प्राण्यङ्ग का उदाहरण है।

मार्दङ्गिकवैणविकम्। मृदंगवादक और वेणुवादकों का समूह। **मार्दङ्गिकाश्च वैणविकाश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः।** यहाँ **चार्थे द्वन्द्वः** समास करने के बाद **द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्** से **वाद्याङ्ग** मानकर एकवचन का विधान हुआ। सुविभक्ति, समाहार होने के कारण नपुंसक हुआ है। अतः **अम्** आदेश, पूर्वरूप करके **मार्दङ्गिकवैणविकम्** सिद्ध हुआ। यदि यह सूत्र न होता तो बहुवचन होकर **मार्दङ्गिकवैणविकाः** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध होता। यह **वाद्याङ्ग** का उदाहरण है।

समासान्तटच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९९२. द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे ५।४।१०६॥

चवर्गान्ताद् दषहान्ताच्च द्वन्द्वात् टच् स्यात् समाहारे।
वाक् च त्वक् च वाक्त्वचम्। त्वक्स्रजम्। शमीदृषदम्। वाक्त्विषम्। छत्रोपानहम्। समाहारे किम्? प्रावृट्शरदौ।

इति द्वन्द्वः॥४२॥

....

रथिकाश्वारोहम्। रथिकों और घुड़सवारों का समूह। **रथिकाश्च अश्वारोहाश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः।** यहाँ **चार्थे द्वन्द्वः** से समास करने के बाद **द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्** से सेनाङ्ग मानकर एकवचन का विधान हुआ। सुविभक्ति, समाहार होने के कारण नपुंसक हुआ। अतः अम् आदेश, पूर्वरूप करके **रथिकाश्वारोहम्** सिद्ध हुआ। यह सेनाङ्ग का उदाहरण है। यदि यह सूत्र न होता तो बहुवचन होकर **रथिकाश्वारोहाः** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध होता।

९९२- **द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे।** चुश्च दश्च षश्च हश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वश्चुदषहाः। चुदषहा अन्ते यस्य स चुदषहान्तः, तस्माच्चुदषहान्तात्। द्वन्द्वात् पञ्चम्यन्तं, चुदषहान्तात् पञ्चम्यन्तं, समाहारे सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से **टच्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** का अधिकार है।

चवर्गान्त, दकारान्त, षकारान्त और हकारान्त द्वन्द्व से समासान्त टच् प्रत्यय होता है समाहार में।

वाक्त्वचम्। वाणी और त्वचा का समुदाय। **वाक् च त्वक् च तयोः समाहारः** लौकिकविग्रह और **वाच् सु त्वच् सु** अलौकिक विग्रह है। **चार्थे द्वन्द्वः** से द्वन्द्वसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक करके **वाच्+त्वच्** बना। **वाच्** के **चकार** को **चोः कुः** से कुत्व होकर **ककार** बना। अब **द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे** से चवर्गान्त मानकर समासान्त **टच्** होकर **वाक्त्वच्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकत्वेन सु, समाहारत्वेन नपुंसक एवं एकवचन होकर **वाक्त्वचम्** सिद्ध हुआ।

त्वक्स्रजम्। त्वचा और माला का समुदाय। **त्वक् च स्रज् च तयोः समाहारः** लौकिकविग्रह और **त्वच् सु स्रज् सु** अलौकिक विग्रह है। **चार्थे द्वन्द्वः** से द्वन्द्वसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक करके **त्वच्+स्रज्** बना। **त्वच्** के चकार को **चोः कुः** से कुत्व होकर ककार बना। अब **द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे** से चवर्गान्त मानकर समासान्त **टच्** होकर **त्वक्स्रज्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकत्वेन सु, समाहारत्वेन नपुंसक एवं एकवचन होकर **त्वक्स्रजम्** सिद्ध हुआ।

शमीदृषदम्। शमी और पत्थर का समुदाय। **शमी च दृषत् च तयोः समाहारः** लौकिकविग्रह और **शमी सु दृषद् सु** अलौकिक विग्रह है। **चार्थे द्वन्द्वः** से द्वन्द्वसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक करके **शमी+दृषद्** बना। अब **द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे** से दकारान्त मानकर समासान्त **टच्** होकर **शमीदृषद्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकत्वेन सु, समाहारत्वेन नपुंसक एवं एकवचन होकर **शमीदृषदम्** सिद्ध हुआ।

वाक्त्विषम्। वाणी और कान्ति का समुदाय। **वाक् च त्विट् च तयोः समाहारः** लौकिकविग्रह और **वाच् सु त्विष् सु** अलौकिक विग्रह है। **चार्थे द्वन्द्वः** से द्वन्द्वसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक करके **वाच्+त्विष्** बना। **वाच्** के **चकार** को **चोः कुः** से **कुत्व** होकर **ककार** बना। अब **द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे** से षकारान्त मानकर समासान्त **टच्** होकर **वाक्+त्विष्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकत्वेन सु, समाहारत्वेन नपुंसक एवं एकवचन होकर **वाक्त्विषम्** सिद्ध हुआ।

छत्रोपानहम्। छाते और जूतों का समुदाय। **छत्रं च उपानहौ च तेषां समाहारः** लौकिकविग्रह और **छत्र सु उपानह् औ** अलौकिक विग्रह है। **चार्थे द्वन्द्वः** से द्वन्द्वसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक करके **छत्र+उपानह्** बना। **गुण** होकर **छत्रोपानह्** बना। अब **द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे** से हकारान्त मानकर समासान्त टच् होकर **छत्रोपानह्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकत्वेन सु, समाहारत्वेन नपुंसक एवं एकवचन होकर **छत्रोपानहम्** सिद्ध हुआ।

समाहारे किम्? प्रावृट्शरदौ। यदि इस सूत्र में **समाहार में** हो, ऐसा नहीं कहते तो इतरेतरयोगद्वन्द्व में भी **टच्** हो जाता। सो न हो, इसके लिए सूत्र में **समाहारे** ऐसा लिखा गया। अतः **प्रावृट् च शरच्च** अनयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः **प्रावृट्शरदौ** ही बनता है, न कि प्रावृट्शरदम्।

इस प्रकार से संक्षेप में द्वन्द्व-समास को पूर्ण किया गया है। द्वन्द्व समास के लिए तो एक ही सूत्र **चार्थे द्वन्द्वः** है किन्तु पूर्वप्रयोग आदि करने के लिए और समास के अन्त में जो प्रत्यय लगते हैं उनका विधान करने के लिए अनेक सूत्र बताये गये हैं, जिनका कुछ विवरण इस **लघुसिद्धान्तकौमुदी** हुआ। इनका विस्तृत विवरण **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में किया गया है। विशेष करके **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में द्वन्द्व समास के बाद **अलुक्-समास, एकशेष समास** और **समासान्तप्रकण** भी दिखाये गये हैं। **अलुक्-समास** में समास होने के बाद भी विभक्ति का लुक् न होना आदि दिखाया गया है। इसी प्रकार **समासान्त प्रकरण** में समास करने के बाद अन्त में किये जाने वाले प्रत्यय ही बताये गये हैं। यहाँ लघुसिद्धान्तकौमुदी संक्षिप्त रूप से इन सब का दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। लघुकौमुदी में **एकशेष समास** का एक विशेष सूत्र **अजन्तपुँल्लिङ्गप्रकरण** में **सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ** बताया गया है और दूसरा एक सूत्र **पिता मात्रा** इस प्रकरण में।

आप **अष्टाध्यायी** का नियमित पारायण कर ही रहे होंगे।

अब हम समास के अन्त में आ चुके हैं। संस्कृत भाषा में समास का विशेष महत्त्व है। यदि कोई व्यक्ति व्याकरण के सूत्र न रटकर केवल सुबन्त और तिङन्त के समग्र रूपों को रटकर कथञ्चित् काम चला ले, किन्तु सन्धि और समास की जानकारी के लिए तो व्याकरण की शरण में आना ही पड़ता है। यदि सामान्य समास प्रकरण समझ में आ जाय तो संस्कृत के कठिन से कठिन गद्य और पद्यों का अर्थ आसानी से लग सकता है। इसलिए समास का अध्ययन अच्छी तरह से कर लेना चाहिए। मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि समास के अतिरिक्त अन्य प्रकरणों की आवश्यकता नहीं है अपितु यह कहना है कि सामान्य से सामान्य व्यक्ति जो व्याकरण के सूत्रों का रटन और प्रक्रिया में परिश्रम करने में असमर्थ है, वह रूपावली रटकर कथंचित् थोड़ा-बहुत काम चला सकता है किन्तु उसे भी समास प्रकरण तो पढ़ना ही पड़ेगा और सम्यक् प्रकारेण शब्दज्ञान करने के लिए तो पूरी व्याकरण-प्रक्रिया आवश्यक है।

वैसे तो संज्ञाप्रकरण से यहाँ तक आप प्रतिदिन कुछ न कुछ आवृत्ति कर ही रहे होंगे अर्थात् पढ़े हुए पाठ को दुहराये रहे होंगे फिर भी समासप्रकरण की आदि से अन्त तक की पूरी प्रक्रिया एक बार फिर दुहरायें। जहाँ सन्देह हो वहाँ अपने गुरु जी या विज्ञ जनों से पूछने में संकोच न करें।

प्रतिदिन ऐसा समय निकालना चाहिए कि अपने सहपाठियों से व्याकरण के सूत्र, प्रक्रिया आदि पर वाद-संवाद हो जाय और जो निर्णय न हो सके उसे गुरु जी से पूछा जाय। जो उदाहरण कौमुदी में दिखाये गये हैं, उनसे भी अलग उदाहरण खोज कर सिद्ध करने की चेष्टा करनी चाहिए। पुस्तक तो एक दिग्दर्शन मात्र कराती है। वह एक दो उदाहरणों को दिखाती है, शेष हजारों, लाखों शब्दों का ज्ञान आपको इन्ही कुछ सूत्रों के माध्यम से करना है। यदि आपने व्याकरणशास्त्र के पढ़ने में ठीक से परिश्रम कर लिया तो अन्य शास्त्रों को पढ़ने में इतना परिश्रम नहीं करना पढ़ेगा किन्तु व्याकरण शास्त्र में परिश्रम नहीं किया तो अन्य शास्त्रों में परिश्रम करना व्यर्थ हो जायेगा। क्योंकि व्याकरणज्ञान अर्थात् शब्दज्ञान के विना किसी शास्त्र में प्रवृत्ति कैसे हो सकती है?

परीक्षा

१-	**द्वन्द्वसमास** की विशेषता बताइयें	१०
२-	**चार्थ** क्या हैं? समझाइये।	१०
३-	**द्वन्द्व** के किन्हीं दस प्रयोगों की समासप्रक्रिया दिखाइये।	१०
४-	पूर्वप्रयोगों के सूत्रों की तुलना करें।	१०
५-	**द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे** की व्याख्या करें।	१०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित सारसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का द्वन्द्वसमास पूर्ण हुआ।

अथ समासान्ताः

समासान्त अ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९९३. ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे ५।४।७४।

अ अनक्ष इतिच्छेदः। ऋगाद्यन्तस्य समासस्य अप्रत्ययोऽन्तावयवोऽक्षे या धूस्तदन्तस्य तु न। अर्धर्चः। विष्णुपुरम्। विमलापं सरः। राजधुरा। अक्षे तु अक्षधूः। दृढधूरक्षः। सखिपथः। रम्यपथो देशः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब समासान्तप्रकरण का प्रारम्भ होता है। यद्यपि **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** आदि में एकशेषसमास, अलुक्समास आदि के भी अलग से प्रकरण दिखाये गये हैं किन्तु **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में उन प्रकरणों के कुछेक सूत्रों का तत्पुरुषादि समासों में उल्लेख करके पृथक् से एतदर्थ कोई प्रकरण नहीं बनाया है। समासान्त प्रत्ययों का भी उल्लेख तत्तत् प्रकरणों में आया है, फिर भी कुछ विशेषतया यहाँ पर उल्लेख करने के लिए इस प्रकरण का अवतरण है।

९९३- ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे। ऋक् च पूश्च आपश्च धूश्च पन्थाश्च तेषामितरेतरद्वन्द्व ऋक्पूरब्धूपन्थानः, तेषाम् ऋक्पूरब्धूपथाम्। न अक्षः अनक्षः, तस्मिन् अनक्षे। ऋक्पूरब्धूपथां षष्ठ्यन्तम्, अ लुप्तप्रथमाकं, अनक्षे सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** का अधिकार आ रहा है।

ऋच्, पुर्, अप्, धुर् और पथिन् ये शब्द जिसके अन्त में हों, ऐसे समास से समासान्त अ प्रत्यय होता है परन्तु अक्ष(रथ के चक्के का मध्यमभाग)में जो धुर्(धुरा), उसको बत..ने वाला धुर् शब्द अन्तिम हो तो नहीं।

अ अनक्ष इतिच्छेदः- इसका तात्पर्य यह है कि सूत्र में स्थित **आनक्षे** इस पद में **अ+अनक्षे** ऐसा पदच्छेद है। अनक्षे का निषेध केवल **धुर्** शब्द के लिए है, क्योंकि उसी में योग्यता है, औरों में नहीं।

अर्धर्चः। ऋचा का आधा भाग। **ऋचोऽर्धम्** लौकिकविग्रह और **ऋच् ङस्+अर्ध सु** अलौकिक विग्रह है। **अर्धं नपुंसकम्** से समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ऋच्+अर्ध** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **अर्ध** की उपसर्जनसंज्ञा, उसका पूर्वनिपात करके **अर्ध+ऋच्** बना। **आद्गुणः** से गुण होकर **अर्धर्च्** बना। अब **ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे** से

समासान्त अच् होकर **अर्धर्च्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकत्वेन सु, रुत्वविसर्ग करके **अर्धर्चः** सिद्ध हुआ। **अर्धर्चादिगण** में आने के कारण एक पक्ष में **अर्धर्चाः पुंसि च** से नपुंसक होकर **अर्धर्चम्** भी होता है।

विष्णुपुरम्। विष्णु की नगरी। **विष्णोः पूः** लौकिकविग्रह और **विष्णु ङस्+पुर् सु** अलौकिक विग्रह है। **षष्ठी** से तत्पुरुषसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विष्णुपुर्** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **विष्णु** की उपसर्जनसंज्ञा, उसका पूर्वनिपात। अब **ऋक्पूरब्धूः-पथामानक्षे** से समासान्त अच् होकर **विष्णुपुर्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकत्वेन सु, नपुंसक होने के कारण सु के स्थान पर **अम्** आदेश एवं पूर्वरूप करने पर **विष्णुपुरम्** सिद्ध हुआ।

विमलापं सरः। निर्मल जल है जिसका, ऐसा तालाब। **विमला आपो यस्य** लौकिकविग्रह और **विमला जस्+अप् जस्** अलौकिक विग्रह है। **अनेकमन्यपदार्थे** से बहुव्रीहिसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विमला-अप्** बना। सवर्णदीर्घ होकर **विमलाप्** बना। अब **ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे** से समासान्त अच् होकर **विमलाप्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकत्वेन सु, **सरः** नपुंसक होने के कारण इसका विशेषण **विमलाप** भी नपुंसक ही हुआ। सु के स्थान पर **अम्** आदेश एवं पूर्वरूप करने पर **विमलापं सरः** सिद्ध हुआ।

राजधुरा। राजा का कार्यभार। **राज्ञो धूः** लौकिकविग्रह और **राजन् ङस्+धुर् सु** अलौकिक विग्रह है। **षष्ठी** से तत्पुरुषसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नलोप करके **राज-धुर्** बना। अब **ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे** से समासान्त अच् होकर **राजधुर्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, धुर्-शब्द स्त्रीलिङ्गी होने के कारण **अजाद्यतष्टाप्** से टाप्, अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ करके पर **राजधुरा** बना। प्रातिपदिकत्वेन सु, स्त्रीलिङ्ग होने के कारण इसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करने पर **राजधुरा** सिद्ध हुआ।

अक्षे तु अक्षधूः। सूत्र में **अनक्षे** पढ़ कर अक्षशब्द के साथ सम्बद्ध जो धुर्, तदन्त से अच् प्रत्यय का निषेध किया है। अतः **अक्षस्य धूः** षष्ठी करने के बाद अच् से रहित **अक्षधूः** ही बनेगा। इसी तरह **दृढधूरक्षः** में **दृढा धूः यस्य** में बहुव्रीहि समास करने के बाद समासान्त अच् प्रत्यय नहीं हुआ। अतः **दृढधूः** ही बनेगा।

सखिपथः। मित्र का रास्ता। **सख्युः पन्थाः** लौकिकविग्रह और **सखि ङस्+पथिन् सु** अलौकिक विग्रह है। **षष्ठी** से तत्पुरुषसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सखिपथिन्** बना। अब **ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे** से समासान्त अच् होकर **सखिपथिन्+अ** बना। भसंज्ञा करके **भस्य टेर्लोप** से **पथिन्** में टिसंज्ञक **इन्** का लोप हो गया। **सखिपथ्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **सखिपथ** बना। प्रातिपदिकत्वेन सु, रुत्वविसर्ग करने पर **सखिपथः** सिद्ध हुआ।

रम्यपथो देशः। सुन्दर रास्ता है जिसका, ऐसा देश। **रम्यः पन्था यस्य** लौकिकविग्रह और **रम्य सु+पथिन् सु** अलौकिक विग्रह है। **अनेकमन्यपदार्थे** से बहुव्रीहिसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **रम्यपथिन्** बना। अब **ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे** से समासान्त अच् होकर **रम्यपथिन्+अ** बना। भसंज्ञा करके **भस्य टेर्लोप** से **पथिन्** में टिसंज्ञक **इन्** का लोप हो गया। **रम्यपथ्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **रम्यपथ** बना। यह **देशः** का विशेषण है, अतः पुँल्लिङ्ग रहेगा। प्रातिपदिकत्वेन सु, रुत्वविसर्ग करने पर **रम्यपथः** सिद्ध हुआ।

अच्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९९४. अक्ष्णोऽदर्शनात् ५।४।७६॥

अचक्षु:पर्यायादक्ष्णोऽच् स्यात् समासान्त:। गवामक्षीव गवाक्ष:।

अच्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९९५. उपसर्गादध्वनः ५।४।८५॥

प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथ:।

समासान्तप्रत्ययनिषेधकं विधिसूत्रम्

९९६. न पूजनात् ५।४।६९॥

पूजनार्थात् परेभ्य: समासान्ता न स्यु:। सुराजा। अतिराजा।

इति समासान्ता:॥४३॥

इति समासप्रकरणम्।

९९४- **अक्ष्णोऽदर्शनात्**। दृश्यते इति दर्शनम्। न दर्शनम् अदर्शनं, तस्मात्। अक्ष्ण: पञ्चम्यन्तम्, अदर्शनात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्न:** से **अच्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्यय:, परश्च, समासान्ता:, तद्धिता:** का अधिकार है।

यदि अक्षि शब्द चक्षु का वाचक न हो तो अक्षिशब्दान्त से समासान्त अच् प्रत्यय होता है।

गवाक्ष:। गाय की आखों जैसी खिड़की, झरोखा। **गवाम् अक्षि इव** लौकिक विग्रह और **गो आम् अक्षि सु** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर **अक्षि** शब्द नेत्र का वाचक नहीं है अपितु नेत्र की तरह छिद्र वाली खिड़की का वाचक है। **षष्ठी** सूत्र के द्वारा षष्ठीतत्पुरुष समास होने के पश्चात् प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **गो+अक्षि** बना। यहाँ पर **अवङ् स्फोटायनस्य** से **अवङ्** आदेश, सवर्णदीर्घ होकर **गवाक्षि+अ** बना। **अक्ष्णोऽदर्शनात्** से समासान्त **अच्** प्रत्यय होकर भसंज्ञक **अक्षि** के इकार का **यस्येति च** से लोप होकर **गवाक्ष** बना। स्वादिकार्य करके **गवाक्ष:** सिद्ध होता है।

९९५- **उपसर्गादध्वन:**। उपसर्गात् पञ्चम्यन्तम्, अध्वन: पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्न:** से **अच्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्यय:, परश्च, समासान्ता:, तद्धिता:** का अधिकार है।

प्रादियों से परे अध्वन्-शब्दान्त से समासान्त अच् प्रत्यय होता है।

प्राध्वो रथ:। वह रथ जो मार्ग पर चल पड़ा। **प्रगत: अध्वानम्** लौकिक विग्रह और **प्र+अध्वन् अम्** अलौकिक विग्रह में **अत्यादय: क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया** इस वार्तिक से समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **प्र+अध्वन्** बना है। **उपसर्गादध्वन:** से **अच्** प्रत्यय करके **नस्तद्धिते** से **अन्** इस टिसंज्ञक का लोप करके **प्र+अध्व्+अ** बना। सवर्णदीर्घ और वर्णसम्मेलन करके **प्राध्व** बना। स्वादिकार्य करके **प्राध्व:** सिद्ध हुआ।

९९६- **न पूजनात्**। न अव्ययपदं, पूजनात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्यय:, परश्च, तद्धिता:, समासान्ता:** आदि पूर्ववत् अधिकृत हैं।

पूजनार्थक(प्रशंसार्थक) शब्दों से परे आने वाले शब्दों से समासान्त प्रत्यय नहीं होते हैं।

सर्वत्र निषेध नहीं होता, अपितु **सु** और **अति** से परे ही निषेध होता है, यह बताने के लिए **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में **स्वतिभ्यामेव** ऐसा पढ़ा गया है। इसका तात्पर्य है कि यह निषेध केवल **सु** और **अति** इन दो निपातों से परे ही होता है, अन्य पूजनार्थकों से निषेध नहीं होता।

सुराजा। अच्छा राजा। **शोभनो राजा** लौकिकविग्रह और **सु+राजन् सु** अलौकिक विग्रह है। **कुगतिप्रादयः** से तत्पुरुषसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सुराजन्** बना। अब **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से समासान्त **टच्** प्राप्त था, उसका **न पूजनात्** से निषेध हुआ। अतः **सुराजन्** से ही प्रातिपदिकत्वेन सु करके **राजा** की तरह **सुराजा** सिद्ध हुआ। यदि यहाँ पर **टच्** का निषेध न होता तो **सुराजः** ऐसा अनिष्ट रूप होता।

अतिराजा। अच्छा राजा। **अतिशयितो राजा** लौकिकविग्रह और **अति+राजन् सु** अलौकिक विग्रह है। **कुगतिप्रादयः** से तत्पुरुषसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अतिराजन्** बना। अब **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से समासान्त टच् प्राप्त था, उसका **न पूजनात्** से निषेध हुआ। अतः **अतिराजन्** से ही प्रातिपदिकत्वेन सु करके **राजा** की तरह **अतिराजा** सिद्ध हुआ। यदि यहाँ पर **टच्** का निषेध न होता तो **अतिराजः** ऐसा अनिष्ट रूप होता।

सु और **अति** के अतिरिक्त अन्यों से टच् का निषेध नहीं होता। अतः **परमश्चासौ राजा** में **परम सु+राजन् सु** में समास करके **टच्** करने पर **परमराजः** बन सकता है।

व्याकरणशास्त्र में **पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्** यह सूत्र अत्यन्त आवश्यक है किन्तु लघुकौमुदीकार ने यहाँ पर इसे स्थान नहीं दिया है फिर भी जिज्ञासुओं के लिए व्याख्या में प्रदर्शित है।

पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्। पृषोदरः आदिर्येषां तानि पृषोदरादीनि। पृषोदरादीनि प्रथमान्तं, यथा अव्ययपदम्, उपदिष्टं प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **पृषोदर आदि शब्द शिष्टों के द्वारा जैसे उच्चारित या उपदिष्ट हुए हैं, वैसे ही साधु अर्थात् सिद्ध हैं।**

तात्पर्य यह है कि अनेक ऐसे शब्द हैं, जिनका प्रकृतिप्रत्यय की प्रक्रिया नहीं की गई है, अपितु शिष्टों ने जैसा उच्चारण किया है, उनकी सिद्धि में जो प्रक्रिया अपेक्षित है, वह करके उन रूपों को सिद्ध मान लेना चाहिए। इसके लिए चाहे कोई सूत्र हो या न हो। जैसे के **पृषत् उदरं यस्य** में समास करके तकार का लोप करने पर **पृष+उदर** बनता है। गुण करके **पृषोदर** बन जाता है। यदि तकार का लोप न करते तो **पृषदुदरम्** बनता किन्तु शिष्टों ने **पृषदुदरम्** के स्थान पर **पृषोदरम्** पढ़ा है। अतः यहाँ पर **पृषोदर** ही साधु माना गया। यद्यपि तकार के लोप के लिए कोई सूत्र नहीं है, फिर भी शिष्टों के द्वारा उच्चारित होने के कारण साधु मान लिया गया। इसी तरह **वारिणो वाहकः** में **वारिवाहकः** बनता है। यहाँ **वारिवा** के स्थान पर **वला** आदेश मान लिया जाय जिससे **वलाहकः** बन सके क्योंकि शिष्टों ने **वलाहकः** का व्यवहार किया है।

इस सूत्र के सम्बन्ध में एक पद्य प्रचलित है-

भवेद्वर्णागमाद्धंसः सिंहो वर्णविपर्ययात्।
गूढोत्मा वर्णविकृतेर्वर्णनाशात् पृषोदरम्।

हसः में अनुस्वार वर्ण का आगम करके **हंसः** बनता है। इसी तरह **हिंस्रः** में वर्णों की अदला-बदली करके **रेफ** का लोप करने पर **सिंहः** बनता है। एवं **गूढः आत्मा** में वर्णों की विकृति करके **गूढोत्मा** बना लिया जाता है और **पृषत् उदरम्** में वर्णनाश करके **पृषोदरम्** बनता है।

इसी तरह जिन शब्दों में सूत्रों के द्वारा प्रक्रिया सम्भव न हो, फिर भी शिष्टों ने जिस तरह से पढ़ा है अर्थात् पुरातन ग्रन्थों, काव्यों में जिस तरह से पठित हैं, उनको उसी रूप में साधु माना जाय।

इस तरह समास की प्रक्रिया सामान्य बताई गई। अब इसके बाद आपको **तद्धितप्रकरण** में प्रवेश करना है। उसके पहले हम अपने आपको परखते हैं कि हम समास की कितनी गहराई तक जा पहुँचे हैं?

परीक्षा

१- पाँचों समासों में आपने जो अन्तर पाया, उसकी तुलना करें। १०

२- समास में खास ध्यान देने योग्य मुख्य बिन्दुओं का उल्लेख करें। १०

३- समास में लौकिक विग्रह और अलौकिक विग्रह पर प्रकाश डालें १०

४- तत्पुरुष समास के किन्हीं पाँच प्रयोगों की प्रक्रिया दिखाइये। १०

५- अव्ययीभाव-समास के किन्हीं पाँच प्रयोगों की प्रक्रिया दिखाइये। १०

६- बहुव्रीहि-समास के किन्हीं पाँच प्रयोगों की प्रक्रिया दिखाइये। १०

७- द्वन्द्व-समास के किन्हीं पाँच प्रयोगों की प्रक्रिया दिखाइये। १०

८- सभी समासों में पूर्वप्रयोग की प्रक्रिया पर प्रकाश डालें। १०

९- निम्नलिखित विग्रहों में किस का पूर्व प्रयोग होता है? कारण एवं सूत्र सहित प्रक्रिया दिखाइये- **इन्द्रश्च वायुश्च। अर्जुनश्च भीमश्च। ईशश्च रुद्रश्च। हरिश्च शिवश्च। श्यामश्च रामश्च।** १०

१०- समासप्रक्रिया पर दो पेज का एक लेख लिखिए- १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का समासान्त-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ तद्धितप्रकरणम्

तत्रादौ साधारणप्रत्ययाः

अधिकारसूत्रम्

९९७. समर्थानां प्रथमाद्वा ४।१।८२॥

इदं पदत्रयमधिक्रियते प्राग्दिश इति यावत्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **तद्धितप्रकरण** का प्रारम्भ होता है। तद्धित प्रत्यय हैं, सूत्रसंख्या **४।१।७६** (**तद्धिताः**) से लेकर पाँचवें अध्याय के चतुर्थपाद की समाप्ति तक जितने भी प्रत्यय होते हैं, उन सब की **तद्धिताः** से तद्धितसंज्ञा होती है। **तेभ्यः प्रयोगेभ्य हिताः** अर्थात् उन प्रयोगों की निष्पत्ति में हितकर सिद्ध होने के कारण जो प्रत्यय हैं, उन्हें तद्धित कहा जाता है। तद्धित प्रत्यय सुबन्त प्रातिपदिकों से होते हैं, धातुओं से नहीं। ये प्रायः किसी अर्थविशेष को लेकर होते हैं। **अण्, ठक्, ठञ्, णिनि, मतुप्, घञ्, मयट्** आदि अनेकों प्रकार के होते हैं। इन प्रत्ययों के लगने से लोक से लौकिक, वेद से वैदिक, धर्म से धार्मिक, पाणिनि से पाणिनीय, ग्राम से ग्रामीण, राष्ट्र से राष्ट्रिय, मेधा से मेधाविन्, नर से नरत्व, मनुष्य से मनुष्यत्व आदि रूप बनते हैं। तद्धित प्रत्यय करने के बाद समास की तरह तद्धितान्त की भी प्रातिपदिकसंज्ञा होती है और उसके बीच में विद्यमान सुप् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हो जाता है। उसके बाद उस प्रत्यय के परे रहते किए जाने वाले गुण, वृद्धि आदि कार्य होते हैं और **एकदेशविकृतन्यायेन** सु आदि विभक्तियाँ आती हैं।

९९७- समर्थानां प्रथमाद्वा। समर्थानां षष्ठ्यन्तं, प्रथमाद् पञ्चम्यन्तं, वा अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

''प्राग्दिशो विभक्तिः ५।३।१॥'' तक समर्थानां, प्रथमाद्, वा इन तीनों पदों का अधिकार है।

अधिकार होने से इन पदों का अपने स्थल पर कोई उपयोग नहीं है किन्तु आगे के विधिसूत्रों में उपस्थित होकर इनकी चरितार्थता सिद्ध होती है। तद्धितविधि भी पदसम्बन्धी विधि है। अतः **समर्थः पदविधिः** सूत्र के अनुसार सामर्थ्य होने पर ही तद्धित प्रत्यय हो सकते हैं।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९९८. अश्वपत्यादिभ्यश्च ४।१।८४॥

एभ्योऽण् स्यात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु।

अश्वपतेरपत्यादि आश्वपतम्। गाणपतम्।

....

समर्थः पदविधिः और **समर्थानां प्रथमाद्वा** इन दो सूत्रों में पठित **समर्थ** शब्द के अर्थ में अन्तर-

समर्थः पदविधिः सूत्र का सामर्थ्य एकार्थीभाव रूप है। इसीलिए असमर्थ होने पर तद्धित प्रत्यय किये नहीं जा सकते। जैसे- **कम्बलम् उपगोरपत्यं देवदत्तस्य**(कम्बल तो उपगु नामक व्यक्ति का है और सन्तान देवदत्त की) में **उपगु** शब्द से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय नहीं हो सकता, क्योंकि **उपगु** का सम्बन्ध **कम्बल** से है, **अपत्य** के साथ में नहीं। अतः सामर्थ्य न होने से प्रत्यय भी नहीं होगा।

समर्थानां प्रथमाद्वा में पठित **सामर्थ्य** का अर्थ **प्रयोग की योग्यता** है अर्थात् अर्थबोध कराने में सामर्थ्य वाला ही समर्थ माना जाता है जिसमें तत्तत् सन्धिकार्य हो चुके हों, वही पद अर्थबोध कराने में समर्थ हो सकता है, अकृतसन्धिकार्य पद नहीं। यदि ऐसा सामर्थ्य न लिया जाता तो **सु+उत्थितस्य अपत्यम्** इस विग्रह में **अत इञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय होने पर **सु+उत्थित+इ** इस अवस्था में **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् **सु** के उकार की वृद्धि करके **सौ+उत्थित+इ** में आव् आदेश करके **सावुत्थित+इ,** अकार का लोप, वर्णसम्मेलन आदि करके **सावुत्थिति** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध होने लगता परन्तु जब समर्थ अर्थात् कृतसन्धिकाय से ही प्रत्यय का विधान करेंगे तो **सु+उत्थितस्य अपत्यम्** इस विग्रह में **इञ्** प्रत्यय के पहले ही **सु+उत्थित** में दीर्घ होकर **सूत्थित** बनने के बाद ही अपत्यार्थ में प्रत्यय होकर आदि अच् **सू** के ऊकार की वृद्धि होने पर **सौत्थित+इ=सौत्थितिः** ऐसा शुद्ध रूप बन सकेगा। अतः इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि **समर्थः पदविधिः** से ही **सामर्थ्य** अर्थ प्राप्त होते हुए **समर्थानां प्रथमाद्वा** में **समर्थ** पढ़ना व्यर्थ है।

इस तरह **समर्थः पदविधिः** के **समर्थः** का अर्थ- **एकार्थीभाव** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** के **समर्थ** का अर्थ- **कृत-सन्धिकार्य**(कृतं सन्धिकार्यं यस्मिन्) समझना चाहिए।

समर्थानां प्रथमाद्वा इन तीन पदों के अधिकार का फल यह होता है कि **समर्थ** अर्थात् प्रयोग के योग्य(कृतसन्धिकार्य) और तद्धितप्रत्ययविधायक सूत्रों में प्रथमोच्चरित पद से जिसका बोध होता है, ऐसे समर्थ शब्दों से प्रत्यय हों, विकल्प से, इस अर्थ की उपस्थिति। जैसे कि **तस्यापत्यम्** इस सूत्र में प्रथमोच्चरित पद **तस्य** है और उससे **उपगोरपत्यम्** इत्यादि में **उपगोः** आदि षष्ठ्यन्त का बोध होता है। अतः इसी(षष्ठ्यन्त) से अण् प्रत्यय होता है, न कि **अपत्य** शब्द से। **वा** शब्द के कारण **उपगोरपत्यम्** ऐसा वाक्य का भी प्रयोग किया जा सकता है अर्थात् सम्पूर्ण तद्धित में एकपक्ष में वाक्य भी हो सकता है।

समर्थानां प्रथमाद्वा के साथ ही **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः** का भी प्रायः सभी सूत्रों में अधिकार रहेगा। इस तरह पूरे तद्धित-प्रत्ययविधायक सूत्रों में **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च** इन सभी पदों का अधिकार रहता है किन्तु **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार **प्राग्दिशो विभक्तिः** के पहले तक रहता है, आगे नहीं।

१९८- **अश्वपत्यादिभ्यश्च**। अश्वपतिः आदिर्येषां ते अश्वपत्यादयस्तेभ्यः। अश्वपत्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार है। **प्राग्दीव्यतोऽण्** का भी अधिकार है।

प्राग्दिव्यतीय अर्थों में अश्वपति आदि गणपठित शब्दों से अण् प्रत्यय होता है।

अण् में णकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। णित् होने के कारण वृद्धि आदि होंगे। आगे **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** सूत्र कहा गया है, उससे पहले तक के सूत्रों में जो जो भी अर्थ बताये गये हैं, उन अर्थों को **प्राग्दीव्यतीय** अर्थ कहा गया है। अश्वपति आदि गण में **अश्वपति, ज्ञानपति, शतपति, धनपति, गणपति, स्थानपति, यज्ञपति, राष्ट्रपति, कुलपति, गृहपति, पशुपति, धान्यपति, बन्धुपति, धर्मपति, सभापति, प्राणपति और क्षेत्रपति** ये शब्द आते हैं।

अण् में णकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। णित् होने के कारण वृद्धि आदि होंगे।

इस प्रकरण के सभी प्रत्यय प्राग्दीव्यतीय अर्थों में कहे गये हैं। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से लेकर **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** तक **अपत्य, गोत्रापत्य, युवापत्य, साऽस्य देवता, तस्य समूहः, तदधीते तद्वेद, तत्र जातः, प्रायःभवः, सम्भूत, उप्त, तत्र भवः, तस्य व्याख्यान, तत आगतः, प्रभवति, सोऽस्य निवासः, अभिजन, भक्ति, तेन प्रोक्तम्, तस्येदम्, तस्य विकारः, तस्यावयवः** इत्यादि अर्थ आते हैं। इन अर्थों में प्रायः अण् प्रत्यय का ही विधान ये सूत्र करते हैं। जहाँ विशेष प्रत्यय अपेक्षित होता है वहाँ उस प्रत्यय के लिए अपवाद सूत्र बने हुए है। उक्त सभी अर्थ तत्तत् प्रकरणों में स्पष्ट हो जायेंगे।

आश्वपतम्। अश्वपति की सन्तान आदि। **अश्वपतेरपत्यादि** लौकिक विग्रह है। **अश्वपति ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **अश्वपत्यादिभ्यश्च** से अण् प्रत्यय हुआ- **अश्वपति ङस् अण्** बना। अण् में णकार का **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप हुआ- **अश्वपति ङस् अ** बना। **अश्वपति ङस्+अ** की तद्धितान्त होने के कारण **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई और **ङस्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ, **अश्वपति+अ** बना। **अ** णित् है, अतः उसके परे होने पर अचों में आदि अच् **अश्वपति** के **अकार** की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि हुई, **आश्वपति+अ** बना। अण् के **अकार** इस अजादि-प्रत्यय के परे होने पर पूर्व की **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई और उसके इकार का **यस्येति च** से लोप हुआ- **आश्वपत्+अ** बना। **आश्वपत्+अ** में वर्णसम्मेलन होकर **आश्वपत** बना। जब इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई थी तब इसका स्वरूप **अश्वपति ङस् अ** था, अब **आश्वपत** बन गया है तो भी **एकदेशविकृतन्याय** से **आश्वपत** को प्रातिपदिक मान लिया गया। इसलिए **आश्वपत** से सु विभक्ति आई और सामान्य की अपेक्षा में नपुंसक मानकर प्रथमा के एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय, उसके स्थान पर **अतोऽम्** से **अम्** आदेश और **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **आश्वपतम्** सिद्ध हुआ। इसके रूप सातों विभक्तियों में ज्ञानम् की तरह **आश्वपतम्, आश्वपते, आश्वपतानि** आदि बनेंगे। यदि विशेष्य पुँल्लिङ्ग का होगा तो **रामः** की तरह **आश्वपतः, आश्वपतौ, आश्वपताः** आदि बनेंगे। विशेष्य के स्त्रीलिङ्ग में होने पर स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होकर **आश्वपती** बनेगा और इसके रूप **नदी** शब्द की तरह **आश्वपती, आश्वपत्यौ, आश्वपत्यः** आदि बनेंगे।

ण्यप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९९९. दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः ४।१।८५॥

दित्यादिभ्यः पत्युत्तरपदाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः स्यात्। अणोऽपवादः। दितेरपत्यं दैत्यः। अदितेरादित्यस्य वा-

....

गाणपतम्। गणपति की सन्तान आदि। गणपति शब्द अश्वपत्यादिगण में आता है। **गणपतेरपत्यादि** लौकिक विग्रह है। **गणपति ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **अश्वपत्यादिभ्यश्च** से अण् प्रत्यय हुआ- **गणपति ङस् अण्** बना। अण् में णकार का **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप हुआ- **गणपति ङस् अ** बना। **गणपति ङस्+अ** की तद्धितान्त होने के कारण **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई और ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ, **गणपति+अ** बना। अ णित् है, अतः उसके परे होने पर अचों में आदि अच् **गणपति** के गकारोत्तरवर्ती अकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि हुई, **गाणपति+अ** बना। अकार रूप अजादि-प्रत्यय के परे होने पर पूर्व की **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई और उसके इकार का **यस्येति च** से लोप हुआ- **गाणपत्+अ** बना। **गाणपत्+अ** में वर्णसम्मेलन होकर **गाणपत** बना। जब इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई थी तब इसका स्वरूप **गाणपति ङस् अ** था, अब **गाणपत** बन गया है तो भी **एकदेशविकृतन्याय** से **गाणपत** को प्रातिपदिक मान लिया गया। इसलिए **गाणपत** से सु विभक्ति आई और सामान्य की अपेक्षा में नपुंसक मान कर प्रथमा के एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय, उसके स्थान पर **अतोऽम्** से अम् आदेश और **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **गाणपतम्** सिद्ध हुआ। इसके रूप सातों विभक्तियों में **ज्ञानम्** की तरह **गाणपतम्, गाणपते, गाणपतानि** आदि बनेंगे। यदि विशेष्य पुँल्लिङ्ग का होगा तो रामः की तरह **गाणपतः, गाणपतौ, गाणपताः** आदि बनेंगे। विशेष्य के स्त्रीलिङ्ग में होने पर स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होकर **गाणपती** बनेगा और इसके रूप **नदी** शब्द की तरह **गाणपती, गाणपत्यौ, गाणपत्यः** आदि बनेंगे।

९९९- **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः।** पतिरुत्तरपदं यस्य स पत्युत्तरपदः(शब्दः), दितिश्च अदितिश्च आदित्यश्च पत्युत्तरपदश्च एतेषां समाहारो दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदम्, तस्मात्। दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदात् पञ्चम्यन्तं, ण्यः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है साथ ही **प्राग्दिव्यतोऽण्** का भी अधिकार है।

प्राग्दिव्यतीय अर्थों में दिति, अदिति, आदित्य शब्द और पति उत्तरपद में हो ऐसे शब्दों से 'ण्य' प्रत्यय होता है।

णकार चुटू से इत्संज्ञक है, **य** बचता है।

दैत्यः दिति की सन्तान। **दितेरपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **दिति ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्यः** से **ण्य** प्रत्यय हुआ- **दिति ङस् ण्य** बना। **ण्य** में णकार की **चुटू** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप हुआ- **दिति ङस् य** बना। **दिति ङस्+य** की तद्धितान्त होने के कारण **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई और **ङस्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ, **दिति+य** बना। **य** णित् है,

यमो लोपविधायकं विधिसूत्रम्

१०००. हलो यमां यमि लोपः ८।४।६४॥

हलः परस्य यमो लोपः स्याद् वा यमि। इति यलोपः।

आदित्यः। प्राजापत्यः।

वार्तिकम्- **देवाद्यञञौ।** दैव्यम्। दैवम्।

वार्तिकम्- **बहिषष्टिलोपो यञ्च।** बाह्यः।

वार्तिकम्- **ईकक् च।**

....

अतः उसके परे होने पर अचों में आदि अच् दिति के दकारोत्तरवर्ती इकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि हुई, इकार की वृद्धि ऐकार होकर **दैति+य** बना। यकारादि-प्रत्यय के परे होने पर पूर्व की **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई और उसके इकार का **यस्येति च** से लोप हुआ- **दैत्+य** बना। **दैत्+य** में वर्णसम्मेलन होकर **दैत्य** बना। जब इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई थी तब इसका स्वरूप **दिति ङस् य** था, अब **दैत्य** बन गया है तो भी **एकदेशविकृतन्याय** से दैत्य को भी प्रातिपदिक मान लिया गया। इसलिए **दैत्य** से **सु** विभक्ति आई और पुँल्लिङ्ग में **रामः** की तरह **दैत्यः** सिद्ध हुआ।

१०००- हलो यमां यमि लोपः। हलः पञ्चम्यन्तं, यमां षष्ठ्यन्तं, यमि सप्तम्यन्तं, लोपः प्रथमान्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **झयो होऽन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है।

हल् से परे यम् का विकल्प से लोप होता है यम् के परे होने पर।

यम् प्रत्याहार में **य्, व्, र्, ल्, ञ्, म्, ङ्, ण्, न्** ये वर्ण आते हैं। **यम् के परे रहते यम्** के लोप का विधान हुआ है। अतः संख्या की समानता होने के कारण **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** के अनुसार **यथासङ्ख्य** नियम प्रवृत्त होगा, जिससे यकार के परे यकार का ही लोप, वकार के परे वकार का ही लोप आदि होंगे। ध्यान रहे कि जिसका लोप किया जा रहा है, उससे पूर्व में झल् प्रत्याहार का वर्ण होना चाहिए। यह कार्य वैकल्पिक है।

आदित्यः। अदिति की सन्तान। **अदितेरपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **अदिति ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से ण्य प्रत्यय हुआ- **अदिति ङस् ण्य** बना। ण्य में णकार की **चुटू** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप हुआ- **अदिति ङस् य** बना। **अदिति ङस्+य** की तद्धितान्त होने के कारण **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई और ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ, **अदिति+य** बना। **य** णित् है अतः उसके परे होने पर अचों में आदि अच् अदिति के अकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि हुई, **आदिति+य** बना। यकारादि-प्रत्यय के परे होने परे पूर्व की **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई और उसके इकार का **यस्येति च** से लोप हुआ- **आदित्+य** बना। **आदित्+य** में वर्णसम्मेलन होकर **आदित्य** बना। सु विभक्ति आई और पुँल्लिङ्ग में **रामः** की तरह **आदित्यः** सिद्ध हुआ।

आदित्यः। आदित्य की सन्तान। **आदित्यस्य अपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **आदित्य ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

१००१. किति च ७।२।११८॥

किति तद्धिते चाचामादेरचो वृद्धिः स्यात्। बाहीकः।

वार्तिकम्- **गोरजादिप्रसङ्गे यत्।** गोरपत्यादि गव्यम्।

....

करके अनुबन्धलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, **ङस्** का लुक् होकर **आदित्य+य** बना। आकार के स्थान पर आकार ही आदिवृद्धि हुई। भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप हुआ- **आदित्य्+य** बना। यकार से यकार परे होने पर **हलो यमां यमि लोपः** से प्रथम यकार का वैकल्पिक लोप हुआ। हल् है त्, उससे परे **यम** है प्रथम यकार और **यम** परे है द्वितीय यकार। अब **आदित्+य** बना, वर्णसम्मेलन होकर **आदित्य** बना। सु, रुत्व और विसर्ग करके **आदित्यः** सिद्ध हुआ। लोप न होने के पक्ष में **आदित्य्यः** बना। यहाँ पर प्रत्यय होने के बाद भी रूप में अन्तर नहीं आया है।

प्राजापत्यः। प्रजापति की सन्तान। **प्रजापतेरपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **प्रजापति ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **पति उत्तरपद** में होने के कारण **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय हुआ- **प्रजापति ङस् ण्य** बना। **ण्य** में **णकार** की **चुटू** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप हुआ- **प्रजापति ङस् य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **प्रजापति+य** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से **प्र** में **अकार** की वृद्धि हुई, **प्राजापति+य** बना। भसंज्ञक इकार का **यस्येति च** से लोप करके **प्राजापत्+य,** वर्णसम्मेलन करके **प्राजापत्य** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **प्राजापत्यः** सिद्ध हुआ।

देवाद्यञञौ। यह वार्तिक है। **देव शब्द से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में यञ् और अञ् प्रत्यय होता है।**

दोनों प्रत्ययों में **ञकार** की इत्संज्ञा होती है। क्रमशः **य** और **अ** शेष रह जाते हैं। ञित् का प्रयोजन वृद्धि है। यह वार्तिक **प्राग्दीव्यतोऽण्** से प्राप्त औत्सर्गिक अण् का अपवाद है।

दैव्यम्, दैवम्। देव की सन्तान आदि। **देवस्य अपत्यादि। देव ङस्** से अण् प्राप्त था, उसे बाधकर के **देवाद्यञञौ** से पहले **यञ्** प्रत्यय, ञकार का लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **देव+य** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर एकार के स्थान पर ऐकार आदेश होकर **दैव+य** बना। **यस्येति च** से वकारोत्तरवर्ती अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **दैव्य** बना। सु, अम् आदेश, पूर्वरूप करके **दैव्यम्** बना। **अञ्** होने के पक्ष में भी यही प्रक्रिया होकर **दैव्+अ=दैव, दैवम्** सिद्ध होता है।

बहिषष्टिलोपो यञ्च। यह वार्तिक है। **बहिस् से यञ् प्रत्यय और उसके संनियोग में टि का लोप भी होता है।**

बाह्यः। बाहर होने वाला। **बहिर्भवः, बहिस्** से **बहिषष्टिलोपो यञ्च** से यञ् प्रत्यय के साथ **बहिस्** में टि **इस्** का लोप हो गया। **बह्+य** बना। **य** ञित् है, अतः **तद्धितेष्वचामादेः** आदि अच् **अकार** की वृद्धि हुई, **बाह्+य** बना। वर्णसम्मेलन होकर **बाह्य** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **बाह्यः** सिद्ध हुआ।

ईकक् च। यह वार्तिक है। **बहिस्** शब्द से **ईकक् भी होता है, साथ ही टि का लोप भी होता है।**

अञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१००२. उत्सादिभ्योऽञ् ४।१।८६॥

औत्सः।

इत्यपत्यादि-विकारान्तार्थ-साधारणप्रत्ययाः॥४४॥

....

अन्त्य ककार की इत्संज्ञा होकर **ईक** शेष रहता है। कित् का फल अग्रिम सूत्र **किति च** की प्रवृत्ति है।

१००१- **किति च**। किति सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तद्धितेष्वचामादेः** पूरा सूत्र, **अचो ञ्णिति** से **अचः** और **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** का अनुवर्तन होता है।

कित् तद्धित प्रत्यय के परे होने पर अचों में आदि अच् की वृद्धि होती है।

तद्धितेष्वचामादेः और **किति च** इन दो सूत्रों का उपयोग ञित्, णित् और कित् प्रत्ययों के परे होने पर पूरे तद्धित प्रकरण में होता है। इन सूत्रों से किये गये कार्य को **आदिवृद्धि** के रूप में जाना जाता है।

बाहीकः। बाहर होने वाला या बाहरी। **बहिर्भवः, बहिस्** से **ईकक् च** वार्तिक से **ईकक्** प्रत्यय के साथ **बहिस्** में टि **इस्** का लोप हो गया। **बह्+ईक** बना। **य** कित् है, अतः **किति च** से आदि अच् अकार की वृद्धि हुई, **बाह्+ईक** बना। वर्णसम्मेलन होकर **बाहीक** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **बाहीकः** सिद्ध हुआ।

गोरजादिप्रसङ्गे यत्। यह वार्तिक है। **अजादि प्रत्ययों के प्रसंग में गो-शब्द से यत् प्रत्यय होता है, प्राग्दीव्यतीय अर्थों में।**

तात्पर्य यह है कि **प्राग्दीव्यतीय** अर्थों में **गो** से यदि कोई **अजादि** प्रत्यय प्राप्त हो तो वह न होकर **यत्** प्रत्यय हो जाय।

गव्यम्। गौ की सन्तान आदि। **गोरपत्यादि। गो+ङस्** में **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** प्राप्त था। यह अजादि प्रत्यय है। अतः उस सूत्र को बाधकर के **गोरजादिप्रसङ्गे यत्** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप करके **गो+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से अव् आदेश होकर **गव्य** बना। तद्धित प्रत्यय करने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होता है। प्रातिपदिकत्वेन सु, उसके स्थान में नपुंसकीय अम् आदेश करके पूर्वरूप करने पर **गव्यम्** सिद्ध हुआ।

१००२- **उत्सादिभ्योऽञ्**। उत्स आदिर्येषां ते उत्सादयस्तेभ्यः। उत्सादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अञ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **प्राक्** और **दीव्यतः** की अनुवृत्ति आती है। **अञ्** को देखकर **अण्** निवृत्त होता है। **उत्सादिभ्योऽञ् स्यात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु।**

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में उत्स आदि गणपठित शब्दों से अञ् प्रत्यय होता है।

ञकार की इत्संज्ञा होती है। ञित् होने से आदिवृद्धि होती है। **उत्सादिगण** में उत्स, उदपान, विकर, विनद, महानद, महानस, महाप्राण, तरुण, तलुन, पृथिवी आदि अनेक शब्द आते हैं।

औत्सः। उत्स अर्थात् झरने में होने वाला मण्डूक आदि। **उत्से भवः** लौकिक विग्रह और **उत्स ङि** अलौकिक विग्रह में **उत्सादिभ्योऽञ्** से **अञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप

करके **उत्स+ङि+अ** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके प्रातिपदिक के अवयव सुप् विभक्ति ङि का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **उत्स+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर **उकार** के स्थान पर **औकार** हो गया- **औत्स+अ** बना। **यस्येति च** से सकारोत्तरवर्ती **अकार** का लोप हुआ, **औत्स्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **औत्स** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक, सु, रुत्व, विसर्ग करके **औत्सः** सिद्ध हुआ।

परीक्षा

१- तद्धित के विषय में प्रकाश डालिए। १०

२- तद्धित में सामान्यतया होने वाले अधिकार सूत्रों के सम्बन्ध में बताइये। १०

३- आदिवृद्धि और इवर्णावर्ण के लोप के विषय में प्रकाश डालिए। १०

४- **उत्सादिभ्योऽञ्** के किन्हीं पाँच प्रयोगों की प्रक्रिया दिखाइये। ५

५- **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्यः** के किन्हीं पाँच प्रयोगों की प्रक्रिया दिखाइये। ५

६- कृत् और तद्धित की प्रक्रियाओं में अन्तर बताइये। १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का तद्धित साधारण प्रत्ययों का प्रकरण पूर्ण हुआ।।४४।।

अथापत्याधिकारः

नञ्स्नञ्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१००३. स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ४।१।८७॥

धान्यानां भवन इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां क्रमान्नञ्स्नञौ स्तः।

स्त्रैणः। पौंस्नः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब तद्धितप्रकरण में **अपत्याधिकारप्रकरण** का प्रारम्भ होता है। इनमें प्रायः अपत्य-अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जायेगा। **तद्धिताः, समर्थानां, प्रथमाद्, वा** का अधिकार प्रत्ययविधायक सूत्रों में रहेगा ही। पहले की तरह प्रत्यय करने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और प्रत्ययों के परे होने वाले गुण, वृद्धि, इवर्ण-अवर्ण का लोप आदि कार्य भी होंगे। अपत्यार्थ में लौकिक विग्रह में पुँल्लिङ्ग के साथ **पुमान्** और स्त्रीलिङ्ग के साथ **स्त्री** जोड़ने का प्रचलन है, जैसे- **दितेः अपत्यं पुमान्**- **दैत्यः** एवं **दितेः अपत्यं स्त्री**- **दैत्या** आदि। स्मरण रहे कि समास की तरह तद्धित में भी अलौकिक विग्रह से ही प्रत्यय होते हैं।

१००३- स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्। स्त्री च पुमान् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः स्त्रीपुमांसौ, ताभ्याम्। नञ् च स्नञ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो नञ्स्नञौ। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **प्राक्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्यय, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् इस सूत्र से पहले के अर्थों में स्त्री और पुंस् प्रातिपदिकों से तद्धितसंज्ञक क्रमशः नञ् और स्नञ् प्रत्यय होते हैं।

दोनों में **ञकार** इत्संज्ञक हैं।

स्त्रैणः। स्त्री की सन्तान आदि। **स्त्रिया अपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **स्त्री ङस्** से **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** से **नञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्त्री+न** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर ईकार के स्थान पर ऐकार हो गया, **स्त्रै+न** बना। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से प्रत्यय के नकार के स्थान पर णकार आदेश होकर **स्त्रैण** बना। विभक्तिकार्य करके **स्त्रैणः** सिद्ध हुआ।

पौंस्नः। पुरुष की सन्तान आदि। **पुंसः अपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **पुंस् ङस्** से **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** से **स्नञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पुंस्+स्न** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर

तद्धितप्रत्ययार्थविधायकं विधिसूत्रम्

१००४. तस्यापत्यम् ४।१।९२॥

षष्ठ्यन्तात्कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

१००५. ओर्गुणः ६।४।१४६॥

उवर्णान्तस्य भस्य गुणस्तद्धिते।

उपगोरपत्यम् औपगवः। आश्वपतः। दैत्यः। औत्सः। स्त्रैणः। पौंस्नः।

....

उकार के स्थान पर औकार हो गया, **पौंस्+स्न** बना। **पौंस्** के सकार का विभक्ति के लुक् हो जाने पर भी पूर्व विभक्ति को मान कर पदत्व होने से संयोगान्त लोप करके **पौंस्न** बना। विभक्तिकार्य करके **पौंस्नः** सिद्ध हुआ।

१००४- तस्यापत्यम्। तस्य षष्ठ्यन्तम्, अपत्यं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। पदविधि होने के कारण **समर्थः पदविधिः** से **समर्थः** का लाभ है। **प्रत्यय, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है।

षष्ठ्यन्त कृतसन्धिकार्य समर्थ प्रातिपदिक से अपत्य(सन्तान) अर्थ में इस सूत्र के पहले कहे गये प्रत्यय और आगे आने वाले प्रत्यय होते हैं।

विशेषः- इस तद्धितप्रकरण में कई प्रकार के सूत्र हैं। कुछ सूत्र **प्रत्यय के विधान** के लिए हैं तो कुछ सूत्र **अर्थविशेष को बताने** के लिए और कुछ सूत्र **प्रकृतिविशेष को बताने** के लिए।

उक्त तीनों के क्रमशः उदाहरण- **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** सूत्र दिति आदि शब्दों से ण्य प्रत्ययविशेष के विधान के लिए है तो **तस्यापत्यम्** अपत्य-अर्थविशेष को बताने के लिए है। इसी तरह **यञिञोश्च** प्रकृतिविशेष को बताने के लिए।

कुछ सूत्र प्रकृति, प्रत्यय और अर्थ तीनों को भी बताते हैं- जैसे **किंयत्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्** और कुछ सूत्र केवल प्रकृति-प्रत्यय मात्र को बताते हैं- जैसे **उत्सादिभ्योऽञ्**। केवल अर्थ और प्रत्यय को बताने वाले कुछ सूत्र होते हैं, जैसे- **इषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः**। कुछ सूत्र समर्थ सुबन्त के निर्देश के साथ-साथ अर्थविशेष को बताने के लिए भी बनाये गये है, जैसे- **तस्यापत्यम्, तत्र भवः, तेन प्रोक्तम्, तत आगतः** आदि। केवल तत्तत् कार्य का ही इनसे विधान मानेंगे तो सूत्रार्थ पूर्ण नहीं होगा। इस लिए आवश्यकता के अनुसार सूत्रों की एकवाक्यता करके अर्थ करना चाहिए जिससे एक महावाक्य बनकर इष्टरूपों की सिद्धि हो सके।

यह सूत्र केवल **षष्ठ्यन्त समर्थ प्रकृति** और **अपत्य-रूप अर्थविशेष** का निर्देश करता है, प्रत्यय तो पीछे कहे गये या आगे कहे जाने वाले तत्तत् सूत्रों से होंगे। प्रत्ययविधायकसूत्र और अर्थनिर्देशकसूत्रों की आपस में एकवाक्यता होती है। **तस्यापत्यम्** यह अधिकारसूत्र भी है विधिसूत्र भी, अतः आगे के सूत्रों में इसका अधिकार भी जाता है या अनुवृत्ति भी मान सकते हैं।

१००५- **ओर्गुणः**। ओः षष्ठ्यन्तं, गुणः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **नस्तद्धिते** से **तद्धिते** की अनुवृत्ति आती है।

तद्धित प्रत्यय के परे होने पर भसंज्ञक उवर्णान्त को गुण होता है।

भसंज्ञा अजादि या यकारादि प्रत्यय के परे रहते पूर्व की होती है, अतः यह मान लेना चाहिए कि अजादि या यकारादि के परे रहने पर ही यह सूत्र लगता है।

औपगवः। उपगु नामक व्यक्ति की सन्तान। **उपगोः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **उपगु ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक वाला अलौकिक विग्रह है। **तस्यापत्यम्** से अण् प्रत्यय हुआ- **उपगु ङस् अण्** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई **उपगु ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **उपगु+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर **उ** के स्थान पर **औकार** आदेश होकर **ओर्गुणः** से अन्त्य अच् उकार को गुण करने पर ओकार होकर **औपगो+अ** बना। ओकार के स्थान पर अव् आदेश होकर **औपग्+अव्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **औपगव** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **औपगवः** सिद्ध हुआ।

आश्वपतः। अश्वपति की सन्तान। **अश्वपतेः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **अश्वपति ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक अलौकिक विग्रह है। **तस्यापत्यम्** के अर्थ में **अश्वपत्यादिभ्यश्च** से अण् प्रत्यय हुआ- **अश्वपति ङस् अण्** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई **अश्वपति ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **अश्वपति+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर अकार के स्थान पर आकार आदेश और भसंज्ञक इकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **आश्वपत्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **आश्वपत** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **आश्वपतः** सिद्ध हुआ। वैसे पूर्वप्रकरण में आप **आश्वपतम्** बना ही चुके हैं।

दैत्यः। दिति की सन्तान। **दितेः अपत्यं पुमान्** ऐसे अलौकिक विग्रह और **दिति ङस्** अलौकिक विग्रह वाले षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से **तस्यापत्यम्** के अर्थ में **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से ण्य प्रत्यय हुआ- **दिति ङस् ण्य** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई **दिति ङस् य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **दिति+य** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर **इकार** के स्थान पर **ऐकार** आदेश और भसंज्ञक इकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **दैत्+य** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **दैत्य** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **दैत्यः** सिद्ध हुआ। पूर्वप्रकरण में भी आप **दैत्यः** बना चुके हैं। इसी प्रकार **प्राजापत्यः** भी बनाइये।

स्त्रैणः। स्त्री की सन्तान आदि। **स्त्रिया अपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **स्त्री ङस्** से **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** के अनुसार **तस्यापत्यम्** से **नञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्त्री+न** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर ईकार के स्थान पर ऐकार हो गया, **स्त्रै+न** बना। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से प्रत्यय के नकार के स्थान पर णकार आदेश होकर **स्त्रैण** बना। विभक्तिकार्य करके **स्त्रैणः** सिद्ध हुआ।

पौंस्नः। पुरुष की सन्तान आदि। **पुंसः अपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **पुंस् ङस्** से **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** के अनुसार **तस्यापत्यम्** से **स्नञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पुंस्+स्न** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः**

गोत्रसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१००६. अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ४।१।१६२॥

अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात्।

एकप्रत्ययविधानाय नियमसूत्रम्

१००७. एको गोत्रे ४।१।९३॥

गोत्रे एक एवापत्यप्रत्ययः स्यात्। उपगोर्गोत्रापत्यमौपगवः।

....

से आदिवृद्धि होने पर उकार के स्थान पर औकार हो गया, **पौंस्+स्न** बना। **पौंस्** के सकार का विभक्ति के लुक् हो जाने पर भी पूर्व विभक्ति को मान कर पदत्व होने से संयोगान्त लोप करके **पौंस्न** बना। विभक्तिकार्य करके **पौंस्नः** सिद्ध हुआ।

१००६- अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्। पौत्रः प्रभृतिर्यस्य तत् प्रौत्रप्रभृति। अपत्यं प्रथमान्तं, पौत्रप्रभृति प्रथमान्तं, गोत्रं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

जब पौत्र (पुत्र के पुत्र) को अपत्य अर्थात् सन्तान के रूप में कहना अभीष्ट हो तो उसकी गोत्रसंज्ञा होती है।

तात्पर्य यह है कि जब पौत्र, प्रपौत्र आदि पीढ़ियों को अपत्य अर्थात् सन्तान के रूप में कहने की अपेक्षा हो तो उनकी गोत्रसंज्ञा की जाती है। इस तरह पौत्र आदि गोत्रापत्य हो जाते हैं और गोत्रापत्य अर्थ में आगे प्रत्यय आदि हो जायेंगे। पुत्र की गोत्रसंज्ञा नहीं होती है।

१००७- एको गोत्रे। एकः प्रथमान्तं, गोत्रे सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

गोत्र अर्थ में एक ही अपत्य-प्रत्यय होता है।

इस सूत्र से यह निकलता है- जिस प्रकार से **उपगोर्गोत्रापत्यम्** विग्रह करने पर **उपगु** से **गोत्रापत्य**(पौत्र) अर्थ में **अण्** प्रत्यय होकर **औपगवः** बनता है, उसी प्रकार चौथी पीढ़ी वाले या पाँचवीं पीढ़ी वाले को कहना हो तो भी **उपगु** से ही **अण्** प्रत्यय होकर **औपगवः** ही रूप बनेगा, न कि **औपगव** बनने के बाद फिर दूसरी, तीसरी बार कोई प्रत्यय आयेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि एक ही **अण्** प्रत्यय से उस परम्परा में आयी हुई किसी भी पीढ़ी के पुरुष का बोध हो जायेगा। अतः उसके लिए बार-बार प्रत्यय करने की जरूरत होती नहीं है।

तात्पर्य यह है कि उपगोरपत्यम् औपगवः, तस्य औपगवस्यापि अपत्यम् औपगवः, तस्यापि अपत्यम् औपगवः इत्यादि। इस प्रकार से एक ही अपत्य प्रत्यय अण् आदि प्रत्यय होता है जो मूलपुरुष से किया जाता है और सब पीढ़ियों का बोध होता है, चाहे तीसरी, चौथी, पाँचवीं छठी पीढ़ियाँ क्यों न हो। इस तरह यह सूत्र एक नियम बनाता है। अर्थात् उपगु की सन्तान औपगव, औपगव की सन्तान, उनकी भी सन्तान औपगव ही होती है। गोत्र अर्थ में प्रत्यय करने पर **तस्य गोत्रापत्यम्** ऐसा विग्रह किया जायेगा।

औपगवः। उपगु नामक व्यक्ति का पोता सन्तान। **उपगोर्गोत्रापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **उपगु ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक है अलौकिक विग्रह है। **एको गोत्रे** के नियमानुसार **तस्यापत्यम्** से ही **गोत्र-अपत्य** अर्थ में अण् प्रत्यय हुआ- **उपगु ङस् अण्** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई **उपगु ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **उपगु+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर उ के स्थान पर औकार आदेश

यञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१००८. गर्गादिभ्यो यञ् ४।१।१०५॥

गोत्रापत्ये। गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः। वात्स्यः।

तद्धितलुग्विधायकं विधिसूत्रम्

१००९. यञञोश्च २।४।६४॥

गोत्रे यद् यञन्तमञन्तञ्च तदवयवयोरेतयोर्लुक् स्यात् तत्कृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम्। गर्गाः। वत्साः।

....

ओर्गुणः से अन्त्य अच् उकार को गुण करने पर ओकार होकर **औपगो+अ** बना। ओकार के स्थान पर अव् आदेश होकर **औपग्+अव्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **औपगव** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **औपगवः** सिद्ध हुआ।

१००८- **गर्गादिभ्यो यञ्**। गर्गादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यञ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। पदविधि होने के कारण **समर्थः पदविधिः** से **समर्थः** का लाभ है। **प्रत्यय, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

गर्ग आदि गणपठित शब्दों से गोत्रापत्य अर्थ में यञ्-प्रत्यय होता है।

यञ् में **ञकार** इत्संज्ञक है, **य** शेष रह जाता है। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** की वृद्धि होती है।

गार्ग्यः। गर्ग का गोत्रापत्य अर्थात् पौत्र आदि सन्तान। **गर्गस्य गोत्रापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **गर्ग ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **गर्गादिभ्यो यञ्** से यञ् प्रत्यय, **गर्ग ङस् यञ्** बना। ञकार की इत्संज्ञा, **गर्ग ङस् य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **गर्ग+य** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर गकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **आकार** आदेश और भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **गार्ग्+य** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **गार्ग्य** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **गार्ग्यः** सिद्ध हुआ।

वात्स्यः। वत्स का गोत्रापत्य अर्थात् पौत्र आदि सन्तान। **वत्सस्य गोत्रापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **वत्स ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **गर्गादिभ्यो यञ्** से यञ् प्रत्यय हुआ- **वत्स ङस् यञ्** बना। ञकार की इत्संज्ञा हुई **वत्स ङस् य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **वत्स+य** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर वकारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर आकार आदेश और भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **वात्स्+य** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **वात्स्य** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **वात्स्यः** सिद्ध हुआ।

१००९- **यञञोश्च**। यञ् च अञ् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो यञञौ, तयोर्यञञोः। यञञोः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से **लुक्** तथा **यस्कादिभ्यो गोत्रे** से **गोत्रे** एवं **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** से **बहुषु तेन एव अस्त्रियाम्** की अनुवृत्ति आती है।

गोत्र अर्थ में जो यञन्त और अञन्त शब्द, उनके अवयव यञ् और अञ्

युवसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१०१०. जीवति तु वंश्ये युवा ४।१।१६३॥

वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद्युवसंज्ञमेव स्यात्।

नियमसूत्रम्

१०११. गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ४।१।९४॥

यून्यपत्ये गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रत्ययः स्यात् स्त्रियां तु न युवसंज्ञा।

....

प्रत्ययों का लुक् हो जाता है यदि उन प्रत्ययों के अर्थ का बहुत्व बताना अभीष्ट हो, परन्तु स्त्रीलिङ्ग में यह लुक् प्रवृत्त नहीं होता।

तात्पर्य यह है कि **बहुवचन** में **गोत्रापत्य** अर्थ में हुए **यञ्** और **अञ्** प्रत्ययों का लुक् हो जाता है परन्तु यह लुक् तभी होता है जब वह बहुवचन गोत्रापत्य के बहुत्व को ही बताता हो। किञ्च स्त्रीलिङ्ग में यह लुक् प्रवृत्त नहीं होता।

गर्गाः। गर्ग के बहुत गोत्रापत्य। **गर्गस्य गोत्रापत्यानि** लौकिक विग्रह है। **गर्ग ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **गर्गादिभ्यो यञ्** से यञ् प्रत्यय करके- **गार्ग्य** बना है। इस यञन्त शब्द से प्रथमा के बहुवचन की विवक्षा में **जस्** प्रत्यय लाने पर **यञञोश्च** से **यञ्** प्रत्यय का लुक् होकर **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** इस न्याय के अनुसार उसके आदिवृद्धि आदि कार्यों के भी निवृत्त हो जाने से शुद्ध **गर्ग** शब्द रह जाता है। इस तरह **गर्ग+अस्** में पूर्वसवर्णदीर्घ, सकार को रुत्वविसर्ग होकर **गर्गाः** सिद्ध हुआ। यह कार्य बहुवचन में ही होता है। इस तरह इसके रूप बनेंगे **गार्ग्यः, गार्ग्यौ, गर्गाः। गार्ग्यम्, गार्ग्यौ, गर्गान्। गार्ग्येण, गार्ग्याभ्याम्, गर्गैः** आदि।

वत्साः। वत्स के बहुत गोत्रापत्य। **वत्सस्य गोत्रापत्यानि** लौकिक विग्रह है। **वत्स ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **गर्गादिभ्यो यञ्** से यञ् प्रत्यय करके- **वात्स्य** बना है। इस यञन्त शब्द से प्रथमा के बहुवचन की विवक्षा में जस् प्रत्यय लाने पर **यञञोश्च** से **यञ्** प्रत्यय का लुक् होकर **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** इस न्याय के अनुसार उसके आदिवृद्धि आदि कार्यों के भी निवृत्त हो जाने से शुद्ध **वत्स**-शब्द रह जाता है। इस तरह **वत्स+अस्** में पूर्वसवर्णदीर्घ, सकार को रुत्वविसर्ग होकर **वत्साः** सिद्ध हुआ। यह कार्य बहुवचन में ही होता है। इस तरह इसके रूप बनेंगे **वात्स्यः, वात्स्यौ, वत्साः। वात्स्यम्, वात्स्यौ, वत्सान्। वात्स्येन, वात्स्याभ्याम्, वत्सैः** आदि।

१०१०- जीवति तु वंश्ये युवा। जीवति सप्तम्यन्तं, तु अव्ययपदं, वंश्ये सप्तम्यन्तं, युवा प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्** से विभक्तिविपरिणाम करके **पौत्रप्रभृतेः** तथा **तस्यापत्यम्** से **अपत्यम्** की अनुवृत्ति आती है।

वंश में होने वाले पिता, पितामह आदि के जीवित रहते पौत्र आदि का अपत्य चतुर्थ आदि पीढ़ी स्थित हो, उसकी युवन्-संज्ञा अर्थात् युवा संज्ञा होती है।

यह गोत्रसंज्ञा का अपवाद है। वंश में मूलपुरुष अर्थात् जिससे हम पीढ़ियों की गणना कर रहे हैं, उसका पुत्र दूसरी पीढ़ी अपत्य मात्र, उसका पुत्र तीसरी पीढ़ी भी गोत्रापत्य, उसका भी पुत्र चौथी पीढ़ी युवापत्य हो जाता है किन्तु युवापत्य में मूलपुरुष अर्थात् प्रथम पीढ़ी का जीवित होना आवश्यक है। तात्पर्य यह हुआ कि मूलपुरुष के रहते चौथी, पाँचवीं

फग्विधायकं विधिसूत्रम्

१०१२. यञिञोश्च ४।१।१०१॥

गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात् फक् स्यात्।

आयनाद्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०१३. आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् ७।१।२॥

प्रत्ययादेः फस्य आयन्, ढस्य एय्, खस्य ईन्, छस्य ईय्, घस्य इय् एते स्युः। गर्गस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः। दाक्षायणः।

....

आदि पीढ़ियों की युवन् संज्ञा मानी जाती है। युवसंज्ञा का फल अग्रिमसूत्र **गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्** से स्पष्ट हो जायेगा।

१०११- **गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्।** गोत्रात् पञ्चम्यन्तं, यूनि सप्तम्यन्तम्, अस्त्रियाम् सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

युवापत्य विवक्षित होने पर गोत्रप्रत्ययान्त से ही प्रत्यय हो परन्तु स्त्रीलिङ्ग में युवसंज्ञा नहीं होती।

यह नियम सूत्र है। यदि युवापत्य अर्थ में प्रत्यय करना हो तो वह गोत्रप्रत्ययान्त से ही हो, मूलप्रकृति से न हो।

१०१२- **यञिञोश्च।** यञ्च इञ्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो यञिञौ, तयोः। यञिञोः पञ्चम्यर्थे षष्ठी, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्** से **गोत्रे** तथा **नडादिभ्यः फक्** से **फक्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्यय, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है।

गोत्रार्थ में जो यञ् और अञ् प्रत्यय, तदन्त से युवापत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक फक् प्रत्यय होता है।

फक् में ककार की इत्संज्ञा होती है, **फ** बचता है। **फ** में अकार को छोड़कर केवल **फ्** के स्थान पर अग्रिम सूत्र से **आयन्** आदेश होता है।

१०१३- **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्।** आयन् च ऐय् च ईन् च ईय् च इय् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः- आयनेयीनीयियः। फश्च ढश्च खश्च छश्च घ् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः फढखछघस्तेषाम्। प्रत्ययः आदिर्येषां ते प्रत्ययादयस्तेषाम्। आयनेयीनीयियः प्रथमान्तं, फढखछघां षष्ठ्यन्तं, प्रत्ययादीनां षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

प्रत्ययों के आदि में स्थित फ् के स्थान पर आयन्, ढ् के स्थान पर एय्, ख् के स्थान पर ईन्, छ् के स्थान पर ईय् और घ् के स्थान पर इय् आदेश होते हैं।

गार्ग्यायणः। गर्ग का गोत्रापत्य। **गर्गस्य गोत्रापत्यम्।** गर्ग ङस् से **गर्गादिभ्यो यञ्** से **यञ्** करके **गार्ग्य** बना है। अब **गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्** के नियमानुसार **यञिञोश्च** से **फक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से केवल **फ्** के स्थान पर **आयन्** आदेश होकर **गार्ग्य+आयन्+अ** बना। **यस्येति च** से **गार्ग्य** के अकार का लोप करके **गार्ग्य्+आयन्+अ** बना। वर्णसम्मेलन करने पर **गार्ग्यायन** बना। रेफ से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** णत्व करने पर

इञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०१४. अत इञ् ४।१।९५॥

अपत्येऽर्थे। दाक्षिः।

इञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०१५. बाह्वादिभ्यश्च ४।१।९६॥

बाहविः। औडुलोमिः।

वार्तिकम्- **लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः।** उडुलोमाः। आकृतिगणोऽयम्।

....

गार्ग्यायण बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु, रुत्वविसर्ग करके **गार्ग्यायणः** सिद्ध हुआ।

वात्स्यायनः। वत्स का गोत्रापत्य। **वत्सस्य गोत्रापत्यम्। वत्स ङस्** से **गर्गादिभ्यो यञ्** से **यञ्** करके **वात्स्य** बना है। अब **गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्** के नियमानुसार **यञिञोश्च** से **फक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से केवल **फ्** के स्थान पर **आयन्** आदेश होकर **वात्स्य+आयन्+अ** बना। **यस्येति च** से **वात्स्य** के अकार का लोप करके **वात्स्य्+आयन्+अ** बना। वर्णसम्मेलन करने पर **वात्स्यायन** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु, रुत्वविसर्ग करके **वात्स्यायनः** सिद्ध हुआ।

१०१४- अत इञ्। अतः पञ्चम्यन्तम्, इञ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्यय, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है और **तस्यापत्यम्** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

अपत्य अर्थ में ह्रस्व अकारान्त षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से इञ् प्रत्यय होता है।

ञकार इत्संज्ञक है, **इकार** ही शेष रहता है। ञित् होने से ञित्व-प्रयुक्त वृद्धि आदि कार्य होते हैं।

दाक्षिः। दक्ष की सन्तान। **दक्षस्य अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **दक्ष ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से **इञ्** प्रत्यय हुआ- **दक्ष ङस् इञ्** बना। ञकार की इत्संज्ञा हुई- **दक्ष ङस् इ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **दक्ष+इ** बना। **ञित्** होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर दकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **आकार** आदेश और **भसंज्ञक अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **दाक्ष्+इ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **दाक्षि** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **दाक्षिः** सिद्ध हुआ।

इसी तरह आगे और प्रयोग भी बनते हैं।

दाशरथिः। दशरथ की सन्तान। **दशरथस्य अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **दशरथ ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से इञ् प्रत्यय हुआ- **दशरथ ङस् इञ्** बना। ञकार की इत्संज्ञा हुई- **दशरथ ङस् इ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **दशरथ+इ** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर दकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **आकार** आदेश और भसंज्ञक

अञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०१६. अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् ४।१।१०४॥

एभ्योऽञ् गोत्रे। ये त्वत्रानृषयस्तेभ्योऽपत्येऽन्यत्र तु गोत्रे। बिदस्य गोत्रं बैदः। बैदौ। बिदाः। पुत्रस्यापत्यं पौत्रः। पौत्रौ। पौत्राः। एवं दौहित्रादयः।

....

अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **दाशरथ्+इ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **दाशिरथि** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, उसका रुत्वविसर्ग करके **दाशरथिः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **अर्जुनस्यापत्यम् आर्जुनिः, युधिष्ठिरस्यापत्यं यौधिष्ठिरिः, कृष्णस्यापत्यं कार्ष्णिः** आदि अनेक अपत्यप्रत्ययान्त शब्द बनाये जा सकते हैं।

१०१५- **बाह्वादिभ्यश्च**। बाहुः आदिर्येषां ते बाह्वादयस्तेभ्यो बाह्वादिभ्यः। बाह्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** इस पूरे सूत्र की तथा **अत इञ्** से **इञ्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्यय, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है। **बाहु आदि गणपठित शब्दों से अपत्य अर्थ में अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय होता है।**

बाहविः। बाहु नामक व्यक्ति की सन्तान। **बाहोः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **बाहु ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **बाह्वादिभ्यश्च** से इञ् प्रत्यय हुआ- **बाहु ङस् इञ्** बना। **ञकार** की इत्संज्ञा हुई- **बाहु ङस् इ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **बाहु+इ** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर बकारोत्तरवर्ती **आकार** के स्थान पर **आकार** ही आदेश हुआ। **ओर्गुणः** से **बाहु** के **उकार** को गुण करके **अव्** आदेश करने पर **बाहवि** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **बाहविः** सिद्ध हुआ।

लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः। यह वार्तिक है। **अपत्य अर्थ में लोमन् शब्द से बहुवचन में अकार प्रत्यय होता है।** यह **बाह्वादिभ्यश्च** का अपवाद है।

औडुलोमिः। उडुलोमन् नामक व्यक्ति की सन्तान। **उडुलोम्नः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **उडुलोमन् ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **बाह्वादिभ्यश्च** से इञ् प्रत्यय हुआ- **उडुलोमन् ङस् इञ्** बना। **ञकार** की इत्संज्ञा हुई- **उडुलोमन् ङस् इ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **उडुलोमन्+इ** बना। **ञित्** होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर **उकार** के स्थान पर **औकार** आदेश हुआ। **औडुलोमन्+इ** बना। **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक **अन्** का लोप हुआ- **औडुलोम्+इ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **औडुलोमि** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **औडुलोमिः** सिद्ध हुआ। बहुवचन में **बाह्वादिभ्यश्च** को बाधकर **लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः** इस वार्तिक से **अ-प्रत्यय** होकर **उडुलोमाः** बनेगा। अन्तर इतना है कि **इञ्** होने पर ञित् होने के कारण वृद्धि होती है और **अ** होने पर वृद्धि नहीं होती। अतः **उडुलोमाः** ही बनता है। यह शब्द बहुवचन में अकारान्त और अन्यत्र इकारान्त होता है। इस, तरह इसके रूप बनते हैं- **औडुलोमिः, औडुलोमी, उडुलोमाः। औडुलोमिम्, औडुलोमी, उडुलोमान्। औडुलोमिना, औडुलोमिभ्याम्, उडुलोमैः** इत्यादि।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०१७. शिवादिभ्योऽण् ४।१।११२॥

अपत्ये। शैवः। गाङ्गः।

....

१०१६- **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्।** न ऋषिः अनृषिः। अनन्तरमेव आनन्तर्यं, तस्मिन्। बिद आदिर्येषां ते बिदादयस्तेभ्यः। अनृषि लुप्तपञ्चमीकं पदम्, आनन्तर्ये सप्तम्यन्तं, बिदादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अञ् प्रथमान्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्** से **गोत्रे** की और **तस्यापत्यम्** पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ ही रहा है।

बिदादिगणपठित शब्दों से गोत्रापत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक अञ् प्रत्यय होता है परन्तु इनमें जो शब्द ऋषिवाचक नहीं हैं, उनसे अनन्तरापत्य अर्थ में ही हो।

दूसरी पीढ़ी **अनन्तरापत्य** होती है। **बिदादि** एक गण है। इसमे कुछ ऋषियों के नाम और कुछ पुत्र, दुहितृ आदि ऐसे प्रातिपदिक भी पढ़े गये हैं जो ऋषिवाचक नहीं हैं। इस सूत्र से **बिदादिगण** में पढ़े गये **ऋषिवाचक** शब्दों से गोत्रापत्य अर्थ में और अनृषिवाचक शब्दों से अनन्तरापत्य अर्थ में प्रत्यय का विधान किया जाता है।

बैदः। बिद नामक ऋषि की पौत्र आदि सन्तान। **बिदस्य गोत्रापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **बिद ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** से **अञ्** प्रत्यय हुआ- **बिद ङस् अञ्** बना। ञकार की इत्संज्ञा हुई- **बिद ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **बिद+अ** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर बकारोत्तरवर्ती **इकार** के स्थान पर **ऐकार** आदेश और भसंज्ञक **अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **बैद्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **बैद** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **बैदः** सिद्ध हुआ। द्विवचन में **बैदौ** बनता है। बहुवचन की विवक्षा में **यञञोश्च** से **अञ्** का लुक् होता है। अतः वृद्धि भी नहीं हो सकेगी। जिससे **बिदाः** ऐसा रूप बन जाता है। यह तो ऋषिवाचक शब्दों का उदाहरण है। अनृषिवाचक **पुत्र** आदि शब्दों के **अनन्तरापत्य** में उदाहरण नीचे देखें।

पौत्रः। पुत्र की सन्तान पोता आदि। **पुत्रस्यानन्तरापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **पुत्र ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** से **अनन्तरापत्य** अर्थ में **अञ्** प्रत्यय हुआ- **पुत्र ङस् अञ्** बना। ञकार की इत्संज्ञा हुई- **पुत्र ङ्स अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **पुत्र+अ** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर पकारोत्तरवर्ती **उकार** के स्थान पर **औकार** आदेश और भसंज्ञक **अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **पौत्र्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **पौत्र** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **पौत्रः** सिद्ध हुआ। **पौत्रः, पौत्रौ, पौत्राः** आदि। इसी तरह **दुहितुरनन्तरापत्यं पुमान्** लड़की की सन्तान आदि **दौहित्रः, दौहित्रौ, दौहित्राः** आदि बनाया जाता है। **दुहितृ+अ** में **इको यणचि** से **यण्** करना न भूलें।

१०१७- **शिवादिभ्योऽण्।** शिव आदिर्येषां ते शिवादयस्तेभ्यः। शिवादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण्

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०१८. ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ४।१।११४॥

ऋषिभ्यः- वासिष्ठः। वैश्वामित्रः। अन्धकेभ्यः- श्वाफल्कः।
वृष्णिभ्यः- वासुदेवः। कुरुभ्यः- नाकुलः। साहदेवः।

....

प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ ही रहा है।

अपत्यार्थ में शिवादिगण पठित शब्दों से तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

णकार इत्संज्ञक है और **अ** ही शेष रहता है। **णित्** होने से णित् मानकर होने वाले वृद्धि आदि कार्य होंगे।

शैवः। शिव की सन्तान। **शिवस्य अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **शिव ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **शिवादिभ्योऽण्** से अण् प्रत्यय हुआ- **शिव ङस् अण्** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई- **शिव ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **शिव+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर शकारोत्तरवर्ती **इकार** के स्थान पर **ऐकार** आदेश और भसंज्ञक **अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **शैव्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **शैव** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **शैवः** सिद्ध हुआ।

गाङ्गः। गङ्गा की सन्तान, भीष्म आदि। **गङ्गायाः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **गङ्गा ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **शिवादिभ्योऽण्** से अण् प्रत्यय हुआ- **गङ्गा ङस् अण्** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई- **गङ्गा ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **गङ्गा+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर गकारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर आकार आदेश और भसंज्ञक आकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **गाङ्ग्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **गाङ्ग** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **गाङ्गः** सिद्ध हुआ।

१०१८- ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च। ऋषयश्च अन्धकाश्च वृष्णयश्च कुरवश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्व ऋष्यन्धकवृष्णिकुरवस्तेभ्यः। ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **शिवादिभ्योऽण्** से **अण्** की और **तस्यापत्यम्** पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है।

ऋषिवाचकों तथा अन्धक, वृष्णि, कुरु इन तीनों वंशों में उत्पन्न व्यक्ति के वाचक शब्दों से अपत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

यह **अत इञ्** का अपवाद है। **अण्** णित् है, अतः इसके परे रहते आदिवृद्धि होगी।

ऋषिवाचक शब्दों के उदाहरण-

वासिष्ठः। वसिष्ठ की सन्तान। **वसिष्ठस्यापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **वसिष्ठ ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से **इञ्** प्राप्त था, उसे बाध कर के **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** से अण् प्रत्यय हुआ- **वसिष्ठ ङस् अण्** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई- **वसिष्ठ ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्

अण्-प्रत्ययोदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०१९. मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः ४।१।११५॥

सङ्ख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्योदादेशः स्यादण् प्रत्ययश्च। द्वैमातुरः। षाण्मातुरः। सांमातुरः। भाद्रमातुरः।

....

हुआ, **वसिष्ठ+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर वकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **आकार** आदेश और भसंज्ञक **अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **वासिष्ठ्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **वासिष्ठ** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **वासिष्ठः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **विश्वामित्रस्यापत्यम्** विग्रह करके **विश्वामित्र** से **अण्** होकर **वैश्वामित्रः** बनता है।

अन्धकवंशियों के उदाहरण-

श्वाफल्कः। श्वफल्क की सन्तान। श्वफल्क अन्धकवंशी है। **श्वफल्कस्यापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **श्वफल्क ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से **इञ्** प्राप्त था, उसे बाध कर के **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **श्वफल्क+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करने पर वकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **आकार** आदेश और भसंज्ञक **अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **श्वाफल्क्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **श्वाफल्क** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **श्वाफल्कः** सिद्ध हुआ।

वृष्णिवंशवाची शब्दों के उदाहरण-

वासुदेवः। वसुदेव की सन्तान, श्रीकृष्ण। **वसुदेवस्यापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **वसुदेव ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से **इञ्** प्राप्त था, उसे बाध कर के **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** से अण् प्रत्यय अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वसुदेव+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करने पर वकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **आकार** आदेश और भसंज्ञक **अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **वासुदेव्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **वासुदेव** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **वासुदेवः** सिद्ध हुआ।

कुरुवंशवाची शब्दों के उदाहरण-

नाकुलः। नकुल की सन्तान। **नकुलस्यापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **नकुल ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से **इञ्** प्राप्त था, उसे बाध कर के **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** से अण् प्रत्यय अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नकुल+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करने पर नकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **आकार** आदेश और भसंज्ञक **अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **नाकुल्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **नाकुल** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **नाकुलः** सिद्ध हुआ।

१०१९- मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः। सङ्ख्या च सम् च भद्रश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः सङ्ख्यासम्भद्राः। सङ्ख्यासम्भद्राः पूर्वे यस्याः सा सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वा, तस्याः, द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिसमासः। मातुः षष्ठ्यन्तम्, उत् प्रथमान्तं, सङ्ख्यासम्भद्रपूवार्याः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **शिवादिभ्योऽण्**

ढक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०२०. स्त्रीभ्यो ढक् ४।१।१२०॥

स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक्। वैनतेयः।

....

से **अण्** तथा **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार भी है।

सङ्ख्यापूर्व, सम्पूर्व तथा भद्रपूर्व मातृशब्द को अपत्य अर्थ में ह्रस्व उकार अन्तादेश होता है और इससे परे तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय भी होता है।

अन्तादेश होने के कारण **मातृ-शब्द** के ऋकार के स्थान पर उकार आदेश प्राप्त होता है। अतः **उरण् रपरः** के द्वारा रपर होकर **उर्** हो जाता है। यह सूत्र **उर्** आदेश के लिए ही बना गया है, **अण्** प्रत्यय तो **तस्यापत्यम्** से सिद्ध था।

द्वैमातुरः। दो माताओं की सन्तान। **द्वयोर्मात्रोरपत्यम्** यह लौकिक विग्रह और **द्वि ओस् मातृ ओस्** अलौकिक विग्रह में अपत्यार्थक प्रत्यय की विवक्षा में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **द्विमातृ** बना। **मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः** से **अण्** प्रत्यय और **मातृ** के ऋकार के स्थान पर **उकार** आदेश, रपर, **तद्धितेष्वचामादेः** से **द्वि** के इकार की वृद्धि करके **द्वैमातुर्+अ=द्वैमातुर** बना। स्वादिकार्य करके **द्वैमातुरः** सिद्ध हुआ।

षाण्मातुरः। छ माताओं की सन्तान। **षण्णां मातृणामपत्यम्** यह लौकिक विग्रह और **षष् आम् मातृ आम्** अलौकिक विग्रह में अपत्यार्थक प्रत्यय की विवक्षा में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **षष् मातृ** बना। अन्तर्वर्तिनी विभक्ति मान कर के पदत्व के कारण षकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर **डकार**, उसको **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** से अनुनासिक आदेश होकर **णकार** हुआ **षण्मातृ** बना। **मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः** से **अण्** प्रत्यय और **मातृ** के ऋकार के स्थान पर **उकार** आदेश, रपर, **तद्धितेष्वचामादेः** से **षष्** के अकार की वृद्धि करके **षाण्मातुर्+अ=षाण्मातुर** बना। स्वादिकार्य करके **षाण्मातुरः** सिद्ध हुआ।

साम्मातुरः। अच्छी माता की सन्तान। **सम्मातुरपत्यं पुमान्** यह लौकिक विग्रह और **सम् मातृ सु** अलौकिक विग्रह में **कुगतिप्रादयः** से समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सम् मातृ** बना। **मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः** से **अण्** प्रत्यय और **मातृ** के ऋकार के स्थान पर **उकार** आदेश, रपर, **तद्धितेष्वचामादेः** से **सम्** के अकार की वृद्धि करके **साम्मातुर्+अ=साम्मातुर** बना। स्वादिकार्य करके **साम्मातुरः** सिद्ध हुआ।

भाद्रमातुरः। भली माता की सन्तान। **भद्रमातुरपत्यं पुमान्** यह लौकिक विग्रह और **भद्रा सु मातृ सु** अलौकिक विग्रह में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **भद्रा माता** बना। **पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु** से **भद्रा** को पुंवद्भाव होकर **भद्रमातृ** बना। **मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः** से **अण्** प्रत्यय और **मातृ** के ऋकार के स्थान पर **उकार** आदेश, रपर, **तद्धितेष्वचामादेः** से **भद्र** के आदि अकार की वृद्धि करके **भाद्रमातुर्+अ=भाद्रमातुर** बना। स्वादिकार्य करके **भाद्रमातुरः** सिद्ध हुआ।

१०२०- स्त्रीभ्यो ढक्। स्त्रीभ्यः पञ्चम्यन्तं, ढक् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** की

कनीनादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०२१. कन्यायाः कनीन च ४।१।११६॥

चादण्। कानीनो व्यासः कर्णश्च।

....

अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार भी है।

अपत्य अर्थ में स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों से ढक् प्रत्यय होता है।

ढक् में **ककार** की *हलन्त्यम्* से इत्संज्ञा होती है। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि होगी। **ढकार** की **चुटू** से इत्संज्ञा प्राप्त होती है किन्तु उसे बाधकर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** उसके स्थान पर **एय्** आदेश का विधान होता है। **ढ** में केवल **ढ्** के स्थान पर ही **एय्** होगा। **ढ** का **अकार** बचा हुआ है।

वैनतेयः। विनता की सन्तान। **विनतायाः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **विनता ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **स्त्रीभ्यो ढक्** से **ढक्** प्रत्यय हुआ, ककार की इत्संज्ञा हुई और ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **एय्** आदेश हुआ। ढ में केवल **ढ्** के स्थान पर ही **एय्** हुआ, एय्+अ=एय, **विनता+ङस्+एय** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **विनता+एय** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करने पर वकारोत्तरवर्ती **इकार** के स्थान पर **ऐकार** आदेश और भसंज्ञक **आकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **वैनत्+एय** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **वैनतेय** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **वैनतेयः** सिद्ध हुआ। इसके अन्य उदाहरण-

कौन्तेयः। कुन्ती की सन्तान। **कुन्त्याः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह और **कुन्ती ङस्** अलौकिक विग्रह में **स्त्रीभ्यो ढक्** से ढक्, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से एय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **कुन्ती+एय** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करने पर ककारोत्तरवर्ती उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक ईकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **कौन्त्+एय** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **कौन्तेय** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **कौन्तेयः** सिद्ध हुआ।

राधेयः। राधा की सन्तान। **राधायाः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह और **राधा ङस्** अलौकिक विग्रह में **स्त्रीभ्यो ढक्** से ढक्, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से एय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **राधा+एय** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करने पर रकारोत्तरवर्ती आकार के स्थान पर आकार ही आदेश और भसंज्ञक आकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **राध्+एय** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **राधेय** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **राधेयः** सिद्ध हुआ।

१०२१- कन्यायाः कनीन च। कन्यायाः षष्ठ्यन्तं, कनीन लुप्तप्रथमाकं, च अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **शिवादिभ्योऽण्** से **अण्** और **तस्यापत्यम्** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०२२. राजश्वशुराद्यत् ४।१।१३७॥

वार्तिकम्- **राज्ञो जातावेवेति वाच्यम्।**

प्रकृतिभावार्थं विधिसूत्रम्

१०२३. ये चाभावकर्मणोः ६।४।१६८॥

यादौ तद्धिते परेऽन् प्रकृत्या स्यान्न तु भावकर्मणोः।

राजन्यः। जातावेवेति किम्?

....

अपत्य अर्थ में कन्याशब्द के स्थान पर कनीन आदेश होता है और उससे परे अण् प्रत्यय भी होता है।

यह सूत्र **स्त्रीभ्यो ढक्** का अपवाद है।

कानीनो व्यासः कर्णश्च। कन्या अर्थात् अविवाहिता की सन्तान, व्यास या कर्ण आदि। **कन्याया अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **कन्या ङस्** में **कन्यायाः कनीन च** से **कन्या** के स्थान पर **कनीन** आदेश और **अण्** प्रत्यय का विधान हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कनीन+अ** बना। आदिवृद्धि, भसंज्ञक अवर्ण का लोप करके **कानीन** बना। स्वादिकार्य करके **कानीनः** सिद्ध हुआ। व्यास, कर्ण आदि अविवाहित माँ के पुत्र थे।

१०२२- राजश्वशुराद्यत्। राजा च श्वशुरश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो राजश्वशुरम्, तस्मात्। राजश्वशुरात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

राजन् और श्वशुर शब्दों से अपत्य अर्थ में यत् प्रन्यय होता है।

तकार की इत्संज्ञा होती है, **य** शेष रहता है। तित् होने का फल स्वरप्रकरण में **तित्स्वरितम्** की प्रवृत्ति है।

राज्ञो जातावेवेति वाच्यम्। यह वार्तिक है। **राजन् शब्द से जाति वाच्य होने पर ही यत् प्रत्यय कहना चाहिए।** तात्पर्य यह है कि **राजन्** शब्द से यत् प्रत्यय किये जाने पर भी उसमें **जाति** अर्थ की विशेषता होनी चाहिए अर्थात् इस शब्द से अपत्यार्थ में **यत्** प्रत्यय तभी होगा जब प्रकृतिप्रत्ययसमुदाय से **जाति** अर्थ की प्रतीति होगी।

१०२३- ये चाभावकर्मणोः। भावश्च कर्म च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो भावकर्मणी, न भावकर्मणी अभावकर्मणी। तयोः। ये सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदम्, अभावकर्मणोः सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अन्** से **अन्, आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** से **तद्धिते** और **प्रकृत्यैकाच्** से **प्रकृत्या** की अनुवृत्ति आती है।

यकारादि तद्धित प्रत्यय के परे रहते अन् को प्रकृतिभाव होता है, यदि तद्धित प्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में न हुए हों तो।

यह सूत्र **नस्तद्धिते** से प्राप्त टिलोप का बाधक है। स्मरण रहे कि **प्रकृतिरूपेणावस्थानं प्रकृतिभावः** अर्थात् यथावत् बने रहना ही प्रकृतिभाव है। **अन्** का लोप न होकर यथावत् बना रहे, यही प्रकृतिभाव है।

राजन्यः। राजा की सन्तान आदि। **राज्ञोऽपत्यं जातिः** लौकिक विग्रह है। **राजन्**

प्रकृतिभावार्थं विधिसूत्रम्

१०२४. अन् ६।४।१६७॥

अन् प्रकृत्या स्यादणि परे। राजनः। श्वशुर्यः।

घ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०२५. क्षत्राद् घः ४।१।१३८॥

क्षत्रियः। जातावित्येव। क्षात्रिरन्यत्र।

....

ङस् से **तस्यापत्यम्** से सामान्य अपत्य अर्थ में अण् प्राप्त, उसे बाधकर के **राज्ञो जाातावेवेति वाच्यम्** के निर्देशन में जाति सहित अपत्य अर्थ में **राजश्वशुराद्यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **राजन्+य** बना। अव **नस्तद्धिते** से **अन्** का लोप प्राप्त था, उसे बाधकर के **ये चाभावकर्मणोः** से प्रकृतिभाव हुआ अर्थात् **अन्** का लोप नहीं हुआ। वर्णसम्मेलन होकर **राजन्य** बना, स्वादिकार्य करके **राजन्यः** सिद्ध हुआ। यह क्षत्रिय जाति अर्थ में बना है। अजाति अर्थ में यत् नहीं होगी किन्तु अग्रिम सूत्र से आगे की प्रक्रिया होगी।

१०२४- अन्। अन् प्रथमान्तम्, एकपदं सूत्रम्। **इनण्यनपत्ये** से **अणि** और **प्रकृत्यैकाच्** से **प्रकृत्या** की अनुवृत्ति आती है।

अण् प्रत्यय के परे होने पर अन् को प्रकृतिभाव होता है।

यह भी **नस्तद्धिते** का बाधक है।

राजनः। राजा की सन्तान जो क्षत्रिय जाति की नहीं है। इसके पहले आपने **राजन्यः** बनाया था, जाति अर्थ में यत् प्रत्यय करके। अब जाति से भिन्न अर्थ में **तस्यापत्यम्** से औत्सर्गिक **अण्** प्रत्यय होगा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके आकार के स्थान पर आकार ही आदेश होता है। इस तरह **राजन्+अ** बना। यहाँ पर **नस्तद्धिते** से **अन्** का लोप प्राप्त था, उसको बाधकर कर के **अन्** से प्रकृतिभाव हुआ अर्थात् लोप नहीं हुआ। **राजन्+अ** में वर्णसम्मेलन होकर **राजनः** सिद्ध हुआ। अपत्यात्मक जाति अर्थ में **राजन्यः** और जाति से भिन्न अपत्य अर्थ में **राजनः**।

श्वशुर्यः। ससुर की सन्तान, साला। **श्वशुरस्यापत्यम्** लौकिक विग्रह है। **श्वशुर ङस्** से **तस्यापत्यम्** से अण् प्राप्त, उसे बाधकर के **राजश्वशुराद्यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **श्वशुर+य** बना। **यस्येति च** से रकारोत्तरवर्ती अकार का लोप करके **श्वशुर्+य** बना। **रेफ** का ऊर्ध्वगमन होकर **श्वशुर्य** बना, स्वादिकार्य करके **श्वशुर्यः** सिद्ध हुआ।

१०२५- क्षत्राद् घः। क्षत्रात् पञ्चम्यन्तं, घः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

क्षत्र प्रातिपदिक से अपत्य जाति अर्थ में घ प्रत्यय होता है।

घ में केवल घ् के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से इय् आदेश होता है। **घ में अ** बचा हुआ था। इस तरह **इय्+य=इय** बन जाता है।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०२६. रेवत्यादिभ्यष्ठक् ४।१।१४६॥

इकादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०२७. ठस्येकः ७।३।५०॥

अङ्गात् परस्य ठस्येकादेशः स्यात्। रैवतिकः।

अञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०२८. जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् ४।१।१६८॥

जनपदक्षत्रियवाचकाच्छब्दादञ् स्यादपत्ये। पाञ्चालः।

वार्तिकम्- **क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्।**

पञ्चालानां राजा पाञ्चालः।

वार्तिकम्- **पूरोरण् वक्तव्यः।** पौरवः।

वार्तिकम्- **पाण्डोर्ड्यण्।** पाण्ड्यः।

....

क्षत्रियः। क्षत्र जाति के व्यक्ति की सन्तान। **क्षत्रस्यापत्यम्** लौकिक विग्रह है। **क्षत्र ङस्** से अपत्यार्थ में **तस्यापत्यम्** के अधिकार में **अत इञ्** से औत्सर्गिक **इञ्** प्राप्त था, उसे बाधकर के **क्षत्राद् घः** से **घ** प्रत्यय हुआ। उसके स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **इय्** आदेश होकर **इय** बन गया। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **क्षत्र+इय** बना। आदिवृद्धि के लिए ञित्, णित्, कित् आदि कोई निमित्त नहीं है। अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **क्षत्रिय** बना। स्वादिकार्य करके **क्षत्रियः** सिद्ध हुआ। जाति अर्थ न होने पर **इञ्** प्रत्यय होकर **दाक्षिः, दाशरथिः** की तरह **क्षात्रिः** बनता है।

१०२६- **रेवत्यादिभ्यष्ठक्**। रेवती आदिर्येषां ते रेवत्यादयस्तेभ्यः। रेवत्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

रेवती आदि गण में पठित प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक ठक् प्रत्यय होता है।

ककार की इत्संज्ञा होती है। कित् होने से **किति च** की प्रवृत्ति हो सकेगी, जो वृद्धि करता है। ठकारोत्तरवर्ती अकार उच्चारणार्थ है, दूसरे मत में उच्चारणार्थ नहीं है अपितु **ठ** ऐसा पूरा अदन्त ही है। यह सूत्र भी **तस्यापत्यम्** का अपवाद है।

१०२७- **ठस्येकः**। ठस्य षष्ठ्यन्तम्, इकः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अङ्ग से परे ठ् के स्थान पर इक आदेश होता है।

इक यह आदेश अदन्त है।

रैवतिकः। रेवती की सन्तान। **रेवत्या अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **रेवती ङस्** से अपत्यार्थ में **तस्यापत्यम् अण्** प्राप्त था, उसे बाधकर के **रेवत्यादिभ्यष्ठक्** से **ठक्** प्रत्यय होकर उसका अनुबन्धलोप लोप करके **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश

ण्य-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०२९. कुरुनादिभ्यो ण्यः ४।१।१७२॥

कौरव्यः। नैषध्यः।

....

होकर **रेवती इक** बन गया। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करके **रैवती+इक** बना। अन्त्य ईकार का **यस्येति च** से लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **रैवतिक** बना। स्वादिकार्य करके **रैवतिकः** सिद्ध हुआ।

१०२८- जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्। जनपदवाचकः शब्दो जनपदशब्दः (मध्यमपदलोपिसमास), तस्मात्। जनपदशब्दात् पञ्चम्यन्तं, क्षत्रियात् पञ्चम्यन्तम्, अञ् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

जनपदविशेष का वाचक शब्द यदि उस नाम वाले क्षत्रियविशेष का भी वाचक हो तो उससे अपत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक अञ् प्रत्यय होता है।

जनपद का अर्थ है **देश, प्रदेश, देश का एकभाग, जिला** आदि। अञ् में ञकरा इत्संज्ञक है। ञित् का फल वृद्धि है।

पाञ्चालः। पञ्चाल राजा की सन्तान। **पञ्चाल** शब्द एक देश या प्रदेश का भी वाचक है और राजा का भी अर्थात् पञ्चाल नामक राजा और पञ्चाल नामक देश। **पञ्चालस्यापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **पञ्चाल ङस्** से औत्सर्गिक अण् को बाधकर के **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** से **अञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **पाञ्चाल** बना। स्वादिकार्य करके **पाञ्चालः** सिद्ध हुआ।

क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्। यह वार्तिक है। **क्षत्रियवाचक शब्द के समान जो जनपदवाचक शब्द, उससे अपत्यार्थ के समान ही 'उस देश का राजा' इस अर्थ में तद्धित प्रत्यय होते हैं।**

देश का राजा इस अर्थ में अपत्यार्थ की तरह प्रत्यय का विधान इससे होता है। जिस तरह से **पञ्चालस्यापत्यम्** में **पाञ्चालः** बना उसी तरह **पञ्चालानां राजा** इस अर्थ में इस वार्तिक से ही **अञ्** प्रत्यय होकर पूर्ववत् **पाञ्चालः** ही बनता है। देश वाची शब्द नित्य बहुवचनान्त माना गया है। अतः **पञ्चालस्य(देशस्य) राजा** विग्रह न करके **पञ्चालानां राजा** ऐसा विग्रह किया जाता है।

पूरोरण् वक्तव्यः। यह वार्तिक है। **पुरु शब्द से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय हो ऐसा कहना चाहिए।**

पौरवः। पूरु की सन्तान। **पूरोरपत्यं पुमान्** में **पूरु ङस्** से **पूरोरण् वक्तव्यः** से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके आदिवृद्धि हो जाने पर **पौरु+अ** बना। **ओर्गुणः** से अन्त्य उकार को गुण होकर **पौरो+अ** बना। अवादेश, वर्णसम्मेलन, स्वादिकार्य करके **पौरवः** सिद्ध हुआ।

पाण्डोर्ड्यण्। यह वार्तिक है। **पाण्डु शब्द से अपत्य अर्थ में ड्यण् प्रत्यय होता है।** डकार की **चुटू** से इत्संज्ञा होती है तो अन्त्य णकार **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञक है ही। डित् का प्रयोजन **टेः** से टि का लोप है।

तद्राजसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१०३०. ते तद्राजाः ४।१।१७४॥

अञादयस्तद्राजसंज्ञाः स्युः।

तद्राजस्य लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

१०३१. तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् २।४।६२॥

बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक् तदर्थकृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम्।

इक्ष्वाकवः। पञ्चालाः इत्यादि।

....

पाण्ड्यः। पाण्डु की सन्तान। **पाण्डोरपत्यं पुमान्। पाण्डु ङस्** में **पाण्डोर्ड्यण्** से **ड्यण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि, डित् परे होने कारण **टेः** से टिसंज्ञक उकार का लोप करके **पाण्ड्य** बनता है। स्वादिकार्य करके **पाण्ड्यः** सिद्ध होता है।

१०२९- **कुरुनादिभ्यो ण्यः**। न आदिर्येषां ते नादयः। कुरुश्च नादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः कुरुनादयस्तेभ्यः। कुरुनादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ण्यः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **जनपदाशब्दात् क्षत्रियादञ्** से वचनविपरिणाम के द्वारा **जनपदेभ्यः, क्षत्रियेभ्यः** एवं **तस्यापत्यम्** इस सूत्र की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

कुरुशब्द या नकारादिशब्द जब जनपद और क्षत्रिय दोनों के वाचक हों तो उनसे अपत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक ण्य प्रत्यय होता है।

चुटू से **णकार** की इत्संज्ञा करके **य** शेष रहता है। **कुरु** से **द्व्यञ्मगध-लिङ्गसूरमसादण्** से अण् और नकारादिशब्दों से **जनपदाशब्दात् क्षत्रियादञ्** से अञ् प्राप्त था। उनका यह अपवाद है।

कौरव्यः। कुरु की सन्तान। **कुरु** शब्द जनपदविशेष और क्षत्रियविशेष दोनों का वाचक है। **कुरोरपत्यं पुमान्। कुरु ङस्** में **कुरुनादिभ्यो ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि, **ओर्गुणः** से रकारोत्तरवर्ती उकार को गुण करके **कौरो+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से **अव्** आदेश होने पर **कौरव्य** बनता है। स्वादिकार्य करके **कौरव्यः** सिद्ध होता है।

नैषध्यः। निषध की सन्तान। **निषध** शब्द भी जनपदविशेष और क्षत्रियविशेष दोनों का वाचक है। **निषधस्यापत्यं पुमान्। निषध ङस्** में **नकारादि** होने के कारण **कुरुनादिभ्यो ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि करके **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप करके **नैषध्य** बनता है। स्वादिकार्य करके **नैषध्यः** सिद्ध होता है।

१०३०- **ते तद्राजाः**। ते प्रथमान्तं, तद्राजाः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्।

पूर्वोक्त अञ् आदि प्रत्यय तद्राजसंज्ञक होते हैं।

इस सूत्र में पठित **ते** शब्द का अर्थ है- पूर्वसूत्र **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** से विहित **अञ्** आदि प्रत्यय। उस प्रकरण में **अञ्, अण्, ड्यण्, ण्य** ये प्रत्यय आते हैं। इन सब की **तद्राज** संज्ञा की जाती है और इसका फल **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** की प्रवृत्ति है। **पुनश्च**- इन प्रत्ययों की तद्राजसंज्ञा इस लिए होती है क्योंकि ये प्रत्यय उन उन जनपदों के राजा के भी बोधक हैं।

तद्राजस्य लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

१०३२. कम्बोजाल्लुक् ४।१।१७५॥

अस्मात्तद्राजस्य लुक्। कम्बोज:। कम्बोजौ।

वार्तिकम्- **कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्।** चोल:। शक:। केरल:। यवन:।

इत्यपत्याधिकार:॥४५॥

....

१०३१- **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्।** तद्राजस्य षष्ठ्यन्तं, बहुषु सप्तम्यन्तं, तेन तृतीयान्तम्, एव अव्ययम्, अस्त्रियां सप्तम्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **ण्यक्षत्रियार्षञितो लुगणिञो:** से लुक् की अनुवृत्ति आती है।

बहुवचन में तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् होता है, यदि बहुत्व तद्राज प्रत्यय के अर्थद्वारा किया गया हो तो किन्तु स्त्रीलिङ्ग में लुक् नहीं होता।

इक्ष्वाकव:। इक्ष्वाकुओं की सन्तानें। **इक्ष्वाकु** शब्द जनपद और क्षत्रिय दोनों का वाचक है। **इक्ष्वाकोरपत्यम्** लौकिक विग्रह और **इक्ष्वाकु ङस्** अलौकिक विग्रह है। **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** से **अञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके **ऐक्ष्वाकु+अ** बना। यहाँ पर **ओर्गुण:** से गुण होना था किन्तु **दाण्डिनायन-हास्तिनायनाथर्वणिक०** से टिलोप निपातन होने से **ऐक्ष्वाक** और सु, रुत्व, विसर्ग करके **ऐक्ष्वाक:** बनता है। इससे जब बहुवचन **जस्** आता है तो **तद्रासंज्ञक अञ्** प्रत्यय का **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** से लुक् हो जाता है। **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपाय:** के नियमानुसार **अञ्** प्रत्यय को निमित्त मान कर की गई आदिवृद्धि और **टिलोप** का निपातन आदि भी स्वत: निवृत्त हो जाते हैं जिससे मूल शब्द ही **इक्ष्वाकु** के रूप में आ जाता है। इससे बहुवचन में **भानु** शब्द की तरह **इक्ष्वाकव:** ही रूप बनता है। रूपों को देखें- **ऐक्ष्वाक:, ऐक्ष्वाकौ, इक्ष्वाकव:, ऐक्ष्वाकम्, ऐक्ष्वाकौ, इक्ष्वाकून्** आदि।

पञ्चाला:। पञ्चालों की सन्तानें। **पञ्चाल** शब्द जनपद और क्षत्रिय दोनों का वाचक है। **पञ्चालस्यापत्यानि** लौकिक विग्रह और **पञ्चाल ङस्** अलौकिक विग्रह है। **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** से **अञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकार का लोप करके **पाञ्चाल।** इससे जब बहुवचन **जस्** आता है तो **तद्रासंज्ञक अञ्** प्रत्यय का **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** से लुक् हो जाता है। **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपाय:** के नियमानुसार **अञ्** प्रत्यय को निमित्त मान कर की गई आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप आदि स्वत: निवृत्त हो जाते हैं जिससे मूल शब्द ही **पञ्चाल** के रूप में आ जाता है। इससे बहुवचन में वृद्धि आदि रहित **पञ्चाला:** ही रूप बनता है। इसके एकवचन का रूप **जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ्** सूत्र में बना चुके हैं। इसके रूपों को देखें- **पाञ्चाल:, पाञ्चालौ, पञ्चाला:, पाञ्चालम्, पाञ्चालौ, पञ्चालान्** आदि।

१०३२- **कम्बोजाल्लुक्।** कम्बोजात् प्रथमान्तं, लुक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **ते तद्राजा:** से विभक्तिविपरिणाम करके **तद्राजस्य** की अनुवृत्ति आती है।

कम्बोज शब्द से परे तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् होता है।

तद्धित को मान कर के होने वाले जितने भी कार्य हैं **आदिवृद्धि, भसंज्ञक वर्ण का लोप** आदि, उसके **लुक्** हो जाने से नहीं होंगे।

कम्बोजः। कम्बोजौ। कम्वोज की सन्तान अथवा कम्बोज का राजा। **कम्बोज** शब्द भी जनपदवाची और क्षत्रियविशेषवाची है। **कम्बोजस्यापत्यं राजा वा** लौकिक विग्रह और **कम्बोज ङस्** अलौकिक विग्रह है। **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** से **अञ्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर के आदिवृद्धि प्राप्त थी किन्तु **कम्बोजाल्लुक्** से तद्राजसंज्ञक **अञ्** प्रत्यय के लुक् हो जाने के कारण आदिवृद्धि आदि कार्य नहीं हुए। स्वादिकार्य करके **कम्बोजः, कम्बोजौ, कम्बोजाः** आदि सामान्य ही रूप होंगे। **कम्बोज** शब्द के तद्धितान्त और अतद्धितान्त रूप समान ही होंगे अर्थात् देखने में शब्द एक जैसे लगेंगे किन्तु अर्थ के प्रसंगानुसार तद्धितान्त या अतद्धितान्त है, समझना चाहिए।

कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिककार का कहना है कि **कम्बोलाल्लुक्** यह सूत्र न्यून है। इसके स्थान पर **कम्बोजादिभ्यो लुक्** ऐसा कहना चाहिए। ऐसा करने से केवल **कम्बोज** शब्द से ही नहीं अपितु **कम्बोजादि** आकृतिगण मान कर के अनेक शब्दों से तद्राजसंज्ञक प्रत्ययों का लुक् किया जा सकेगा। जिससे **चोलः, यवनः** आदि शब्दों में भी तद्राजसंज्ञक प्रत्ययों का लुक् हो सकेगा। **चोलस्यापत्यम्** चोलदेश की सन्तान आदि अर्थ में प्राप्त अण् आदि प्रत्ययों के लुक् हो जाने से **चोल** से **चोल** ही बनता है अर्थात् आदिवृद्धि आदि कार्य नहीं होते। अन्यथा **चौलः** बनने लगता। इस वार्तिक से अण् आदि का लुक् करके रूप बनते हैं-

चोलस्यापत्यं- चोलः, चोलौ, चोलाः। **शकस्यापत्यं- शकः, शकौ, शकाः।**
केरलस्यापत्यं- केरलः, केरलौ, केरलाः। **यवनस्यापत्यं- यवनः, यवनौ, यवनाः** आदि।

उक्त स्थलों पर **चोल, शक, केरल** और **यवन** शब्द जनपदक्षत्रियवाची हैं।

पञ्चाल आदि ऊपर बताये गये सभी शब्द जनपद और उस जनपद के राजा दोनों को कहते हैं। अतः इन सभी शब्दों से जब **उस देश का राजा** ऐसा विग्रह होगा तो भी **क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्** वार्तिक से अपत्यार्थ के समान अण् आदि प्रत्यय आदि और **चोल, कम्बोज** आदि में लुक् होकर **पञ्चालः, चोलः, कम्बोजः,** आदि ही रूप बनते हैं। अतः **पाञ्चालः** से **पाञ्चाल राजा के पुत्र** अथवा **पञ्चाल देश का राजा** आदि अर्थ को प्रसंग से समझना चाहिए।

परीक्षा

१- साधारण तद्धित और अपत्यार्थक तद्धित में अन्तर बताइये। १०
२- **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** की व्याख्या कीजिए। १०
३- अपत्याधिकार-प्रकरण में होने वाले प्रत्ययों पर प्रकाश डालिए। १०
४- अण्, यञ्, इञ् और ढक् प्रत्ययों के दो-दो उदाहरणों की प्रक्रिया दिखाइये। १०
५- **स्त्रीभ्यो ढक्** और **शिवादिभ्योऽण्** में बाध्यबाधकभाव स्पष्ट कीजिये। १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का अपत्याधिकार पूर्ण हुआ।

अथ रक्ताद्यर्थकाः

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०३३. तेन रक्तं रागात् ४।२।१॥

अण् स्यात्। रज्यतेऽनेनेति रागः। कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायम्।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०३४. नक्षत्रेण युक्तः कालः ४।२।३॥

अण् स्यात्।

वार्तिकम्- **तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम्।** पुष्येण युक्तं पौषमहः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **रक्ताद्यर्थक प्रकरण** का आरम्भ होता है। **रक्त** आदि अर्थों में प्रत्ययों का विधान होता है, इस लिए इस प्रकरण को **रक्ताद्यर्थक प्रकरण** कहा गया।

१०३३- तेन रक्तं रागात्। तेन तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, रक्तं प्रथमान्तं, रागात् पञ्चम्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् है ही।

'उससे रंगा हुआ' इस अर्थ में तृतीयान्त रंगवाचक शब्द से अण् प्रत्यय होता है।

तेन रक्तं रागात् इस सूत्र से आया हुआ **राग** शब्द की व्युत्पत्ति करके अर्थ बताया जा रहा है- **रज्यतेऽनेनेति रागः।** रंगा जाता है इससे, वह अर्थात् रंगने का जो साधन नील, पीत आदि **रङ्ग। रञ्ज्** धातु से करण अर्थ में **अकर्तरि च कारके सञ्ज्ञायाम्** से **घञ्** प्रत्यय होने पर **घञि च भावकरणयोः** से नलोप होने पर **चजोः कु घिण्ण्यतोः** से जकार को कुत्व करके गकार होने पर उपधावृद्धि करके **रागः** यह कृदन्त रूप सिद्ध होता है।

काषायम्। गेरुए रंग से रंगा हुआ वस्त्र आदि। **कषायेण रक्तम्** लौकिक विग्रह और **कषाय टा** अलौकिक विग्रह में **तेन रक्तं रागात्** से अण्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **काषाय्+अ,** वर्णसम्मेलन करके **काषाय**, सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप करके **काषायम्** सिद्ध हुआ। विशेष्य **वस्त्रम्** के नपुंसक होने के कारण यह भी नपुंसक हो गया।

१०३४- रक्षत्रेण युक्तः कालः। नक्षत्रेण तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, युक्तः प्रथमान्तं, कालः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तेन रक्तं रागात्** से **तेन** और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की

लुप्-विधायकं विधिसूत्रम्

१०३५. लुबविशेषे ४।२।४॥

पूर्वेण विहितस्य लुप् स्यात्, षष्टिदण्डात्मकस्य कालस्यावान्तरविशेषश्चेन्न गम्यते। अद्य पुष्यः।

....

अनुवृत्ति आती है। और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् है ही।

नक्षत्रवाचक तृतीयान्त प्रातिपदिक से 'उससे युक्त' अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है, यदि वह युक्त काल अर्थात् समय हो तो।

चैत्रमहः। चित्रा नक्षत्र से युक्त दिन अर्थात् चित्रा नक्षत्र में जिस दिन चन्द्रमा भ्रमण कर रहे हैं, वह दिन। **दिन**-शब्द काल अर्थात् समय का वाचक है। **चित्रया युक्तमहः** लौकिक विग्रह और **चित्रा सु** अलौकिक विग्रह है। ऐसी स्थिति में **नक्षत्रेण युक्तः कालः** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप करके **चैत्र** बना। विशेष्यपद **अहः** नपुंसकलिङ्ग का है, अतः इसमें नपुंसकलिङ्ग ही हुआ। स्वादि कार्य करके **चैत्रम्** बना। कौमुदी में यह प्रयोग नहीं है फिर भी सूत्र के उदाहरण के लिए व्याख्या में प्रदर्शित किया गया।

तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम्। यह वार्तिक है। **नक्षत्रसम्बन्धी अर्थात् नक्षत्र से युक्त काल अर्थ में नक्षत्रवाचक शब्द से विहित अण् प्रत्यय के परे रहते तिष्य और पुष्य शब्दों के यकार का लोप होता है।**

पौषमहः। पुष्य नक्षत्र से युक्त दिन अर्थात् ऐसा दिन जिसमें चन्द्रमा पुष्यनक्षत्र में चल रहे हों। **पुष्येण युक्तः कालः** विग्रह है। **पुष्य टा** से **नक्षत्रेण युक्तः कालः** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके **यस्येति च** से अकार के लोप होने के बाद **पौष्य्+अ** बना है। **तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम्** से **यकार** के भी लोप होने पर वर्णसम्मेलन होकर **पौष** बना। विशेष्य **अहः** के अनुसार नपुंसकलिङ्ग में स्वादिकार्य करके **पौषम्** बन जाता है। **पौषमहः**।

१०३५- **लुबविशेषे**। न विशेषः अविशेषस्तस्मिन्। लुप् प्रथमान्तम्, अविशेषे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से विभक्तिविपरिणाम करके **अणः** की अनुवृत्ति आती है।

'नक्षत्रेण युक्तः कालः' से विहित अण् प्रत्यय का लुप् हो जाता है, यदि साठ घटी वाले काल अर्थात् अहोरात्र का अवान्तरभेद अर्थ गम्यमान न हो रहा हो तो।

एक **अहोरात्र** अर्थात् **दिनरात** में साठ घटियाँ होती हैं। आज के व्यावहारिक समय के अनुसार एक घण्टे में ढाई घटियाँ होती है अर्थात् साठ घटियों का एक अहोरात्र होता है। एक अहोरात्र में अवान्तर काल दिन, रात, प्रातः, सायम्, दोपहर आदि माने जाते हैं। यदि अहोरात्र का अवान्तर भेद गम्यमान न हो रहा हो तो यह सूत्र प्रवृत्त होता है। जैसे कि **आज** कहने से अहोरात्र का अवान्तर भेद का पता नहीं चलता। हाँ, यदि आज दिन में या आज रात को अथवा आज दोपहर को आदि होता तो अहोरात्र के अवान्तर कालभेद की प्रतीति होती है। **लुप्** भी एक लोप जैसा ही है जैसे कि लुक्। इस सम्बन्ध में **प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः** का स्मरण करें।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०३६. दृष्टं साम ४।२।७॥

तेनेत्येव। वसिष्ठेन दृष्टं वासिष्ठं साम।

ड्य-ड्यण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०३७. वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ ४।२।९॥

वामदेवेन दृष्टं साम वामदेव्यम्।

....

अद्य पुष्यः। आज पुष्य नक्षत्र है अर्थात् आज चन्द्रमा पुष्य नक्षत्र में भ्रमण कर रहे हैं। **पुष्येण युक्तः कालोऽद्य। पुष्य टा** से **नक्षत्रेण युक्तः कालः** से **अण्** प्रत्यय हुआ। उसका **लुबविशेषे** से लुप् हुआ। अतः आदिवृद्धि आदि कुछ भी नहीं हुआ जिससे **पुष्य** से **पुष्य** ही बना रह गया। स्वादिकार्य करके **पुष्यः** बनता है। इसका अर्थ हुआ- **पुष्य नक्षत्र से युक्त समय(आज)**।

१०३६- **दृष्टं साम**। दृष्टं प्रथमान्तं, साम प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तेन रक्तं रागात्** से तेन और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् है ही।

'देखा गया साम' अर्थात् ज्ञान रूप में प्राप्त किया गया साम' इस अर्थ में तृतीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।

वैदिकमन्त्रों का अध्ययन, साक्षात्कार, सिद्धि जिन ऋषियों की थी, मन्त्र के विनियोग में उनका नाम लिया जाता है। **तेन दृष्टं साम** अर्थात् **उस ऋषिविशेष के द्वारा प्राप्त सामवेद की ऋचाएँ** इस अर्थ में प्रत्यय का विधान किया गया।

वासिष्ठं साम। वसिष्ठ के द्वारा देखे गये अर्थात् जाने हुए साम के मन्त्र। **वसिष्ठेन दृष्टम्** लौकिक विग्रह और **वसिष्ठ टा** अलौकिक विग्रह में **दृष्टं साम** से अण्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार के लोप करने पर **वासिष्ठ+अ,** वर्णसम्मेलन करके **वासिष्ठ**, सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप करके **वासिष्ठम्** सिद्ध हुआ। विशेष्य शब्द **साम** के नपुंसक होने के कारण यह भी नपुंसक हो गया।

१०३७- **वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ**। ड्यच्च ड्यश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो ड्यड्ड्यौ। वामेदवात् पञ्चम्यन्तं, ड्यड्ड्यौ प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तेन रक्तं रागात्** से **तेन** और **दृष्टं साम** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

'देखा गया साम' इस अर्थ में तृतीयान्त समर्थ वामदेव इस प्रातिपदिक से तद्धितसंज्ञक ड्यत् और ड्य प्रत्यय होते हैं।

डकार की **चुटू** से इत्संज्ञा होती है और तकार **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञक है, **य** शेष रहता है। डित्करण का प्रयोजन स्वरविधान के लिए है। तित्करण का भी फल स्वरों का विधान ही है। दो प्रत्ययों में एक तित् है और एक तित् नहीं है। रूपों में कोई अन्तर नहीं आयेगा। यह सूत्र **दृष्टं साम** का अपवाद है।

वामदेव्यम्। वामदेव के द्वारा देखे गये साम के मन्त्र। **वामदेवेन दृष्टम्** लौकिक

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०३८. परिवृतो रथः ४।२।१०॥

अस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति। वस्त्रेण परिवृतो वास्त्रो रथः।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०३९. तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः ४।२।१४॥

शरावे उद्धृतः शाराव ओदनः।

....

विग्रह और **वामदेव टा** अलौकिक विग्रह में **दृष्टं साम** से अण् प्राप्त था, उसे बाधकर के **वामदेवाड्यड्ड्यौ** से **ड्यत्** या **ड्य** प्रत्यय हुआ। **ड्यत्** के पक्ष में डकार और तकार का अनुबन्धलोप हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **वामदेव्+य**, वर्णसम्मेलन करके **वामदेव्य**, सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप करके **वामदेव्यम्** सिद्ध हुआ। विशेष्य **साम**-शब्द के नपुंसक होने के कारण यह भी नपुंसक हो गया।

१०३८- परिवृतो रथः। परिवृतः प्रथमान्तं, रथः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तेन रक्तं रागात्** से **तेन** और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

'उससे परिवृत अर्थात् लिपटा हुआ, घिरा हुआ रथ' इस अर्थ में तृतीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

जो परिवृत हो वह रथ ही हो, अन्य नहीं। इसीलिए सूत्र में **रथः** भी पढ़ा गया है।

वास्त्रो रथः। वस्त्र से लिपटा हुआ रथ। **वस्त्रेण परिवृतः**। **वस्त्र टा** में **परिवृतो रथः** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **वास्त्र** बना। इससे स्वादि कार्य करके **वास्त्रः** बनता है किन्तु आगे **रथः** परे है, अतः **सु** को रुत्व, उत्व, गुण होकर **वास्त्रो रथः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **कम्बलेन परिवृतः काम्बलो रथः, रजसा परिवृतो राजसो रथः** आदि भी बनाये जा सकते हैं।

१०३९- तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः। तत्र सप्तम्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, उद्धृतम् प्रथमान्तम्, अमत्रेभ्यः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है। मूल में सूत्र की वृत्ति नहीं लिखी गई है फिर भी इसकी वृत्ति इस तरह हो सकती है- **पात्रविशेषवाचिभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यः समर्थ-प्रातिपदिकेभ्यस्तत्र उद्धृतम् इत्यर्थे अण् प्रत्ययो भवति।**

'उसमें निकाल कर रखा हुआ' इस अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ पात्रविशेष के वाचक प्रातिपदिको से तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

अमत्र पात्रविशेष को कहते हैं। **तत्र** यह पद सप्तम्यन्त के लिए निर्देश है। अतः सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से ही प्रत्यय होगा।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०४०. संस्कृतं भक्षाः ४।२।१६॥

सप्तम्यन्तादण् स्यात् संस्कृतेऽर्थे, यत्संस्कृतं भक्षाश्चेते स्युः।
भ्राष्ट्रेषु संस्कृताः भ्राष्ट्रा यवाः।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०४१. साऽस्य देवता ४।२।२४॥

इन्द्रो देवताऽस्येति ऐन्द्रं हविः। पाशुपतम्। बार्हस्पत्यम्।

....

शाराव ओदनः। शराव में निकाल कर रखा गया भात। **शरावे उद्धृतः**। शराव ङि में **तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **शाराव** बना। इससे स्वादि कार्य करके **शारावः** बनता है किन्तु आगे **ओदनः** परे है, अतः **सु** को रुत्व, उसको **भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि** से यत्व, **हलि सर्वेषाम्** से यकार का लोप होकर **शाराव ओदनः** सिद्ध हुआ।

१०४०- संस्कृतं भक्षाः। संस्कृतं प्रथमान्तं, भक्षाः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः** से **तत्र** और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'उससे संस्कार किया गया' इस अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है परन्तु संस्कृत पदार्थ भक्ष अर्थात् खाने की वस्तु होनी चाहिए।

भ्राष्ट्राः। भट्ठी(भाड़) में भूनकर संस्कृत किये गये खाने योग्य जौ। **भ्राष्ट्रेषु संस्कृताः भक्षाः। भ्राष्ट्र सुप्** से **संस्कृतं भक्षाः** से **अण्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, णित् होने से आदिवृद्धि, **यस्येति च** से अकार का लोप करके, वर्णसम्मेलन, जस्, दीर्घ, सकार का रुत्वविसर्ग आदि होने पर **भ्राष्ट्राः(यवाः)** बना।

१०४१- साऽस्य देवता। सा प्रथमान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तम्, अस्य षष्ठ्यन्तं, देवता प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

देवतावाचक प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिक से 'वह इसका देवता है' इस अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

ऐन्द्रं हविः। इन्द्र देवता हैं इस हवनीय पदार्थ के। **इन्द्रो देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **इन्द्र सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** से अण्, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके ऐकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **ऐन्द्र्+अ**, वर्णसम्मेलन करके **ऐन्द्र, हविः** इस नपुंसक शब्द के विशेषण होने से सु होकर उसके स्थान पर **अम्** आदेश और पूर्वरूप करके **ऐन्द्रम्** यह नपुंसक शब्द सिद्ध हुआ।

पाशुपतम्। पशुपति देवता हैं इस हवनीय पदार्थ के। **पशुपतिर्देवता अस्य**

घन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०४२. शुक्राद् घन् ४।२।२६॥

शुक्रियम्।

ट्यण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०४३. सोमाट् ट्यण् ४।२।३०॥

सौम्यम्।

....

लौकिक विग्रह और **पशुपति सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** से के अर्थ में **पति** उत्तरपद वाला होने के कारण **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय प्राप्त था किन्तु **पशुपति** शब्द के अश्वपत्यादि गण में होने के कारण **अश्वपत्यादिभ्यश्च** से अण् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके भसंज्ञक इकार का लोप, **पाशुपत्+अ**, वर्णसम्मेलन, **पाशुपत**, सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **पाशुपतम्** सिद्ध हुआ।

बार्हस्पत्यम्। बृहस्पति देवता हैं इस पदार्थ के। **बृहस्पतिर्देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **बृहस्पति सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** के अर्थ में **पति** उत्तरपद वाला होने के कारण **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके **बार्हस्पति+य** बना। रेफ का ऊर्ध्वगमन होकर भसंज्ञक इकार का लोप होने पर **बार्हस्पत्+य**, वर्णसम्मेलन, **बार्हस्पत्य** बना। सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **बार्हस्पत्यम्** सिद्ध हुआ।

१०४२- शुक्राद् घन्। शुक्रात् पञ्चम्यन्तं, घन् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सास्य देवता** यह पूरा सूत्र अनुवर्तन होकर आता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिक शुक्र से 'वह इसका देवता है' इस अर्थ में घन् प्रत्यय होता है।

यह **सास्य देवता** का अपवाद है। **घन्** में नकार इत्संज्ञक है और केवल घ् के स्थान पर **आयने०** से **इय्** आदेश होकर **इय** बन जाता है।

शुक्रियम्। शुक्र देवता हैं इस पदार्थ के। **शुक्रो देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **शुक्र सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** के अर्थ में **शुक्राद् घन्** से **घन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से केवल **घ्** के स्थान पर **इय्** आदेश करके **शुक्र+इय** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् के लुक् होने पर आदिवृद्धि तो प्राप्त नहीं है किन्तु **यस्येति च** से **भसंज्ञक अकार** का लोप करके **शुक्र्+इय** बना। वर्णसम्मेलन करके **शुक्रिय** बना। सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **शुक्रियम्** सिद्ध हुआ।

१०४३- सोमाद् ट्यण्। सोमात् पञ्चम्यन्तं, ट्यण् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सास्य देवता** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होकर आता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०४४. वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ४।२।३१॥

वायव्यम्। ऋतव्यम्।

रीङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०४५. रीङ् ऋतः ७।४।२७॥

अकृद्यकारेऽसार्वधातुके यकारे च्वौ च परे ऋदन्ताङ्गस्य रीङादेशः।

यस्येति च। पित्र्यम्। उषस्यम्।

....

प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिक सोम से 'वह इसका देवता है' इस अर्थ में ट्यण् प्रत्यय होता है।

चुटू से टकार और **हलन्त्यम्** से णकार इत्संज्ञक हैं, **य** बचता है। टित्करण का प्रयोजन स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाण०** से **ङीष्** करना है। णित् का प्रयोजन आदिवृद्धि है।

सौम्यम्। सोम देवता हैं इस पदार्थ के। **सोमो देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **सोम सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** से प्राप्त अण् को बाधकर के **सोमाट् ट्यण्** से **ट्यण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सोम+य** बना। आदिवृद्धि, **यस्येति च** से **भसंज्ञक अकार** का लोप करके **सौम्य** बना। सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **सौम्यम्** सिद्ध हुआ।

१०४४- **वाय्वृतुपित्रुषसो यत्।** वायुश्च ऋतुश्च पिता च उषस् च तेषां समाहारद्वन्द्वो वाय्वृतुपित्रुषस्, तस्मात्। वाय्वृतुपित्रुषसः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सास्य देवता** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होकर आता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

वायु, ऋतु, पितृ और उषस् इन प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिकों से 'वह इसका देवता है' इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

वायव्यम्। वायु देवता हैं इस हवि पदार्थ के। **वायुर्देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **वायु सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** के अर्थ में **वाय्वृतुपित्रुषसो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वायु+य** बना। **ओर्गुणः** से **उकार** को गुण करके **वायो+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से अव् आदेश होकर **वायव्य** बना। सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **वायव्यम्** सिद्ध हुआ।

ऋतव्यम्। ऋतु देवता हैं इस हवि पदार्थ के। **ऋतुर्देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **ऋतु सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** से प्राप्त अण् को बाधकर **वाय्वृतुपित्रुषसो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ऋतु+य** बना। **ओर्गुणः** से **उकार** को गुण करके **ऋतो+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से अव् आदेश होकर **ऋतव्य** बना। सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **ऋतव्यम्** सिद्ध हुआ।

१०४५- **रीङ् ऋतः।** रीङ् प्रथमान्तं, ऋतः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से **अकृत्सार्वधातुकयोः** एवं **अयङ् यि क्ङिति** से **यि** एवं **च्वौ च** से **च्वौ** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

निपातनसूत्रम्

१०४६. पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ४।२।३६॥

एते निपात्यन्ते। पितुर्भ्राता पितृव्यः। मातुर्भ्राता मातुलः। मातुः पिता मातामहः। पितुः पिता पितामहः।

....

कृत् से भिन्न का यकार, असार्वधातुक यकार अथवा च्वि प्रत्यय के परे होने पर ऋदन्त अङ्ग के स्थान पर रीङ् आदेश होता है।

रीङ् में ङकार की इत्संज्ञा होती है, री मात्र बचता है। ङित् होने के कारण **ङिच्च** की सहायता से अन्त्य वर्ण **ऋकार** के स्थान पर ही होता है।

पित्र्यम्। पितर देवता हैं इस हवि पदार्थ के। **पितरो देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **पितृ जस्** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** के अर्थ में **वाय्वृतुपित्रुषसो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पितृ+य** बना। **रीङ् ऋतः** से **ङिच्च** की सहायता से अन्त्य अल् **ऋकार** के स्थान पर अनुबन्धविनिर्मुक्त **री** आदेश हो गया। **पित्री+य** बना। **ईकार** का **यस्येति च** से लोप हुआ तो **पित्र्+य** बना। वर्णसम्मेलन, सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **पित्र्यम्** सिद्ध हुआ।

उषस्यम्। उषा देवता हैं इस हवि पदार्थ के। **उषा देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **उषस् सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** से प्राप्त अण् को बाधकर **वाय्वृतुपित्रुषसो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उषस्+य** बना। वर्णसम्मेलन, सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **उषस्यम्** सिद्ध हुआ।

१०४६- **पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः।** पितृव्यश्च मातुलश्च मातामहश्च पितामहश्च तेषामिरतेतरयोगद्वन्द्वः। पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्।

पिता के भ्राता अर्थात् चाचा अर्थ में पितृव्य, माता के भ्राता अर्थात् मामा अर्थ में मातुल, माता के पिता अर्थात् नाना अर्थ में मातामह और पिता के पिता अर्थात् दादा अर्थ में पितामह का निपातन किया जाता है।

बने बनाये शब्दों को प्रकृति और प्रत्यय दिखाये विना सूत्रों में पढ़ देना निपातन कहलाता है। सूत्रकार पाणिनि जी ने इन चार शब्दों की प्रक्रिया न दिखाकर सीधे सूत्र में ही पढ़ दिया। अब हम स्वयं इनमें प्रकृति, प्रत्यय, समर्थ विभक्ति और अनुबन्ध आदि की कल्पना कर सकते हैं। जैसे-

पितृव्यः। पितुर्भ्राता- पिता के भाई अर्थात् चाचा, ताऊ। पितृ शब्द से **पिता के भ्राता** अर्थ में **व्यत्** प्रत्यय की कल्पना करके **पितृव्य** बनता है और सु, रुत्व और विसर्ग करके **पितृव्यः** बन जायेगा।

मातुलः। मातुर्भ्राता- माता के भाई अर्थात् मामा। मातृ शब्द से **भ्राता** अर्थ में **डुलच्** प्रत्यय की कल्पना करके अनुबन्धलोप करने पर **उल** बचता है। टित् मानकर **टेः** इस सूत्र से टिसंज्ञक ऋकार का लोप करके **मात्+उल=मातुल** बनता है और सु, रुत्व और विसर्ग करके **मातुलः** बन जायेगा।

मातामहः। मातुः पिता-माता के पिता अर्थात् नाना। मातृ शब्द से उनके पिता अर्थ में **डामहच्** प्रत्यय की कल्पना करके अनुबन्धलोप करने पर **आमह** बचता है। डित् मान कर

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०४७. तस्य समूहः ४।२।३७॥

काकानां समूहः काकम्।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०४८. भिक्षादिभ्योऽण् ४।२।३८॥

भिक्षाणां समूहो भैक्ष्यम्। गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्। इह-वार्तिकम्- **भस्याढे तद्धिते।** इति पुंवद्भावे कृते-

....

टेः इस सूत्र से टिसंज्ञक ऋकार का लोप करके **मात्+आमह=मातामह** बनता है और सु, रुत्व-विसर्ग करके **मातामहः** बन जायेगा।

पितामहः। पितुः पिता- पिता के पिता अर्थात् दादा। पितृ शब्द से **पिता** अर्थ में **डामहच्** प्रत्यय की कल्पना करके अनुबन्धलोप करने पर **आमह** बचता है। डित् मान कर **टेः** इस सूत्र से टिसंज्ञक ऋकार का लोप करके **पित्+आमह=पितामह** बनकर सु, रुत्व-विसर्ग करके **पितामहः** बन जायेगा।

इन शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् करके **मातुली, मातामही, पितामही** और टाप् करके **पितृव्या** आदि रूप बनते हैं।

१०४७- तस्य समूहः। तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, समूहः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चलता आ रहा है।

षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'उसका समूह' अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

काकः। कौओं का समूह। **काकानां समूहः**। **काक आम्** से **तस्य समूहः** के द्वारा अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, णित् होने के कारण आकार के स्थान पर आकार-रूप आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **काक** ही बनता है। समूह अर्थ को बताने के कारण एकवचन सु, अम् आदेश, पूर्वरूप होकर **काकम्** बनता है। इसी तरह **वकानां समूहो वाकम्, वृकाणां समूहो वार्कम्** आदि बनाये जा सकते हैं।

१०४८- भिक्षादिभ्योऽण्। भिक्षा आदिर्येषां ते भिक्षादयस्तेभ्यः। भिक्षादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्य समूहः** का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठ्यन्त समर्थ भिक्षादि गणपठित प्रातिपदिकों से 'उसका समूह' अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

आगे कहे जाने वाले **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से विहित **ठक्** आदि प्रत्ययों को बाधने के लिए इस सूत्र का अवतरण है।

भैक्षम्। भिक्षाओं का समूह। **भिक्षाणां समूहः**। **भिक्षा आम्** से **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से **ठक्** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर **भिक्षादिभ्योऽण्** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **भिक्षा+अ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि

प्रकृतिभाव-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०४९. इनण्यनपत्ये ६।४।१६४॥

अनपत्यार्थेऽणि परे इन् प्रकृत्या स्यात्। तेन **नस्तद्धिते** इति टिलोपो न। युवतीनां समूहो यौवनम्।

तल्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०५०. ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ४।२।४३॥

तलन्तं स्त्रियाम्। ग्रामता। बन्धुता। जनता।

वार्तिकम्- **गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्।** गजता। सहायता।

वार्तिकम्- **अह्नः खः क्रतौ।** अहीनः।

....

और **यस्येति च** से आकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **भैक्ष** बना। स्वादिकार्य करके **भैक्षम्** सिद्ध हुआ।

१०४९- **इनण्यनपत्ये।** न अपत्यम् अनपत्यं, तस्मिन्। इन् प्रथमान्तम्, अणि सप्तम्यन्तम्, अनपत्ये सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रकृत्यैकाच्** से **प्रकृत्या** की अनुवृत्ति आती है। **अपत्यार्थ से भिन्न अर्थ में विहित अण् प्रत्यय के परे रहते इन् को प्रकृतिभाव होता है।**

गार्भिणम्। गर्भवती स्त्रियों का समूह। **गर्भिणीनां समूहः। गर्भिणी आम्** से **अनुदात्तादेरञ्** से **अञ्** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर **भिक्षादिभ्योऽण्** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गर्भिणी+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके **गार्भिणी+अ** बना। यहाँ पर **यस्येति च** से ईकार का लोप प्राप्त था किन्तु **भस्याढे तद्धिते** (ढ-भिन्न तद्धित के परे रहते भसंज्ञक अङ्ग को पुंवद्भाव होता है)से **पुंवद्भाव** हो जाने से स्त्रीत्वबोधन **ङीष्** की निवृत्ति होकर **गार्भिण्** बना। अब **नस्तद्धिते** से टि का लोप प्राप्त था किन्तु **इनण्यनपत्ये** (अपत्यार्थ से भिन्न अर्थ के अण् प्रत्यय के परे रहते **इन्** को प्रकृतिभाव हो) से **प्रकृतिभाव** हुआ अर्थात् टि का लोप नहीं हुआ। अब वर्णसम्मेलन होने पर **गार्भिण** बना। स्वादिकार्य करके **गार्भिणम्** सिद्ध हुआ।

यौवनम्। युवतियों का समूह। **युवतीनां समूहः। युवति आम्** से **अनुदात्तादेरञ्** से **अञ्** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर **भिक्षादिभ्योऽण्** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **युवति+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके **यौवति+अ** बना। यहाँ पर **यस्येति च** से इकार का लोप प्राप्त था किन्तु **भस्याढे तद्धिते** से **पुंवद्भाव** हो जाने से स्त्रीत्वबोधन **ङीष्** की निवृत्ति होकर **युवन्** बना। आदिवृद्धि होकर अब **नस्तद्धिते** से टि का लोप प्राप्त था किन्तु **अन्** सूत्र से **प्रकृतिभाव** हुआ अर्थात् टि का लोप नहीं हुआ। अब वर्णसम्मेलन होने पर **यौवन** बना। स्वादिकार्य करके **यौवनम्** सिद्ध हुआ।

१०५०- **ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्।** ग्रामश्च जनश्च बन्धुश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो ग्रामजनबन्धवस्तेभ्यः। ग्रामजनबन्धुभ्यः पञ्चम्यन्तं, तल् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्य समूहः** का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०५१. अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ४।२।४७॥

....

ग्राम, जन और बन्धु इन षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में तद्धितसंज्ञक तल् प्रत्यय होता है।

लकार इत्संज्ञक है। **तलन्तं स्त्रियाम्**। यह लिङ्गानुशासन का सूत्र है। तल् प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में ही होता है।

ग्रामता। गावों का समूह। **ग्रामाणां समूहः। ग्राम आम्** से **ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्** से **तल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ग्रामत** बना है। **तलन्त** होने के कारण स्त्रीलिङ्ग में **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ करके **ग्रामता** बन जाता है। इससे सु एवं उसका हल्ङ्याादिलोप होकर **ग्रामता** सिद्ध हो जाता है।

जनता। जनों का समूह। **जनानां समूहः। जन आम्** से **ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्** से **तल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **जनत** बना है। **तलन्त** होने के कारण स्त्रीलिङ्ग में **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ करके **जनता** बन जाता है। इससे सु एवं उसका हल्ङ्याादिलोप होकर **जनता** सिद्ध हो जाता है।

गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। **गज और सहाय इन षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिकों से भी समूह अर्थ में तल् प्रत्यय हो, ऐसा कहना चाहिए।** तात्पर्य यह है कि **ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्** सूत्र में जो केवल तीन शब्दों से तल् का विधान किया गया है, वह कम है, न्यून है। उसमें **गज** और **सहाय** शब्दों को जोड़ देना चाहिए।

गजता। हाथियों का समूह। **गजानां समूहः। गज आम्** से **गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्** से **तल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **टाप्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, सवर्णदीर्घ, स्वादिकार्य करके **जनता** सिद्ध हो जाता है।

सहायता। सहायकों का समूह। **सहायानां समूहः। सहाय आम्** से **गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्** से **तल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **टाप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ, स्वादिकार्य करके **सहायता** सिद्ध हो जाता है।

अह्नः खः क्रतौ। यह वार्तिक है। **यज्ञ के विषय में वर्तमान षष्ठ्यन्त अहन् प्रातिपदिक से समूह अर्थ में ख प्रत्यय होता है।**

ख में से केवल **ख्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईन्** आदेश होकर **ईन** बन जाता है।

अहीनः। कुछ यज्ञक्रियाविशेष का समूह। **अह्नां समूहः। अहन् आम्** में **अह्नः खः क्रतौ** से **ख** प्रत्यय, खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अहन्+ईन** बना। **नस्तद्धिते** से भसंज्ञक टि का लोप करके **अह्+ईन** बना। वर्णसम्मेलन, स्वादिकार्य करके **अहीनः** सिद्ध हुआ।

१०५१- अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्। अविद्यमानं चित्तं येषां ते अचित्ताः। अचित्ताश्च हस्ती च धेनुश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः अचित्तहस्तिधेनुः, सौत्रं पुंस्त्वम्। तस्मात्। अचित्तहस्तिधेनोः पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्य समूहः** का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

कादेश-विधायकं विधिसूत्रम्

१०५२. इसुसुक्तान्तात् कः ७।३।५१॥

इस्-उस्-उक्-तान्तात् परस्य ठस्य कः। साक्तुकम्। हास्तिकम्। धैनुकम्।

अणादिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०५३. तदधीते तद्वेद ४।२।५९॥

ऐज्विधायक- वृद्धिनिषेधक-विधिसूत्रम्

१०५४. न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ७।३।३॥

पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्य न वृद्धिः, किन्तु ताभ्यां पूर्वौ क्रमादैजावागमौ स्तः। व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः।

....

चित्त-रहित अर्थात् अप्राणिवाचक षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिकों से एवं हस्तिन्, धेनु इन प्रातिपदिकों से 'उसका समूह' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

ककार इत्संज्ञक है और **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश होता है। कुछ स्थलों पर अग्रिम सूत्र से **क** आदेश भी होता है।

१०५२- इसुसुक्तान्तात् कः। इस् च उस् च उक् च तश्च तेषां समाहारद्वन्द्व इसुसुक्ताः, ते अन्ता यस्य स इसुसुक्तान्तः, तस्मात्। इसुसुक्तान्तात् पञ्चम्यन्तं, कः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है। **ठस्येकः** से **ठस्य** की अनुवृत्ति आती है।

इस्, उस्, उक् और त अन्त में हो ऐसे अंग से परे ठ के स्थान पर क आदेश होता है।

साक्तुकम्। सत्तुओं का समूह। **सक्तूनां समूहः। सक्तु आम्** में **अचित्त=अप्राणी** का वाचक **सक्तु** शब्द है। **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **इसुसुक्तान्तात्कः** से **ठ** के स्थान पर **क** आदेश करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सक्तु+क** बना। ठक् के कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करके **साक्तुक** बना। स्वादिकार्य से **साक्तुकम्** सिद्ध हुआ।

हास्तिकम्। हाथियों का समूह। **हस्तिनां समूहः। हस्तिन् आम्** में **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **इसुसुक्तान्तात्कः** की प्रवृत्ति नं होने से **ठस्येकः** से **इक** आदेश और **किति च** से आदिवृद्धि करके **हास्तिन्+इक** बना। **नस्तद्धिते** से टि का लोप करके **हास्त्+इक** बना। वर्णसम्मेलन करके स्वादिकार्य करने पर **हास्तिकम्** सिद्ध हुआ।

धैनुकम्। गायों का समूह। **धेनूनां समूहः। धेनु आम्** में **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **इसुसुक्तान्तात्कः** से **ठ** के स्थान पर **क** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **धेनु+क** बना। ठक् के कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करके **धैनुक** बना। स्वादिकार्य से **धैनुकम्** सिद्ध हुआ।

१०५३- तदधीते तद्वेद। तद् द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तम् अधीते तिङन्तं क्रियापदं, तद् द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, वेद तिङन्तं क्रियापदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः** आदि का अधिकार तो चल ही रहा है।

वुन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०५५. क्रमादिभ्यो वुन् ४।२।६१॥

क्रमकः। पदकः। शिक्षकः। मीमांसकः।

इति रक्ताद्यर्थकाः॥४६॥

....

'उसे पढ़ता है' या 'उसे जानता है' इन अर्थों में द्वितीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।

१०५४- न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्। न अव्ययपदं, य्वाभ्यां पञ्चम्यन्तं, पदान्ताभ्यां पञ्चम्यन्तं, पूर्वौ प्रथमान्तं, तु अव्ययपदं, ताभ्यां पञ्चम्यन्तं, ऐच् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्।

पदान्त यकार वकार से परे अच् की वृद्धि नहीं होती किन्तु उनसे पूर्व के वर्णों को ऐच् अर्थात् ऐ, औ का क्रमशः आगम होता है।

तद्धितेष्वचामादेः **आदि से प्राप्त वृद्धि** का निषेध करके ऐच् आगम का विधान करता है। यथासंख्य होने से यकार से पूर्व **ऐ** और वकार से पूर्व **औ** होता है। ध्यान रहे कि ये आगम हैं आदेश नहीं और यकार तथा वकार से पूर्व में ही होंगे।

वैयाकरणः। व्याकरण पढ़ने या जानने वाला। **व्याकरणम् अधीते वेद वा** लौकिक विग्रह और **व्याकरण अम्** अलौकिक विग्रह है। **तदधीते तद्वेद** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **व्याकरण+अ** बना। यहाँ आदि अच् आकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि प्राप्त थी उसे **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** से निषेध करके य से पहले **ऐ** का आगम हुआ- **व्+ऐ+याकरण+अ** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होने पर **वैयाकरण** बन गया, सु, रुत्वविसर्ग करके **वैयाकरणः** सिद्ध हुआ।

ऐच् आगम का अन्य उदाहरण- **वैयाघ्रिः**। व्याघ्र की सन्तान। **व्याघ्रस्य अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह और **व्याघ्र ङस्** अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से इञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **व्याघ्र+इ** बना है। अब यहाँ आदि अच् आकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि प्राप्त थी उसे **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** से निषेध करके य से पहले **ऐ** का आगम हुआ- **व्+ऐ+याघ्र+इ** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होने पर **वैयाघ्रि** बन गया, सु, रुत्वविसर्ग करके **वैयाघ्रिः** सिद्ध हुआ। औ आगम का उदाहरण आगे बतायेंगे।

१०५५- क्रमादिभ्यो वुन्। क्रमः आदिर्येषां ते क्रमादयस्तेभ्यः। क्रमादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, वुन् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तदधीते तद्वेद** मूल का पूरा अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीयान्त समर्थ क्रम आदि प्रातिपदिकों से 'पढ़ता है' अथवा 'जानता है' अर्थों में वुन् प्रत्यय होता है।

नकार की इत्संज्ञा होती है, **वु** बचता है। उसके स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अक** आदेश हो जाता है।

क्रमकः। वैदिक क्रम पाठ को पढ़ने वाला या जानने वाला। **क्रमम् अधीते** अथवा

क्रमं वेद। क्रम अम् में **क्रमादिभ्यो वुन्** से **वुन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **क्रम+वु** बना। **युवोरनाकौ** से **वु** के स्थान पर **अक** आदेश होकर **क्रम+अक** बना। **यस्येति च** से मकारोत्तरवर्ती अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होकर **क्रमक** बना। स्वादिकार्य करके **क्रमकः** सिद्ध हुआ।

पदकः। वैदिक पद पाठ को पढ़ने वाला या जानने वाला। **पदम् अधीते** अथवा **पदं वेद। पद अम्** में **क्रमादिभ्यो वुन्** से **वुन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पद+वु** बना। **युवोरनाकौ** से **वु** के स्थान पर **अक** आदेश होकर **पद+अक** बना। **यस्येति च** से दकारोत्तरवर्ती अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होकर **पदक** बना। स्वादिकार्य करके **पदकः** सिद्ध हुआ।

शिक्षकः। शिक्षा ग्रन्थ को पढ़ने वाला या जानने वाला। **शिक्षाम् अधीते** अथवा **शिक्षां वेद। शिक्षा अम्** में **क्रमाादिभ्यो वुन्** से **वुन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शिक्षा+वु** बना। **युवोरनाकौ** से **वु** के स्थान पर **अक** आदेश होकर **शिक्षा+अक** बना। **यस्येति च** से क्षा के उत्तरवर्ती आकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होकर **शिक्षक** बना। स्वादिकार्य करके **शिक्षकः** सिद्ध हुआ।

मीमांसकः। मीमांसा शास्त्र को पढ़ने वाला या जानने वाला। **मीमांसाम् अधीते** अथवा **मीमांसां वेद। मीमांसा अम्** से **क्रमादिभ्यो वुन्** से **वुन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मीमांसा+वु** बना। **युवोरनाकौ** से **वु** के स्थान पर **अक** आदेश होकर **मीमांसा+अक** बना। **यस्येति च** से सा के उत्तरवर्ती आकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होकर **मीमांसक** बना। स्वादिकार्य करके **मीमांसकः** सिद्ध हुआ।

परीक्षाः-

१- इस प्रकरण के किन्हीं दस प्रयोगों की सिद्धि दिखायें। १०

२- **नक्षत्रेण युक्तः कालः** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०

३- **संस्कृतं भक्षाः** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०

४- **सास्य देवता** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०

५- **तदधीते तद्वेद** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का रक्ताद्यर्थकप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ चातुरर्थिकाः

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०५६. तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ४।२।६७॥

उदुम्बराः सन्त्यस्मिन् देशे- औदुम्बरो देशः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **चातुरर्थिक प्रकरण** का आरम्भ होता है। इस प्रकरण में चार अर्थों में प्रत्यय का विधान किया गया है, इसलिए **चातुरर्थिक** प्रकरण कहा गया।

ये चार अर्थ हैं-

(१) वह इस में है, ऐसा देश,

(२) उसने बनाया या बसाया- ऐसा नगर,

(३) उसका निवास है, ऐसा देश और

(४) जो उससे दूर नहीं ऐसा देश।

उक्त चारों अर्थ देश के सम्बन्ध में ही होंगे। उनका क्रमशः उदाहरण आगे के सूत्रों से बताये जा रहे हैं।

१०५६- तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि। तस्य नाम तन्नाम, तस्मिन्। तद् प्रथमान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तम्, अस्मिन् सप्तम्यन्तम्, अस्ति क्रियापदम्, इत्यव्ययपदं, देशे सप्तम्यन्तं, तन्नाम्नि सप्तम्यन्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आ रही है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का पीछे से ही अधिकार आ रहा है। **यदि प्रकृति और प्रत्यय के समूह से देश का नाम बनता हो तो 'वह इस देश में है' इस अर्थ में प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।**

तात्पर्य यह है कि जिस शब्द से अण् हो, उस अण्-प्रत्ययान्त शब्द किसी देश की संज्ञा बने। जैसे- उदुम्बर अर्थात् गूलर के पेड़ हैं जिस देश में वह देश **औदुम्बर** कहलाता है। उदुम्बर से अण् प्रत्यय करके बनाये गये **औदुम्बर** शब्द से देश का नाम ज्ञात हो रहा है।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०५७. तेन निर्वृत्तम् ४।२।६८॥

कुशाम्बेन निर्वृत्ता नगरी कौशाम्बी।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०५८. तस्य निवासः ४।२।६९॥

शिबीनां निवासो देशः शैबः।

....

औदुम्बरः। उदुम्बर अर्थात् गूलर के पेड़ हैं जिस देश में वह देश। **उदुम्बराः सन्ति अस्मिन् देशे** लौकिक विग्रह और **उदुम्बर जस्** अलौकिक विग्रह। **तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि** से अण् प्रत्यय करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उदुम्बर+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् उकार की वृद्धि करके औकार आदेश और भसंज्ञक रकारोत्तरवर्ती अकार का लोप करके **औदुम्बर्+अ=औदुम्बर**, सु आदि करके **औदुम्बरः** बना। इसी प्रकार **पर्वताः सन्ति अस्मिन् देशे पार्वतो देशः** आदि भी बनाइये।

१०५७- तेन निर्वृत्तम्। तेन तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, निर्वृत्तं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आ रही है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का पीछे से ही अधिकार आ रहा है।

यदि प्रकृति और प्रत्यय के समूह से देश का नाम बनता हो तो 'उसके बनाया गया या बसाया गया' इस अर्थ में तृतीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।

कौशाम्बी। कुशाम्ब नामक राजा से बनाई या बसाई गई नगरी। **कुशाम्बेन निर्वृत्ता** लौकिक विग्रह और **कुशाम्ब टा** अलौकिक विग्रह। **तेन निर्वृत्तम्** से अण् प्रत्यय करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कुशाम्ब+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् ककारोत्तरवर्ती उकार की वृद्धि करके औकार आदेश और भसंज्ञक रकारोत्तरवर्ती अकार का लोप करके **कौशाम्ब्+अ=कौशाम्ब** बना। विशेष्य **नगरी** के स्त्रीलिङ्ग होने के कारण **टिड्ढाणञ्)** सूत्र से ङीप् होकर **कौशाम्बी** बना। उससे सु आदि, हल्ङ्याब्भ्यो लोप होकर **कौशाम्बी** बना।

१०५८- तस्य निवासः। तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, निवासः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आ रही है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का पीछे से ही अधिकार आ रहा है।

यदि प्रकृति और प्रत्यय के समूह से देश का नाम बनता हो तो 'उसका निवास' इस अर्थ में षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।

शैबः। शिबिनामक क्षत्रियों का निवासस्थान देश। **शिबीनां निवासः** लौकिक विग्रह और **शिबि आम्** अलौकिक विग्रह। **तस्य निवासः** से अण् प्रत्यय करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शिबि+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् इकार की वृद्धि करके

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०५९. अदूरभवश्च ४।२।७०।।

विदिशाया अदूरभवं नगरं वैदिशम्।

लुब्-विधायकं विधिसूत्रम्

१०६०. जनपदे लुप् ४।२।८१।।

जनपदे वाच्ये चातुरार्थिकस्य लुप्।

प्रकृतिवद्विधायकमतिदेशसूत्रम्

१०६१. लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने १।२।५१।।

लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने स्तः।

पञ्चालानां निवासो जनपदः पञ्चालाः। कुरवः। अङ्गाः। वङ्गाः। कलिङ्गाः।

....

ऐकार आदेश और भसंज्ञक बकारोत्तरवर्ती इकार का लोप करके **शैब्+अ=शैब**, सु आदि करके **शैबः** बना।

१०५९- अदूरभवश्च। भवतीति भवः, न दूरम् अदूरम्, अदूरे(निकटे) भवः- अदूरभवः। अदूरभवः प्रथमान्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार बराबर आ रहा है और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** और **तस्य निवासः** से **तस्य** की अनुवृत्ति आती है।

यदि प्रकृति और प्रत्यय के समूह से देश का नाम बनता हो तो 'उसके समीप रहने वाला देश' इस अर्थ में षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।

वैदिशम्। विदिशा नामक नगरी से समीप वाला नगर, देश। **विदिशाया अदूरभवं नगरम्** लौकिक विग्रह और **विदिशा ङस्** अलौकिक विग्रह। **अदूरभवश्च** से अण् प्रत्यय करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विदिशा+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् इकार की वृद्धि करके ऐकार आदेश और भसंज्ञक शकारोत्तरवर्ती आकार का लोप करके **वैदिश्+अ=वैदिश**, सु आदि करके **वैदिशम्** बना।

१०६०- जनपदे लुप्। जनपदे सप्तम्यन्तं, लुप् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्।

जनपद अर्थ वाच्य होने पर चातुरार्थिक प्रत्यय का लुप् होता है।

प्रकरण से ही **चातुरार्थिक का** अर्थ जाना जाता है क्योंकि अष्टाध्यायी में ही चातुरार्थिक प्रत्यय विधायक सूत्रों के बीच में इस सूत्र को पढ़ा गया है। **प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः** के अनुसार **लुक्** की तरह **लुप्** भी प्रत्यय का अदर्शन है। लुप् होने के बाद भी **यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी** अर्थात् लुप् होने के बाद जो शेष रहता है वह लुप्त हुए प्रत्यय का अर्थ को कह देता है।

१०६१. लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने। युक्तेन तुल्यं युक्तवत्। व्यक्तिश्च वचनं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः व्यक्तिवचने। लुपि सप्तम्यन्तं, युक्तवत् अव्ययं, व्यक्तिवचने प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

लुब्-विधायकं विधिसूत्रम्

१०६२. वरणादिभ्यश्च ४।२।८२॥

अजनपदार्थ आरम्भः। वरणानामदूरभवं नगरं वरणाः।

ड्मतुप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०६३. कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् ४।२।८७॥

वकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०६४. झयः ८।२।१०॥

झयन्तान्मतोर्मस्य वः। कुमुद्वान्। नड्वान्।

....

प्रत्यय के लुप् होने पर शब्द में प्रकृति के समान ही लिङ्ग और वचन होते हैं।

सूत्र में आया हुआ **युक्त** शब्द का **प्रकृति** तथा **व्यक्ति** शब्द का **लिङ्ग** और **वचन** शब्द का **संख्या** अर्थ है। तात्पर्य यह है लुप् किये प्रत्यय जिस प्रकृति से विहित हुए हैं, उनके लुप् के बाद प्रकृति के अनुसार ही लिङ्ग और वचन होना चाहिए, उसके विशेष्य के अनुसार नहीं लगाना चाहिए।

पञ्चालाः। पञ्चालों के जनपद। **पञ्चालानां जनपदः**। यहाँ पर विशेष्य पद है **जनपदः** और प्रकृति है **पञ्चालाः**। यह प्रथमान्त बहुवचन और पुँल्लिङ्ग है। **पञ्चाल आम्** से **निवास जनपद** अर्थ में **अण्** का विधान हुआ, उसका **जनपदे लुप्** से लुप् हो गया अर्थात् अदर्शन हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् के लुक् के पश्चात् **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** से **युक्तवद्भाव** अर्थात् प्रकृतिवद्भाव हुआ। फलतः **जनपदः** इस विशेष्य के अनुसार लिङ्गवचन न होकर प्रकृति के अनुसार बहुवचन ही हुआ। जिससे जस् विभक्ति की उपस्थिति होकर **पञ्चालाः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **कुरवः, अङ्गाः, वङ्गाः, कलिङ्गाः** के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए।

१०६२- वरणादिभ्यश्च। वरणा आदिर्येषां ते वरणादयस्तेभ्यः। वरणादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **जनपदे लुप्** से **लुप्** की अनुवृत्ति आती है।

वरणा आदि शब्दों से परे चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् होता है।

जनपद से भिन्न अर्थ में लोप करने के लिए यह सूत्र पढ़ा गया है।

वरणाः। वरणा नदी के निकटवर्ती प्राचीन नगर। **वरणानामदूरभवं नगरम्। वरणा आम्** में **अदूरभवश्च** से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वरणादिभ्यश्च** से लुक् होकर **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** से युक्तवद्भाव होने पर प्रकृति के अनुसार ही स्त्रीलिङ्ग और बहुवचन ही हुआ- **वरणाः**।

१०६३- कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्। कुमुदश्च नडश्च वेतसश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः कुमुदनडवेतसास्तेभ्यः। कुमुदनडवेतसेभ्यः पञ्चम्यन्तं, ड्मतुप् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का पीछे से ही अधिकार आ रहा है।

वकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०६५. मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ८।२।९।।

मवर्णावर्णान्तान्मवणावर्णोपधाच्च यवादिवर्जितात्परस्य मतोर्मस्य वः। वेतस्वान्।

....

कुमुद, नड, वेतस इन तीन समर्थ सुबन्त प्रातिपदिकों से चातुरार्थिक ड्मतुप् प्रत्यय होता है।

डकार, उकार और **पकार** इत्संज्ञक हैं, **मत्** बचता है। **टेः** से **टि** का लोप करने के लिए डित्करण है।

१०६४- **झयः**। झयः पञ्चम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से मतोः और **वः** की अनुवृत्ति आती है।

झय् से परे मतुप् के मकार के स्थान पर वकार आदेश होता है।

झय् प्रत्याहार है।

कुमुद्वान्। श्वेत कमल वाला देश। **कुमुदाः सन्ति अस्मिन् देशे। कुमुद जस्** में **कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्** से **ड्मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कुमुद+मत्** बना। डित्त्वसामर्थ्यात् भसंज्ञा न होने पर भी **टेः** से टिसंज्ञक दकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ, **कुमुद्+मत्** बना। अब **झयः** से दकार से परे **मत्** के मकार के स्थान पर **वकार** आदेश होकर **कुमुद्+वत्=कुमुद्वत्** बना। सु, उपधा को दीर्घ, नुम्, हङ्यादिलोप, तकार का संयोगान्तलोप करके हलन्त की तरह **कुमद्वान्** सिद्ध हुआ। आगे **कुमुद्वन्तौ, कुमुद्वन्तः, कुमुद्वन्तम्, कुमुद्वन्तौ, कुमुद्वतः** आदि बनाये जा सकते हैं।

नड्वान्। शरकंडे वाला देश। **नडाः सन्ति अस्मिन् देशे। नड जस्** में **कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्** से **ड्मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नड+मत्** बना। डित्त्वसामर्थ्यात् भसंज्ञा न होने पर भी **टेः** से टिसंज्ञक डकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ, **नड्+मत्** बना। अब **झयः** के द्वारा दकार से परे **मत्** के मकार के स्थान पर **वकार** आदेश होकर **नड्+वत्=नड्वत्** बना। सु, उपधा को दीर्घ, नुम्, हङ्यादिलोप, तकार का संयोगान्तलोप करके हलन्त की तरह **नड्वान्** सिद्ध हुआ।

१०६५- **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः**। म् च अश्च अनयोः समाहारः-मम्, तस्मात् मात्। यवः आदिर्येषां ते यवादयः। न यवादयोऽयवादयस्तेभ्यः। मात् पञ्चम्यन्तम्, उपधायाः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययं, मतोः षष्ठ्यन्तम्, अयवादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

मकारान्त, अकारान्त, मकारोपध, अकारोपध इन चार प्रकार के प्रातिपदिकों से परे मतु के मकार के स्थान पर वकार आदेश होता है किन्तु यवादिगणपठित शब्दों में यह नहीं होता।

वेतस्वान्। वेंत वाला देश। **वेतसाः सन्ति अस्मिन् देशे। वेतस जस्** में **कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्** से **ड्मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वेतस+मत्** बना। डित्त्वसामर्थ्यात् भसंज्ञा न होने पर भी **टेः** से टिसंज्ञक सकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ, **वेतस्+मत्** बना। अब **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** के द्वारा

ड्वलच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०६६. नडशादाड्ड्वलच् ४।२।८८॥

नड्वलः। शाद्वलः।

वलच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०६७. शिखाया वलच् ४।२।८९॥

शिखावलः।

इति चातुरार्थिकाः॥४७॥

....

सकार से परे **मत्** के मकार के स्थान पर **वकार** आदेश होकर **वेतस्+वत्=वेतस्वत्** बना। सु, उपधा को दीर्घ, नुम्, हङ्यादिलोप, तकार का संयोगान्तलोप करके हलन्त की तरह **वेतस्वान्** सिद्ध हुआ।

१०६६- **नडशादाड्ड्वलच्**। नडश्च शादश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो नडशादं, तस्मात्। नडशादात् पञ्चम्यन्तं, ड्वलच् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का पीछे से ही अधिकार आ रहा है।

नड और शाद इन समर्थ सुबन्त प्रातिपदिकों से चातुरार्थिक ड्वलच् प्रत्यय होता है।

डकार और **चकार** इत्संज्ञक हैं, **वल** बचता है। डित्करण से भसंज्ञक टि का लोप हो जाता है।

नड्वलः। शरकंडों वाला देश। **नडाः सन्ति अस्मिन् देशे। नड जस्** में **नडशादाड्ड्वलच्** से **ड्वलच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नड+वल** बना। डित्त्वसामर्थ्यात् भसंज्ञा न होने पर भी **टेः** से टिसंज्ञक डकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ, **नड्+वल** बना। स्वादिकार्य करके **नड्वलः** सिद्ध हुआ।

शाद्वलः। हरी घास वाला देश। **शादाः सन्ति अस्मिन् देशे। शाद जस्** में **नडशादाड्ड्वलच्** से **ड्वलच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शाद+वल** बना। डित्त्वसामर्थ्यात् भसंज्ञा न होने पर भी **टेः** से टिसंज्ञक डकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ, **शाद्+वल** बना। स्वादिकार्य करके **शाद्वलः** सिद्ध हुआ।

१०६७- **शिखाया वलच्**। शिखायाः पञ्चम्यन्तं, वलच् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का पीछे से ही अधिकार आ रहा है।

शिखा इस समर्थ सुबन्त प्रातिपदिक से चातुरार्थिक वलच् प्रत्यय होता है।

चकार इत्संज्ञक है, **वल** शेष रहता है।

शिखावलः। शिखाओं वाला देश। **शिखाः सन्ति अस्मिन् देशे। शिखा जस्** में **शिखाया वलच्** से **वलच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शिखावल** बना। स्वादिकार्य करके **शिखावलः** सिद्ध हुआ।

सभी प्रकरणों में **तद्धितप्रकरण** अत्यन्त सरल प्रकरण है। अतः ज्यादा समय तद्धित में न लगाकर इस ग्रन्थ को पूर्ण करने का प्रयत्न करें। तद्धित में यह ध्यान देना

आवश्यक है कि किस विभक्ति से युक्त शब्द से किस अर्थ में कौन सा प्रत्यय हुआ है। अर्थ भिन्न होने पर भी तद्धितप्रत्यय प्रायः एक ही होते हैं। आगे बताया जायेगा कि कालवाचक शब्दों से कोई भी अर्थ हो, प्रायः ठक् प्रत्यय ही हुआ करता है। इन विषयों में हम आगे तत्तत् प्रकरणों में बताने की चेष्टा करेंगे। इसके बाद शैषिकप्रकरण में प्रवेश करना है।

इस प्रकरण के समापन के पहले आप शुरु से यहाँ तक कौमुदी की सूत्र, वृत्ति, अर्थ और साधनी सहित पूरी आवृत्ति करें। इसके बाद यह भी देखें कि पाणिनीयाष्टाध्यायी का पारायण कैसे चल रहा है और उसका परिणाम कैसा आ रहा है? सूत्र याद हो रहे हैं कि नहीं। आप यह जान लें कि पाणिनीय अष्टाध्यायी की पूरी जानकारी के विना संस्कृतभाषा का ज्ञान अधूरा ही रह जायेगा।

परीक्षा

१- इस प्रकरण के प्रत्यय एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालिए। १०

२- **तस्य निवासः** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०

३- **तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०

४- **तेन निर्वृत्तम्** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०

५- **अदूरभवश्च** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का चातुरर्थिक-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ शैषिक-प्रकरणम्

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्, अधिकारसूत्रञ्च

१०६८. शेषे ४।२।९२॥

अपत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषस्तत्राणादयः स्युः।
चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम्। श्रावणः शब्दः। औपनिषदः पुरुषः।
दृषदि पिष्टा दार्षदाः सक्तवः। चतुर्भिरुह्यं चातुरं शकटम्।
चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं रक्षः। **तस्य विकारः** इत्यतः प्राक् शेषाधिकारः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **शैषिकप्रकरण** प्रारम्भ होता है। **शेषे** के अधिकार में किये जाने वाले प्रत्ययों को **शैषिक** कहा गया है। इस प्रकरण में अनेक प्रत्ययों का विधान है।

१०६८- शेषे। शेषे सप्तम्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार तथा **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। यह अधिकार और अनुवर्तन पूरे शैषिक में रहेगा। यहाँ पर शेष शब्द का- अपत्य अर्थ से लेकर चतुरर्थी तक के अर्थों से भिन्न अर्थ लिया गया है।

शेष अर्थ में समर्थ प्रातिपदिकों से अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

शेष बचे हुए को कहा जाता है। तद्धितप्रकरण के प्रारम्भ से अर्थात् अपत्याधिकार से चातुरर्थिकप्रकरण तक जितने अर्थों में प्रत्यय हुआ है, उससे भिन्न अर्थ को शेष कहते हैं। शेष अर्थ में अण् प्रत्यय अथवा यथाप्राप्त प्रत्यय होंगे। इस सूत्र को विधिसूत्र और अधिकारसूत्र दोनों माना गया है। विधिसूत्र होने के कारण **चाक्षुषम्** आदि रूपों की सिद्धि होती है और अधिकारसूत्र मानकर आगे के सूत्रों में **शेषे** का अधिकार चला जाता है।

चाक्षुषम्। नेत्रों के द्वारा जिसका ग्रहण होता है, वह अर्थात् रूप। **चक्षुषा गृह्यते** लौकिक विग्रह और **चक्षुष् टा** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **चक्षुष्+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके **चाक्षुष्+अ=चाक्षुष** बना। सु, नपुंसकलिङ्ग होने के कारण सु के स्थान पर अम् आदेश, पूर्वरूप करके **चाक्षुषम्** सिद्ध हुआ।

श्रावणः। कानों के द्वारा जिसका ग्रहण होता है, शब्द। **श्रवणेन गृह्यते** लौकिक विग्रह और **श्रवण टा** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का

घ-ख-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०६९. राष्ट्रावारपाराद् घखौ ४।२।९३॥

आभ्यां क्रमाद् घखौ स्तः शेषे। राष्ट्रे जातादि राष्ट्रियः। अवारपारीणः।

वार्तिकम्- **अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्।**

अवारीणः। पारीणः। पारावारीणः। इह प्रकृतिविशेषाद् घादयष्ट्युट्युलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते, तेषां जातादयोऽर्थविशेषाः समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते।

....

लुक् करके **श्रवण+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके भसंज्ञक अकार का लोप करके **श्रावण्+अ=श्रावण** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **श्रावणः** सिद्ध हुआ।

औपनिषदः। उपनिषद् में जाना गया पुरुष अथवा उपनिषदों के द्वारा प्रतिपादित पुरुष, आत्मा। **उपनिषदि ज्ञातः** अथवा **उपनिषद्भिः प्रतिपतिपादितः** लौकिक विग्रह और **उपनिषद् ङि** अथवा **भिस्** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उपनिषद्+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार, **औपनिषद्+अ=औपनिषद** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **औपनिषदः** सिद्ध हुआ। **औपनिषदः पुरुषः**।

दार्षदाः। पत्थर, चक्की में पीसे गये, सत्तू आदि। **दृषदि पिष्टाः** लौकिक विग्रह और **दृषद् ङि** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दृषद्+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से रपरसहित आदिवृद्धि करके ऋकार के स्थान पर आर्, **द्+आर्+षद्+अ=दार्षद** बना। जस्, पूर्वसवर्णदीर्घ, रुत्वविसर्ग करके **दार्षदाः** सिद्ध हुआ। सत्तू। **दार्षदाः सक्तवः**।

चातुरम्। चार प्राणियों, घोड़ों या व्यक्तियों के द्वारा खींचा जाने वाला छकड़ा या पालकी। **चतुर्भिः उह्यते** लौकिक विग्रह और **चतुर् भिस्** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **चतुर्+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके अकार के स्थान पर आकार, **चातुर्+अ=चातुर** बना। सु, अम्, **चातुरम्** सिद्ध हुआ। **चातुरं शकटम्।**

चातुर्दशम्। चतुर्दशी को दिखाई देने वाला अर्थात् **राक्षस। चतुर्दश्यां दृश्यते** लौकिक विग्रह और **चतुर्दशी ङि** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **चतुर्दशी+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके अकार के स्थान पर आकार, भसंज्ञक ईकार का लोप, **चातुर्दश्+अ=चातुर्दश** बना। सु, अम्, **चातुर्दशम्** सिद्ध हुआ। **चातुर्दशं रक्षः**।

शैषिक आदि प्रत्ययों के सम्बन्ध में एक श्लोक प्रसिद्ध है-

शैषिकान्मतुबर्थीयाच्छैषिको मतुबर्थिकः।

सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते॥ अर्थात् शैषिक प्रत्ययान्त से पुनः उसी रूप वाला शैषिक प्रत्यय नहीं हुआ करता। इसी तरह मतुबर्थीय प्रत्ययान्त से पुनः उसी रूप वाला मतुबर्थीय प्रत्यय भी नहीं होता। एवं च इच्छा अर्थ में हुए सन् प्रत्ययान्त से दुबारा सन् प्रत्यय नहीं होता।

१०६९- **राष्ट्रावारपाराद् घखौ**। राष्ट्रञ्च अवारपारञ्च तयोः समाहारद्वन्द्वो राष्ट्रावारापारम्, तस्मात्। घश्च खश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो घखौ। राष्ट्रावारपाराद् पञ्चम्यन्तं, घखौ प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

शेष अर्थ में राष्ट्र और अवारपार शब्द से क्रमशः घ और ख प्रत्यय होते हैं।

फलतः **राष्ट्र** से **घ** और **अवारपार** से **ख** प्रत्यय हो जाते हैं। इन दोनों प्रत्ययों में अनुबन्ध नहीं है। घ के घकार के स्थान पर और ख के खकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से क्रमशः इय् और ईन् आदेश होंगे जिससे **इय्+अ=इय** और **ईन्+अ=ईन** बनेंगे। घ और ख में जो अकार है, उसके स्थान पर आदेश नहीं होता है। राष्ट्र शब्द से प्रधानतया घ-प्रत्यय ही होता है, जिससे **राष्ट्रियः** बनता है। हिन्दी में छ प्रत्यय वाला, दीर्घ ईकार वाला रूप **राष्ट्रीय** भी प्रचलित है किन्तु संस्कृत में घ-प्रत्यय वाला रूप ही शुद्ध है, छ-प्रत्यय वाला नहीं।

अवारपराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। **अवारपार शब्द के पृथक् होने व विपरीत होने पर भी ख प्रत्यय होता है, ऐसा कहना चाहिए।** जैसे अवारपार शब्द पृथक् हुआ तो **अवार** और **पार** बना एवं विपरीत हुआ तो **पारावार** बना। यह वार्तिक **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** का सहयोगी है।

राष्ट्रियः। राष्ट्र में होने वाला या पैदा हुआ। **राष्ट्रे जातादि** लौकिक विग्रह और **राष्ट्र ङि** अलौकिक विग्रह है। **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** से **घ** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **राष्ट्र+घ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **घ्** के स्थान पर इय् आदेश होकर भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **राष्ट्र्+इय** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **राष्ट्रिय** बना। णित्, कित् आदि न होने के कारण आदिवृद्धि का प्रसंग नहीं है। सु, रुत्व-विसर्ग करके **राष्ट्रियः** सिद्ध हुआ।

अवारपारीणः। इस पार और उस पार होने वाला या पैदा हुआ। **अवारपारे जातादि** लौकिक विग्रह और **अवारपार ङि** अलौकिक विग्रह है। **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** से **ख** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अवारपार+ख** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ख् के स्थान पर ईन् आदेश होकर भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **अवारपार्+ईन**, वर्णसम्मेलन होने पर **अवारपारीन** बना। णित्, कित् आदि न होने के कारण आदिवृद्धि का प्रसंग नहीं है। रेफ से पर नकार को णत्व होकर सु, रुत्व-विसर्ग करके **अवारपारीणः** सिद्ध हुआ।

अब इसी प्रकार **अवारपार** शब्द में विगृहीत(पृथक्) होने पर **अवारपराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्** इस वार्तिक की सहायता से **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** से ख-प्रत्यय करके **अवार** से **अवारीणः** और **पार** से **पारीणः** एवं विपरीत होने पर **पारावार** से **पारावारीणः** भी बना सकते हैं।

इह प्रकृतिविशेषाद् घादयष्ट्युट्युलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते, तेषां जातादयोऽर्थविशेषाः समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते। इस शैषिक प्रकरण में **घ** से लेकर **ट्यु-ट्युल्** प्रत्ययों तक जितने प्रत्यय बताये गये हैं वे विशेष-विशेष प्रकृतियों से ही कहे गये हैं और इनके **जातः** आदि अर्थविशेष और उनकी समर्थ विभक्तियाँ भी आगे के सूत्रों से कही जायेंगी।

य-खञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०७०. ग्रामाद्यखञौ ४।२।९४॥

ग्राम्यः, ग्रामीणः।

ढक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०७१. नद्यादिभ्यो ढक् ४।२।९७॥

नादेयम्। माहेयम्। वाराणसेयम्।

....

१०७०- **ग्रामाद्यखञौ**। ग्रामात् पञ्चम्यन्तं, यखञौ प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

ग्राम शब्द से शेष अर्थ में य और खञ् दोनों प्रत्यय होते हैं।

खञ् में **ञकार** इत्संज्ञक है।

ग्राम्यः। ग्राम में होने वाला या पैदा हुआ। **ग्रामे जातो भवो वा** लौकिक विग्रह और **ग्राम ङि** अलौकिक विग्रह है। **ग्रामाद्यखञौ** से **य** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ग्राम+य** बना। भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **ग्राम्+य** वर्णसम्मेलन होने पर **ग्राम्य** बना। सु और रुत्वविसर्ग करके **ग्राम्यः** सिद्ध हुआ।

ग्रामीणः। ग्राम में होने वाला या पैदा हुआ। **ग्रामे जातादि** लौकिक विग्रह और **ग्राम ङि** अलौकिक विग्रह है। **ग्रामाद्यखञौ** से **खञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ग्राम+ख** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ख् के स्थान पर ईन् आदेश होकर भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **ग्राम्+ईन**, वर्णसम्मेलन होने पर **ग्रामीन** बना। रेफ से परे नकार को णत्व होकर सु, रुत्व-विसर्ग करके **ग्रामीणः** सिद्ध हुआ।

१०७१- **नद्यादिभ्यो ढक्**। नद्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ढक् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

नदी आदि गणपठित समर्थ सुबन्त प्रातिपदिकों से शेष अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है।

ककार इत्संज्ञक है और ढ के ढ् के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से एय् आदेश होकर एय बन जाता है। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि होती है। नदी आदि गण में **नदी, मही, वाराणसी, कौशाम्बी, खादिरी, पूर्, वन, गिरि, माया** आदि शब्द आते हैं।

नादेयम्। नदी में होने वाला या पैदा हुआ। **नद्यां जातादि** लौकिक विग्रह और **नदी ङि** अलौकिक विग्रह है। **नद्यादिभ्यो ढक्** से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नदी+ढ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ढ् के स्थान पर एय् आदेश होकर **नदी+एय** बना। **किति च** से आदिवृद्धि करके भसंज्ञक ईकार का लोप होने पर **नाद्+एय**, वर्णसम्मेलन होने पर **नादेय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **नादेयम्** सिद्ध हुआ।

त्यक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०७२. दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ४।२।९८॥

दाक्षिणात्यः। पाश्चात्त्यः। पौरस्त्यः।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०७३. द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ४।२।१०१॥

दिव्यम्। प्राच्यम्। अपाच्यम्। उदीच्यम्। प्रतीच्यम्।

....

माहेयम्। मही अर्थात् पृथ्वी में होने वाला या पैदा हुआ। **मह्यां जातादि** लौकिक विग्रह और **मही ङि** अलौकिक विग्रह है। **नद्यादिभ्यो ढक्** से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मही+ढ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ढ् के स्थान पर एय् आदेश होकर **मही+एय** बना। **किति च** से आदिवृद्धि करके भसंज्ञक ईकार का लोप होने पर **माह्+एय**, वर्णसम्मेलन होने पर **माहेय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **माहेयम्** सिद्ध हुआ।

वाराणसेयम्। वाराणसी में होने वाला या पैदा हुआ। **वाराणस्यां जातादि** लौकिक विग्रह और **वाराणसी ङि** अलौकिक विग्रह है। **नद्यादिभ्यो ढक्** से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वाराणसी+ढ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ढ् के स्थान पर एय् आदेश होकर **वाराणसी+एय** बना। **किति च** से आदिवृद्धि करके भसंज्ञक ईकार का लोप होने पर **वाराणस्+एय**, वर्णसम्मेलन होने पर **वाराणसेय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **वाराणसेयम्** सिद्ध हुआ।

१०७२- दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्। दक्षिणा च पश्चात् च पुरश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो दक्षिणापश्चात्पुरः, तस्मात्। दक्षिणापश्चात्पुरसः पञ्चम्यन्तं, त्यक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **तद्धिताः**, **समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

दक्षिणा, पश्चात् और पुरस् इन अव्ययों से शैषिक अर्थों में त्यक् प्रत्यय होता है।

ककार इत्संज्ञक है, **त्य** बचता है। कित् होने से **किति च** से आदिवृद्धि हो सकती है।

दाक्षिणात्यः। दक्षिण दिशा में उत्पन्न या होने वाला। **दक्षिणा भवः**। **दक्षिणा** इस अव्यय से **दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्** से **त्यक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दक्षिणात्य** बना। आदिवृद्धि करके स्वादिकार्य होने पर **दाक्षिणात्यः** सिद्ध हुआ।

पाश्चात्त्यः। पीछे अर्थात् पश्चिम दिशा में उत्पन्न या होने वाला। **पश्चात् भवः**। **पश्चात्** इस अव्यय से **दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्** से **त्यक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पश्चात्+त्य** बना। आदिवृद्धि करके स्वादिकार्य होने पर **पाश्चात्त्यः** सिद्ध हुआ।

पौरस्त्यः। पहले या पूर्व में उत्पन्न या होने वाला। **पुरो भवः**। **पुरस्** इस अव्यय से **दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्** से **त्यक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पुरस्+त्य** बना। आदिवृद्धि करके स्वादिकार्य होने पर **पौरस्त्यः** सिद्ध हुआ।

त्यप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०७४. अव्ययात्त्यप् ४।२।१०४॥

वार्तिकम्- **अमेह-क्व-तसि-त्रेभ्य एव।**

अमात्यः। इहत्यः। क्वत्यः। ततस्त्यः। तत्रत्यः।

वार्तिकम्- **त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्।** नित्यः।

....

१०७३- **द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्।** द्यौश्च प्राङ् च अपाङ् च उदङ् च प्रत्यङ् च तेषां समाहारद्वन्द्वो द्युप्रागपागुदक्प्रत्यक्, तस्मात्। द्युप्रागपागुदक्प्रतीचः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

दिव्, प्राञ्च्, अपाञ्च्, उदञ्च् और प्रत्यञ्च् से शैषिक अर्थों में यत्-प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है। दिव् को छोड़कर शेष शब्द क्रमशः प्र, अप, उत् और प्रति उपसर्गपूर्वक अञ्चु धातु से बने हैं। नकार से बने ञकार का लोप आदि करने पर ये प्राच्, अपाच्, उदीच्, प्रत्यच् ऐसे बन जाते हैं। इनसे यत् का विधान किया गया है।

दिव्यम्। स्वर्ग में होने वाला या पैदा हुआ। **दिवि जातादि** लौकिक विग्रह और **दिव् ङि** अलौकिक विग्रह है। **द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दिव्+य** बना। ञित्, णित्, कित् न होने के कारण आदिवृद्धि का प्रसङ्ग नहीं है और हलन्तशब्द होने के कारण भसंज्ञक इकार, अकार के लोप होने का प्रसंग ही नहीं है। वर्णसम्मेलन होने पर **दिव्य** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **दिव्यम्** सिद्ध हुआ।

प्राच्यम्। पूर्व दिशा या पूर्व देश में होने वाला या पैदा हुआ। **प्राचि जातादि** लौकिक विग्रह और **प्राच् ङि** अलौकिक विग्रह है। **द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **प्राच्+य** बना। ञित्, णित्, कित् न होने के कारण आदिवृद्धि का प्रसंग नहीं है एवं हलन्तशब्द होने के कारण भसंज्ञक इकार और अकार के लोप होने का प्रसङ्ग नहीं है। वर्णसम्मेलन होने पर **प्राच्य** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **प्राच्यम्** सिद्ध हुआ। अब इसी प्रकार **अपाच्** से **अपाच्यम्, उदीच्** से **उदीच्यम्** और **प्रतीच्** से **प्रतीच्यम्** भी बनाइये।

१०७४- **अव्ययात्त्यप्।** अव्ययात् पञ्चम्यन्तं, त्यप् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

अव्ययों से परे त्यप् प्रत्यय होता है।

पकार इत्संज्ञक है, **त्य** बचता है। सभी अव्ययों से प्राप्त हो रहा था, अतः अग्रिम वार्तिक से सीमित किया गया है।

अमेहक्वतसित्रेभ्य एव। यह वार्तिक है। **सभी अव्ययों से त्यप् न होकर केवल अमा, इह, क्व, तसिल्-प्रत्ययान्त और त्रल्-प्रत्ययान्त मात्र अव्ययों से त्यप्-प्रत्यय हो।**

वृद्धसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१०७५. वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम् १।१।७३॥

यस्य समुदायस्याचां मध्ये आदिर्वृद्धिस्तद्वृद्धसंज्ञं स्यात्।

वृद्धसंज्ञाविधायकं द्वितीयं संज्ञासूत्रम्

१०७६. त्यदादीनि च १।१।७४॥

वृद्धसंज्ञानि स्युः।

छ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०७७. वृद्धाच्छः ४।२।११४॥

शालीयः। मालीयः। तदीयः।

वार्तिकम्- **वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या।** देवदत्तीयः, दैवदत्तः।

....

अमात्यः। **अमा** इस अव्यय का **साथ** अर्थ लिया गया है। साथ या समीप में होने वाला, मन्त्री आदि। **अमा(सह) वर्तते** लौकिक विग्रह और **अमा**(अव्यय होने के कारण विभक्ति नहीं है) अलौकिक विग्रह है। **अव्ययात्त्यप्** से त्यप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, **अमा+त्य** बना। ञित्, णित्, कित् न होने के कारण आदिवृद्धि का प्रसंग नहीं है और अजादि या यकारादि प्रत्यय परे न मिलने के कारण भसंज्ञक नहीं है, अतः भसंज्ञक के लोप होने का प्रसङ्ग भी नहीं है। **अमात्य** से सु, रुत्व-विसर्ग करके **अमात्यः** सिद्ध हुआ। अब इसी प्रकार से **यहाँ होने वाला** अर्थ में इह से **इहत्यः**, **कहाँ होने वाला** अर्थ में **क्व** से **क्वत्यः**, **वहाँ से होने वाला** अर्थ में तसिल्-प्रत्ययान्त **ततस्** से **ततस्त्यः**, **वहाँ होने वाला** अर्थ में त्रल्-प्रत्ययान्त **तत्र** से **तत्रत्यः**।

त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। **नि इस अव्यय से परे त्यप् प्रत्यय हो ऐसा कहना चाहिए।**

नित्यः। सदा होने वाला। **नि** उपसर्ग से **त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्** वार्तिक के द्वारा **त्यप्** प्रत्यय होकर **नित्यः** बन जाता है। इसका अर्थ सर्वकाल, निश्चित और नियत अर्थ लिया जायेगा।

१०७५- **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्**। वृद्धिः प्रथमान्तं, यस्य षष्ठ्यन्तम्, अचां षष्ठ्यन्तम्, आदिः प्रथमान्तं, तद् प्रथमान्तं, वृद्धं प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

जिस शब्द के अचों के मध्य में आदि अच् वृद्धिसंज्ञक अर्थात् आ, ऐ, औ हो, उस शब्द की वृद्धसंज्ञा होती है।

वृद्धसंज्ञा का फल **वृद्धाच्छः** आदि सूत्रों की प्रवृत्ति है। **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** से **वृद्धम्** की अनुवृत्ति आती है।

१०७६- **त्यदादीनि च**। त्यदादीनि प्रथमान्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्।

सर्वादिगण के अन्तर्गत जो त्यदादिगण पठित है, उसमें पढ़े गये शब्दों की भी वृद्धसंज्ञा होती है।

१०७७- **वृद्धाच्छः**। वृद्धात् पञ्चम्यन्तं, छः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **तद्धिताः**, **समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

छ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०७८. गहादिभ्यश्च ४।२।१३८॥

गहीयः।

....

वृद्धसंज्ञक सुबन्त प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थ में छ प्रत्यय होता है।

छ में **छकार** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ईय् आदेश होकर **ईय** बन जाता है।

शालीयः। शाला अर्थात् घर में होने वाला या पैदा हुआ। **शालायां जातादि** लौकिक विग्रह और **शाला ङि** अलौकिक विग्रह है। **शाला** में आदि अच् आकार वृद्धिसंज्ञक है, अतः इसकी **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** से वृद्धसंज्ञा हुई है। इससे **वृद्धाच्छः** के द्वारा छ प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शाला+छ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **छ्** के स्थान पर **ईय्** आदेश होकर **शाला+ईय** बना। भसंज्ञक आकार का लोप करके **शाल्+ईय** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **शालीय** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **शालीयः** सिद्ध हुआ।

मालीयः। माला में होने वाला सूता, धागा आदि। **मालायां जातादि** लौकिक विग्रह और **माला ङि** अलौकिक विग्रह है। **माला** में आदि अच् आकार वृद्धिसंज्ञक है, अतः इसकी **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** से वृद्धसंज्ञा हुई है। इससे **वृद्धाच्छः** के द्वारा **छ** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **माला+छ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **छ्** के स्थान पर **ईय्** आदेश होकर **माला+ईय** बना। भसंज्ञक आकार का लोप करके **माल्+ईय** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **मालीय** बना और सु, रुत्वविसर्ग करके **मालीयः** सिद्ध हुआ।

तदीयः। उसका यह। **तस्य अयम्** लौकिक विग्रह और **तद् ङस्** अलौकिक विग्रह है। तद् त्यदादिगणीय है, अतः इसकी **त्यदादीनि च** से वृद्धसंज्ञा हुई है। इससे **वृद्धाच्छः** से **छ** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **तद्+छ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **छ्** के स्थान पर **ईय्** आदेश होकर **तद्+ईय** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **तदीय** बना और सु, रुत्वविसर्ग करके **तदीयः** सिद्ध हुआ।

वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या। यह वार्तिक है। **नामवाचक शब्दों की विकल्प से वृद्धसंज्ञा होती है।** देवदत्त नामवाचक शब्द है, वृद्धसंज्ञा की प्राप्ति नहीं थी तो इस वार्तिक से नामवाचक की वैकल्पिक वृद्धसंज्ञा की गई। अतः **वृद्धाच्छः** से छ होकर **देवदत्तीयः**, सिद्ध हुआ। वृद्धसंज्ञा न होने के पक्ष में छ भी नहीं हुआ तो **शेषे** से अण्-प्रत्यय, आदिवृद्धि, भसंज्ञक का लोप करके सु आदि करने पर **दैवदत्तः** भी बनता है। इसी प्रकार सभी नामवाचक शब्दों के विषय में समझना चाहिए।

देवदत्तीयः, दैवदत्तः। देवदत्त का यह। **देवदत्तस्यायम्। देवदत्त ङस्** से **वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या** वार्तिक द्वारा विकल्प से **वृद्धसंज्ञा** करके **वृद्धाच्छः** से **छ** प्रत्यय, ईय् आदेश आदि होकर **देवदत्तीयः** बनता है। संज्ञा न होने के पक्ष में **तस्येदम्** से **अण्** होकर **दैवदत्तः** बन जाता है।

१०७८- गहादिभ्यश्च। गह आदिर्येषां ते गहादयस्तेभ्यः। गहादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं,

खञ्-छ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०७९. युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च ४।३।१॥

चाच्छः। पक्षेऽण्। युवयोर्युष्माकं वायं युष्मदीयः। अस्मदीयः।

युष्माकास्माकादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०८०. तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ४।३।२॥

युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्तः खञि अणि च।

यौष्माकीणः। आस्माकीनः।

यौष्माकः। आस्माकः।

तवक-ममकादेशविधायकं विधिसूत्रम्

११८१. तवकममकावेकवचने ४।३।३॥

एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोस्तवक-ममकौ स्तः, खञि अणि च।

तावकीनः, तावकः। मामकीनः, मामकः। छे तु-

....

द्विपदं सूत्रम्। **वृद्धाच्छः** से छः की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

गह आदि गणपठित समर्थ प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थ में छ प्रत्यय होता है।

गहादिगण में गह, अन्तःस्थ, सम, विषम, उत्तम आदि अनेक शब्द आते हैं।

गहीयः। गुफा आदि स्थानों में होने वाला। **गहे भवः** लौकिक विग्रह और **गह ङि** अलौकिक विग्रह है। **गहादिभ्यश्च** से **छ** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गह्+छ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **छ्** के स्थान पर **ईय्** आदेश होकर **गह्+ईय** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **गहीय** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **गहीयः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **समे भवः समीयः, विषमे भवो विषमीयः** इत्यादि भी बना सकते हैं।

१०७९- युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च। युष्मत् च अस्मत् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो युष्मदस्मदौ, तयोः। युष्मदस्मदोः षष्ठ्यन्तं, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं, खञ् प्रथमान्तं, चाव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। सूत्र में च पढ़ा गया है, उससे **गर्तोत्तरपदाच्छः** से **छ** लाकर **छ** भी होता है ऐसा अर्थ कर लिया जाता है।

युष्मद् और अस्मद् शब्द से विकल्प से खञ् और छ प्रत्यय होते हैं।

वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **शेषे** से अण् प्रत्यय हो जाता है।

१०८०- तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ। युष्माकश्च अस्माकश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो युष्माकास्माकौ। तस्मिन् सप्तम्यन्तम्, अणि सप्तम्यन्तं, चाव्ययपदं, युष्माकास्माकौ प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **तस्मिन्** से पूर्वसूत्र **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च** का खञ् लिया गया है। **युष्मदस्मदोः** की अनुवृत्ति भी है।

खञ् और अण् के परे होने पर युष्मद् और अस्मद् शब्द के स्थान पर युष्माक और अस्माक आदेश होते हैं।

त्व-मावादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०८२. प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ७।२।९८॥

मपर्यन्तयोरेतयोरेकार्थवाचिनोस्त्वमौ स्तः, प्रत्यये उत्तरपदे च परतः। त्वदीयः। मदीयः। त्वत्पुत्रः। मत्पुत्रः।

....

१०८१- **तवकममकावेकवचने**। तवकश्च ममकश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्तवकममकौ। तवकममकौ प्रथमान्तम्, एकवचने सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। यह सूत्र भी पूर्वसूत्र की तरह ही काम करता है।

केवल एकवचन का विषय हो तो खञ् और अण् के परे होने पर युष्मद् और अस्मद् शब्द के स्थान पर तवक और ममक आदेश होते हैं।

यहाँ पर **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** के नियम से युष्मद् के स्थान पर तवक और अस्मद् के स्थान पर ममक आदेश होंगे।

१०८२- **प्रत्ययोत्तरपदयोश्च**। प्रत्ययश्च उत्तरपदं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः प्रत्ययोत्तरपदे, तयोः। प्रत्ययोत्तरपदयोः सप्तम्यन्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **त्वमावेकवचने** से **त्वमौ** और **एकवचने**, **युष्मदस्मदोरनादेशे** से **युष्मदस्मदोः** और **मपर्यन्तस्य** से **मपर्यन्तस्य** की अनुवृत्ति आती है।

एकवचन का विषय हो और प्रत्यय या उत्तरपद परे हो तो युष्मद् और अस्मद् शब्द के मपर्यन्त भाग अर्थात् युष्म् और अस्म् के स्थान पर त्व और म आदेश होते हैं।

यहाँ पर भी **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** के नियम से युष्मद् के स्थान पर त्व और अस्मद् के स्थान पर म आदेश होंगे।

युष्मदीयः, यौष्माकीणः, यौष्माकः, तावकीनः, तावकः, त्वदीयः। युष्मद् शब्द के इन अन्तिम तीन रूप केवल एकवचन के विषय हैं और आदि के तीन रूप द्विवचन और बहुवचन के विषय हैं। पहले के तीन रूपों का लौकिक विग्रह **युवयोर्युष्माकं वा अयम्** (तुम दोनों का या तुम सब का यह) तथा शेष तीन रूपों का विग्रह **तव अयम्**(तुम्हारा यह) इसी प्रकार पहले के तीन रूपों का अलौकिक विग्रह **युष्मद् ओस्** या **युष्मद् आम्** शेष तीन रूपों का **युष्मद् ङस्** है। ऐसी अवस्था में **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** से **छ** प्रत्यय करके प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से छ के छकार के स्थान पर ईय् आदेश करके **युष्मद्+ईय** बना, वर्णसम्मेलन होने पर **युष्मदीय** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **युष्मदीयः** सिद्ध हुआ। यह प्रथमरूप है। **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** से **खञ्** होने के पक्ष में अनुबन्ध जकार का लोप करके ख बचा, उस खकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ईन् आदेश करके ईन बना, इस तरह **युष्मद्+ईन** बन गया। **ईन** के परे रहते **तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ** से युष्मद् के स्थान पर **युष्माक** आदेश हुआ, **युष्माक+ईन** बना। खञ् में विद्यमान ञित्त्व स्थानिवद्भावेन **ईन** में भी आ गया और उसे **ञित्** मानकर **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर यु के उकार के स्थान पर औकार होकर **यौष्माक+ईन** बना। भसंज्ञक ककारोत्तरवर्ती अकार का **यस्येति च** से लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **यौष्माकीन** बना।

षकार से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व होकर **यौष्माकीण** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **यौष्माकीणः** सिद्ध हुआ। यह दूसरा रूप है। छ और खञ् ये दोनों प्रत्यय वैकल्पिक हैं। इनके न होने के पक्ष में **शेषे** से अण् प्रत्यय होगा और अण् के परे होने पर भी **तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ** से **युष्माक** आदेश होगा ही। इस तरह से **युष्माक+अ** इस स्थिति में आदिवृद्धि होने पर **यौष्माक+अ**, भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **यौष्माक्+अ**, वर्णसम्मेलन करके **यौष्माक** और रुत्व-विसर्ग करके **यौष्माकः** सिद्ध हुआ। यह तीसरा रूप है। इस प्रकार से पहले के तीन रूप सिद्ध हुए। अब एकवचन का विषय होने पर **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** से खञ् होने के पक्ष में **युष्मद्+ईन** बना। **तवकममकावेकवचने** से **युस्मद्** के स्थान पर **तवक** आदेश हुआ, **तवक+ईन** बना। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **तावक्+ईन=तावकीन**, सु, रुत्वविसर्ग होने पर **तावकीनः** सिद्ध हुआ। यह चौथा रूप है। छ प्रत्यय होने के पक्ष का रूप आगे बतायेंगे। उसके पहले खञ् और छ न होने के पक्ष में **शेषे** से अण् प्रत्यय हुआ। अण् के परे होने पर भी **तवकममकावेकवचने** से **तवक** आदेश हुआ, **तवक+अ** बना। आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **तावक**, सु, रुत्वविसर्ग करके **तावकः** सिद्ध हुआ। यह पाँचवाँ रूप है। अब **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** से **छ** होने के पक्ष में छकार के स्थान पर ईय् आदेश करके **युष्मद्+ईय** बना। प्रत्यय के परे रहते **प्रत्ययोत्तरपदयोश्च** से **युष्मद्** के मपर्यन्त भाग **युष्म्** के स्थान पर **त्व** आदेश हुआ। **त्व+अद्+ईय** बना। **त्व+अद्** में **अतो गुणे** से पररूप एकादेश होकर **त्वद्** बना। **त्वद्+ईय=त्वदीय** बनने के बाद सु, रुत्वविसर्ग करके **त्वदीयः** सिद्ध हुआ। यह छठा रूप है। इस प्रकार से युष्मद् शब्द से छ, खञ् और अण् प्रत्यय एवं उसके स्थान पर युष्माक, तवक और त्व आदेश करने से छः रूप **युष्मदीयः**, **यौष्माकीणः**, **यौष्माकः**, **तावकीनः**, **तावकः**, **त्वदीयः** सिद्ध हुए। आप ध्यान लगाकर साधेंगे तो कोई कठिन नहीं है। इनके स्त्रीलिङ्ग में टाप्, ङीप् आदि करके **युष्मदीया**, **यौष्माकीणा**, **यौष्माकी**, **तावकीना**, **तावकी**, **त्वदीया** ये रूप बनते हैं और नपुंसकलिङ्ग में **युष्मदीयम्**, **यौष्माकीणम्**, **यौष्माकम्**, **तावकीनम्**, **तावकम्**, **त्वदीयम्** बन जाते हैं। पुँल्लिङ्ग में राम की तरह, स्त्रीलिङ्ग में **युष्मदीया**, **यौष्माकीणा**, **तावकीना** और **त्वदीया** के रूप रमा शब्द की तरह तथा **यौष्माकी**, **तावकी** के रूप नदी की तरह चलेंगे। नपुंसक में ज्ञान शब्द की तरह होते ही हैं।

अस्मदीयः, **आस्माकीनः**, **आस्माकः**, **मामकीनः**, **मामकः**, **मदीयः**। **अस्मद्** शब्द के ये अन्तिम तीन रूप केवल एकवचन के विषय हैं और आदि के तीन रूप द्विवचन और बहुवचन के विषय हैं। पहले के तीन रूपों का लौकिक विग्रह **आवयोः अस्माकं वा अयम्** (हम दोनों का या हम सब का यह) तथा शेष तीन रूपों का विग्रह **मम अयम्**(मेरा यह) इसी प्रकार पहले के तीन रूपों का अलौकिक विग्रह **अस्मद् ओस्** या **अस्मद् आम्** शेष तीन रूपों का **अस्मद् ङस्** है। ऐसी अवस्था में **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** से **छ** प्रत्यय करके प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् और **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से छ के छकार के स्थान पर ईय् आदेश करके **अस्मद्+ईय** बना, वर्णसम्मेलन होने पर **अस्मदीय** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **अस्मदीयः** सिद्ध हुआ। यह प्रथम रूप है। **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** से **खञ्** होने के पक्ष में अनुबन्ध ञकार का लोप करके ख बचा। खकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से

म-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०८३. मध्यान्मः ४।३।८॥

मध्यम:।

....

ईन् आदेश करके ईन बना, इस तरह **अस्मद्+ईन** बन गया। **ईन** के परे रहते **तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ** से अस्मद् के स्थान पर **अस्माक** आदेश हुआ, **अस्माक+ईन** बना। खञ् में विद्यमान ञित्त्व स्थानिवद्भावेन ईन में भी आ गया और ञित् मानकर **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर अकार के स्थान पर आकार होकर **आस्माक+ईन** बना। भसंज्ञक ककारोत्तरवर्ती अकार का **यस्येति च** से लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **आस्माकीन** बना। षकार से परे न होने के कारण **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व नहीं हो सका **आस्माकीन** ही रहा। सु, रुत्वविसर्ग करके **आस्माकीनः** सिद्ध हुआ। यह दूसरा रूप है। छ और खञ् ये दोनों प्रत्यय वैकल्पिक हैं। इनके न होने के पक्ष में **शेषे** से अण् प्रत्यय होगा और अण् के परे होने पर भी **तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ** से अस्माक आदेश होगा ही। इस तरह से **अस्माक+अ,** आदिवृद्धि होने पर **आस्माक+अ,** भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **आस्माक्+अ,** वर्णसम्मेलन करके **आस्माक** और रुत्व-विसर्ग करके **आस्माकः** सिद्ध हुआ। यह तीसरा रूप है। इस प्रकार से पहले के तीन रूप सिद्ध हुए। अब एकवचन का विषय होने पर **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** से खञ् होने के पक्ष में **अस्मद्+ईन** बना। **तवकममकावेकवचने** से **अस्मद्** के स्थान पर **ममक** आदेश हुआ, **ममक+ईन** बना। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **मामक्+ईन=मामकीन,** सु, रुत्वविसर्ग होने पर **मामकीनः** सिद्ध हुआ। यह चौथा रूप है। छ प्रत्यय होने के पक्ष का आगे बतायेंगे। उसके पहले खञ् और छ न होने के पक्ष में **शेषे** से अण् प्रत्यय हुआ। अण् के परे होने पर भी **तवकममकावेकवचने** से **ममक** आदेश हुआ, **ममक+अ** बना। आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **मामक,** सु, रुत्वविसर्ग करके **मामकः** सिद्ध हुआ। यह पाँचवाँ रूप है। अब **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** से **छ** होने के पक्ष में छकार के स्थान पर ईय् आदेश करके **अस्मद्+ईय** बना। प्रत्यय के परे रहते **प्रत्ययोत्तरपदयोश्च** से **अस्मद्** के मपर्यन्त भाग **अस्म्** के स्थान पर **म** आदेश हुआ। **म+अद्+ईय** बना। **म+अद्** में **अतो गुणे** से पररूप एकादेश होकर **मद्** बना। **मद्+ईय=मदीय** बनने के बाद सु, रुत्वविसर्ग करके **मदीयः** सिद्ध हुआ। यह छठा रूप है। इस प्रकार से **अस्मद्** शब्द से **छ, खञ्** और **अण्** प्रत्यय एवं उसके स्थान पर अस्माक, ममक और म आदेश करने से छः रूप **अस्मदीयः, आस्माकीनः, आस्माकः, मामकीनः, मामकः, मदीयः** सिद्ध हुए। इनके स्त्रीलिङ्ग में टाप् आदि करके **अस्मदीया, आस्माकीना, आस्माकी, मामकीना, मामकी, मदीया** ये रूप बनते हैं और नपुंसकलिङ्ग में **अस्मदीयम्, आस्माकीनम्, आस्माकम्, मामकीनम्, मामकम्, मदीयम्** बन जाते हैं। पुँल्लिङ्ग में राम की तरह, स्त्रीलिङ्ग में **आस्माकीना, अस्मदीया, मामकीना, मदीया** के रूप रमा शब्द की तरह तथा **आस्माकी, मामकी** के रूप नदी की तरह चलेंगे। नपुंसकलिङ्ग में ज्ञान शब्द की तरह ही होते हैं।

१०८३- मध्यान्मः। मध्यात् पञ्चम्यन्तं, मः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

ठञ्-विधायकं विधिसूत्रम्

१०८४. कालाट्ठञ् ४।३।११॥

कालवाचिभ्यष्ठञ् स्यात्। कालिकम्। मासिकम्। सांवत्सरिकम्।
वार्तिकम्- **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः।** सायम्प्रातिकः। पौनःपुनिकः।

....

मध्य शब्द से शैषिक अर्थ में 'म' प्रत्यय होता है।

मध्यमः। मध्य में होने वाला या उत्पन्न। **मध्ये जातः** यह लौकिक विग्रह है और **मध्य ङि** यह अलौकिक विग्रह है। **मध्यान्मः** से **म** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मध्यम** बना। स्वादिकार्य करके **मध्यमः** सिद्ध हुआ।

१०८४- **कालाट्ठञ्**। कालात् पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

कालवाचक सभी शब्दों से ठञ् ही होता है, शेष अर्थ में।

ठञ् में ञकार इत्संज्ञक है, अतः आदिवृद्धि होती है। ठ के स्थान पर **ठस्येकः** से इक आदेश होता है।

कालिकम्। काल अर्थात् समय पर होने वाला या उत्पन्न। **काले जातं भवं वा** यह लौकिक विग्रह है और **काल ङि** यह अलौकिक विग्रह है। **कालाट्ठञ्** से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश करके **काल+इक** बना। आदिवृद्धि होने पर आकार के स्थान पर आकार ही हुआ और भसंज्ञक अकार का लोप हुआ- **काल्+इक=कालिक** बना। प्रातिपदिक होने से सु आया और उसके स्थान पर **अम्** आदेश, पूर्वरूप होकर **कालिकम्** सिद्ध हुआ।

मासिकम्। महीने में होने वाला या उत्पन्न। **मासे जातं भवं वा** लौकिक विग्रह और **मास ङि** अलौकिक विग्रह है। **कालाट्ठञ्** से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश करके **मास+इक** बना। आदिवृद्धि होने पर आकार के स्थान पर आकार ही हुआ और भसंज्ञक अकार का लोप हुआ- **मास्+इक=मासिक** बना। सामान्य में नपुंसक है। प्रातिपदिकत्वेन सु आया और उसके स्थान पर अम् आदेश और पूर्वरूप होकर **मासिकम्** सिद्ध हुआ।

सांवत्सरिकम्। वर्ष में होने वाला या उत्पन्न। **संवत्सरे जातं भवं वा** लौकिक विग्रह और **संवत्सर ङि** अलौकिक विग्रह है। **कालाट्ठञ्** से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश करके **संवत्सर+इक** बना। आदिवृद्धि होने पर अकार के स्थान पर आकार हुआ और भसंज्ञक अकार का लोप हुआ- **सांवत्सर्+इक=सांवत्सरिक** बना। सु, उसके स्थान पर अम् आदेश और पूर्वरूप होकर **सांवत्सरिकम्** सिद्ध हुआ।

अव्ययानां भमात्रे टिलोपः। यह वार्तिक है। **भसंज्ञामात्र होते ही अव्ययों के टि का लोप होता है**। जिस प्रकार से **नस्तद्धिते** सूत्र नकारान्त भसंज्ञक टि का लोप करता है और **टेः** डित् परे रहने पर टि का लोप करता है, उसी तरह अव्ययों में नहीं होता। वहाँ पर भसंज्ञा हुई है तो इतने मात्र से इस वार्तिक के बल पर अव्ययों के टि का लोप हो जाता है।

सायम्प्रातिकम्। शाम सबेरे होने वाला या उत्पन्न। **सायं च प्रातश्च सायंप्रातः, तत्र जातं भवं वा** लौकिक विग्रह और **सायम्प्रातर्** अलौकिक विग्रह है। यह अव्यय भी है। **कालाट्ठञ्** से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश करके **सायम्प्रातर्+इक** बना।

एण्य-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०८५. प्रावृष एण्यः ४।३।१७॥

प्रावृषेण्यः।

निपातनार्थं विधिसूत्रम्

१०८६. सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ४।३।२३॥

सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्योऽव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यष्ट्युट्युलौ स्तस्तयोस्तुट् च। सायन्तनम्। चिरन्तनम्। **प्राह्णे प्रगे** अनयोरेदन्तत्वं निपात्यते। प्राह्णेतनम्। प्रगेतनम्। दोषातनम्।

....

आदिवृद्धि होने पर आकार के स्थान पर आकार ही हुआ और भसंज्ञक अकार, इकार न होने के कारण टि का लोप प्राप्त नहीं था, इसलिए वार्तिक बनाया- **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः।** इससे **सायम्प्रातर्** में टिसंज्ञक अर् का लोप हुआ, **सायम्प्रात्+इक=सायम्प्रातिक** बना। सामान्य में नपुंसक। सु आया, उसके स्थान पर अम् आदेश और पूर्वरूप होकर **सायम्प्रातिकम्** सिद्ध हुआ।

पौनःपुनिकम्। बार बार होने वाला या उत्पन्न। पुनर् यह अव्यय है, इसका दो बार उच्चारण है पुनःपुनर्। **पुनःपुनः जातं भवं वा** लौकिक विग्रह और **पुनःपुनर्** अलौकिक विग्रह है। **कालाट्ठञ्** से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश करके **पुनःपुनर्+इक** बना। आदिवृद्धि होने पर पु के उकार के स्थान पर औकार हुआ और भसंज्ञक अकार, इकार न होने के कारण टि का लोप प्राप्त नहीं था, इसलिए वार्तिक बनाया- **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः।** इससे **पौनःपुनर्** में टिसंज्ञक **अर्** का लोप हुआ, **पौनःपुन्+इक=पौनःपुनिक** बना। सु, उसके स्थान पर अम् आदेश और पूर्वरूप होकर **पौनःपुनिकम्** सिद्ध हुआ।

१०८५. प्रावृष एण्यः। प्रावृषः पञ्चम्यन्तम्, एण्यः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। **कालाट्ठञ्** से **कालात्** की अनुवृत्ति आती है।

कालवाचक प्रावृष् इस समर्थ प्रातिपदिक से एण्य प्रत्यय होता है।

काठाट्ठञ् को बाधकर **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** से अण् प्राप्त होता है, उसका भी यह अपवाद है।

प्रावृषेण्यः। वर्षा ऋतु में होने वाला। **प्रावृषि भवः। प्रावृष् ङि** में ठञ् को बाधकर अण् प्राप्त, उसे भी बाधकर के **प्रावृष एण्यः** से **एण्य** प्रत्यय हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **प्रावृष्+एण्य** बना। वर्णसम्मेलन करके स्वादिकार्य करने पर **प्रावृषेण्यः** सिद्ध हो जाता है।

१०८६- सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च। सायञ्च चिरञ्च प्राह्णे च प्रगे च अव्ययञ्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययानि, तेभ्यः। ट्युश्च ट्युल् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः ट्युट्युलौ। सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यः पञ्चम्यन्तं, ट्युट्युलौ प्रथमान्तं, तुट् प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदं सूत्रम्। **कालाट्ठञ्** से वचनविपरिणाम करके

जातेऽर्थेऽणादिविधायकं विधिसूत्रम्

१०८७. तत्र जातः ४।३।२५॥

सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च स्युः।
स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः। उत्से जातः औत्सः। राष्ट्रे जातो राष्ट्रियः।
अवारपारे जात अवारपारीण इत्यादि।

....

कालेभ्यः की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

कालवाचक सायम्, चिरम्, प्राह्णे, प्रगे और कालवाची अव्ययों से तद्धितसंज्ञक ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं और उनको तुट् का आगम भी होता है।

इन प्रत्ययों में **टकार** और **लकार** इत्संज्ञक हैं। **यु** बचता है। आगम **तुट्** में उकार और टकार इत्संज्ञक हैं, **त्** बचता है। यु के स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश हो जाता है। टित्करण का प्रयोजन स्त्रीत्व की विवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र की प्रवृत्ति है। **सायम्** और **चिरम्** शब्द को **ट्यु** और **ट्युल्** प्रत्यय के योग में **मकारान्तत्व निपातन** था तथा **प्राह्णे** और **प्रगे** इन दो शब्दों से इसी सूत्र से **एदन्तत्व निपातन** भी किया जाता है।

सायन्तनम्। शाम को होने वाला। **साये भवम्। साय ङि** में **कालाट्ठञ्** से **ठञ्** प्राप्त था, उसे बाधकर **सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च** से **साय** को मकारान्तत्व निपातन सहित **ट्यु** प्रत्यय अनुबन्धलोप, **युवोरनाकौ** से **यु** के स्थान पर **अन** आदेश करके उसको **तुट्** का आगम भी हुआ। **सायम्+त्+अन** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मकार** को अनुस्वार और परसवर्ण करने के बाद वर्णसम्मेलन करके **सायन्तन** बनता है एवं स्वादिकार्य करने पर **सायन्तनम्** सिद्ध हो जाता है।

चिरन्तनम्। अधिक काल तक होने वाला। **चिरे भवम्। चिर ङि** में **कालाट्ठञ्** से **ठञ्** प्राप्त था, उसे बाधकर **सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च** से **चिर** को मकारान्तत्व निपातन सहित **ट्यु** प्रत्यय अनुबन्धलोप, **युवोरनाकौ** से **यु** के स्थान पर **अन** आदेश करके उसको **तुट्** का आगम भी हुआ। **चिरम्+त्+अन** बना। **मकार** को अनुस्वार और परसवर्ण करने के बाद वर्णसम्मेलन करके **चिरन्तन** बनता है एवं स्वादिकार्य करने पर **चिरन्तनम्** सिद्ध हो जाता है।

प्रगेतनम्। प्रातः होने वाला। **प्रगे भवम्। प्रगे ङि** में **कालाट्ठञ्** से **ठञ्** प्राप्त था, उसे बाधकर **सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च** से **प्रगे** को एदन्तत्व निपातन सहित **ट्यु** प्रत्यय अनुबन्धलोप, **युवोरनाकौ** से **यु** के स्थान पर **अन** आदेश करके उसको **तुट्** का आगम भी हुआ। **प्रगे+त्+अन** बना और वर्णसम्मेलन करके स्वादिकार्य करने पर **प्रगेतनम्** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **प्राह्णेतनम्** भी बनता है।

दोषातनम्। रात्रि में होने वाला। **दोषा भवम्। दोषा** इस अव्यय से **सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च** से **ट्यु** प्रत्यय अनुबन्धलोप, **युवोरनाकौ** से **यु** के स्थान पर **अन** आदेश करके उसको **तुट्** का आगम भी हुआ। **दोषा+त्+अन** बना और वर्णसम्मेलन करके स्वादिकार्य करने पर **दोषातनम्** सिद्ध हो जाता है।

११८७- तत्र जातः। तत्र इति सप्तम्यन्तस्यानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, जातः प्रथमान्तं द्विपदमिदं

ठप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०८८. प्रावृषष्ठप् ४।३।२६॥

एण्यापवादः। प्रावृषिकः।

....

सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से उसमें 'उत्पन्न हुआ' इस अर्थ में शैषिक अर्थ में होने वाले अण् आदि प्रत्यय और घ आदि प्रत्यय यथासम्भव होते हैं।

यह सूत्र यह निर्णय नहीं करता कि कौन सा प्रत्यय हो किन्तु यह निर्णय करता है कि **उसमें उत्पन्न हुआ** इस अर्थ में प्रत्यय हो। अतः जहाँ जिसकी प्राप्ति न्याय्य होगी वहाँ पर वही प्रत्यय होगा।

स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश में उत्पन्न हुआ पदार्थ। **स्रुघ्ने जातः** लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र जातः** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **स्रुघ्न+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ।

औत्सः। उत्स अर्थात् झरने में उत्पन्न हुआ पदार्थ, मेढक आदि। **उत्से जातः** लौकिक विग्रह और **उत्स ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र जातः** के अर्थ में **उत्सादिभ्योऽञ्** से अञ् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **उत्स+अ** बना है। ञित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **औत्स्+अ=औत्स** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **औत्सः** सिद्ध हुआ।

राष्ट्रियः। राष्ट्र में उत्पन्न हुआ पदार्थ। **राष्ट्रे जातः** लौकिक विग्रह और **राष्ट्र ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र जातः** से **घ** हुआ क्योंकि पहले भी **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** के द्वारा राष्ट्र शब्द से घ प्रत्यय ही हुआ है अर्थात् यहाँ भी यही न्याय्य है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **राष्ट्र+घ** बना है। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से घ के घकार के स्थान पर इय् आदेश करके इय, **राष्ट्र+इय** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **राषट्र्+इय=राष्ट्रिय** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **राष्ट्रियः** सिद्ध हुआ।

अवारपारीणः। इस पार और उस पार उत्पन्न हुआ पदार्थ। **अवारपारे जातः** लौकिक विग्रह और **अवारपार ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र जातः** से **ख** हुआ क्योंकि पहले भी **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** के द्वारा अवारपार शब्द से ख प्रत्यय ही हुआ है अर्थात् यहाँ भी यही न्याय्य है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अवारपार+ख** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ख के खकार के स्थान पर ईन् आदेश करके ईन, **अवारपार+ईन** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **अवारपार्+ईन=अवारपारिन** बना, णत्व करके सु और सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **अवारपारीणः** सिद्ध हुआ। इब इसी प्रकार **पारावारीणः, अवारीणः, पारीणः** आदि भी बनाइये।

१०८८- **प्रावृषष्ठप्**। प्रावृषः पञ्चम्यन्तं, ठप् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तत्र जातः** का अनुवर्तन एवं **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

प्रायभवेऽर्थेऽणादिविधायकं विधिसूत्रम्

१०८९. प्रायभवः ४।३।३९॥

तत्रेत्येव। स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति स्रौघ्नः।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०९०. सम्भूते ४।३।४१॥

स्रुघ्ने सम्भवति स्रौघ्नः।

....

सप्तम्यन्त प्रावृष् इस प्रातिपदिक से जातः के अर्थ में ठप् प्रत्यय होता है।

यह **प्रावृष एण्यः** का अपवाद है। अन्य जगहों पर प्रावृष् से एण्य ही होता है किन्तु **जातः** अर्थ में ठप् होगा। पकार इत्संज्ञक है, **ठ** शेष रहता है। ठ के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश होता है।

प्रावृषिकः। वर्षा में उत्पन्न होने वाला। **प्रावृषि जातः** लौकिक विग्रह और **प्रावृष् ङि** अलौकिक विग्रह है। **प्रावृष एण्यः** को बाधकर **तत्र जातः** के अर्थ में **प्रावृषष्ठप्** से **ठप्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इक आदेश होकर **प्रावृष्+इक** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **प्रावृष्+इक=प्रावृषिक** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **प्रावृषिकः** सिद्ध हुआ।

१०८९- **प्रायभवः**। प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **तत्र जातः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'प्रायः होता है' या 'प्रायः होने वाला' इस अर्थ में शैषिक अर्थ में होने वाले अण् आदि प्रत्यय और घ आदि प्रत्यय यथासम्भव होते हैं।

यह सूत्र यह निर्णय नहीं करता कि कौन सा प्रत्यय हो किन्तु यह निर्णय करता है कि **प्रायः होता है** इस अर्थ में प्रत्यय हो। अतः जहाँ जिसकी प्राप्ति न्याय्य होगी, वहाँ वही प्रत्यय होगा।

स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश में ज्यादातर होने वाला पदार्थ। **स्रुघ्ने जातः** लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न ङि** अलौकिक विग्रह है। **प्रायभवः** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **स्रुघ्न+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **औत्सः, राष्ट्रियः, पारावारीणः** भी बनाइये।

१०९०- **सम्भूते**। सम्भूते सप्तम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **तत्र जातः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'होने की सम्भावना है' इस अर्थ में शैषिक अर्थ में होने वाले अण् आदि प्रत्यय और घ आदि प्रत्यय यथासम्भव होते हैं।

ढञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०९१. कोशाड्ढञ् ४।३।४२॥

कौशेयं वस्त्रम्।

तत्र भवेऽर्थेऽणादिविधायकं विधिसूत्रम्

१०९२. तत्र भवः ४।३।५३॥

स्रुघ्ने भवः स्रौघ्नः। औत्सः। राष्ट्रियः।

....

यह सूत्र भी यह निर्णय नहीं करता कि कौन सा प्रत्यय हो किन्तु यह निर्णय करता है कि **'सम्भव होता है'** इस अर्थ में प्रत्यय हो। अतः जहाँ जिसकी प्राप्ति न्याय्य होगी वहाँ वही प्रत्यय होगा।

स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश में सम्भव होने वाला पदार्थ। **स्रुघ्ने सम्भूतः** लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न ङि** अलौकिक विग्रह है। **सम्भूते** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **स्रुघ्न+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **औत्सः, राष्ट्रियः, पारावारीणः** भी बनाइये।

१०९१- कोशाड्ढञ्। कोशात् पञ्चम्यन्तं, ढञ् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तत्र जातः** से **तत्र** और **सम्भूते** से **सम्भूते** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक कोश-शब्द से 'होने की सम्भावना है' इस अर्थ में शैषिक ढञ् प्रत्यय होता है।

ञकार इत्संज्ञक है, ढ बचता है। उसमें केवल **ढ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **एय्** आदेश होकर **एय** बन जाता है। यह **सम्भूते** से प्राप्त अण् का बाधक है।

स्रौघ्नः। रेशम धागे में होने वाला वस्त्र। **कोशे सम्भूतम्** लौकिक विग्रह और **कोश ङि** अलौकिक विग्रह है। **सम्भूते** से अण् प्राप्त था, उसे बाधकर **कोशाड् ढञ्** से **ढञ्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **कोश+ढ** बना। **ढकार** के स्थान पर **एय्** आदेश होकर **कोश+एय** बना। ञित् होने के कारण आदिवृद्धि करके ओकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **कौश्+एय=कौशेय** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **कौशेयः** सिद्ध हुआ।

१०९२- तत्र भवः। तत्र इति सप्तम्यन्तस्यानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, भवः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'वहाँ होता है या वहाँ होने वाला' इस अर्थ में शैषिक अर्थ में होने वाले अण् आदि प्रत्यय और घ आदि प्रत्यय यथासम्भव होते हैं।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०९३. दिगादिभ्यो यत् ४।३।५४॥

दिश्यम्। वर्ग्यम्।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०९४. शरीरावयवाच्च ४।३।५५॥

दन्त्यम्। कण्ठ्यम्।

वार्तिकम्- **अध्यात्मादेष्ठञ् इष्यते।** अध्यात्मं भवम् आध्यात्मिकम्।

....

यह सूत्र भी यह निर्णय नहीं करता कि कौन सा प्रत्यय हो किन्तु यह निर्णय करता है कि **वहाँ होता है** इस अर्थ में प्रत्यय हों। अतः जहाँ जिसकी प्राप्ति न्याय्य होगी, वहाँ वही प्रत्यय होगा।

स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश में होने वाला पदार्थ। **स्रुघ्ने भवः** लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र भवः** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **स्रुघ्न+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **औत्सः, राष्ट्रियः, पारावारीणः** आदि भी बनाइये।

१०९३- दिगादिभ्यो यत्। दिक् आदिर्येषां ते दिगादयस्तेभ्यः। दिगादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ दिक् आदि प्रातिपदिकों से 'वहाँ होता है या वहाँ होने वाला' इस शैषिक अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है।

दिश्यम्। दिशा में होने वाला पदार्थ। **दिशि भवम्** लौकिक विग्रह और **दिश् ङि** अलौकिक विग्रह है। **दिगादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **दिश्+य** बना है। वर्णसम्मेलन, सु, अम् आदेश करके **दिश्यम्** सिद्ध हुआ।

वर्ग्यम्। वर्ग में होने वाला पदार्थ। **वर्गे भवम्** लौकिक विग्रह और **वर्ग ङि** अलौकिक विग्रह है। **दिगादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **वर्ग+य** बना है। **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन, सु, अम् आदेश करने पर **वर्ग्यम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह **आदौ भवः आद्यः, अन्ते भवः अन्त्यः, रहसि भवं रहस्यम्** आदि भी **दिगादि** मान कर के बना सकते हैं।

१०९४- शरीरावयवाच्च। शरीरस्य अवयवः शरीरावयवः, षष्ठीतत्पुरुषः। तस्मात्। शरीरावयवात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तत्र भवः** यह सूत्र अनुवृत्त होता है और **दिगादिभ्यो यत्** से **यत्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

उभयपदवृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

१०९५. अनुशतिकादीनाञ्च ७।३।२०।।

एषामुभयपदवृद्धिर्ञिति णिति किति च।

आधिदैविकम्। आधिभौतिकम्। ऐहलौकिकम्। पारलौकिकम्।

आकृतिगणोऽयम्।

....

शरीर के अवयव वाचक सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'होने वाला' इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है।

दन्त्यम्। दन्त में होने वाला पदार्थ, मल आदि कुछ भी। **दन्तेषु भवम्** लौकिक विग्रह और **दन्त सुप्** अलौकिक विग्रह है। **शरीरावयवाच्च** से यत् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **दन्त+य** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **दन्त्+य=दन्त्य** बना, सु के बाद अम् आदेश और पूर्वरूप करके **दन्त्यम्** सिद्ध हुआ।

कण्ठ्यम्। कण्ठ में होने वाला पदार्थ, मल आदि कुछ भी। **कण्ठे भवम्** लौकिक विग्रह और **कण्ठ ङि** अलौकिक विग्रह है। **शरीरावयवाच्च** से यत् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **कण्ठ+य** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **कण्ठ्+य=कण्ठ्य** बना, सु के बाद अम् आदेश और पूर्वरूप करके **कण्ठ्यम्** सिद्ध हुआ।

इसी तरह शरीर के अवयववाची अन्य शब्दों से भी यत् करके निम्नानुसार रूप सिद्ध कीजिए-

कर्णे भवम्-कर्ण्यम्=कान में होने वाला।
ओष्ठे भवम्-ओष्ठ्यम्= होंठ में होने वाला।
उरसि भवम्-उरस्यम्=छाती में होने वाला।
मुखे भवम्-मुख्यम्=मुख में होने वाला।
तालुनि भवम्-तालव्यम्=तालु में होने वाला।
मूर्धनि भवम्-मूर्धन्यम्=मूर्धा में होने वाला।

अध्यात्मादेष्ठञिष्यते। यह वार्तिक है। **'तत्र भवः' अर्थ में ही अध्यात्म आदि शब्दों से ठञ् होता है।** ञकार इत्संज्ञक है। ठ के स्थान पर **ठस्येकः** से इक आदेश हो जाता है।

आध्यात्मिकम्। आत्मनि इति अध्यात्मम्=आत्मा(के विषय) में, **भवम्**=होने वाला। **अध्यात्म** शब्द अव्ययीभाव समास में निष्पन्न होने के कारण अव्यय है। उसके परे रहते विभक्ति की स्थिति नहीं है। अतः विभक्ति रहित **अध्यात्म** से **अध्यात्मादेष्ठञिष्यते** से **ठञ्** हुआ, अनुबन्धलोप, **अध्यात्म+ठ** प्रातिपदिकसंज्ञा, ठ के स्थान पर **ठस्येकः** से इक आदेश करके **अध्यात्म+इक** बना। आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **आध्यात्म्+इक=आध्यात्मिक** बना। सु, अम्, पूर्वरूप, **आध्यात्मिकम्** सिद्ध हुआ।

अध्यात्मादि को आकृतिगण मानकर अनेक तादृश(उसी प्रकार के) शब्दों से भी **तत्र भवः** अर्थ में ठञ् करके निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि की जा सकती है-

इह भवम्=ऐहिकम् (यहाँ अथवा इस लोक में होने वाला)
अमुत्र भवम्=आमुत्रिकम् (वहाँ अर्थात् उस लोक में होने वाला)
त्रिवर्णेषु भवः=त्रैवर्णिकः (तीनों वर्णों का धर्म आदि)
स्वभावे भवः=स्वाभाविको (स्वाभाविक गुण आदि)

१०९५- **अनुशतिकादीनां च।** अनुशतिक आदिर्येषां ते अनुशतिकादयस्तेषाम्। अनुशतिकादीनां षष्ठ्यन्तं च अव्ययपदं द्विपदं सूत्रम्। **हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च** से **पूर्वपदस्य** की, **तद्धितेष्वचामादेः** से **अचाम्, आदेः** एवं **तद्धिते** की, **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की, **अचो ञ्णिति** से **ञ्णिति** की और **किति च** से **किति** की अनुवृत्ति आती है। **उत्तरपदस्य** अधिकार आता है।

अनुशतिकादिगण में पठित शब्दों में पूर्वपद और उत्तरपद अर्थात् उभयपद दोनों पदों की वृद्धि होती है, ञित् णित् और कित् प्रत्यय के परे रहते।

जहाँ दो पदों में समास होकर एकपद हो गये तो भी **पदत्व** तो दोनों पदों में है। **तद्धितेष्वचामादेः** पूर्वपद में ही आदिवृद्धि करता है और जहाँ दोनों पदों में आदिवृद्धि करना अभीष्ट है, वहाँ के लिए यह सूत्र पठित है।

आधिदैविकम्। देवों में होने वाला। **अधिदेवम्** शब्द अव्ययीभाव समास में निष्पन्न होने के कारण अव्यय है। **अधिदेव ङि** से **अध्यात्मादेष्ठञिष्यते** से **ठञ्** हुआ, अनुबन्धलोप, **अधिदेव+ठ** प्रातिपदिकसंज्ञा, **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **अधिदेव+इक** बना। यहाँ पर **अधि** पूर्वपद और **देव** उत्तरपद है। **अनुशतिकादीनां च** से दोनों पदों के आदि अचों की वृद्धि हुई। **अ** की वृद्धि **आ** और **ए** की वृद्धि **ऐ** होने से **आधि दैव+इक**, भसंज्ञक **अकार** का लोप करके **आधिदैव्+इक=आधिदैविक** बना। सु, अम्, पूर्वरूप, **आधिदैविकम्** सिद्ध हुआ।

आधिभौतिकम्। पृथ्वी आदि भूतों में होने वाला। **अधिभूतम्** शब्द अव्ययीभाव समास में निष्पन्न होने के कारण अव्यय है। **अधिभूत ङि** से **अध्यात्मादेष्ठञिष्यते** से **ठञ्** हुआ, अनुबन्धलोप, **अधिभूत+ठ** प्रातिपदिकसंज्ञा, **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **अधिभूत+इक** बना। यहाँ पर **अधि** पूर्वपद और **देव** उत्तरपद है। **अनुशतिकादीनां च** से दोनों पदों के आदि अचों की वृद्धि हुई। **अ** की वृद्धि **आ** और **उ** की वृद्धि **औ** होने से **आधिभौत+इक**, भसंज्ञक अकार का लोप करके **आधिभौत्+इक=आधिभौतिक** बना। सु, अम्, पूर्वरूप, **आधिभौतिकम्** सिद्ध हुआ।

ऐहलौकिकम्। इस लोक में होने वाला। **इह च तस्मिन् लोके=इहलोके। इह लोक ङि** में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्तिलुक् के बाद पुनः स्वादिकार्य होने से **इहलोकः, इहलोकौ** आदि बनते हैं। **इहलोके भवम्** यह लौकिक विग्रह और **इहलोक ङि** अलौकिक विग्रह है। **इहलोक** से **अध्यात्मादेष्ठञिष्यते** के द्वारा **ठञ्** हुआ, अनुबन्धलोप, **इहलोक+ठ** प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक्, **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **इहलोक+इक** बना। यहाँ पर **इह** पूर्वपद और **लोक** उत्तरपद है। **अनुशतिकादीनां च** से दोनों पदों के आदि अचों की वृद्धि हुई। **इ** की वृद्धि **ऐ** और **ओ** की वृद्धि **औ** होने से **ऐहलौक+इक**, भसंज्ञक अकार का लोप करके **ऐहलौक्+इक=ऐहलौकिक** बना। सु, अम्, पूर्वरूप, **ऐहलौकिकम्** सिद्ध हुआ।

छ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०९६. जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ४।३।६२॥

जिह्वामूलीयम्। अङ्गुलीयम्।

छ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०९७. वर्गान्ताच्च ४।३।६३॥

कवर्गीयम्।

....

पारलौकिकम्। पर लोक में होने वाला। **परश्चासौ लोकः** में कर्मधारयसमास है। **परलोके भवम्** लौकिक विग्रह है। **परलोक ङि** से **अध्यात्मादेष्ठञिष्यते** से **ठञ्** हुआ, अनुबन्धलोप, **परलोक+ठ** प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्तिलुक् होकर **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **परलोक+इक** बना। यहाँ **पर** पूर्वपद और **लोक** उत्तरपद है। **अनुशतिकादीनां च** से दोनों पदों के आदि अचों की वृद्धि हुई। **अ** की वृद्धि **आ** और **ओ** की वृद्धि **औ** होने से **पारलौक+इक**, भसंज्ञक **अकार** का लोप करके **पारलौक्+इक= पारलौकिक** बना। सु, अम्, पूर्वरूप, **पारलौकिकम्** सिद्ध हुआ।

१०९६- **जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः**। जिह्वाया मूलं जिह्वामूलम्, जिह्वामूलञ्च अङ्गुलिश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो जिह्वामूलाङ्गुलिः, सौत्रं पुंस्त्वम्, तस्माद्। जिह्वामूलाङ्गुलेः पञ्चम्यन्तं, छः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। **तत्र भवः** की अनुवृत्ति आती है।

जिह्वामूल और अङ्गुलि शब्द से तत्र भवः **अर्थ में छ-प्रत्यय होता है।**

ये दोनों शब्द शरीर के अवयववाचक होने के कारण **शरीरावयवाच्च** से यत् प्रत्यय की प्राप्ति थी, उसे बाधकर यह **छ** करता है। **छ** के **छकार** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ईय् आदेश होकर **ईय** बन जाता है।

जिह्वामूलीयम्। जीभ के मूल भाग में होने वाला। **जिह्वामूले भवं** लौकिक विग्रह और **जिह्वामूल ङि** अलौकिक विग्रह है। **जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः** से छ प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके छ के छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ईय् आदेश करके **जिह्वामूल+ईय** बना। ञित्, णित् या कित् न होने के कारण आदिवृद्धि तो नहीं हुई किन्तु भसंज्ञक अकार का लोप हुआ, **जिह्वामूल्+ईय=जिह्वामूलीय** बना। सु प्रत्यय, उसके स्थान पर **अम्** आदेश, पूर्वरूप करके **जिह्वामूलीयम्** सिद्ध हुआ।

अङ्गुलीयम्। अङ्गुली में होने वाला। **अङ्गुल्यां भवं** लौकिक विग्रह और **अङ्गुलि ङि** अलौकिक विग्रह है। **जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः** से छ प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके छ के छ् के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ईय् आदेश करके **अङ्गुल+ईय** बना। ञित्, णित् या कित् न होने के कारण आदिवृद्धि तो नहीं हुई किन्तु भसंज्ञक ईकार का लोप हुआ, **अङ्गुल्+ईय=अङ्गुलीय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **अङ्गुलीयम्** सिद्ध हुआ।

१०९७- **वर्गान्ताच्च**। वर्गः अन्ते यस्य स वर्गान्तस्तस्मात्। वर्गान्तात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययपदं

अणादिविधायकं विधिसूत्रम्

१०९८. तत आगतः ४।३।७४॥

स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः।

....

द्विपदमिदं सूत्रम्। **तत्र भवः** इस सूत्र का अनुवर्तन होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है और **जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः** से छः की अनुवृत्ति आती है।

वर्ग शब्द अन्त में हो ऐसे शब्दों से भी छ प्रत्यय होता है।

सामान्यतया **तत्र भवः** अर्थ में **तत्र भवः** से अण् प्रत्यय की प्राप्ति थी तो इस सूत्र को बनाकर के वर्गान्त से छ का विधान किया गया। छ के स्थान पर ईय् आदेश तो होता ही है।

कवर्गीयम्। कवर्ग में होने वाला। **कवर्गे भवं** लौकिक विग्रह और **कवर्ग ङि** अलौकिक विग्रह है। **वर्गान्ताच्च** से छ प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके छ के छ् के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ईय् आदेश करके **कवर्ग+ईय** बना। ञित्, णित् या कित् न होने के कारण आदिवृद्धि तो नहीं हुई किन्तु भसंज्ञक अकार का लोप हुआ, **कवर्ग्+ईय=कवर्गीय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **कवर्गीयम्** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार से **चवर्गे भवं, चवर्ग ङि** से **चवर्गीयम्** बनाइये।

१०९८- तत आगतः। ततः पञ्चम्यन्तानुकरण लुप्तपञ्चमीकम्, आगतः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

पञ्चम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'वहाँ से आया हुआ' इस अर्थ में अण् आदि या यथायोग्य घ आदि प्रत्यय होते हैं।

स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश से आया हुआ। **स्रुघ्नाद् आगतः** लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न ङसि** अलौकिक विग्रह है। **तत आगतः** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्रुघ्न+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ।

माथुरः। मथुरा नामक देश से आया हुआ। **मथुराया आगतः** लौकिक विग्रह और **मथुरा ङसि** अलौकिक विग्रह है। **तत आगतः** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मथुरा+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके अकार के स्थान पर आकार आदेश और भसंज्ञक आकार का लोप करके **माथुर्+अ=माथुर** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **माथुरः** सिद्ध हुआ।

अन्य शब्दों से भी **तत आगतः** अर्थ में अणादि करके देखिए। जैसे-

राष्ट्रादागतः, **राष्ट्रियः**। यहाँ घ प्रत्यय होगा क्योंकि शेष अर्थ में **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** से घ हुआ था। इसी प्रकार अवारादागतः **अवारीणः**, पारादागतः **पारीणः**, **अवारपारीणः**, **पारावारीणः**, **ग्राम्यः-ग्रामीणः** आदि आदि।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०९९. ठगायस्थानेभ्यः ४।३।७५॥

शुल्कशालाया आगतः शौल्कशालिकः।

वुञ्-विधायकं विधिसूत्रम्

११००. विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् ४।३।७७॥

औपाध्यायकः। पैतामहकः।

....

१०९९- **ठगायस्थानेभ्यः**। आयस्य स्थानानि आयस्थानानि, तेभ्यः। ठक् प्रथमान्तम्, आयस्थानेभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तत आगतः** की अनुवृत्ति एवं **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

आयस्थान के वाचक पञ्चम्यन्त प्रातिपदिकों से 'आगतः' अर्थ में तद्धितसंज्ञक ठक् प्रत्यय होता है।

ककार इत्संज्ञक है, **ठ** बचता है। उसके स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश हो जाता है। आमदनी के स्थानों को **आयस्थान** कहते हैं। जैसे कि **आयकर, मनोरंजन कर, चुंगी, शुल्क लिए जाने वाले स्थान** आदि।

शौल्कशालिकः। चुंगी से आया हुआ। **शुल्कशालाया आगतः। शुल्क ङसि** से **ठगायस्थानेभ्यः** से **ठक्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ठस्येकः** से **इक** आदेश, कित् होने के कारण **आदिवृद्धि** करके **भसंज्ञक** आकार का लोप, स्वादिकार्य होकर **शौल्कशालिकः** सिद्ध हो जाता है।

११००- **विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्**। विद्या च योनिश्च विद्यायोनी, विद्यायोनिकृताः सम्बन्धाः विद्यायोनिसम्बन्धाः, तेभ्यः। विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः पञ्चम्यन्तं, वुञ् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **ततः आगतः** इस सूत्र का अनुवर्तन और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

विद्याकृत सम्बन्ध वाले या योनिकृतसम्बन्ध वाले पञ्चम्यन्त प्रातिपदिकों से 'तत आगतः' अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है।

विद्यासम्बन्ध शिक्षा-ग्रहण से और योनिसम्बन्ध जन्म से होता है। **ञकार** इत्संज्ञक है और **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अक** आदेश होता है। उपाध्याय, आचार्य, शिष्य आदि विद्यासम्बन्ध के हैं और पिता, पितामह, माता, मातामह, मातुल आदि योनिसम्बन्ध के हैं।

औपाध्यायकः। उपाध्याय से आया हुआ विचार, मत, सलाह आदि। **उपाध्यायाद् आगतः** लौकिक विग्रह और **उपाध्याय ङसि** अलौकिक विग्रह है। **विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्** से **वुञ्** हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उपाध्याय+वु** बना है। वु के स्थान पर **युवोरनाकौ** से अक आदेश करने पर **उपाध्याय+अक** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **औपाध्याय्+अक=औपाध्यायक** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **औपाध्यायकः** सिद्ध हुआ।

पैतामहकः। पितामह अर्थात् दादा से आया हुआ। **पितमहाद् आगतः** लौकिक

रूप्य-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११०१. हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ४।३।८१॥

समादागतं समरूप्यम्। पक्षे- **गहादित्वाच्छः।** समीयम्। विषमीयम्। देवदत्तरूप्यम्। दैवदत्तम्।

मयट्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११०२. मयट् च ४।३।८२॥

सममयम्। देवदत्तमयम्।

....

विग्रह और **पितामह ङसि** अलौकिक विग्रह है। **विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्** से वुञ् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **पितामह+वु** बना है। वु के स्थान पर **युवोरनाकौ** से अक आदेश करने पर **पितामह+अक** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके इकार के स्थान पर ऐकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **पैतामह्+अक=पैतामहक** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **पैतामहकः** सिद्ध हुआ। अब इसी प्रकार से **आचार्यादागतः-आचार्यकः, शिष्यादागतः-शैष्यकः, मातुलादागतः-मातुलकः** आदि बनाये जा सकते हैं।

११०१- हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः। हेतवश्च मनुष्याश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो हेतुमनुष्याः, तेभ्यः। हेतुमनुष्येभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तं, रूप्यः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **ततः आगतः** इस सूत्र का अनुवर्तन एवं **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

हेतुवाचक एवं मनुष्यवाचक पञ्चम्यन्त प्रातिपदिकों से 'तत आगतः' के अर्थ में विकल्प से रूप्य प्रत्यय होता है।

समरूप्यम्। सम अर्थात् उचित हेतु से आया हुआ सामान। **समादागतम्। सम ङसि** से **हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः** से विकल्प से **रूप्य** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके स्वादिकार्य करने पर **समरूप्यम्** बना। यह कार्य वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **गहादिभ्यश्च** से **छ** प्रत्यय, उसके स्थान पर **ईय** आदेश होकर भसंज्ञक अकार के लोप के बाद वर्णसम्मेलन, स्वादिकार्य करके **समीयम्** बन जाता है। इसी तरह **विषमादागतं** इस विग्रह में **विषम ङसि** से **विषमरूप्यम्, विषमीयम्** भी बनाइये।

देवदत्तरूप्यम्, दैवदत्तम्। देवदत्त से आया हुआ सामान। यह मनुष्यवाचक का उदाहरण है। **देवदत्तादागतम्** लौकिक विग्रह और **देवदत्त ङसि** अलौकिक विग्रह में **हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः** से विकल्प से **रूप्य** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके स्वादिकार्य करने पर **देवदत्तरूप्यम्** बना। यह कार्य वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **तत आगतः** से **अण्** होकर भसंज्ञक अकार के लोप के बाद वर्णसम्मेलन, स्वादिकार्य करके **दैवदत्तम्** भी बन जाता है।

११०२- मयट् च। मयट् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **ततः आगतः** इस सूत्र का अनुवर्तन एवं **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकाता्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

अणादिविधायकं विधिसूत्रम्

११०३. प्रभवति ४।३।८३॥

हिमवतः प्रभवति हैमवती गङ्गा।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११०४. तद् गच्छति पथिदूतयोः ४।३।८५॥

स्रुघ्नं गच्छति स्रौघ्नः, पन्था दूतो वा।

....

हेतुवाचक एवं मनुष्यवाचक पञ्चम्यन्त प्रातिपदिकों से 'तत आगतः' के अर्थ में मयट् प्रत्यय भी होता है।

टकार इत्संज्ञक है, **मय** बचता है।

सममयम्। सम अर्थात् उचित हेतु से आया हुआ सामान। **समादागतम्**। **सम ङसि** से **मयट् च** सूत्र के द्वारा **मयट्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके स्वादिकार्य करने पर **सममयम्** बना। इसी तरह **विषमादागतं** इस विग्रह में **विषम ङसि** से **विषममयम्** भी बनाइये।

११०३- प्रभवति। प्रभवति क्रियापदम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तत आगतः** से **ततः** और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

पञ्चम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'प्रभवति' अर्थात् सर्वप्रथम प्रकाशित होना या दिखाई देना अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

हैमवती गङ्गा। हिमालय में सर्वप्रथम दिखाई देने वाली गङ्गा। **हिमवतः प्रभवति** लौकिक विग्रह और **हिमवत् ङसि** अलौकिक विग्रह है। **प्रभवति** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **हिमवत्+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके इकार के स्थान पर ऐकार आदेश, **हैमवत्+अ=हैमवत** बना। **हैमवत्** यह शब्द स्त्रीलिङ्ग गङ्गा का विशेषण होने के कारण स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होकर **हैमवती** बना। सु के बाद नदी की तरह **हैमवती** सिद्ध हुआ।

११०४- तद् गच्छति पथिदूतयोः। पन्थाश्च दूतश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः पथिदूतौ, तयोः पथिदूतयोः। तत् द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, गच्छति क्रियापदं, पथिदूतयोः सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

द्वितीयान्त समर्थ प्रातिपदिकों से 'गच्छति' अर्थात् जाने वाला अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं किन्तु जाने वाला यदि मार्ग या दूत हो तो।

स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश को जाने वाला मार्ग या दूत। **स्रुघ्नं गच्छति पन्था दूतो वा** लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न अम्** अलौकिक विग्रह है। **तद् गच्छति पथिदूतयोः** से **अण्** हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्रुघ्न+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११०५. अभिनिष्क्रामति द्वारम् ४।३।८६॥

स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति स्रौघ्नं कान्यकुब्जद्वारम्।

अणादिविधायकं विधिसूत्रम्

११०६. अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ४।३।८७॥

शारीरकम् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शारीरकीयः।

....

११०५- **अभिनिष्क्रामति द्वारम्।** अभिनिष्क्रामति क्रियापदं, द्वारं प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तद् गच्छति पथिदूतयोः** से **तत्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

द्वितीयान्त समर्थ प्रातिपदिकों से 'अभिनिष्क्रामति' अर्थात् उस ओर निकलता है इस अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं किन्तु निकलने वाला यदि द्वार हो तो।

स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश की ओर निकलने वाला कान्यकुब्ज देश का द्वार। **स्रुघ्नम् अभिनिष्क्रामति कान्यकुब्जद्वारम्। स्रुघ्न अम्** अलौकिक विग्रह है। **अभिनिष्क्रामति द्वारम्** से **अण्** हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्रुघ्न+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ।

११०६- **अधिकृत्य कृते ग्रन्थे।** अधिकृत्य ल्यबन्तम् अव्ययम्, कृते सप्तम्यन्तं, ग्रन्थे सप्तम्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तद् गच्छति पथिदूतयोः** से **तद्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

द्वितीयान्त प्रातिपदिक से 'आधार मानकर बनाया गया ग्रन्थ' इस अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

अधिकृत्य का अर्थ और भी कर सकते हैं, जैसे- अधिकार कर, प्रस्तुत कर, विषय बनाकर आदि।

शारीरकीयः। शारीरक अर्थात् आत्मा को विषय बनाकर बनाया गया ग्रन्थ। **शारीरकम् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः** लौकिक विग्रह और **शारीरक अम्** अलौकिक विग्रह है। **अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः** से अणादि छ हुआ क्योंकि यह शब्द आदि अच् वृद्धि वाला है, इसलिए इसकी **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** से वृद्धसंज्ञा हुई है, और **वृद्धाच्छः** ने वृद्धसंज्ञक से छ प्रत्यय होने का निर्णय दे दिया है। इसके बाद **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से छ के स्थान पर ईय्, **शारीरक्+ईय** भसंज्ञक अकार का लोप करके **शारीरक्+ईय=शारीरकीय** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **शारीरकीयः** सिद्ध हुआ।

शाकुन्तलम्। शकुन्तला नामक नायिका को विषय बनाकर बनाया गया नाटक-ग्रन्थ। **शकुन्तलाम् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः** लौकिक विग्रह और **शकुन्तला अम्** अलौकिक विग्रह है। **अधिकृत्य कृते ग्रन्थे** से अण् हुआ, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप करके

अणादिविधायकं विधिसूत्रम्

११०७. सोऽस्य निवासः ४।३।८९॥

स्रुघ्नो निवासोऽस्य स्रौघ्नः।

अणादिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११०८. तेन प्रोक्तम् ४।३।१०१॥

पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्।

....

शाकुन्तल्+अ=शाकुन्तल बना, सु के बाद नपुंसक में अम्, पूर्वरूप करके **शाकुन्तलम्** सिद्ध हुआ। **कालिदास** का **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** नामक नाटक बहुत प्रसिद्ध है।

११०७- सोऽस्य निवासः। सः प्रथमान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, अस्य षष्ठ्यन्तं, निवासः प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

प्रथमान्त प्रातिपदिकों से 'वह इसका निवास है' इस अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश निवास है जिसका, वह। **स्रुघ्नः निवासः अस्य** लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न सु** अलौकिक विग्रह है। **सोऽस्य निवासः** से अण् हुआ, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **स्रुघ्न+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ।

११०८- तेन प्रोक्तम्। तेन तृतीयान्तं लुप्तपञ्चमीकं, प्रोक्तं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

'उसके द्वारा कहा गया' इस अर्थ में तृतीयान्त प्रातिपदिक से अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

पाणिनीयम्। पाणिनि जी के द्वारा कहा गया, व्याकरण शास्त्र। **पाणिनिना प्रोक्तम्** लौकिक विग्रह और **पाणिनि टा** अलौकिक विग्रह है। **तेन प्रोक्तम्** से छ हुआ क्योंकि यह शब्द आदि अच् वृद्धि वाला है, इसलिए इसकी **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** से वृद्धसंज्ञा हुई है, और **वृद्धाच्छः** ने वृद्धसंज्ञक से छ प्रत्यय होने का निर्णय दे दिया है। इसके बाद **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **छ्** के स्थान पर ईय्, **पाणिनि+ईय** भसंज्ञक इकार का लोप करके **पाणिन्+ईय=पाणिनीय** बना, सु के बाद अम्, पूर्वरूप करके **पाणिनीयम्** सिद्ध हुआ।

चान्द्रम्। चन्द्र के द्वारा कहा गया, शास्त्र। **चन्द्रेण प्रोक्तम्** लौकिक विग्रह और **चन्द्र टा** अलौकिक विग्रह है। **तेन प्रोक्तम्** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके अकार के स्थान पर आकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **चान्द्र्+अ=चान्द्र** बना, सु के बाद अम् आदेश, पूर्वरूप करके **चान्द्रम्** सिद्ध हुआ।

अणादिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११०९. तस्येदम् ४।३।१२०॥

उपगोरिदम् औपगवम्।

इति शैषिकाः॥४८॥

....

११०९- तस्येदम्। तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, इदं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

'उसका है यह' इस अर्थ में समर्थ षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

भागवतम्। भगवान् का है यह। **भगवतः इदम्** लौकिक विग्रह और **भगवत् ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्येदम्** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके अकार के स्थान पर आकार आदेश करके **भागवत्+अ=भागवत** बना, सु के बाद अम् आदेश, पूर्वरूप करके **भागवतम्** सिद्ध हुआ।

परीक्षा

१- इस प्रकरण के प्रत्यय एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालिए। १०

२- **शेषे** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०

३- **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०

४- **कालाट्ठञ्** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०

५- किन्हीं दस शैषिकों की प्रक्रिया दिखाइये। १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का शैषिक-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ विकारार्थकाः

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१११०. तस्य विकारः ४।३।१३४॥

वार्तिकम्- **अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः।**

अश्मनो विकारः आश्मः। भास्मनः। मार्त्तिकः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब विकार अर्थ में होने वाले प्रत्ययों का प्रकरण प्रारम्भ होता है। एक वस्तु का दूसरे रूप में परिणत होना **विकार** कहलाता है। जैसे दूध का विकार दही और दही का विकार मक्खन, इसी प्रकार लकड़ी का विकार दरवाजा, कुर्सी, पलंग आदि। यहाँ पर भी प्रायः सभी सूत्रों में **प्राग्दीव्यतोऽण्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है। शेष कार्य पूर्व के अन्य प्रकरणों के जैसे ही हैं।

१११०- तस्य विकारः। तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, विकारः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, प्राग्दीव्यतोऽण्** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

'उसका विकार' इस अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

तस्येदम् से **तस्य** इस पद की अनुवृत्ति हो सकती थी और यहाँ पर पढ़ने की आवश्यकता नहीं थी फिर भी यहाँ पर पढ़ने का तात्पर्य यह है कि **शेषाधिकार** की अब यहाँ से निवृत्ति होती है।

अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः। यह वार्तिक है। **विकार अर्थ में प्रत्यय हो जाने के बाद अश्मन् शब्द के टि का लोप हो।** अश्मन् में अन्त्य अच् मकारोत्तरवर्ती अकार और नकार अर्थात् **अन्** यह टिसंज्ञक है। प्रत्यय होने के बाद **अस्मन्+अ** ऐसी स्थिति में पहले **नस्तद्धिते** से टिलोप प्राप्त होता है, उसे प्रकृतिभावविधायक **अन्** यह सूत्र बाधता है और उसे भी बाधने के लिए यह वार्तिक है, अर्थात् यह वार्तिक **अन्** इस सूत्र का बाधक है।

आश्मः। पत्थर का विकार अथवा पत्थर से बना हुआ कोई पदार्थ। **अश्मनो विकारः** लौकिक विग्रह और **अश्मन् ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य विकारः** से अण् प्रत्यय हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **अश्मन्+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि हुई और टिसंज्ञक अन् का **अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः** से लोप हुआ, **आश्म्+अ=आश्म** बना। स्वादिकार्य करके **आश्मः** सिद्ध हुआ।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११११. अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ४।३।१३५॥

चाद्विकारे। मयूरस्यावयवो विकारो वा मायूरः। मौर्वं काण्डं भस्म वा। पैप्पलम्।

मयट्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१११२. मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ४।३।१४३॥

प्रकृतिमात्रान्मयड् वा स्याद् विकारावयवयोः। अश्ममयम्, आश्मनम्। अभक्ष्येत्यादि किम्? मौद्गः सूपः। कार्पासमाच्छादनम्।

....

भास्मनः। भस्म का विकार अथवा राख से बना हुआ कोई पदार्थ। **भस्मनः विकारः** लौकिक विग्रह और **भस्मन् ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य विकारः** से अण् प्रत्यय हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **भस्मन्+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि हुई, **भास्मन्+अ=भास्मन** बना। स्वादिकार्य करके **भास्मनः** सिद्ध हुआ। यहाँ पर तो **अन्** से टिलोप के निषेध होने के बाद इसका बाधक कोई नहीं है। अतः टि का लोप नहीं होता।

मार्त्तिकः। मृत्तिका का विकार अथवा मिट्टी से बनी हुई कोई वस्तु। **मृत्तिकायाः विकारः** लौकिक विग्रह और **मृत्तिका ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य विकारः** से अण् प्रत्यय हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **मृत्तिका+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि होने पर ऋकार के स्थान पर आर् होकर **मार्त्तिका+अ** बना। भसंज्ञक आकार का लोप हुआ, **मार्त्तिक्+अ=मार्त्तिक** बना। स्वादिकार्य करके **मार्त्तिकः** सिद्ध हुआ।

११११- अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः। प्राणिनश्च ओषधयश्च वृक्षाश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः प्राण्योषधिवृक्षास्तेभ्यः। अवयवे सप्तम्यन्तं, चाव्ययपदं, प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तस्य विकारः** की अनुवृत्ति आती है और ऊपर से **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है। इस सूत्र में **अवयव** अर्थ और जुड़ जाता है।

प्राणी, औषधी और वृक्ष वाचक शब्दों से विकार और अवयव अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

मायूरः। मयूर के अवयव टांग, सिर आदि अथवा मयूर का विकार। **मयूरस्य विकारः, अवयवो वा** लौकिक विग्रह और **मयूर ङस्** अलौकिक विग्रह है। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से अण् प्रत्यय हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **मयूर+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि होने पर अकार के स्थान पर आकार होकर भसंज्ञक अकार का लोप हुआ, **मायूर्+अ=मायूर** बना। स्वादिकार्य करके **मायूरः** सिद्ध हुआ। यह प्राणिवाचक का उदाहरण है।

मौर्वम्। मूर्वा नामक औषधी विशेष, लता का अवयव काण्ड, मूल आदि अथवा विकार भस्म आदि। **मूर्वायाः विकारः** लौकिक विग्रह और **मूर्वा ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य विकारः** से अण् प्रत्यय हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **मूर्वा+अ** बना। णित् होने

मयट्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१११३. नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ४।३।१४४॥

आम्रमयम्। शरमयम्।

....

के कारण आदिवृद्धि होने पर ऊकार के स्थान पर औकार होकर भसंज्ञक आकार का लोप हुआ, **मौर्व्+अ=मौर्व** बना। स्वादिकार्य करके **मौर्वम्** सिद्ध हुआ। यह औषधि का वाचक है।

पैप्पलम्। पीपल नामक वृक्ष का अवयव डाली, पत्ते अथवा पीपल का भस्म आदि। **पिप्पलस्य विकारः, अवयवो वा** लौकिक विग्रह और **पिप्पल ङस्** अलौकिक विग्रह है। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से अण् प्रत्यय हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **पिप्पल+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप हुआ, **पैप्पल्+अ=पैप्पल** बना। स्वादिकार्य करके **पैप्पलम्** सिद्ध हुआ। यह वृक्षवाचक का उदाहरण है।

१११२- **मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः।** भक्ष्यं च आच्छादनं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो भक्ष्याच्छादने, न भक्ष्याच्छादने अभक्ष्याच्छादने, तयोरभक्ष्याच्छादनयोः। **तस्य विकारः** से **तस्य** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

प्रकृतिमात्र अर्थात् षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थ में विकल्प से मयट् प्रत्यय होता है किन्तु विकार या अवयव जो हैं, वे भक्ष्य एवं आच्छादन नहीं होने चाहिए।

भक्ष्य(खाने योग्य वस्तु) और **आच्छादन**(ढकने वाली वस्तु, ओढ़ना आदि) यदि गम्यमान हो रहा हो तो यह प्रत्यय नहीं होगा। **टकार** की इत्संज्ञा होकर **मय** बचता है। **टित्** का फल स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** की प्रवृत्ति है।

अश्ममयम्। पत्थर का विकार अथवा पत्थर से बना हुआ कोई पदार्थ। **अश्मनो विकारः** लौकिक विग्रह और **अश्मन् ङस्** अलौकिक विग्रह है। **मयड् वैतयोर्भाषायाम-भक्ष्याच्छादनयोः** से **मयट्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **अश्मन्+मय** बना। णित् न होने के कारण आदिवृद्धि नहीं हुई और **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदत्व होने के कारण नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ, **अश्म+मय=अश्ममय** बना। स्वादिकार्य करके **अश्ममयम्** सिद्ध हुआ। मयट् न होने के पक्ष में **तस्य विकारः** से औत्सर्गिक **अण्** करके टिलोप करने पर **आश्मम्** बनता है। **अवयव** अर्थ में **अण्** होने पर टि का लोप भी नहीं होता, अतः **आश्मनम्** भी बना चुके हैं।

अभक्ष्येत्यादि किम्? मौद्गः सूपः, कार्पासम् आच्छादनम्। अब यहाँ पर प्रश्न करते हैं कि **मयड् वैतयोभाषायामभक्ष्याच्छादनयोः** इस सूत्र में **अभक्ष्याच्छादनयोः** यह पद न पढ़ते तो क्या होता? उत्तर यह है कि **मौद्गः सूपः, कार्पासम् आच्छादनम्** आदि जगहों पर **मुद्ग** और **कार्पास** ये क्रमश **भक्ष्य** और **आच्छादन** वस्तु हैं। इनमें भी **मयट्** होने लगता और **मुद्गमयम्, कार्पासमयम्** ऐसे अनिष्ट रूप बनने लगते। अनिष्ट रूपों के निवारणार्थ उक्त पद सूत्र में पठित है, जिससे मयट् नहीं हुआ अपितु औत्सर्गिक अण् होकर **मौद्गः, कार्पासम्** ये इष्ट रूप सिद्ध हो गये।

१११३- **नित्यं वृद्धशरादिभ्यः।** शर आदिर्येषां ते शरादयस्तेभ्यः। वृद्धाश्च शरादयश्च

मयट्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१११४. गोश्च पुरीषे ४।३।१४५॥

गो: पुरीषं गोमयम्।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१११५. गोपयसोर्यत् ४।३।१६०॥

गव्यम्। पयस्यम्।

इति विकारार्था:॥४९॥

इति प्राग्दीव्यतीया:।

....

वृद्धशरादयस्तेभ्य:। नित्यं द्वितीयान्तं क्रियाविशेषणम्। वृद्धशरादिभ्य: पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्य विकार:** से **तस्य** और **मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयो:** से **वा** छोड़कर सभी पदों की अनुवृत्ति है। **तद्धिता:, प्रत्यय:, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि पदों का अधिकार आ ही रहा है।

षष्ठ्यन्त वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों एवं शरादिगणपठित प्रातिपदिको से विकार और अवयव अर्थ में नित्य से मयट् प्रत्यय होता है किन्तु वे विकार या अवयव भक्ष्य एवं आच्छादन नहीं होने चाहिए।

आम्रमयम्। आम्रवृक्ष का विकार या अवयव। **आम्रस्य विकारोऽवयवो वा। आम्र ङस्** में **तस्य विकार:** के अधिकार में **नित्यं वृद्धशरादिभ्य:** से नित्य से **मयट्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **आम्रमय** बना। णित् आदि न होने से आदिवृद्धि नहीं हुई। स्वादिकार्य करके **आम्रमयम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह **शराणां विकार:** सरकंडों का विकार या अवयव अर्थ में **शर आम्** में उक्त रीति से **मयट्** करके **शरमयम्** बनाया जा सकता है।

१११४- **गोश्च पुरीषे।** गो: पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, पुरीषे सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **तस्य विकार:** इस सम्पूर्ण सूत्र तथा **मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयो:** से **मयट्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिता:, प्रत्यय:, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ ही रहा है।

यदि गोबर अर्थ हो तो गो शब्द से मयट् प्रत्यय होता है।

यह सूत्र **गोपयसोर्यत्** से प्राप्त **यत्** का बाधक है।

गोमयम्। गाय का विकार अर्थात् गोबर। **गो: विकार:** लौकिक विग्रह और **गो ङस्** अलौकिक विग्रह है। **गोश्च पुरीषे** से मयट्, अनुबन्धलोप होकर **गो+मय,** सु, अम्, **गोमयम्।**

१११५- **गोपयसोर्यत्।** गौश्च पयस् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो गोपयसौ, तयो:। गोपयसो: पञ्चम्यर्थे षष्ठी, यत् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तस्य विकार:** आदि की अनुवृत्ति और **तद्धिता:, प्रत्यय:, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि पदों का अधिकार आ ही रहा है।

विकार और अवयव अर्थ में षष्ठ्यन्त गो और पयस् शब्दों से यत् प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है।

गव्यम्। गाय का विकार अर्थात् दूध, दही, घी, मूत्र एवं गोबर। **गोः विकारः** लौकिक विग्रह और **गो ङस्** अलौकिक विग्रह है। **गोपयसोर्यत्** से यत् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप होकर **गो+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से अव् आदेश होकर **गव्य** बना। सु, अम्, **गव्यम्।**

पयस्यम्। दूध का विकार अर्थात् दही, घी आदि। **पयसः विकारः** लौकिक विग्रह और **पयस् ङस्** अलौकिक विग्रह है। **गोपयसोर्यत्** से यत् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप होकर **पयस्+य=पयस्य** बना। सु, अम्, **पयस्यम्।**

**श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
विकारार्थक-प्रकरण पूर्ण हुआ।**

अथ ठगधिकारः

ठकोऽधिकारार्थमधिकारसूत्रम्

११९६. प्रागवहतेष्ठक् ४।४।१॥

तद्वहतीत्यतः प्राक् ठगधिक्रियते।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११९७. तेन दीव्यति खनति जयति जितम् ४।४।२॥

अक्षैर्दीव्यति खनति जयति जितो वा आक्षिकः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **ठगधिकारप्रकरण** का आरम्भ होता है। इस प्रकरण में **प्रागवहतेष्ठक्** इस सूत्र का अधिकार चलता है अर्थात् इस सूत्र से **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** ४।४।७६ तक के जितने भी सूत्र हैं, उन सूत्रों में **ठक्** पहुँच जाता है। ठक् प्रत्यय का अधिकार होने के कारण इस प्रकरण को **ठगधिकारप्रकरण** कहते हैं। ठक् में ककार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप होता है। **ठ** के स्थान पर **इसुसुक्तान्तात् कः** से **क** या **ठस्येकः** से **इक** आदेश होता है। **ठक्** में **ककार** की इत्संज्ञा होने के कारण इसके परे रहते **किति च** से प्रकृति में आदिवृद्धि होती है।

११९६- **प्रागवहतेष्ठक्**। प्राक् अव्ययपदं, वहतेः पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

इस सूत्र से तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् से पहले तक 'ठक्' का अधिकार रहता है।

११९७- **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्**। तेन तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, दीव्यति, खनति, जयति क्रियापदानि, जितम् प्रथमान्तम् अनेकपदं सूत्रम्। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

खेलने वाला, खोदने वाला, जीतने वाला, जीता गया इन अर्थों में तृतीयान्त प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होता है।

आक्षिकः। पासों से खेलने वाला, पासों से खोदने वाला, पासों से जीतने वाला, पासों से जीता गया। **अक्षैर्दीव्यति, खनति, जयति, जितम्। अक्ष भिस्** में **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **अक्ष भिस् ठ** की प्रातिपदिकसंज्ञा, **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से सुप् **भिस्** का लुक् करके **अक्ष+ठ** बना। **ठस्येकः** से ठ के

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१११८. संस्कृतम् ४।४।३॥

दध्ना संस्कृतम्- दाधिकम्। मारीचिकम्।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१११९. तरति ४।४।५॥

तेनेत्येव। उडुपेन तरति- औडुपिकः।

....

स्थान पर **इक** आदेश होकर **अक्ष+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई- **आक्ष+इक** बना। **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप हुआ- **आक्ष्+इक** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **आक्षिक** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **आक्षिकः** सिद्ध हुआ।

१११८- **संस्कृतम्।** संस्कृतम् प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'उससे संस्कार किया गया' इस अर्थ में तृतीयान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

दाधिकम्। दही से संस्कार किया गया अर्थात् दही मिला कर स्वादिष्ट बनाया गया पदार्थ। **दध्ना संस्कृतम्** लौकिक विग्रह और **दधि टा** अलौकिक विग्रह है। **संस्कृतम्** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **दधि+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक इकार का लोप करके **दाध्+इक=दाधिक**, स्वादिकार्य करके **दाधिकम्** सिद्ध हुआ।

मारीचिकम्। मरीच से संस्कार किया गया अर्थात् मरीच नामक मसाला लगाकर स्वादिष्ट बनाया गया पदार्थ। **मरीचेन संस्कृतम्** लौकिक विग्रह और **मरीच टा** अलौकिक विग्रह है। **संस्कृतम्** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **मरीच+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **मारीच्+इक=मारीचिक**, स्वादिकार्य करके **मारीचिकम्** सिद्ध हुआ।

१११९- **तरति।** तरति क्रियापदम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'उससे तरता है अर्थात् **पार हो जाता है' इस अर्थ में तृतीयान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।**

औडुपिकः। छोटी नौका से पार करता है जो। **उडुपेन तरति** लौकिक विग्रह और **उडुप टा** अलौकिक विग्रह है। **तरति** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **उडुप+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई। भसंज्ञक अकार का लोप करके **औडुप्+इक=औडुपिक** बना। स्वादिकार्य करके **औडुपिकः** सिद्ध हुआ।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२०. चरति ४।४।८॥

तृतीयान्ताद् गच्छति-भक्षयतीत्यर्थयोष्ठक् स्यात्।

हस्तिना चरति हास्तिकः। दध्ना चरति दाधिकः।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२१. संसृष्टे ४।४।२२॥

दध्ना संसृष्टं दाधिकम्।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२२. उञ्छति ४।४।३२॥

बदराण्युञ्छति बादरिकः।

....

११२०- **चरति**। चरति क्रियापदम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से तेन की अनुवृत्ति आती है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'उससे जाता है और उससे खाता है' इस अर्थ में तृतीयान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

चरति में **चर्** धातु के दो अर्थ होते हैं- **गति** और **भक्षण करना।**

हास्तिकः। हाथी से जाता है जो। **हस्तिना चरति** लौकिक विग्रह और **हस्तिन् टा** अलौकिक विग्रह है। **चरति** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **हस्तिन्+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और टिसंज्ञक इन् का **नस्तद्धिते** से लोप करके **हास्त्+इक=हास्तिक** बना एवं स्वादिकार्य करके **हास्तिकः** सिद्ध हुआ।

दाधिकः। दही से खाता है जो। **दध्ना चरति** लौकिक विग्रह और **दधि टा** अलौकिक विग्रह है। **चरति** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **दधि+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक इकार का लोप करके **दाध्+इक=दाधिक** बना एवं स्वादिकार्य करके **दाधिकः** सिद्ध हुआ।

११२१- **संसृष्टे**। संसृष्टे सप्तम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'उससे मिला हुआ' इस अर्थ में तृतीयान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

दाधिकम्। दही से मिला हुआ। **दध्ना संसृष्टम्** लौकिक विग्रह और **दधि टा** अलौकिक विग्रह है। **संसृष्टे** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **दधि+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक इकार का लोप करके **दाध्+इक=दाधिक**, स्वादिकार्य करके **दाधिकम्** सिद्ध हुआ।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२३. रक्षति ४।४।३३॥

समाजं रक्षति सामाजिकः।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२४. शब्ददर्दुरं करोति ४।४।३४॥

शब्दं करोति शाब्दिकः। दर्दुरं करोति दार्दुरिकः।

....

११२२- उञ्छति। क्रियापदमेकपदं सूत्रम्। **तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से **तत्** इस द्वितीयान्त पद की अनुवृत्ति आती है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'चुन चुन कर बटोरता है' इस अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

बादरिकः। बेर को चुन चुन कर बटोरने वाला। **बदराणि उञ्छति** लौकिक विग्रह और **बदर शस्** अलौकिक विग्रह है। **उञ्छति** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **बदर+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई। भसंज्ञक अकार का लोप करके **बादर+इक=बादरिक** बना और स्वादिकार्य करके **बादरिकः** सिद्ध हुआ।

११२३- रक्षति। रक्षति क्रियापदम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से **तत्** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'उसकी रक्षा करता है' इस अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

सामाजिकः। समाज की रक्षा करने वाला। **समाजं रक्षति** लौकिक विग्रह और **समाज अम्** अलौकिक विग्रह है। **रक्षति** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **समाज+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **सामाज्+इक=सामाजिक** बना और स्वादिकार्य करके **सामाजिकः** सिद्ध हुआ।

११२४- शब्ददर्दुरं करोति। शब्दश्च दर्दुरश्चानयोः समाहारद्वन्द्वः शब्ददर्दुरं, तम्। शब्ददर्दुरं द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, करोति क्रियापदं, द्विपदं सूत्रम्। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीयान्त 'शब्द' और 'दर्दुर' प्रातिपदिकों से 'करने वाला' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

शाब्दिकः। शब्द के विषय में कार्य करने वाला, शब्द सम्बन्धी प्रकृति प्रत्यय का विभाग करने वाला। **शब्दं करोति=प्रकृतिप्रत्ययविभागपरिकल्पनया व्युत्पादयति। शब्द अम्** में **शब्ददर्दुरं करोति** से **ठक्**, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश करके **शब्द+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **शाब्द्+इक=शाब्दिक** बना। स्वादिकार्य करके **शाब्दिकः** सिद्ध हुआ।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२५. धर्मं चरति ४।४।४१॥

धार्मिकः।

वार्तिकम्- **अधर्माच्चेति वक्तव्यम्।** आधर्मिकः।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२६. शिल्पम् ४।४।५५॥

मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः।

....

दार्दुरिकः। मिट्टी के पात्र विशेष को बनाने वाला। **दर्दुरं करोति। दर्दुर अम्** में शब्ददर्दुरं **करोति** से **ठक्**, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश करके **दर्दुर+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **दर्दुर्+इक=दार्दुरिक** बना। स्वादिकार्य करके **दार्दुरिकः** सिद्ध हुआ।

११२५- **धर्मं चरति।** धर्मं द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, चरति क्रियापदं द्विपदमिदं सूत्रम्। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'धर्म का आचरण करता है' इस अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक धर्म-शब्द से ठक् प्रत्यय होता है।

धार्मिकः। धर्म का आचरण करने वाला। **धर्मं चरति** लौकिक विग्रह और **धर्म अम्** अलौकिक विग्रह है। **धर्मं चरति** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **धर्म+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **धर्म्+इक=धार्मिक** बना। स्वादिकार्य करके **धार्मिकः** सिद्ध हुआ।

अधर्माच्चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। **जिस तरह से धर्म शब्द से ठक् प्रत्यय होता है, उसी तरह अधर्म से भी होना चाहिए।**

यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि यदि **धार्मिक** बनने के बाद **नञ्** समास करें तो क्या होगा? उत्तर यह है कि तब **अधार्मिकः**। इस तरह **अधार्मिकः** ऐसा रूप बन सकता है किन्तु **आधर्मिकः** नहीं बनेगा। अतः **आधर्मिकः** की सिद्धि के लिए इस वार्तिक की आवश्यकता है।

११२६- **शिल्पम्।** प्रथमान्तमेकपदं सूत्रम्। **तदस्य पण्यम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'शिल्प है इसका' इस अर्थ में प्रथमान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

मार्दङ्गिकः। मृदंग बजाने का विशेष ज्ञान है जिसका अर्थात् मृदंग बजाने वाला। **मृदङ्गवादनं शिल्पम् अस्य** लौकिक विग्रह और **मृदङ्ग सु** अलौकिक विग्रह है। **शिल्पम्** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **मृदङ्ग+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई तो ऋकार के स्थान पर **आर्** होकर और भसंज्ञक अकार का लोप करके **मार्दङ्ग्+इक=मार्दङ्गिक** बना। स्वादिकार्य करके **मार्दङ्गिकः** सिद्ध हुआ।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२७. प्रहरणम् ४।४।५७॥

तदस्येत्येव। असिः प्रहरणमस्य आसिकः। धानुष्कः।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२८. शीलम् ४।४।६१॥

अपूपभक्षणं शीलमस्य आपूपिकः।

....

११२७- **प्रहरणम्।** प्रहरणं प्रथमान्तमेकपदं सूत्रम्। **तदस्य पण्यम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'हथियार है इसका' इस अर्थ में प्रथमान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

आसिकः। तलवार है प्रहरण अर्थात् हथियार जिसका, वह। **असिः प्रहरणम् अस्य** लौकिक विग्रह और **असि सु** अलौकिक विग्रह है। **प्रहरणम्** सूत्र से ठक्, अनुबन्ध लोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **असि+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक इकार का लोप करके **आस्+इक=आसिक,** स्वादिकार्य करके **आसिकः** सिद्ध हुआ।

धानुष्कः। धनुष है प्रहरण अर्थात् हथियार जिसका, वह। **धनुः प्रहरणम् अस्य** लौकिक विग्रह और **धनुष् सु** अलौकिक विग्रह है। **तदस्य प्रहरणम्** सूत्र से ठक्, अनुबन्ध लोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर **इक** आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **इसुसुक्तान्तात्कः** से **क** आदेश करके **धनुष्+क** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और **ष्** के असिद्ध होने से रुत्वविसर्ग, फिर **इणः षः** से षकार ही होकर **धानुष्+क=धानुष्क** बना। स्वादिकार्य करके **धानुष्कः** सिद्ध हुआ।

११२८- **शीलम्।** शीलं प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तदस्य पण्यम्** से **तद्** और **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'यह स्वभाव है इसका' इस अर्थ में प्रथमान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

आपूपिकः। मालपूए खाने का स्वभाव है जिसका अर्थात् मालपूआ खाने वाला। **अपूपभक्षणं शीलम् अस्य** लौकिक विग्रह और **अपूप सु** अलौकिक विग्रह है। **शीलम्** सूत्र से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **अपूप+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **आपूप्+इक=आपूपिक** बना। स्वादिकार्य करके **आपूपिकः** सिद्ध हुआ।

इसी तरह से **ऐसा स्वभाव है इसका** इस अर्थ में अन्य शब्दों से भी ठक् करके प्रयोग सिद्ध करें। जैसे-

मोदकभक्षणं शीलमस्य- मौदकिकः। मोदक खाने का स्वभाव वाला।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२९. निकटे वसति ४।४।७३॥

नैकटिको भिक्षुकः।

इति ठगधिकारः॥५०॥

(प्राग्वहतीयाः)

....

शष्कुलीभक्षणं शीलमस्य- शाष्कुलिकः। पूड़ी खाने का स्वभाव वाला।

ओदनभक्षणं शीलमस्य- औदनिकः। भात खाने का स्वभाव वाला।

पायसभक्षणं शीलमस्य- पायसिकः। खीर खाने का स्वभाव वाला।

करुणा शीलमस्य- कारुणिकः। करुणा स्वभाव वाला।

११२९- निकटे वसति। निकटे सप्तम्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, वसति क्रियापदं, द्विपदं सूत्रम्। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त 'निकट' प्रातिपदिक से 'रहने वाला' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

नैकटिकः। निकट में रहने वाला। **निकटे वसति** लौकिक विग्रह और **निकट ङि** अलौकिक विग्रह है। **निकटे वसति** सूत्र से **ठक्,** अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश करके **निकट+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **नैकट्+इक=नैकटिक** बना। स्वादिकार्य करके **नैकटिकः** सिद्ध हुआ।

परीक्षा

१- विकारार्थक ठगधिकार प्रत्यय एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालिए।　१०

२- **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।　१०

३- **संस्कृतम्** और **रक्षति** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।　१०

४- अभी तक के तद्धित प्रत्ययों पर एक टिप्पणी लिखें　१०

५- विकारार्थक और ठगधिकार प्रत्यय के किन्हीं दस की प्रक्रिया दिखाइये।　१०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का ठगधिकार-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ यदधिकारः

यतोऽधिकारसूत्रम्

११३०. प्राग्घिताद्यत् ४।४।७५॥

तस्मै हितम् इत्यतः प्राग् यदधिक्रियते।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११३१. तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ४।४।७६॥

रथं वहति रथ्यः। युग्यः। प्रासङ्ग्यः।

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **यदधिकारप्रकरण** प्रारम्भ होता है। इस प्रकरण में यत् प्रत्यय का विधान किया गया है और अधिकार भी यत् का ही है, इसलिए इसे **यदधिकारप्रकरण** कहते हैं। सूत्रों में **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार विद्यमान है। **प्राग्घिताद्यत्** यह सूत्र **तस्मै हितम्** से पहले तक **यत्** के अधिकार का निर्णय करता है। **यत्** में तकार इत्संज्ञक है। ञित्, णित् और कित् न होने से वृद्धि का प्रसङ्ग नहीं है।

११३०- **प्राग्घिताद्यत्।** प्राक् अव्ययपदं, हितात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

'तस्मै हितम्' से पहले तक यत् का अधिकार रहता है।

११३१- **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्।** तद् द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, वहति क्रियापदं, रथयुगप्रासङ्गं द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्घिताद्यत्** से **यत्** का तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीयान्त रथ, युग और प्रासङ्ग प्रातिपदिकों से 'वहति' अर्थात् वहन करता है या वहन करने वाला अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

रथ का अर्थ प्रसिद्ध ही है। रथ या हल आदि खींचने के लिए घोड़ा, बैल आदि के गले में जो लकड़ी डाली जाती है, उस लकड़ी को **युग** कहते हैं तो अशिक्षित बैल आदि को शिक्षित करने के लिए युग के साथ जो एक अन्य युग को गले में डाल देते हैं, उस लकड़ी को **प्रासङ्ग** कहते हैं। इस तरह रथ, युग और प्रासङ्ग को ढोने वाले को रथ्य, युग्य और **प्रासङ्ग्य** कहते हैं।

यत्-ढक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११३२. धुरो यड्ढकौ ४।४।७७॥

हलि चेति दीर्घे प्राप्ते-

दीर्घनिषेधकं विधिसूत्रम्

११३३. न भकुर्छुराम् ८।२।७९॥

भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया इको दीर्घो न स्यात्। धुर्यः। धौरेयः।

....

रथ्यः। रथ को ढोने वाला। **रथं वहति** लौकिक विग्रह और **रथ अम्** अलौकिक विग्रह है। **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **रथ+य** बना। भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप हुआ, **रथ्+य=रथ्य** बना। सु आदि कार्य करके **रथ्यः** सिद्ध हुआ।

युग्यः। युग अर्थात् रथ या हल की एक विशेष लकड़ी को ढोने वाला। **युगं वहति** लौकिक विग्रह और **युग अम्** अलौकिक विग्रह है। **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **युग+य** बना। भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप हुआ, **युग्+य=युग्य** बना। सु आदि कार्य करके **युग्यः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **प्रासङ्गं वहति** लौकिक विग्रह और **प्रासङ्ग अम्** अलौकिक विग्रह में यत् प्रत्यय करके **प्रासङ्ग्यः** बना लीजिए।

११३२- धुरो यड्ढकौ। यत् च ढक् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो यड्ढकौ। धुरः पञ्चम्यन्तं, यड्ढकौ प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से **तद्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीयान्त प्रातिपदिक धुर्-शब्द से 'ढोता है' अर्थ में यत् और ढक् दोनों प्रत्यय होते हैं।

ढक् में ककार इत्संज्ञक है और ढ के ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **एय्** आदेश हो जाता है। **धुर्** रथ का एक विशेष अङ्ग है।

११३३- न भकुर्छुराम्। भं च कुर् च छुर् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो भकुर्छुरस्तेषाम्। न अव्ययपदं, भकुर्छुरां षष्ठ्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः** से **उपधायाः** और **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है।

भसंज्ञक की उपधा एवं कुर्, छुर् की उपधा को दीर्घ नहीं होता है।

हलि च से प्राप्त दीर्घ का निषेध होता है।

धुर्यः, धौरेयः। धुर् अर्थात् रथ का एक विशेष भाग, उसको ढोने वाला। **धुरं वहति** लौकिक विग्रह और **धुर् अम्** अलौकिक विग्रह है। **धुरो यड्ढकौ** से यत् प्रत्यय होने के पक्ष में तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **धुर्+य=धुर्य** बना। यहाँ **हलि च** से दीर्घ प्राप्त था, उसका **न भकुर्छुराम्** से निषेध हुआ। **धुर्य** से सु आदि कार्य करके **धुर्यः** सिद्ध हुआ। **ढक्** होने के पक्ष में ककार की इत्संज्ञा, ढकार के स्थान पर एय् आदेश करके **धुर्+एय** बना। कित् होने के कारण आदिवृद्धि करके **धौर्+एय=धौरेय** बना। स्वादिकार्य करके **धौरेयः** सिद्ध हुआ।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११३४. नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य- वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु ४।४।९१॥

नावा तार्यं नाव्यं जलम्। वयसा तुल्यो वयस्यः। धर्मेण प्राप्यं धर्म्यम्। विषेण वध्यो विष्यः। मूलेन आनाम्यं मूल्यम्। मूलेन समो मूल्यः। सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम्। तुलया सम्मितं तुल्यम्।

....

११३४- नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु। नौश्च वयश्च धर्मश्च विषञ्च मूलञ्च मूलञ्च सीता च तुला च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलास्ताभ्यः। तार्यञ्च तुल्यञ्च प्राप्यञ्च वध्यञ्च आनाम्यञ्च समश्च समितञ्च सम्मितञ्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितानि तेषु। नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यः पञ्चम्यन्तं, तार्य-तुल्य-प्राप्य- वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

नौ, वयस्, धर्म, विष, मूल, मूल, सीता और तुला शब्दों से क्रमशः तारने योग्य, तुल्य, प्राप्य, वध्य, प्राप्त होने वाला लाभ, सम, एक समान करना और तौलना अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

नाव्यम्। नौका के द्वारा पार ले जाने योग्य। **नावा तार्यम्** लौकिक विग्रह और **नौ टा** अलौकिक विग्रह है। **नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु** से तार्य अर्थ में यत् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नौ+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से आव् आदेश होकर **नाव्य** बना और विभक्तिकार्य करके **नाव्यम्** सिद्ध हुआ।

वयस्यः। आयु से समान, मित्र आदि। **वयसा तुल्यम्** लौकिक विग्रह और **वयस् टा** अलौकिक विग्रह है। **नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु** से तुल्य अर्थ में यत्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वयस्+य=वयस्य** बना। विभक्ति कार्य करके **वयस्यः** सिद्ध हुआ।

धर्म्यम्। धर्म के द्वारा प्राप्त करने योग्य स्वर्ग, सुख, धन आदि। **धर्मेण प्राप्यम्** लौकिक विग्रह और **धर्म टा** अलौकिक विग्रह है। **नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु** से प्राप्य अर्थ में यत् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **धर्म्+य=धर्म्य** बना और विभक्ति कार्य करके **धर्म्यः** सिद्ध हुआ।

विष्यः। विष के द्वारा वध करने योग्य शत्रु आदि। **विषेण वध्यः** लौकिक विग्रह और **विष टा** अलौकिक विग्रह है। **नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु** से वध्य अर्थ में यत् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **विष्+य=विष्य** बना और विभक्ति कार्य करके **विष्यः** सिद्ध हुआ।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११३५. तत्र साधुः ४।४।९८॥

अग्रे साधुः अग्र्यः। सामसु साधुः सामन्यः।

ये चाभावकर्मणोरिति प्रकृतिभावः- कर्मण्यः। शरण्यः।

य-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११३६. सभाया यः ४।४।१०५॥

सभ्यः।

इति यतोऽवधिः॥५१॥ (प्राग्घितीयाः।)

....

मूल्यम्। मूल अर्थात् पूँजी के द्वारा प्राप्त होने वाला लाभ। **मूलेन आनाम्यम्** लौकिक विग्रह और **मूल टा** अलौकिक विग्रह है। **नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु** से आनाम्य अर्थ में यत् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **मूल्+य=मूल्य** बना और विभक्तिकार्य करके **मूल्यम्** सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार **मूलेन समो** मूल से सम अर्थ में **मूल्यः।**

सीतया समितं हल से एक समान किया गया अर्थ **सीत्यं क्षेत्रम्।**

तुलया सम्मितं तराजू से तोला हुआ अर्थ में तुला शब्द से **तुल्यम्** बनाइये।

१९३५- **तत्र साधुः**। तत्र सप्तम्यन्तस्यानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, साधुः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **यत्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से साधु, कुशल, प्रवीण या योग्य जैसे अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

अग्र्यः। आगे रहने में प्रवीण या योग्य। **अग्रे साधुः** लौकिक विग्रह और **अग्र ङि** अलौकिक वि?ह है। **तत्र साधुः** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **अग्र्+य=अग्र्य** बना। स्वादिकार्य करके **अग्र्यः** सिद्ध हुआ।

शरण्यः। रक्षा करने , शरण देने में प्रवीण या योग्य। **शरणे साधुः** लौकिक विग्रह और **शरण ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र साधुः** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **शरण्+य=शरण्य** बना। स्वादिकार्य करके **शरण्यः** सिद्ध हुआ।

कर्मण्यः। कर्म करने में प्रवीण या योग्य। **कर्मणि साधुः** लौकिक विग्रह और **कर्मन् ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र साधुः** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कर्मन्+य** बना। **नस्तद्धिते** से टि का लोप प्राप्त था किन्तु **ये चाभावकर्मणोः** से प्रकृतिभाव होकर टिलोप रूक गया। नकार को णत्व करने पर **कर्मण्+य=कर्मण्य** बना। स्वादिकार्य करके **कर्मण्यः** सिद्ध हुआ।

११३६. **सभाया यः**। सभायाः पञ्चम्यन्तं, यः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तत्र साधुः** का

अनुवर्तन और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त सभा प्रातिपदिक से 'साधु' अर्थात् निपुण, कुशल, अच्छा आदि अर्थ में य प्रत्यय होता है।

सभ्यः। सभा में प्रवीण या योग्य। **सभायां साधुः** लौकिक विग्रह और **सभा ङि** अलौकिक विग्रह है। **सभाया यः** से **य** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके भसंज्ञक आकार का लोप करने पर **सभ्+य=सभ्य** बना। सु, उसको रुत्व और विसर्ग करने पर **सभ्यः** सिद्ध हुआ।

परीक्षा

इस प्रकरण के सारे सूत्रों एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालते हुए दस प्रयोंगों की सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का यदधिकार-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ छयतोरधिकारः

छस्याधिकारसूत्रम्

११३७. प्राक्क्रीताच्छः ५।१।१॥

तेन क्रीतमित्यतः प्राक् छोऽधिक्रियते।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११३८. उगवादिभ्यो यत् ५।१।२॥

प्राक्क्रीतादित्येव। उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च यत् स्यात्। छस्यापवादः।

शङ्कवे हितं शङ्कव्यं दारु। गव्यम्।

गणसूत्रम्- **नाभि नभं च।** नभ्योऽक्षः। नभ्यमञ्जनम्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब हित अर्थ में होने वाले छ और यत् प्रत्ययों का प्रकरण प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकरण में **प्राक्क्रीताच्छः** से **छः** का अधिकार चलता है और **तस्मै हितम्** आदि सूत्रों से छ और **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय होने के कारण यह प्रकरण **छ** और **यत्** दो ही प्रत्ययों का प्रकरण है। अत एव इसे **छयतोरधिकार** कहते हैं।

११३७- **प्राक्क्रीताच्छः**। प्राक् अव्ययपदं, क्रीतात् पञ्चम्यन्तं, छः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

'तेन क्रीतम्' इस सूत्र से पहले तक 'छ' प्रत्यय का अधिकार रहता है।

तद्धितप्रकरण में प्रारम्भ से ही **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल ही रहा है। अतः स्वभावतः इस प्रकरण में भी रहेगा। **छकार** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईय्** आदेश होकर **ईय** बन जाता है।

११३८- **उगवादिभ्यो यत्**। गो आदिर्येषां ते गवादयः। उश्च गवादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्व उगवादयस्तेभ्यः। उगवादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

उवर्णान्त प्रातिपदिक से तथा गवादिगणपठित प्रातिपदिकों से परे प्राक्क्रीतीय अर्थों में तद्धितसंज्ञक यत् प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है। इस प्रकरण के सभी सूत्रों में **छ** का ही

छ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११३९. तस्मै हितम् ५।१।५।।

वत्सेभ्यो हितम्- वत्सीयो गोधुक्।

....

अधिकार है, अतः छ प्रत्यय की प्राप्ति होती है किन्तु **उगवादिभ्यो यत्** इस विशेष सूत्र से बाधित हो जाने से उवर्णान्त और गवादिगणीय शब्दों से तो यत् ही होगा।

शङ्कव्यं दारु। कीली, खूँटी के लिए उपयुक्त लकड़ी। **शङ्कवे हितम्** लौकिक विग्रह और **शङ्कु ङे** अलौकिक विग्रह है। **तस्मै हितम्** से **छ** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर के **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्ध तकार की इत्संज्ञा करके लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शङ्कु+य** बना। णित्, ञित्, कित् आदि न होने के कारण वृद्धि का प्रसंग नहीं है और इकार या अकार के अन्त में न होने के कारण भसंज्ञक टिलोप का भी प्रसंग नहीं है। अतः **ओर्गुणः** से उकार को गुण होकर ओकार बन जाता है, जिससे **शङ्को+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से **अव्** आदेश होकर वर्णसम्मेलन करने पर **शङ्कव्य** बनता है। स्वादि कार्य करने पर **शङ्कव्यम्** सिद्ध होता है।

गव्यम्। गायों के लिए हितकारी घास, चारा आदि। **गोभ्यो हितम्** लौकिक विग्रह और **गो भ्यस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्मै हितम्** से **छ** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्ध तकार की इत्संज्ञा और लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गो+य** बना। णित्, ञित्, कित् आदि न होने के कारण वृद्धि का प्रसंग नहीं है और इकार या अकार के अन्त में न होने के कारण टिलोप का भी प्रसंग नहीं है। **वान्तो यि प्रत्यये** से **अव्** आदेश होकर वर्णसम्मेलन करने पर **गव्य** बनता है। स्वादि कार्य करने पर **गव्यम्** सिद्ध होता है।

नाभि नभं च। यह गणसूत्र है। **यत् प्रत्यय करते समय 'नाभि' के स्थान पर 'नभ' आदेश करना चाहिए।**

नभ्योऽक्षः। रथचक्र की नाभि के लिए हितकर अर्थात् उपयुक्त चक्रदण्ड। **नाभये हितम्** लौकिक विग्रह और **नाभि ङे** अलौकिक विग्रह है। **तस्मै हितम्** से **छ** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय, और **नाभि नभं च** से **नाभि** के स्थान पर **नभ** आदेश करने पर **नभ ङे य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नभ+य** बना। णित्, ञित्, कित् आदि न होने के कारण वृद्धि का प्रसंग नहीं है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **नभ्य** बनता है। स्वादि कार्य करने पर **नभ्यः** सिद्ध होता है। यदि **अञ्जन** आदि नपुंसक शब्द विशेष्य हो तो **नभ्यम्** ऐसा नपुंसक ही होगा।

११३९- **तस्मै हितम्।** तस्मै चतुर्थ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, हितं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

चतुर्थ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से उसके लिए हितकर अर्थ में 'छ' प्रत्यय होता है।

स्मरण रहे कि छ के स्थान ईय् आदेश होता है।

वत्सीयः (गोधुक्)। बछड़ों के लिए हितकारी गोदोहोन। **वत्सेभ्यः हितम्**

छ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११४०. शरीरावयवाद्यत् ५।१।६॥

दन्त्यम्। कण्ठ्यम्। नस्यम्।

ख-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११४१. आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः ५।१।९॥

प्रकृतिभावार्थं विधिसूत्रम्

११४२. आत्माध्वानौ खे ६।४।१६९॥

एतौ खे प्रकृत्या स्तः।

आत्मने हितम् आत्मनीनम्। विश्वजनीनम्। मातृभोगीणः।

इति छयतोरवधिः॥५२॥ (प्राक्क्रीतीयाः)

....

लौकिक विग्रह और **वत्स भ्यस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्मै हितम्** से छ प्रत्यय, ईय आदेश करके भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन, सु आदि कार्य करने पर **वत्सीयः** सिद्ध होता है।

११४०- **शरीरावयवाद्यत्**। शरीरस्यावयवः शरीरावयवस्तस्मात्। शरीरावयवात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तस्मै हितम्** यह सूत्र अनुवृत्त होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

शरीर के अवयववाचक चतुर्थ्यन्त प्रातिपदिक से हितकर अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है और यकार के परे होने पर प्रकृति की भसंज्ञा होती है, अतः पूर्व के इकार-अकार का लोप होता है।

दन्त्यम्। दाँतों के लिए हितकारी मंजन आदि। **दन्तेभ्यः हितम्** लौकिक विग्रह और **दन्त भ्यस्** अलौकिक विग्रह है। **शरीरावयवाद्यत्** से यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन, सु आदि कार्य करने पर **दन्त्यम्** सिद्ध होता है।

कण्ठ्यम्। कण्ठ के लिए हितकारी लेप आदि। **कण्ठाय हितम्** लौकिक विग्रह और **कण्ठ ङे** अलौकिक विग्रह है। **शरीरावयवाद्यत्** से यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अकार का लोप, वर्णसम्मेलन, सु आदि कार्य करने पर **कण्ठ्यम्** सिद्ध होता है।

नस्यम्। नाक के लिए हितकारी। **नासिकायै हितम्** लौकिक विग्रह और **नासिका ङे** अलौकिक विग्रह है। **शरीरावयवाद्यत्** से यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु** से नासिका के स्थान पर नस् आदेश होकर **नस्+य** बना। वर्णसम्मेलन, सु आदि कार्य करने पर **नस्यम्** सिद्ध होता है।

११४१- **आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः**। विश्वे जनाः- विश्वजनाः(कर्मधारयः) भोगः उत्तरपदं यस्य स भोगोत्तरपदः। आत्मा च विश्वजनाश्च भोगोत्तरपदञ्च तेषां समाहारद्वन्द्वः- आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदम्, तस्मात्। आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् पञ्चम्यन्तं, खः प्रथमान्तं,

द्विपदं सूत्रम्। **तस्मै हितम्** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार आ ही रहा है।

आत्मन्, विश्वजन शब्द तथा भोग उत्तरपद वाले शब्दों से 'हित' अर्थ में ख प्रत्यय होता है।

ख् के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईन्** आदेश होकर **ईन** बन जाता है।

११४२- आत्माध्वानौ खे। आत्मा च अध्वा च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्व आत्माध्वानौ। आत्माध्वानौ प्रथमान्तं, खे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रकृत्यैकाच्** से **प्रकृत्या** की अनुवृत्ति आती है। **ख प्रत्यय के परे रहते आत्मन् और अध्वन् शब्द को प्रकृतिभाव होता है।**

नस्तद्धिते से प्राप्त टिलोप के निषेध के लिए प्रकृतिभाव किया जा रहा है।

आत्मनीनम्। अपने लिए हितकारी। **आत्मने हितम्** लौकिक विग्रह और **आत्मन् ङे** अलौकिक विग्रह है। **आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः** से **ख** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **आत्मन्+ख** बना। **खकार** के स्थान पर **ईन्** आदेश होकर **आत्मन्+ईन** बना है। अब **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक **अन्** का लोप प्राप्त था, **आत्माध्वानौ खे** से प्रकृतिभाव हो जाने से वैसे ही रह गया अर्थात् उसका लोप नहीं हुआ। इस तरह **आत्मनीन** यह प्रातिपदिक बना। स्वादिकार्य करने पर **आत्मनीनम्** सिद्ध हो जाता है।

विश्वजनीनम्। सबों के लिए हितकारी। **विश्वजनेभ्यो हितम्** लौकिक विग्रह और **विश्वजन भ्यस्** अलौकिक विग्रह है। **आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः** से **ख** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विश्वजन+ख** बना। **खकार** के स्थान पर **ईन्** आदेश होकर **विश्वजन+ईन** बना है। **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन और स्वादिकार्य करके **विश्वजनीनम्** सिद्ध हो जाता है।

मातृभोगीणम्। माता के शरीर के लिए हितकारी आहार आदि। **मातृभोगाय हितम्** लौकिक विग्रह और **मातृभोग ङे** अलौकिक विग्रह है। **आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः** से **ख** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मातृभोग+ख** बना। **खकार** के स्थान पर **ईन्** आदेश होकर **मातृभोग+ईन** बना है। **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन और **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व होने पर **मातृभोगीण** बना। स्वादिकार्य करके **मातृभोगीणः** सिद्ध हुआ।

परीक्षा

इस प्रकरण के दोनों सूत्रों एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालते हुए किन्हीं पाँच प्रयोगों की सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या
छयतोरधिकार-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ ठञधिकारः

ठञोऽधिकारसूत्रम्

११४३. प्राग्वतेष्ठञ् ५।१।१८॥

तेन तुल्यमिति वतिं वक्ष्यति, ततः प्राक् ठञधिक्रियते।

ठञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११४४. तेन क्रीतम् ५।१।३७॥

सप्तत्या क्रीतम् साप्ततिकम्। प्रास्थिकम्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब ठञ् का अधिकार प्रारम्भ होता है। **प्राग्वतेष्ठञ्** से **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः** तक ठञ् का अधिकार है। उसके अन्दर अण्, अञ् आदि भी आते हैं। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है। अतः ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से परे भी किये जाते ही हैं।

११४३- प्राग्वतेष्ठञ्। प्राक् अव्ययपदं, वतेः पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' से पहले ठञ् का अधिकार है।

ञकार इत्संज्ञक है। ञित् होने से आदिवृद्धि हो सकेगी। **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश होता है।

११४४- तेन क्रीतम्। तेन तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, क्रीतं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **प्राग्वतेष्ठञ्** से **ठञ्** और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

'उससे खरीदा हुआ' अर्थ में तृतीयान्त प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होता है।

साप्ततिकम्। सत्तर रूपये से खरीदी गई वस्तु। **सप्तत्या क्रीतम्** लौकिक विग्रह और **सप्तति टा** अलौकिक विग्रह है। **तेन क्रीतम्** से ठञ्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ठस्येकः** से इक आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप, **साप्तत्+इक=साप्ततिक** बना। स्वादिकार्य करके **साप्ततिकम्** सिद्ध हुआ।

प्रास्थिकम्। प्रस्थ नामक प्राचीन काल की नापने की वस्तु, उससे खरीदी गई वस्तु। **प्रस्थेन क्रीतम्** लौकिक विग्रह और **प्रस्थ टा** अलौकिक विग्रह है। **तेन क्रीतम्** से ठञ्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ठस्येकः** से इक आदेश, आदिवृद्धि,

अणञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११४५. सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ ५।१।४१॥

अणञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११४६. तस्येश्वरः ५।१।४२॥

सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ स्तः।

अनुशतिकादीनाञ्च। सर्वभूमेरीश्वरः सार्वभौमः। पार्थिवः।

....

भसंज्ञक अकार का लोप, **प्रास्थ्+इक=प्रास्थिक**, वर्णसम्मेलन और स्वादिकार्य करके **प्रास्थिकम्** सिद्ध हुआ।

११४५- **सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ**। सर्वा चासौ भूमिः सर्वभूमिः। सर्वभूमिश्च पृथिवी च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः सर्वभूमिपृथिव्यौ, ताभ्याम्। अण् च अञ् च अणञौ। सर्वभूमिपृथिवीभ्यां पञ्चम्यन्तम्, अणञौ प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्।

सर्वभूमि और पृथिवी शब्दों से प्राक्क्रीतीय अर्थों में क्रमशः अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।

क्रमशः **णकार** और **ञकार** इत्संज्ञक हैं, दोनों में **अ** ही शेष रहता है। **अण्** प्रत्ययान्त अन्तोदात्त और **अञ्** प्रत्ययान्त आद्युदात्त होता है। यही अन्तर है दोनों में। **ञित् णित्** का मुख्य प्रयोजन तो आदिवृद्धि है। इन दोनों शब्दों से **उस का मालिक** इस अर्थ में भी ये ही प्रत्यय होते हैं। इसके लिए अग्रिम सूत्र है।

११४६- **तस्येश्वरः**। तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, ईश्वरः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

सर्वभूमि और पृथिवी इन षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकों से से 'ईश्वर' अर्थात् स्वामी अर्थ में अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।

सर्वभूमि और पृथिवी ये दो प्रकृति हैं और अण् और अञ् ये दो प्रत्यय हैं। यथासंख्य होने से सर्वभूमि से अण् और पृथिवी से अञ् होते हैं। णकार और ञकार इत्संज्ञक हैं तो दोनों में अकार ही शेष बचता है। णित् का फल स्वर में अन्तोदात्त औ ञित् का फल आदि उदात्त करना है। यह बात पहले भी बताई जा चुकी है।

सार्वभौमः। सम्पूर्ण भूमि का स्वामी। **सर्वभूमेः ईश्वरः** लौकिक विग्रह और **सर्वभूमि ङस्** यह अलौकिक विग्रह है। **तस्येश्वरः** से अण्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् की वृद्धि प्राप्त थी, उसे बाधकर **अनुशतिकादीनाञ्च** से सर्व और भूमि दोनों पदों में विद्यमान आदि अच् अकार और ऊकार की वृद्धि होकर क्रमशः **सार्व+भौम=सार्वभौम+अ** बना। भसंज्ञक मकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ- **सार्वभौम्+अ=सार्वभौम** बना। सु, रुत्वविसर्ग होकर **सार्वभौमः** सिद्ध हुआ।

पार्थिवः। पृथिवी का स्वामी। **पृथिव्याः ईश्वरः** लौकिक विग्रह और **पृथिवी ङस्** यह अलौकिक विग्रह है। **तस्येश्वरः** से अण्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, एक ही अच् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् की वृद्धि करने पर ऋकार के स्थान

निपातनार्थं विधिसूत्रम्

११४७. पङ्क्ति-विंशति-त्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्य-शीति-नवति-शतम् ५।१।५९॥

एते रूढशब्दा निपात्यन्ते।

ठञादिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११४८. तदर्हति ५।१।६३॥

'लब्धुं योग्यो भवति' इत्यर्थे द्वितीयान्तात् ठञादयः स्युः।

श्वेतच्छत्रमर्हति श्वैतच्छत्रिकः।

....

पर आर्, भसंज्ञक ईकार का लोप, **पार्थिव्+अ=पार्थिव** बना। सु, रुत्वविसर्ग होकर **पार्थिवः** सिद्ध हुआ।

११४७- **पङ्क्ति-विंशति-त्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम्।** पङ्क्तिश्च विंशतिश्च त्रिंशच्च चत्वारिंशच्च पञ्चाशच्च षष्टिश्च सप्ततिश्च अशीतिश्च नवतिश्च शतञ्च तेषां समाहारद्वन्द्वः पङ्क्ति-विंशति-त्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम्। समाहारद्वन्द्वात्मकं प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्।

पङ्क्ति, विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति और शतम् इन रूढ-शब्दों का निपातन होता है।

पाणिनि जी ने इन शब्दों में प्रकृति और प्रत्यय की कल्पना न करके सीधे ही उच्चारण कर इन शब्दों का अनुशासन किया है। प्रकृति और प्रत्यय न दिखाकर सीधे शब्दों को दिखाने को ही **निपातन** कहते हैं। अब इसमें हम चाहें तो अनुरूप प्रकृति और प्रत्यय लगा सकते हैं अथवा पाणिनि जी द्वारा ये दस शब्द तद्धितान्त के रूप में स्वयं सिद्ध हैं, इनकी प्रक्रिया के चक्कर में न पड़कर इनको साधु अर्थात् शुद्ध मानकर प्रक्रिया के विना ही काम चलाने में भी कोई आपत्ति नहीं है। यहाँ **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में हम भी प्रक्रिया की ओर न जाकर उपर्युक्त दस शब्दों को तद्धितसिद्ध मान लेते हैं और केवल सु आदि प्रत्ययों की ही प्रक्रिया करते हैं। जैसे पाणिनि जी द्वारा निपातित **पङ्क्ति, विंशति, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति** से सु रुत्वविसर्ग करके **पङ्क्तिः, विंशतिः, षष्टिः, सप्ततिः, अशीतिः, नवतिः** बन गये। **शत** से सु, अम्, **शतम्**। शेष **त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्** से सु और हलन्त होने से **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से सु का लोप करके **त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्** ही सिद्ध होते हैं।

११४८- **तदर्हति।** तद् द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, अर्हति क्रियापदं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

यह व्यक्ति 'उस वस्तु को प्राप्त करने योग्य है' इस अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिकों से ठञ् आदि प्रत्यय होते हैं।

श्वैतच्छत्रिकः। सफेद छत्री प्राप्त करने योग्य। प्राचीन काल में योग्य विद्वान् और राजा आदि के सम्मान में छत्र, चँवर आदि प्रदान करते थे और आज धर्माचार्यों में भी यह

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११४९. दण्डादिभ्यो यत् ५।१।६६॥

एभ्यो यत् स्यात्। दण्डमर्हति दण्ड्यः। अर्घ्यः। वध्यः।

ठञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११५०. तेन निर्वृत्तम् ५।१।७९॥

अह्ना निर्वृत्तम्- आह्निकम्।

इति ठञोऽवधिः॥५३॥ (प्राग्वतीयाः)

....

प्रथा है। **श्वेतच्छत्रम् अर्हति** लौकिक विग्रह और **श्वेतच्छत्र अम्** यह अलौकिक विग्रह है। **तदर्हति** से ठञ्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ठस्येकः** से इक आदेश, **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् की वृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **श्वैतच्छत्र्+इक=श्वैतच्छत्रिक** बना। सु, रुत्वविसर्ग होकर **श्वैतच्छत्रिकः** सिद्ध हुआ।

चामरिकः। चँवर प्राप्त करने योग्य। **चमरम् अर्हति** लौकिक विग्रह और **चमर अम्** यह अलौकिक विग्रह है। **तदर्हति** से ठञ्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ठस्येकः** से इक आदेश, **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् की वृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **चामर्+इक=चामरिक** बना। सु, रुत्वविसर्ग होकर **चामरिकः** सिद्ध हुआ।

११४९- दण्डादिभ्यो यत्। दण्डः आदिर्येषां ते दण्डादयस्तेभ्यः। दण्डादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तदर्हति** पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

दण्ड आदि गणपठित द्वितीयान्त प्रातिपदिक से तदर्हति अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

दण्ड्यः। दण्ड पाने योग्य। **दण्डम् अर्हति** लौकिक विग्रह और **दण्ड अम्** अलौकिक विग्रह है। **दण्डादिभ्यो यत्** से यत्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **दण्ड्+य=दण्ड्य** बना। उसके बाद रुत्व और विसर्ग करके **दण्ड्यः** सिद्ध हुआ।

अर्घ्यः। अर्घ पाने योग्य। **अर्घम् अर्हति** लौकिक विग्रह और **अर्घ अम्** अलौकिक विग्रह है। **दण्डादिभ्यो यत्** से यत्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **अर्घ्+य=अर्घ्य** बना। उसके बाद रुत्व और विसर्ग करके **अर्घ्यः** सिद्ध हुआ।

वध्यः। वध करने योग्य। **वधम् अर्हति** लौकिक विग्रह और **वध अम्** अलौकिक विग्रह है। **दण्डादिभ्यो यत्** से यत्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **वध्+य=वध्य** बना। उसके बाद रुत्व और विसर्ग करके **वध्यः** सिद्ध हुआ।

११५०- तेन निर्वृत्तम्। तेन तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, निर्वृत्तं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

तृतीयान्त कालवाचक प्रातिपदिक से 'निर्वृत्त' अर्थात् बनाया गया, सम्पन्न किया गया आदि अर्थों में ठञ् प्रत्यय होता है।

आह्निकम्। एक दिन में बनाया गया या एक दिन में पूरा किया गया। **अह्ना निर्वृत्तम्** लौकिक विग्रह और **अहन् टा** अलौकिक विग्रह है। **तेन निर्वृत्तम्** से ठञ्, अनुबन्ध का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् और ठ के स्थान पर **इक** आदेश करके **अहन्+इक** बना। आदिवृद्धि करके **अल्लोपोऽनः** से भसंज्ञक **अन्** के अकार का लोप करके **आह्न्+इक=आह्निक** बना और स्वादिकार्य करके **आह्निकम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह **मासिकम्, सांवत्सरिकम्, साप्ताहिकम्, पाक्षिकम्** आदि भी बनाये जा सकते हैं।

परीक्षा

इस प्रकरण के सूत्रों एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालते हुए किन्हीं पाँच प्रयोगों की सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
ठञधिकार-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ त्वतलोरधिकारः

वति-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११५१. तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ५।१।११५॥

ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवद् अधीते।

क्रिया चेदिति किम्? गुणतुल्ये मा भूत्। पुत्रेण तुल्यः स्थूलः।

वति-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११५२. तत्र तस्येव ५।१।११६॥

मथुरायामिव मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकाराः। चैत्रस्येव चैत्रवन्मैत्रस्य गावः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब त्व और तल् प्रत्यय के अधिकार वाला प्रकरण प्रारम्भ होता है। इसके अन्तर्गत तुल्य और सदृश अर्थ में **वति** और भाव अर्थ में **त्व** आदि प्रत्ययों का विधान है।

११५१- तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः। तेन तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, तुल्यं प्रथमान्तं, क्रिया प्रथमान्तं, चेत् अव्ययपदं, वतिः प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

तृतीयान्त प्रातिपदिक से 'तुल्य' अर्थ में वति प्रत्यय होता है, यदि तुल्यता क्रिया को लेकर हो तो।

वति में इकार इत्संज्ञक है, **वत्** शेष रहता है। **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** इस सूत्र के अनुसार वतिप्रत्ययान्त को अव्यय में माना गया है। अतः इस प्रत्यय के बाद सिद्ध हुए शब्द अव्यय कहलाते हैं जिससे की गई विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होता है।

ब्राह्मणवत्। यह क्षत्रिय ब्राह्मण के समान (पढ़ता है)। **ब्राह्मणेन तुल्यं** लौकिक विग्रह और **ब्राह्मण टा** अलौकिक विग्रह है। **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः** से वतिप्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ब्राह्मणवत्** बना। अव्यय होने के कारण आई हुई विभक्ति का लुक्, **ब्राह्मणवत्**।

११५२- तत्र तस्येव। तत्र सप्तम्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, इव अव्ययपदं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः** से **वति** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

त्व-तल्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११५३. तस्य भावस्त्वतलौ ५।१।११९॥

प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः। गोर्भावो गोत्वं, गोता। त्वान्तं क्लीबम्।

त्वतलोरधिकारार्थं सूत्रम्

११५४. आ च त्वात् ५।१।१२०॥

ब्रह्मणस्त्व इत्यतः प्राक् त्वतलावधिक्रियेते। अपवादैः सह समावेशार्थमिदम्। चकारो नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः। स्त्रिया भावः स्त्रैणम्। स्त्रीत्वम्। स्त्रीता। पौंस्नम्। पुंस्त्वम्। पुंस्ता।

....

सप्तम्यन्त और षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से सदृश, समान आदि अर्थों में वतिप्रत्यय होता है।

उसमें सदृश या उसके सदृश।

मथुरावत्। मथुरा के सदृश अर्थात् **मथुरायाम् इव अयोध्यायां प्राकाराः** मथुरा की तरह हैं अयोध्या के महल, परकोटे। **मथुरायाम् इव** लौकिक विग्रह और **मथुरा ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र तस्येव** से वतिप्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **मथुरावत्** बना। अव्यय होने के कारण आई हुई विभक्ति का लुक्, **मथुरावत्।**

११५३- तस्य भावस्त्वतलौ। त्वश्च तल् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्त्वतलौ। तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, भावः प्रथमान्तं, त्वतलौ प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

'उसका भाव' ऐसा अर्थ हो तो षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से त्व और तल् प्रत्यय होते हैं।

प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः। प्रकृति से उत्पन्न होने वाले बोध अर्थात् ज्ञान जो विशेषणतया प्रतीत होता है, उसे यहाँ पर **भाव** कहा गया है। जैसे **गो** प्रकृति है और गो में गो का जो गोत्व रहता है, वह ही **भाव** है अर्थात् गोत्व से युक्त होने पर ही उसे गाय कहा जाता है। गो में गोत्व विशेषण के रूप में प्रतीत होता है, अतः वह **भाव** है।

तल् में लकार इत्संज्ञक है। त्व प्रत्यय होने पर शब्द नित्य नपुंसक लिङ्ग वाला और तल् प्रत्यय होने पर शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग वाला होता है।

गोत्वं, गोता। गौ का भाव। **गोर्भावः** लौकिक विग्रह और **गो ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य भावस्त्वतलौ** से त्वप्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गोत्व** बना। सु विभक्ति, त्वप्रत्ययान्त नपुंसक होता है, अतः सु के स्थान पर अम् आदेश, पूर्वरूप आदि होकर **गोत्वम्** सिद्ध हुआ। तल् होने के पक्ष में लकार की इत्संज्ञा होने के बाद पूर्ववत् कार्य होकर तलन्त स्त्रीलिङ्गी होने के कारण **रमा** की तरह **गोता** सिद्ध होता है।

घटत्वं, घटता। घड़े का भाव। **घटस्य भावः** लौकिक विग्रह और **घट ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य भावस्त्वतलौ** से त्वप्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **घटत्व** बना। त्वप्रत्ययान्त नपुंसक होता है, अतः सु के स्थान पर अम् आदेश, पूर्वरूप आदि होकर **घटत्वम्** सिद्ध हुआ। तल् होने के पक्ष में लकार की इत्संज्ञा

इमनिच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११५५. पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ५।१।१२२॥

वा-वचनमणादिसमावेशार्थम्।

....

होने के बाद पूर्ववत् कार्य होकर तलन्त स्त्रीलिङ्गी होने के कारण **रमा** की तरह **घटता** सिद्ध होता है।

अब इसी तरह से भाव अर्थ में त्व और तल् प्रत्यय लगाकर अनेक प्रयोग बना लें। जैसे- सम से **समत्व-समता**, पात्र से **पात्रत्व-पात्रता**, विद्वत् से **विद्वत्त्व-विद्वत्ता**, प्रभु से **प्रभुत्व-प्रभुता**, पटु से **पटुत्व-पटुता** आदि।

११५४- आ च त्वात्। आ अव्ययपदं, च अव्ययपदं, त्वात् पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होकर आता है। **आ** मर्यादायामव्ययम्।

'ब्रह्मणस्त्वः' से पहले 'त्व' और 'तल्' का अधिकार किया जाता है।

अष्टाध्यायी में ब्रह्मणस्त्वः५।१।१३६॥ यह सूत्र आगे पढ़ा गया है। उसके पहले तक **त्व** और **तल्** इन दो प्रत्ययों के अधिकार के लिए यह सूत्र पठित है।

अब इसमें यह प्रश्न उठता है कि यह काम तो **तस्य भावस्त्वतलौ** से भी हो सकता है? तो उत्तर में कहा **अपवादैः सह समावेशार्थमिदम्।** अर्थात् त्व और तल् प्रत्यय के बाधक इमनिच् आदि प्रत्यय जब हों तो इमनिच् आदि के साथ-साथ त्व, तल् भी हों, इसलिए अधिकार की आवश्यकता है।

अब दूसरा प्रश्न करते हैं कि **आ च त्वात्** में **चकार** किस लिए है? इसका उत्तर इस तरह से दिया है- **चकारो नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः।** अर्थात् **चकार** से **समुच्चय** का अर्थज्ञान होता है। यहाँ पर **चकार** नञ्, स्नञ् प्रत्ययों का भी समावेश करने के लिए है। जैसे कि लोक में **तुम भी आओ** इस वाक्य के प्रयोग से यह ज्ञात होता है कि एक और किसी को भी आना है। इसी तरह इस सूत्र में पठित **चकार** से **त्व, तल्** के साथ **नञ्, स्नञ्** का भी बोध होता है। तात्पर्य यह हुआ कि त्व, तल् के बाधक **इमनिच्** आदि प्रत्ययों के साथ-साथ **त्व, तल्, नञ्, स्नञ्** ये प्रत्यय भी बारी-बारी से होंगे।

स्त्रैणः। स्त्री का भाव। **स्त्रिया भावः** लौकिक विग्रह है। **स्त्री ङस्** में **आ च त्वात्** के अधिकार में पठित **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** से **नञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्त्री+न** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर ईकार के स्थान पर ऐकार हो गया, **स्त्रै+न** बना। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से प्रत्यय के नकार के स्थान पर णकार आदेश होकर **स्त्रैण** बना और विभक्तिकार्य करके **स्त्रैणम्** सिद्ध हुआ। **त्व** प्रत्यय होने के पक्ष में **स्त्रीत्वम्** और **तल्** प्रत्यय होने के पक्ष में **तलन्तं स्त्रियाम्** के नियम से **तल्** प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग में होता है। अतः **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** प्रत्यय होकर **स्त्रीता** बन जाता है।

पौंस्नः। पुरुष का भाव। **पुंसो भावः** लौकिक विग्रह है। **पुंस् ङस्** में **आ च त्वात्** के अधिकार में पठित **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** से **स्नञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पुंस्+स्न** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर उकार के स्थान पर औकार हो गया, **पौंस्+स्न** बना। विभक्ति के लुक्

रेफादेशविधायकं विधिसूत्रम्

११५६. र ऋतो हलादेर्लघोः ६।४।१६१॥

हलादेर्लघोर्ऋकारस्य रः स्यादिष्ठेयस्सु परतः।

पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढानामेव रत्वम्।

टिलोपविधायकं विधिसूत्रम्

११५७. टेः ६।४।१५५॥

भस्य टेर्लोप इष्ठेमेयस्सु। पृथोर्भावः प्रथिमा-

....

हो जाने पर भी पूर्व विभक्ति को लेकर पदत्व मान कर संयोगान्त **पौंस्** के सकार का लोप करके **पौंस्न** बना और विभक्तिकार्य करके **पौंस्नम्** सिद्ध हुआ। **त्व** प्रत्यय होने के पक्ष में **पुंस्त्वम्** और **तल्** होने के पक्ष में **पुंस्ता** बन जाते हैं।

११५५- पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा। पृथु आदिर्येषां ते पृथ्वादयस्तेभ्यः। पृथ्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, इमनिच् प्रथमान्तं, वा अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य** और **भावः** की अनुवृत्ति आती है एवं **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थाना प्रथमाद्वा** का पूर्ववत् अधिकार है।

षष्ठ्यन्त समर्थ पृथु आदि प्रातिपदिकों से भाव अर्थ में इमनिच् प्रत्यय होता है।

इस सूत्र में पठित **वा** शब्द से पक्ष में **अण्** आदि प्रत्ययों का भी समावेश किया जाता है। अतः **इमनिच्** और **अण्** आदि दोनों प्रत्यय होंगे। **इमनिच्** में **अन्त्य चकार** और उससे पूर्ववर्ती **इकार** इत्संज्ञक हैं, **इमन्** बचता है।

११५६- र ऋतो हलादेर्लघोः। रः प्रथमान्तं, ऋतः षष्ठ्यन्तं, हलादेः षष्ठ्यन्तं, लघोः षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **तुरिष्ठेमेयस्सु** से **इष्ठेमेयस्सु** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

हलादि अङ्ग के लघु ऋकार के स्थान पर र आदेश होता है इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय के परे होने पर।

र यह आदेश **अकार** सहित **रेफ** वाला है, केवल **र्** नहीं है। **इष्ठेमेयस्सु** यह सप्तम्यन्त पद है। इसमें गृहीत प्रत्यय अनुबन्धविनिर्मुक्त हैं। **इष्ठन्** में **इष्ठ, इमनिच्** से **इमन्** और **ईयसुन्** से **इयस्** बचा हुआ होता है। **इष्ठश्च इमन् च ईयस् च** में समास करके विभक्ति का लुक् करने के बाद **इमन्** के नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करके **इम** ही बचता है। इस तरह **इष्ठ+इम+ईयस्** बना। दोनों जगह गुण करके **इष्ठेमेयस्** बना। इसके सप्तमी बहुवचन में **इष्ठेमेयस्सु** बनता है। उसकी अनुवृत्ति इस सूत्र में की गई है।

पृथ्वादिगण में अनेक शब्द आते हैं, उनमें से **पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढानामेव रत्वम्** अर्थात् **पृथु, मृदु, भृश, कृश, दृढ** और **परिवृढ** के ऋकार को ही **र** आदेश हो, अन्य पृथ्वादि शब्दों को न हो।

११५७- टेः। टेः षष्ठ्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **भस्य** का अधिकार है और **अल्लोपोऽनः** से

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११५८. इगन्ताच्च लघुपूर्वात् ५।१।१३१।।

इगन्ताल्लघुपूर्वात् प्रातिपदिकाद्भावेऽण् प्रत्ययः। पार्थवम्। म्रदिमा, मार्दवम्।

....

लोपः की तथा **तुरिष्ठेमेयस्सु** से **इष्ठेमेयस्सु** की अनुवृत्ति आती है।

इष्ठन्, इमनिच् और इयसुन् प्रत्यय के परे होने पर भसंज्ञक टि का लोप होता है।

इकार या **अकार** के अन्त में न होने पर **यस्येति च** से लोप प्राप्त नहीं होता, ऐसे शब्दों का टिलोप करने के लिए इसकी आवश्यकता पड़ती है।

११५८- इगन्ताच्च लघुपूर्वात्। इक् अन्तोऽन्तावयवो यस्य तद् इगन्तं, तस्मात्। लघुः पूर्वो यस्य तत् लघुपूर्वम्, तस्मात्। इगन्तात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, लघुपूर्वात् पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य, भावः** तथा **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **कर्मणि** एवं **हायनान्तयुवादिभ्योऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

लघुवर्ण जिसके पूर्व में और इक् जिस के अन्त में हो ऐसे षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से भाव और कर्म अर्थों में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

प्रथिमा, पार्थवम्, पृथुत्वम्, पृथुता। विस्तार का भाव, मोटापन, महत्ता। **पृथोर्भावः।** **पृथु ङस्** में **पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा** से विकल्प से **इमनिच्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पृथु+इमन्** बना। **र ऋतो हलादेर्लघोः** से **पृथु** के **ऋकार** के स्थान पर **र** आदेश होकर **प्+र=प्र, प्रथु+इमन्** बना। **टेः** इस सूत्र से टिसंज्ञक **प्रथु** के उकार का लोप हुआ, **प्रथ्+इमन्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **प्रथिमन्** बना। इससे सु आदि प्रत्ययों के योग में **राजन्** शब्द की तरह उपधा को दीर्घ, हल्ङ्यादिलोप, नकार का लोप करके **प्रथिमा** सिद्ध हो जाता है। इसके आगे के रूप **राजन्** की ही तरह **प्रथिमानौ, प्रथिमानः, प्रथिमानम्, प्रमिमानौ, प्रथिम्नः** आदि चलते हैं। **इमनिच्** प्रत्यय वैकल्पिक है, उसके न होने के पक्ष में **इगन्ताच्च लघुपूर्वात्** से **अण्** प्रत्यय होकर **पृथु+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि होकर **पार्थु+अ** बना। **ओर्गुणः** से गुण होकर ओकार और उसके स्थान पर अव् आदेश होकर **पार्थव** बना और स्वादिकार्य करके **पार्थवम्** सिद्ध हो जाता है। **आ च त्वात्** से **त्व** और **तल्** प्रत्ययों के अधिकृत होने के कारण **त्व** प्रत्यय के योग में **पृथुत्वम्** और **तल्** प्रत्यय के योग में **पृथुता** भी बन जाते हैं। इस तरह से चार रूप बने।

इसी तरह

मृदोर्भावः- म्रदिमा, मार्दवम्, मृदुत्वम्, मृदुता।

लघोर्भावः- लघिमा, लाघवम्, लघुत्वम्, लघुता।

गुरोर्भावः- गरिमा, गौरवम्, गुरुत्वम्, गुरुता।

ऋजोर्भावः- ऋजिमा, आर्जवम्, ऋजुत्वम्, ऋजुता।

अणोर्भावः- अणिमा, आणवम्, अणुत्वम्, अणुता।

ष्यञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११५९. वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च ५।१।१२३।।

चादिमनिच्। शौक्ल्यम्। शुक्लिमा। दार्ढ्यम्। द्रढिमा।

....

महतो भावः- महिमा, महत्त्वम्, महत्ता आदि बनाये जा सकते हैं।

११५९- वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च। दृढ आदिर्येषां ते दृढादयः। वर्णाश्च दृढादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो वर्णदृढादयस्तेभ्यः। वर्णदृढादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ष्यञ् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य भावः** की अनुवृत्ति आती है और सूत्र में पठित च से पिछले सूत्र **पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा** के **इमनिच्** का ग्रहण हो जाता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है ही।

वर्ण अर्थात् रंगवाचक एवं दृढादिगणपठित षष्ठ्यन्तप्रातिपदिकों से भाव अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय होता है और इमनिच् प्रत्यय भी होता है।

षः प्रत्ययस्य से **षकार** की इत्संज्ञा होती है। **हलन्त्यम्** से ञकार इत्संज्ञक है। **य** बचता है। **षित्** होने से स्त्रीत्व की विवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** से **ङीष्** होता है। **ञित्** का फल **आदिवृद्धि** है।

शौक्ल्यम्। शुक्लिमा। सफेद का भाव, सफेदी। **शुक्लस्य भावः।** यह **वर्णवाचक** है। **शुक्ल ङस्** में **वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च** से **ष्यञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शुक्ल+य** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके **शौक्ल+य** बना। **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार के लोप के बाद **शौक्ल्+य= शौक्ल्य** बना। अब स्वादिकार्य करके **शौक्ल्यम्** सिद्ध हुआ। **इमनिच्** प्रत्यय होने के पक्ष में **शुक्ल+इमन्** बना है। **टेः** से **टिसंज्ञक अकार** के लोप करने पर **शुक्लिमन्** बना। इससे **राजन्** शब्द की तरह **शुक्लिमा, शुक्लिमानौ, शुक्लिमानः** आदि रूप बना सकते हैं। **आ च त्वात्** के अधिकार के कारण **त्व, तल्** प्रत्यय भी होंगे। **त्व** के योग में **शुक्लत्वम्** और **तल्** के योग में **शुक्लता** भी बन जाते हैं।

इसी तरह **कृष्णस्य भावः- कार्ष्ण्यम्, कृष्णिमा, कृष्णत्वम्, कृष्णता** आदि सभी वर्णवाचक शब्दों से ये प्रत्यय किये जा सकते हैं।

दार्ढ्यम्। द्रढिमा। दृढ़ता का भाव, दृढ़भाव, दृढ़पन। **दृढस्य भावः।** यह **दृढादिगणपठित शब्द** है। **दृढ ङस्** में **वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च** से **ष्यञ्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दृढ+य** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके **दार्ढ+य** बना। **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार के लोप के बाद **दार्ढ्+य= दार्ढ्य** बना। अब स्वादिकार्य करके **दार्ढ्यम्** सिद्ध हुआ। **इमनिच्** प्रत्यय होने के पक्ष में **दृढ+इमन्** बना है। **र ऋतो हलादेर्लघोः** से **दृढ** के **ऋकार** के स्थान पर **र** आदेश होकर **द्रढ+इमन्** बना। **टेः** से **टिसंज्ञक अकार** के लोप करने पर **द्रढिमन्** बना। इससे **राजन्** शब्द की तरह **द्रढिमा, द्रढिमानौ, द्रढिमानः** आदि रूप बना सकते हैं। **आ च त्वात्** के अधिकार के कारण **त्व, तल्** प्रत्यय भी होंगे। **त्व** के योग में **दृढत्वम्** और **तल्** के योग में **दृढता** भी बन जाते हैं। इसी तरह **दृढादिगणपठित** सभी शब्दों से उक्त प्रत्यय करके प्रयोग बनाये जा सकते हैं।

ष्यञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११६०. गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ५।१।१२४॥

चाद्भावे। जडस्य भावः कर्म वा जाड्यम्। मूढस्य भावः कर्म वा मौढ्यम्। ब्राह्मण्यम्। आकृतिगणोऽयम्।

य-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११६१. सख्युर्यः ५।१।१२६॥

सख्युर्भावः कर्म वा सख्यम्।

....

११६०- गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। गुणम् उक्तवन्तः इति गुणवचनाः। ब्राह्मणः आदिर्येषां ते ब्राह्मणादयः। गुणवचनाश्च ब्राह्मणादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो गुणवचनब्राह्मणादयस्तेभ्यः। गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, कर्मणि सप्तम्यन्तं, चाव्ययपदं त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य, भावः** तथा **वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च** से **ष्यञ्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है ही।

षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक गुणवाचक शब्द या ब्राह्मणादिगणपठित शब्दों से भाव और कर्म अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय होता है।

षकार की **षः प्रत्ययस्य** से इत्संज्ञा होती है तो ञकार **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञक है। य शेष रहता है। ञित् होने के कारण आदिवृद्धि भी होती है। इसके पहले के सूत्रों से भाव अर्थ में ही प्रत्यय हो रहे थे तो इसमें कर्म अर्थ भी जुड़ गया है। ब्राह्मणादि आकृतिगण है।

जाड्यम्। जड़ता का भाव या जड़ का कर्म। **जडस्य भावः कर्म वा** लौकिक विग्रह और **जड ङस्** अलौकिक विग्रह है। **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से ष्यञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **जड+य** बना। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **जाड्+य=जाड्य** बना। सु, अम् और पूर्वरूप करके **जाड्यम्** सिद्ध हुआ।

मौढ्यम्। मूढ़ होने का भाव या मूढ़ का कर्म, मूढ़पन। **मूढस्य भावः कर्म वा** लौकिक विग्रह और **मूढ ङस्** अलौकिक विग्रह है। **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से ष्यञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मूढ+य** बना। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **मौढ्+य=मौढ्य** बना। सु, अम् और पूर्वरूप करके **मौढ्यम्** सिद्ध हुआ।

ब्राह्मण्यम्। ब्राह्मण का भाव या कर्म। **ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा** लौकिक विग्रह और **ब्राह्मण ङस्** अलौकिक विग्रह है। **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से ष्यञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ब्राह्मण+य** बना। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **ब्राह्मण्+य=ब्राह्मण्य** बना। सु, अम् और पूर्वरूप करके **ब्राह्मण्यम्** सिद्ध हुआ।

इसी तरह **चोरस्य भावः कर्म वा चौर्यम्, निपुणस्य भावः कर्म वा नैपुण्यम्, दीनस्य भावः कर्म वा दैन्यम्, चपलस्य भावः कर्म वा चापल्यम्, विषमस्य भावः कर्म वा वैषम्यम्** आदि बनाये जा सकते हैं।

ढक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११६२. कपिज्ञात्योर्ढक् ५।१।१२७॥

कापेयम्। ज्ञातेयम्।

यक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११६३. पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ५।१।१२८॥

सैनापत्यम्। पौरोहित्यम्।

इति त्वतलोरधिकारः॥५४॥

११६१- **सख्युर्यः**। सख्युः पञ्चम्यन्तं, यः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य**, **भावः** तथा **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है ही।

षष्ठ्यन्त सखि इस प्रातिपदिक से भाव और कर्म अर्थ में य प्रत्यय होता है।

सख्यम्। मित्रभाव, मैत्री, मित्रता या मित्र का कर्म। **सख्युर्भावः कर्म वा** लौकिक विग्रह और **सखि ङस्** अलौकिक विग्रह। **सख्युर्य** से **य** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सखि+य** बना। भसंज्ञक इकार का लोप होने पर **सख्+य=सख्य** बना। सु, अम् और पूर्वरूप करके **सख्यम्** सिद्ध हुआ।

११६२- **कपिज्ञात्योर्ढक्।** कपिश्च ज्ञातिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः कपिज्ञाती, तयोः। कपिज्ञात्योः पञ्चम्यर्थे षष्ठी। ढक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य भावः**, **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठ्यन्त कपि और ज्ञाति प्रातिपदिको से ढक् प्रत्यय होता है।

ककार की इत्संज्ञा होने से आदिवृद्धि होती है। **ढ** में केवल **ढ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **एय्** आदेश होकर **एय** बन जाता है।

कापेयम्। कपि=बन्दर का भाव या बन्दर का कर्म। **कपेर्भावः कर्म वा। कपि ङस्** में **कपिज्ञात्योर्ढक्** से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुब्लुक् करके ढकार के स्थान पर एय् आदेश होकर **कपि+एय** बना है। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करके **कापि+एय** बना। भसंज्ञक इकार का **यस्येति च** से लोप करके **कापेय** बन गया है। इससे स्वादिकार्य करने पर **कापेयम्** सिद्ध हो जाता है।

ज्ञातेयम्। ज्ञाति अर्थात् बन्धु का का भाव, या बन्धु का कर्म। **ज्ञातेर्भावः कर्म वा। ङस्** में **कपिज्ञात्योर्ढक्** से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् लुक् करके ढकार के स्थान पर एय् आदेश होकर **ज्ञाति+एय** बना है। कित् होने के कारण **पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिः** इस न्याय से वृद्धिवर्ण के स्थान पर भी **किति च** से आदिवृद्धि करके **ज्ञाति+एय** बना। भसंज्ञक इकार का **यस्येति च** से लोप करके **ज्ञातेय** बन गया है। इससे स्वादिकार्य करने पर **ज्ञातेयम्** सिद्ध हो जाता है।

१९६३- **पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्।** पतिः अन्ते येषां पत्यन्तानि, पुरोहितः आदिर्येषां तानि पुरोहितादीनि। पत्यन्तानि च पुरोहितादीनि च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः पत्यन्तपुरोहितादीनि, तेभ्यः। पत्यन्तपुरोहितादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यक् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य** और **भावः** तथा **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है ही।

पतिशब्द अन्त में हो या पुरोहितादि गण में पठित शब्द हो, ऐसे षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक शब्द से यक् प्रत्यय होता है।

ककार इत्संज्ञक है। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि होती है।

सैनापत्यम्। सेनापति का भाव या कर्म। पति-शब्द अन्त में है। **सेनापतेः भावः कर्म वा** लौकिक विग्रह और **सेनापति ङस्** अलौकिक विग्रह। **पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्** से यक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सेनापति+य** बना। आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार के लोप होने पर **सैनापत्+य=सैनापत्य** बना। सु, अम् और पूर्वरूप करके **सैनापत्यम्** सिद्ध हुआ।

पौरोहित्यम्। पुरोहित का भाव या कर्म। पुरोहितादि गणपठित शब्द है। **पुरोहितस्य भावः कर्म वा** लौकिक विग्रह और **पुरोहित ङस्** अलौकिक विग्रह। **पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्** से यक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पुरोहित+य** बना। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार के लोप होने पर **पुरोहित्+य=पौरोहित्य** बना। सु, अम् और पूर्वरूप करके **पौरोहित्यम्** सिद्ध हुआ।

अब हम लोग तद्धितप्रकरण के अन्त की ओर हैं। कुछ ही दिनों में **लघुसिद्धान्तकौमुदी** का अध्ययन पूर्ण होने वाला है। इसके बाद **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** प्रारम्भ करेंगे। **पाणिनीयाष्टाध्यायी** के सभी सूत्र **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में लिए गए हैं। यदि अष्टाध्यायी के क्रम से सूत्र याद हों और प्रक्रिया सिद्धान्तकौमुदी की हो तो व्यक्ति शब्दशास्त्र का प्रकाण्ड विद्वान् हो सकता है। इसलिए बार-बार हम पहले **अष्टाध्यायी** रटने की सलाह देते हैं। प्रति महीने एक अध्याय के हिसाब से आवृत्ति करने पर विना रटे ही पूरी अष्टाध्यायी याद हो सकती है।

परीक्षा

इस प्रकरण के सभी सूत्रों एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालते हुए किन्हीं दस प्रयोगों की सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या में
त्वतलोरधिकार-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ भवनाद्यर्थकाः

खञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११६४. धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ५।२।१॥

भवत्यस्मिन्निति भवनम्। मुद्गानां भवनं क्षेत्रं मौद्गीनम्।

ढक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११६५. व्रीहिशाल्योर्ढक् ५।२।२॥

व्रैहेयम्। शालेयम्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **भवनाद्यर्थक** प्रत्ययों का प्रकरण आरम्भ होता है। इसके साथ में **वह ऐसा हुआ, अवयव, पूरण** आदि अर्थों में भी प्रत्यय होंगे। ये प्रत्यय **खञ्, इतच्, तयप्, डट्, तीय** आदि हैं।

११६४- धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्। धान्यानां षष्ठ्यन्तं, भवने सप्तम्यन्तं, क्षेत्रे सप्तम्यन्तं, खञ् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

भवन अर्थात् उत्पत्तिस्थानरूप क्षेत्र अर्थ में किसी धान्यविशेष के वाचक प्रथमान्त शब्दों से खञ् प्रत्यय होता है।

खञ् में **ञकार** इत्संज्ञक है और **खकार** के स्थान पर **ईन्** आदेश हो जायेगा।

मौद्गीनम्। मूंग नामक धान्य(दाल) के होने का क्षेत्र, खेत आदि। **मुद्गानां भवनं क्षेत्रम्** लौकिक विग्रह और **मुद्ग+आम्** अलौकिक विग्रह है। ऐसी स्थिति में **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** से खञ् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से खकार के स्थान पर ईन् आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **मौद्ग्+ईन=मौद्गीन** बना। सु, अम्, पूर्वरूप **मौद्गीनम्।**

गौधूमीनम्। गोधूम अर्थात् गेहूँ धान्य के होने का क्षेत्र, खेत आदि। **गोधूमानां भवनं क्षेत्रम्** लौकिक विग्रह और **गोधूम+आम्** अलौकिक विग्रह है। ऐसी स्थिति में **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** से खञ् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से खकार के स्थान पर ईन् आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **गौधूम्+ईन=गौधूमीन** बना। सु, अम्, पूर्वरूप **गौधूमीनम्।**

निपातनार्थं विधिसूत्रम्

११६६. हैयङ्गवीनं सञ्ज्ञायाम् ५।२।२३॥

ह्योगोदोह-शब्दस्य हियङ्गुरादेशो विकारार्थे खञ्च निपात्यते। दुह्यत इति दोहः क्षीरम्। ह्योगोदोहस्य विकारो हैयङ्गवीनं नवनीतम्।

....

११६५- **व्रीहिशाल्योर्ढक्।** व्रीहिश्च शालिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो व्रीहिशाली, तयोः। व्रीहिशाल्योः पञ्चम्यर्थे षष्ठी, ढक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** से **भवने क्षेत्रे** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् आ ही रहा है।

षष्ठ्यन्त व्रीहि और शालि इन प्रातिपदिकों से उनके उत्पत्तिस्थान क्षेत्र अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है।

यह सूत्र **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** का अपवाद है। ककार इत्संज्ञक है, ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश होता है।

व्रैहेयम्। धान के होने का क्षेत्र, खेत आदि। **व्रीहीणां भवनं क्षेत्रम्** लौकिक विग्रह और **व्रीहि+आम्** अलौकिक विग्रह है। ऐसी स्थिति में **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** से खञ् प्रत्यय प्राप्त हुआ, उसे बाधकर **व्रीहिशाल्योर्ढक्** से **ढक्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप करके **व्रैह्+एय=व्रैहेय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **व्रैहेयम्** सिद्ध हुआ।

शालेयम्। शालि धान्यविशेष के होने का क्षेत्र, खेत आदि। **शालीनां भवनं क्षेत्रम्** लौकिक विग्रह और **व्रीहि+आम्** अलौकिक विग्रह है। ऐसी स्थिति में **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** से खञ् प्रत्यय प्राप्त हुआ, उसे बाधकर **व्रीहिशाल्योर्ढक्** से **ढक्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप करके **शाल्+एय=शालेय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **शालेयम्** सिद्ध हुआ।

११६६- **हैयङ्गवीनं सञ्ज्ञायाम्।** हैयङ्गवीनं प्रथमान्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्।

विकार अर्थ में 'ह्योगोदोह' शब्द के स्थान पर 'हियङ्गु' आदेश और उसके संनियोग में खञ् प्रत्यय का निपातन होता है।

ह्योगोदोहः अर्थात् **ह्यस्**=कल के **गोदोहः**=गाय का दूध। **दुह्यते इति दोहः**, जिसका दोहन होता है, वह **दोह** है। दूध ही दोह है। उसके विकार अर्थात् कल के दूध से दही और उससे निर्मित ताजा-ताजा मक्खन अर्थ में इस सूत्र से **ह्योगोदोह** शब्द के स्थान पर **हियङ्गु** आदेश और साथ में **खञ्** प्रत्यय का भी निपातन सूत्रकार ने किया है। तात्पर्य यह है कि **हैयङ्गवीनम्** बनाने के लिए प्रक्रिया न दिखाकर सूत्र में ही सिद्ध प्रयोग का पठन सूत्रकार ने किया है। अब इसकी सिद्धि में जो भी प्रत्यय और **ह्योगोदोह** प्रकृति के स्थान पर जो भी आदेश अभीष्ट हो, वह करने के लिए हम स्वतन्त्र हैं। अब पाणिनि जी के द्वारा निपातित **हैयङ्गवीन** के बनाने में **ह्योगोदोह** के स्थान पर **हियङ्गु** आदेश और उसके साथ **खञ्** प्रत्यय का होना सम्भव है। इस तरह **ह्यो-गोदोहस्य विकारः** में उक्त कार्य करके

इतच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११६७. तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच् ५।२।३६॥

तारका: सञ्जाता अस्य तारकितं नभ:। पण्डित:। आकृतिगणोऽयम्।

....

हियङ्गु+ख बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **खकार** के स्थान पर **ईन्** आदेश होकर **हियङ्गु+ईन** बना। आदिवृद्धि करके **हैयङ्गु+ईन** बना। उकार को **ओर्गुणः** से गुण होकर **अवादेश** करने पर **हैयङ्गवीन** बना। स्वादिकार्य करके **हैयङ्गवीनम्** सिद्ध हुआ।

११६७- **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्।** तद् प्रथमान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, अस्य षष्ठ्यन्तं, सञ्जातं प्रथमान्तं, तारकादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, इतच् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

प्रथमान्त तारकादि गणपठित प्रातिपदिकों से 'तत्सञ्जातमस्य' अर्थात् 'वह हो गया है, इसका' इस अर्थ में इतच् प्रत्यय होता है।

तारकादि एक पाणिनि जी द्वारा पढ़ा गया गणपाठ है, इसमें कुछ शब्द तो उनके द्वारा पठित हैं, शेष शब्दों को आकृतिगण मानकर इसके अन्तर्गत मान लिया जाता है, जिससे **इतच्** प्रत्यय हो जाय। चकार इत्संज्ञक है, इत बचता है। अजादि होने के कारण इसके परे होने पर भसंज्ञा होती है और ञित्, णित्, कित् न होने के कारण आदिवृद्धि नहीं होती है।

तारकितं नभः। तारे हो गये हैं जिसके, ऐसा आकाश अर्थात् जैसे-जैसे रात्री का आगमन होता है वैसे-वैसे आकाश में तारे दिखते हैं तो वहाँ यह व्यवहार होता है कि आकाश तारामय हो गया है। **तारकाः संजाताः अस्य** लौकिक विग्रह और **तारका जस्** अलौकिक विग्रह में **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** से **इतच्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक आकार का लोप करके **तारक्+इत=तारकित,** सु, अम् और पूर्वरूप करके **तारकितम्** सिद्ध हुआ।

सदसद्विवेकिनी बुद्धिः पण्डा, सा सञ्जाता अस्य सः पण्डितः। सत् और असत् का विवेक करने वाली बुद्धि को पण्डा कहते हैं, इस प्रकार की बुद्धि जिसकी हो गई है, उसे पण्डित कहते हैं अर्थात् इतच् प्रत्यय होकर के **पण्डितः** की सिद्धि होती है।

पण्डितः। पण्डा संजाता अस्य लौकिक विग्रह और **पण्डा सु** अलौकिक विग्रह में **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** से **इतच्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक आकार का लोप करके **पण्ड्+इत=पण्डित,** सु, रुत्वविसर्ग करके **पण्डितः** सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार आगे भी बनाइये-

कुसुमानि सञ्जातानि अस्याः- कुसुमिता लता= पुष्प हो गये हैं जिस लता में।
बुभुक्षा सञ्जाता अस्य- बुभुक्षितो बालः= भूख हो गई जिस बालक में।
पिपासा सञ्जाता अस्य- पिपासितो जनः= प्यास लगी जिस मनुष्य को।
रोमाञ्चः सञ्जातोऽस्य- रोमाञ्चितो देहः= रोमाञ्च हो गया है जिस शरीर में।
गर्वः सञ्जातोऽस्य- गर्वितो जनः= घमण्ड हो गया है जिस मनुष्य को।

द्वयसजादिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११६८. प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ५।२।३७।।

तदस्येत्यनुवर्तते। ऊरू प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसम्। ऊरुदघ्नम्। ऊरुमात्रम्।

वतुप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्4

११६९. यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ५।२।३९।।

यत्परिमाणमस्य यावान्। तावान्। एतावान्।

....

फलानि सञ्जातानि अस्य- फलितो वृक्षः= फल लग गये हैं जिस वृक्ष में।
दीक्षा सञ्जाता अस्य- दीक्षितो यजमानः= दीक्षा हो गई है जिस यजमान की। आदि।
११६८- प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः। द्वयसच्च दघ्नच्च मात्रच्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः। प्रमाणे सप्तम्यन्तं, द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्** से **तद्** और **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

प्रमाण में वर्तमान प्रथमान्त प्रातिपदिक से 'वह प्रमाण है इसका' इस अर्थ में द्वयसच्, दघ्नच् और मात्रच् प्रत्यय होते हैं।

तीनों में चकार इत्संज्ञक है। तीनों प्रत्यय प्रमाण अर्थ में होते हैं।

ऊरुद्वयसम्। ऊरु के बराबर प्रमाण है जिसका अर्थात् नदी का जल ऊरु तक आता है या अन्य कोई वस्तु जंघा के बराबर है आदि अर्थ। **ऊरु सु** से **प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः** से **द्वयसच्** प्रत्यय, चकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ऊरुद्वयस** बना। सु आया, उसके स्थान पर नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके पूर्वरूप करने पर **ऊरुद्वयसम्** बना।

ऊरुदघ्नम्। ऊरु के बराबर प्रमाण है जिसका अर्थात् नदी का जल ऊरु तक आता है या अन्य कोई वस्तु जंघा के बराबर है आदि अर्थ। **ऊरु सु** से **प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः** से **दघ्नच्** प्रत्यय, चकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ऊरुदघ्न** बना। सु आया, उसके स्थान पर नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके पूर्वरूप करने पर **ऊरुदघ्नम्** बना।

ऊरुमात्रम्। ऊरु के बराबर प्रमाण है जिसका अर्थात् नदी का जल ऊरु तक आता है या अन्य कोई वस्तु जंघा के बराबर है आदि अर्थ। **ऊरु सु** से **प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः** से **मात्रच्** प्रत्यय, चकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ऊरुमात्र** बना। सु आया, उसके स्थान पर नपुंसकलिङ्ग में अम् आदेश करके पूर्वरूप करने पर **ऊरुमात्रम्** बना।

११६९. यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्। यत् च तत् च एतत् च एतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो यत्तदेतदस्तेभ्यः। यत्तदेतेभ्यः पञ्चम्यन्तं, परिमाणे सप्तम्यन्तं, वतुप् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** से **तद्** और **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

वतुप्सन्नियोगघादेश-विधायकं विधिसूत्रम्

११७०. किमिदंभ्यां वो घः ५।२।४०॥

आभ्यां वतुप् स्याद् वकारस्य घश्च।

ईश्+कि+इत्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

११७१. इदंकिमोरीश्की ६।३।९०॥

दृग्दृश्वतुषु इदम ईश्, किमः किः। कियान्। इयान्।

....

परिमाण अर्थ में विद्यमान यद्, तद्, एतद् इन प्रथमान्त प्रातिपदिकों से 'वह परिमाण है इसका' इस अर्थ में वतुप् प्रत्यय होता है।

वतुप् में उकार और पकार इत्संज्ञक हैं, **वत्** शेष रहता है। ध्यान रहे कि **वति** प्रत्यय वाले **वत्** से यह **वत्** भिन्न है। वतिप्रत्ययान्त अव्यय होता है किन्तु **वतुप्** प्रत्ययान्त के तीनों लिङ्ग में रूप चलते हैं।

यावान्। जो परिमाण है इसका अर्थात् जितना। **यत् परिमाणमस्य। यत् सु** से **यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्** से **वतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **यत्+वत्** बना। **आ सर्वनाम्नः** से **तकार** के स्थान पर **आकार** आदेश करके सवर्णदीर्घ करने पर **यावत्** बना। इससे सु आया। उगित् होने के कारण **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुम् आगम और **अत्वसन्तस्य चाधातोः** से उपधा को दीर्घ करके **यावान्त्+स्** बना है। सकार का हल्ङ्यादिलोप और तकार का संयोगान्तलोप करने पर **यावान्** सिद्ध हुआ। आगे **यावन्तौ, यावन्तः, यावन्तम्, यावन्तौ, यावतः, यावता, यावद्भ्याम्, यावद्भिः** आदि रूप बन जाते हैं। स्त्रीत्वविवक्षा में **उगितश्च** से **ङीप्** करने पर **यावती, यावत्यौ, यावत्यः, यावतीम्, यावत्यौ, यावतीः** आदि बनते हैं। नपुंसकलिङ्ग में **यावत्, यावती, यावन्ती** आदि रूप बनते हैं।

इसी तरह से **तद्** शब्द से **तत् परिमाणमस्य** उतना परिमाण है जिसका अर्थात् उतना अर्थ में **तद् सु** से उक्त प्रक्रिया करके **तावान्, तावन्तौ, तावन्तः। तावती, तावत्यौ, तावत्यः। तावत्, तावती, तावन्ति** आदि बनाइये। इसी तरह **एतद्** शब्द से इतना परिमाण है इसका अर्थ में **एतत् सु** से भी उक्त प्रक्रिया के साथ **एतावान्, एतावन्तौ, एतावन्तः। एतावती, एतावत्यौ, एतावत्यः। एतावत्, एतावती, एतावन्ति** आदि आप सरलता से बन सकते हैं।

११७०- किमिदंभ्यां वो घः। किम् च इदं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः किमिदमौ, ताभ्याम्। **यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्** से **परिमाणे वतुप्** तथा **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् आ रहा है।

परिमाण में वर्तमान किम्, इदम् इन प्रथमान्त प्रातिपदिकों से 'वह परिमाण है इसका' इस अर्थ में वतुप् प्रत्यय और वतुप् के वकार के स्थान पर घकार आदेश होता है।

इस सूत्र से दो कार्य हुए। एक तो किम् और इदम् इन सर्वनामों से **वतुप्** प्रत्यय और दूसरा **वतु** के **वकार** के स्थान पर **घ** आदेश। **वतुप्** में अनुबन्धलोप होकर **वत्** बचा

तयप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११७२. सङ्ख्याया अवयवे तयप् ५।२।४२॥

पञ्च अवयवा अस्य पञ्चतयम्।

....

है। **अत्** को छोड़कर केवल **व्** के स्थान पर **घ्** आदेश होने के बाद उस घकार के स्थान पर भी **आयनेयीनियियः०** से **इय्** आदेश होकर **इयत्** बन जाता है।

११७१- **इदंकिमोरीश्की**। इदं च किम् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्व इदंकिमौ, तयोः। ईश् च किश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्व ईश्की। **दृग्दृश्वतुषु** से **दृग्दृश्वतुषु** की अनुवृत्ति आती है।

दृक्, दृश, वतुप् के परे रहने पर इदम् शब्द के स्थान पर ईश् और किम् शब्द के स्थान पर कि आदेश होते हैं।

यथासङ्ख्य होने से **इदम्** के स्थान पर **ईश्** और **किम्** के स्थान **कि** आदेश होते हैं। **ईश्** यह आदेश **शित्** है, अतः **इदम्** सम्पूर्ण के स्थान पर आदेश होता है।

कियान्। क्या है परिमाण इसका? अर्थात् कितना। **किं परिमाणमस्य,** यह लौकिक विग्रह है। **किम् सु** इस अलौकिक विग्रह में **किमिदम्भ्यां वो घः** से **वतुप्** प्रत्यय और **वकार** के स्थान पर **घ्** आदेश हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **किम्+घ्+अत्** बना है। **घ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **इय्** आदेश होकर **किम्+इयत्** बना। अब **किम्** के स्थान पर **इदंकिमोरीश्की** से **कि** आदेश होकर **कि+इयत्** बना। **यस्येति च** से **कि** के इकार का लोप हुआ- **क्+इयत्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **कियत्** बना। इससे सु, उपधा को दीर्घ, नुम्, हल्ङ्यादिलोप और संयोगान्तलोप होकर **कियान्** और आगे **कियन्तौ, कियन्तः** आदि रूप बनते हैं।

इयान्। यह है परिमाण इसका, अर्थात् इतना। **इदं परिमाणमस्य,** यह लौकिक विग्रह है। **इदम् सु** इस अलौकिक विग्रह में **किमिदम्भ्यां वो घः** से **वतुप्** प्रत्यय और **वकार** के स्थान पर **घ्** आदेश हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **इदम्+घ्+अत्** बना है। **घ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **इय्** आदेश होकर **इदम्+इयत्** बना। अब **इदम्** के स्थान पर **इदंकिमोरीश्की** से **ईश्** सर्वादेश, शकार का लोप करके **ई+इयत्** बना। **यस्येति च** से अकेले ईकार का लोप हुआ- **इयत्** इतना मात्र प्रातिपदिक बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मान कर इससे सु, उपधा को दीर्घ, नुम्, हल्ङ्यादिलोप और संयोगान्तलोप होकर **इयान्, इयन्तौ, इयन्तः** आदि रूप बनते हैं।

११७२- **सङ्ख्याया अवयवे तयप्**। सङ्ख्यायाः षष्ठ्यन्तं, अवयवे सप्तम्यन्तं, तयप् प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** से **तद्** और **अस्य** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् आ रहा है।

अवयव अर्थ में विद्यमान सङ्ख्यावाचक प्रथमान्त से 'वह इसका अवयव है' इस अर्थ में तयप् प्रत्यय होता है।

पकार इत्संज्ञक है। यकारादि या अजादि न होने से इसके परे होने पर भसंज्ञा नहीं होगी और ञित्, णित् और कित् न होने से आदिवृद्धि भी नहीं होगी।

पञ्चतयम्। पाँच अवयव या संख्या है जिसकी, वह। **पञ्च अवयवाः अस्य**

अयजादेशविधायकं विधिसूत्रम्

११७३. द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ५।२।४३॥

द्वयम्, द्वितयम्। त्रयम्, त्रितयम्।

अयजादेशविधायकं विधिसूत्रम्

११७४. उभादुदात्तो नित्यम् ५।२।४४॥

उभशब्दात्तयपोऽयच् स्यात्, स चाद्युदात्तः। उभयम्।

....

लौकिक विग्रह और **पञ्चन् जस्** अलौकिक विग्रह है। **सङ्ख्याया अवयवे तयप्** से तयप्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करके **पञ्चतय** बना। सु, अम् और पूर्वरूप करके **पञ्चतयम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह **षट्तयम्, अष्टतयम्, नवतयम्** आदि भी बनाइये।

११७३- द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा। द्विश्च त्रिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो द्वित्री, ताभ्याम्। द्वित्रिभ्यां पञ्चम्यन्तं, तयस्य षष्ठ्यन्तम्, अयच् प्रथमान्तं, वा अव्ययपदम् अनेकपदमिदं सूत्रम्।

द्वि और त्रि प्रातिपदिकों से परे तयप् के स्थान पर वैकल्पिक अयच् आदेश होता है।

चकार इत्संज्ञक है। स्थानिवद्भावेन तयप् में विद्यमान गुण प्रत्ययत्व आदि अयच् में भी आ जाते हैं।

द्वयम्, द्वितयम्। दो अवयव या संख्या है जिसकी, वह। **द्वौ अवयवौ अस्य** लौकिक विग्रह और **द्वि औ** अलौकिक विग्रह है। **सङ्ख्याया अवयवे तयप्** से तयप्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा** से तय के स्थान पर अयच् आदेश, अनुबन्धलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने पर **द्वि+अय** बना। भसंज्ञक इकार का लोप करने पर **द्व्+अय=द्वय** बना, सु, अम् करके **द्वयम्** सिद्ध हुआ। अयजादेश न होने के पक्ष में **द्वितयम्** बना।

त्रयम्, त्रितयम्। तीन अवयव या संख्या है जिसकी, वह। **त्रयः अवयवाः अस्य** लौकिक विग्रह और **त्रि जस्** अलौकिक विग्रह है। **सङ्ख्याया अवयवे तयप्** से तयप्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा** से तय के स्थान पर अयच् आदेश, अनुबन्धलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने पर **त्रि+अय** बना। भसंज्ञक इकार का लोप करने पर **त्र्+अय=त्रय** बना, सु, अम् करके **त्रयम्** सिद्ध हुआ। अयजादेश न होने के पक्ष में **त्रितयम्** बना।

११७४- उभादुदात्तो नित्यम्। उभात् पञ्चम्यन्तम्, उदात्तः प्रथमान्तं, नित्यं द्वितीयान्तं क्रियाविशेषणम्। **द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा** से **तयस्य** और **अयच्** की अनुवृत्ति आती है।

'उभ' इस प्रातिपदिक से परे तयप् के स्थान पर नित्य से अयच् आदेश होता है और वह उदात्त स्वर वाला होता है।

अष्टाध्यायी के अनेक सूत्र प्रत्यय आदि का विधान करते हुए स्वर का भी विधान करते हैं, उसमें से एक सूत्र यह भी है।

उभयम्। दोनों अवयव हैं इसके अर्थात् दो अवयव वाला अवयवी। **उभौ**

पूरणार्थे डट्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११७५. तस्य पूरणे डट् ५।२।४८॥

एकादशानां पूरणः- एकादशः।

मडागमविधायकं विधिसूत्रम्

११७६. नान्तादसङ्ख्यादेर्मट् ५।२।४९॥

डटो मडागमः। पञ्चानां पूरणः पञ्चमः। नान्तात् किम्? विंशः।

....

अवयवौ अस्य लौकिक विग्रह और **उभ औ** अलौकिक विग्रह है। **सङ्ख्याया अवयवे तयप्** से तयप्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **उभादुदात्तो नित्यम्** से **तय** के स्थान पर **अयच्** आदेश, अनुबन्धलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने पर **उभ+अय** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **उभ्+अय=उभय** बना और सु, अम् करके **उभयम्** सिद्ध हुआ।

११७५- **तस्य पूरणे डट्**। तस्य षष्ठ्यन्तं, पूरणे सप्तम्यन्तं, डट् प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सङ्ख्याया गुणस्य निमाने मयट्** से **सङ्ख्यायाः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् आ रहा है।

सङ्ख्यावाचक षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से पूरण अर्थ में डट् प्रत्यय होता है।

डकार और **टकार** की इत्संज्ञा होती है। टित् का फल स्त्रीलिङ्ग में विशेष प्रत्यय के लिए है और डित् का प्रयोजन **टेः** से टिलोप है। एक का पूरण अर्थात् पहली संख्या को पूर्ण करने वाला(पहला) प्रथम, दो का पूरण द्वितीय, पाँच का पूरण पञ्चम आदि समझना चाहिए।

एकादशः। ग्यारहवीं संख्या को पूर्ण करने वाला, ग्यारहवाँ। **एकादशानां पूरणः** लौकिक विग्रह और **एकादशन् आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से **डट्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **एकादशन्+अ** बना। इसमें अन् टि है, उसका **टेः** से लोप हुआ, **एकादश्+अ=एकादश** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **एकादशः** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार बारहवीं संख्या का पूरण अर्थ में **द्वादशः** आदि बनाइये।

११७६- **नान्तादसङ्ख्यादेर्मट्**। न अन्तो यस्य तत् नान्तं, तस्मात्। सङ्ख्या आदिर्यस्य स सङ्ख्यादिः, न सङ्ख्यादिरसङ्ख्यादिस्तस्मादसङ्ख्यादेः। नान्तात् पञ्चम्यन्तं, असङ्ख्यादेः पञ्चम्यन्तं, मट् प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **तस्य पूरणे डट्** से षष्ठी में विभक्तिविपरिणाम करके **डटः** की अनुवृत्ति आती है।

जिसके आदि में कोई सङ्ख्याशब्द न जुड़ा हो, ऐसे नकारान्त सङ्ख्यावाचक प्रातिपदिक से परे डट् को मट् का आगम होता है।

टकार इत्संज्ञक है, टित् होने के कारण डट् के आदि में बैठेगा।

पञ्चमः। पाँचवीं संख्या को पूर्ण करने वाला, पाँचवाँ। **पञ्चानां पूरणः** लौकिक विग्रह और **पञ्चन् आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से **डट्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पञ्चन्+अ** बना। **नान्तादसङ्ख्यादेर्मट्** से मट् का आगम, अनुबन्धलोप, टित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से डट् वाले अकार

तिलोपविधायकं विधिसूत्रम्

११७७. ति विंशतेर्डिति ६।४।१४२॥

विंशतेर्भस्य तिशब्दस्य लोपो डिति परे। विंशः।
असङ्ख्यादेः किम्? एकादशः।

....

के आदि में बैठा, म और डट् वाले अकार में पररूप होने पर **पञ्चन्+म** बना। इसमें अन् **टि** है, उसका **टेः** से लोप नहीं हुआ, क्योंकि **म** हल् होने के कारण उसके परे रहते भसंज्ञा न होकर **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदसंज्ञा हुई है। **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप होकर **पञ्चम** बना और सु, रुत्वविसर्ग करके **पञ्चमः** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार **सप्तमः, नवमः, अष्टमः, दशमः** आदि बनाइये।

अष्टाध्यायी के क्रम में **विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्** यह महत्त्वपूर्ण सूत्र है किन्तु **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में यह पढ़ा नहीं गया है। जिज्ञासुओं के लिए उसका अर्थपरिचय यहाँ पर कराया जा रहा है- **विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्**। विंशत्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, तमड् प्रथमान्तं, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति, शतम्** आदि से परे **डट्** को **तमड्** आगम होता है। **तमड्** में **अड्** इत्संज्ञक है और **तम्** शेष बचता है तथा **डट्** वाले **अकार** से मिलकर **तम** बन जाता है जिससे **विंशतितमः**(बीसवाँ), **त्रिंशत्तमः**(तीसवाँ) **चत्वारिंशत्तमः**(चालीसवाँ) **पञ्चाशत्तमः**(पचासवाँ) **षष्टितमः**(साठवाँ) **सप्ततितमः**(सत्तरवाँ) **अशीतितमः**(अस्सीवाँ) **नवतितमः**(नब्बेवाँ) **शततमः**(सौवाँ) ये शब्द बन सकते हैं।
११७७- **ति विंशतेर्डिति**। ति लुप्तषष्ठीकं पदं, विंशतेः षष्ठ्यन्तं, डिति सप्तम्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अल्लोपोऽनः** से एकदेश **लोपः** की अनुवृत्ति और **भस्य** का अधिकार है।

डित् परे होने पर विंशति के अवयव भसंज्ञक ति का लोप होता है।

विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् से **तमड्** न होने के पक्ष में इससे **ति** का लोप हो जाता है।

विंशः। बीस सङ्ख्या का पूरण, बीसवाँ। **विंशतेः पूरणः** लौकिक विग्रह और **विंशति ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से डट्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विंशति+अ** बना। **विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्** से वैकल्पिक तमड् आगम, अनुबन्धलोप, **तम्+अ=तम=विंशतितम** बना, सु, रुत्वविसर्ग करके **विंशतितमः** सिद्ध हुआ। **तमड्** न होने के पक्ष में डट् के परे टिलोप प्राप्त था, उसे बाधकर **तिविंशतेर्डिति** से ति का लोप हुआ, **विंश** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **विंशः** सिद्ध हुआ। स्त्रीलिङ्ग में **विंशतितमी** और **विंशी** बनता है तथा नपुंसकलिङ्ग में **विंशतितमम्** और **विंशम्** बनता है।

त्रिंशः। तीस सङ्ख्या का पूरण, तीसवाँ। **त्रिंशतः पूरणः** लौकिक विग्रह और **त्रिंशत् ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से डट्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **त्रिंशत्+अ** बना। **विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्** से वैकल्पिक तमडागम, अनुबन्धलोप, **तम्+अ=तम, त्रिंशत्+तम=त्रिंशत्तम** बना, सु, रुत्वविसर्ग करके **त्रिंशत्तमः** सिद्ध हुआ। तमड् न होने के पक्ष में डट् के परे अत् इस टि का **टेः** से लोप करके **त्रिंश्+**

थुगागमविधायकं विधिसूत्रम्

११७८. षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् ५।२।५१॥

एषां थुगागमो स्याड्डटि। षण्णां पूरणः षष्ठः। कतिथः। कतिपयशब्दस्यासङ्ख्यात्वेऽप्यत एव ज्ञापकाड्डट्। कतिपयथः। चतुर्थः।

....

अ=त्रिंश बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **त्रिंशः** सिद्ध हुआ। स्त्रीलिङ्ग में **त्रिंशत्तमी** और **त्रिंशी** बनता है तथा नपुंसकलिङ्ग में **त्रिंशत्तमम्** और **त्रिंशम्** बनता है। इसी तरह **चत्वारिंशत्तमः, चत्वारिंशः** आदि भी बनाते जाइये।

असङ्ख्यादेः किम्? एकादशः। यदि **नान्तादसङ्ख्यादेर्मट्** में **असङ्ख्यादेः** न कहते तो सङ्ख्यादि **एकादशन्** आदि में भी मट् आगम होकर **एकादशमः** आदि अनिष्ट रूप बन जाते। अतः ऐसा न हो इसके लिए असंख्यादेः पढ़ा गया। **एकादशन्** में तो एक संख्या आदि में है, सो यहाँ नहीं हुआ। यहाँ पर **डट्** के परे टिलोप होकर **एकादशः, द्वादशः, त्रयोदशः** आदि बनते हैं।

११७८- षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्। षट् च कतिश्च कतिपयश्च चतुश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः षट्कतिकतिपयचतुरः, तेषाम्। षट्कतिकतिपयचतुरां षष्ठ्यन्तं, थुक् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तस्य पूरणे डट्** से विभक्तिविपरिणाम करके **डटि** की अनुवृत्ति आती है।

डित् के परे रहते षष्, कति, कतिपय और चतुर् शब्दों को थुक् का आगम होता है।

थुक् में **उकार** और **ककार** इत्संज्ञक हैं, **थ्** शेष रहता है। **कित्** होने के कारण शब्द के अन्त में बैठता है किन्तु वर्णसम्मेलन होकर **डट्** वाले **अकार** में मिल जाता है।

षष्ठः। छठवीं संख्या का पूरण, छठवाँ। **षण्णां पूरणः** लौकिक विग्रह और **षष् आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से **डट्,** अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **षष्+अ** बना है। **षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्** से षष् को थुक् का आगम, अनुबन्धलोप, **षष्+थ्+अ** बना। षकार से परे थकार को **ष्टुना ष्टुः** से टुत्व होकर **ठ** बना और वर्णसम्मेलन होकर **षष्ठ** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **षष्ठः** सिद्ध हुआ।

कतिथः। कितनी संख्या का पूरण, कौन-सा। **कतीनां पूरणः** लौकिक विग्रह और **कति आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से **डट्,** अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **कति+अ** बना है। **षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्** से कति को थुक् का आगम, अनुबन्धलोप, **कति+थ्+अ=कतिथ** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **कतिथः** सिद्ध हुआ।

कतिपयथः। कुछ एक संख्या का पूरण, कुछेकवाँ। **कतिपयानां पूरणः** लौकिक विग्रह और **कतिपय आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से **डट्,** अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **कतिपय+अ** बना है। **षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्** से कतिपय को थुक् का आगम, अनुबन्धलोप, **कतिपय+थ्+अ=कतिपयथ** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **कतिपयथः** सिद्ध हुआ।

चतुर्थः। चार संख्या का पूरण, चौथा। **चतुर्णां पूरणः** लौकिक विग्रह और **चतुर् आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से **डट्,** अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा,

तीयप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११७९. द्वेस्तीयः ५।२।५४॥

डटोऽपवादः। द्वयोः पूरणो द्वितीयः।

तीय-सम्प्रसारणञ्च विधायकं विधिसूत्रम्

११८०. त्रेः सम्प्रसारणञ्च ५।२।५५॥

तृतीयः।

निपातनार्थं विधिसूत्रम्

११८१. श्रोत्रियँश्छन्दोऽधीते ५।२।८४॥

श्रोत्रियः। वेत्यनुवृत्तेश्छान्दसः।

....

सुप् का लुक्, **चतुर्+अ** बना है। **षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्** से चतुर् को थुक् का आगम, अनुबन्धलोप, **चतुर्+थ्+अ=चतुर्थ** बना और सु, रुत्वविसर्ग करके **चतुर्थः** सिद्ध हुआ।

११७९- **द्वेस्तीयः**। द्वेः पञ्चम्यन्तं, तीयः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **सङ्ख्याया गुणस्य निमाने मयट्** से **सङ्ख्यायाः, तस्य पूरणे डट्** से **तस्य** एवं **पूरणे** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आता है।

पूरण अर्थ में द्वि शब्द से परे तीय प्रत्यय होता है।

द्वितीयः। दो संख्या का पूरण अर्थात् दूसरा। **द्वयोः पूरणः** लौकिक विग्रह और **द्वि ओस्** अलौकिक विग्रह है। **द्वेस्तीयः** से तीय प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **द्वितीय** बना। सु, रुत्व विसर्ग करने पर **द्वितीयः** सिद्ध हुआ।

११८०- **त्रेः सम्प्रसारणञ्च**। त्रेः षष्ठ्यन्तं, सम्प्रसारणं प्रथमान्तं, चाव्ययपदं त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **द्वेस्तीयः** से **तीयः** की, **सङ्ख्याया गुणस्य निमाने मयट्** से **सङ्ख्यायाः**की और **तस्य पूरणे डट्** से **तस्य, पूरणे** की अनुवृत्ति आती है। यहाँ पर **त्रि** शब्द की द्विरावृत्ति की जाती है सो एक को षष्ठ्यन्त और दूसरे को प्रथमान्त माना जाता है।

त्रि शब्द से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय होता है साथ ही त्रि को सम्प्रसारण भी हो जाता है।

यण् के स्थान पर इक् करने को सम्प्रसारण कहते हैं- **इग्यणः सम्प्रसारणम्**। त्रिशब्द से तीय प्रत्यय और त्रि के रेफ के स्थान पर सम्प्रसारणसंज्ञक ऋकार आदेश करता है। सम्प्रसारण होने पर **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप भी होता है।

तृतीयः। तीन संख्या का पूरण अर्थात् तीसरा। **त्रयाणां पूरणः** लौकिक विग्रह और **त्रि आम्** अलौकिक विग्रह है। **त्रेः सम्प्रसारणञ्च** से तीय प्रत्यय और **त्+र्+इ=त्रि** में जो रेफ, उसके स्थान पर सम्प्रसारणसंज्ञक ऋकार आदेश, **त्+ऋ+इ, ऋ+इ** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप एकादेश होने पर ऋकार ही हुआ, **त्+ऋ=तृ+तीय,** प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **तृतीय** बना और सु, रुत्व विसर्ग करने पर **तृतीयः** सिद्ध हुआ।

११८१- **श्रोत्रियँश्छन्दोऽधीते**। श्रोत्रियन् प्रथमान्तं, छन्दो द्वितीयान्तम्, अधीते क्रियापदं, त्रिपदं सूत्रम्।

इनि-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११८२. पूर्वादिनिः ५।२।८६॥

पूर्वं कृतमनेन पूर्वी।

इनि-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११८३. सपूर्वाच्च ५।२।८७॥

कृतपूर्वी।

....

'तदधीते' इस अर्थ में छन्दस् शब्द के स्थान 'श्रोत्र' आदेश और घन् प्रत्यय का निपातन किया जाता है।

घन् में नकार इत्संज्ञक है, फलतः नित्-स्वर आद्युदात्त होगा। इस सूत्र में **तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा** से **वा** की अनुवृत्ति की जाती है। अतः यह कार्य विकल्प से होता है।

श्रोत्रियः। वेदों का अध्येता। **छन्दोऽधीते** इस अर्थ में **छन्दस् अम्** से **तदधीते तद्वेद** से अण् प्राप्त था, उसे बाधकर के **श्रोत्रियँश्छन्दोऽधीते** से **छन्दस्** के स्थान पर **श्रोत्र आदेश** और **घन्** प्रत्यय का निपातन हुआ। नकार की इत्संज्ञा, लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **श्रोत्र+घ** बना। केवल **घ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **इय्** आदेश होकर **श्रोत्र+इय** बना। भसंज्ञक अकार को लोप करने पर **श्रोत्+इय**, वर्णसम्मेलन होकर **श्रोत्रिय** बना और स्वादिकार्य होकर **श्रोत्रियः** सिद्ध हुआ। निपातन न होने के पक्ष में **तदधीते तद्वेद** से **अण्** होकर **छान्दसः** भी बनता है।

११८२- **पूर्वादिनिः**। पूर्वात् पञ्चम्यन्तम्, इनिः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ** से **अनेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार आ ही रहा है।

क्रियाविशेषण वाले 'पूर्व' शब्द से 'अनेन' अर्थात् इससे किंवा कर्ता अर्थ में इनि प्रत्यय होता है।

अन्त्य इकार इत्संज्ञक है, **इन्** बचता है।

पूर्वी। पहले कर चुका व्यक्ति। **पूर्वं कृतम् अनेन** ऐसा विग्रह है। **पूर्व अम्** में **पूर्वादिनिः** से **इनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पूर्व+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **पूर्विन्** बना। इससे **शार्ङ्गी** की तरह **सौ च** से दीर्घ करके **पूर्वी, पूर्विणौ, पूर्विणः** आदि रूप बनते हैं।

११८३- **सपूर्वाच्च**। पूर्वेण सह सपूर्वम्, तस्मात्। सपूर्वात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **पूर्वादिनिः** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार चला आ रहा है।

जिसके पूर्व में अन्य कोई भी शब्द विद्यमान हो ऐसे पूर्व शब्द से 'अनेन' इस अर्थ में इनि प्रत्यय होता है।

कृतपूर्वी। पहले कर चुका व्यक्ति। **पूर्वं कृतम् अनेन** ऐसा विग्रह है। **पूर्व अम् कृत सु** में **सह सुपा** से समास करके **कृतपूर्व** बना है। अब **कृतपूर्व सु** में **सपूर्वाच्च** से **इनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कृतपूर्व+इन्** बना। भसंज्ञक

इनि-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११८४. इष्टादिभ्यश्च ५।२।८८॥

इष्टमनेन इष्टी। अधीती।

इति भवनाद्यर्थकाः॥५५॥

....

अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **कृतपूर्विन्** बना। इससे **शार्ङ्गी** की तरह **सौ च** से दीर्घ करके **कृतपूर्वी, कृतपूर्विणौ, कृतपूर्विणः** आदि रूप बनते हैं।

११८४- **इष्टादिभ्यश्च**। इष्टम् आदिर्येषां ते इष्टादयस्तेभ्यः। इष्टादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **पूर्वादिनिः** से **इनिः** और **श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ** से **अनेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार आ ही रहा है।

प्रथमान्त इष्ट आदि शब्दों से 'अनेन' अर्थ में इनि प्रत्यय होता है।

इष्टादिगण में इष्ट, पूर्त, उपासादित, निगदित, परिगदित, निराकृत, पूजित, परिगणित आदि अनेक शब्द आते हैं।

इष्टी। यज्ञ कर चुका व्यक्ति। **इष्टम् अनेन** ऐसा विग्रह है। **इष्ट सु** में **इष्टादिभ्यश्च** से **इनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **इष्ट+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **इष्टिन्** बना। इससे **पूर्वी** की तरह **सौ च** से दीर्घ करके **इष्टी, इष्टिनौ, इष्टिनः** आदि रूप बनते हैं।

अधीती। अध्ययन कर चुका व्यक्ति। **अधीतम् अनेन** ऐसा लौकिक विग्रह है। **अधीत सु** में **इष्टादिभ्यश्च** से **इनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अधीत+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **अधीतिन्** बना। इससे **पूर्वी** की तरह **सौ च** से दीर्घ करके **अधीती, अधीतिनौ, अधीतिनः** आदि रूप बनते हैं।

इसी तरह **पठितमनेन- पठीती, उपकृतमनेन उपकृती, पूजितमनेन- पूजिती, संरक्षितमनेन संरक्षिती** आदि प्रयोग बनाये जाते हैं। स्मरण रहे कि **क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्** वार्तिक से इस् **इन्नन्त** शब्द के योग में सप्तमी विभक्ति हुआ करती है। जैसे- **पठिती व्याकरणे, अधीती शास्त्रे, पूजिती देवेषु** आदि वाक्य बनते हैं।

परीक्षा

इस प्रकरण के सभी सूत्रों एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालते हुए किन्हीं बीस प्रयोगों की सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
भवनाद्यर्थकप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ मत्वर्थीयाः

मतुप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११८५. तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ५।२।९४।।

गावोऽस्यास्मिन् वा सन्तीति गोमान्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **मत्वर्थीयप्रकरण** प्रारम्भ होता है। आदि प्रत्यय मतुप् है, यह जिस अर्थ में होता है, उसी अर्थ में होने वाले **मतुप्, इनि, ठन्, विनि** आदि प्रत्ययों का प्रकरण है। **वह इसके पास है** या **वह इसमें है** इस अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया गया है। जैसे जिसके पास धन है उसे **धनी**, जिसके पास ज्ञान है उसे **ज्ञानी,** जो पुत्र वाला है, उसे **पुत्रवान्** और जिसके पास बुद्धि है उसे **बुद्धिमान्** आदि शब्दों का व्यवहार होता है। उसी प्रकार संस्कृत में इन अर्थों को प्रकट करने के लिए मतुबादि प्रत्यय किये जाते हैं।

भाष्यकार ने मतुप् प्रत्यय के लिए एक श्लोक उद्धृत किया है-

भूम-निन्दा-प्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने।

सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः।। अर्थात् **अस्तिविवक्षायां** (विद्यमानता की विवक्षा में) **भूमन्**(बहुत्व), **निन्दा**(बुराई), **प्रशंसा**(प्रशंसा), **नित्ययोगे**(नित्य संयोग), **अतिशायन**(अतिशयता, आधिक्य) और **सम्बन्ध**(संयोग) इन छः अर्थों में **मतुप्** प्रत्यय एवं उसके योग में होने वाले प्रत्ययों का विषय प्रतिपादित किया है। इनके उदाहरण-

भूमा- बहुत्व, अधिकता अर्थ में, जैसे- **गोमान्**(बहुत गायों वाला)

निन्दा- अर्थ में, जैसे- **ककुदावर्तिनी**(ककुदावर्तो वाली) लड़की

प्रशंसा अर्थ में, जैसे- **रूपवान्**(सुन्दर रूप वाला)

नित्ययोग-नित्यसम्बन्ध अर्थ में, जैसे- **क्षीरिणो वृक्षाः**(सदा दूध वाले वृक्ष)

अतिशायन-अतिशयता अर्थ में, जैसे- **उदरिणी कन्या**(अतिशय अर्थात् बड़े पेट वाली कन्या) और-

संसर्ग- सम्बन्ध अर्थ में, जैसे- **दण्डी**(दण्ड वाला)।

मतुप् प्रत्यय के लिए एक बात और ध्यान में रखने योग्य है कि समानरूप मतुप् प्रत्ययान्त शब्द से पुनः उसी प्रकार समान रूप वाला मतुप् प्रत्यय नहीं होगा, जैसा कि समान शैषिक प्रत्यय से पुनः वैसा ही शैषिक प्रत्यय नहीं होता, सन्नन्त से पुनः सन् प्रत्यय नहीं होता। यथा-

शैषिकान्मतुबर्थीयाच्छैषिको मतुबर्थकः।

सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते।।

भसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

११८६. तसौ मत्वर्थे १।४।१९॥

तान्तसान्तौ भसंज्ञौ स्तो मत्वर्थे प्रत्यये परे। गरुत्मान्।

वसोः सम्प्रसारणम्। विदुष्मान्।

वार्तिकम्- **गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः।**

शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति शुक्लः। पटः। कृष्णः।

....

११८५- **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्।** तद् प्रथमान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, अस्य षष्ठ्यन्तं, अस्ति क्रियापदं, अस्मिन् सप्तम्यन्तं, इत्यव्ययपदं, मतुप् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** इन सबका पहले की तरह अधिकार आ ही रहा है।

'वह इसका है और वह इसमें है' इन दो अर्थों में प्रथमान्त प्रातिपदिक से मतुप् प्रत्यय होता है।

पकार **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञक है और उकार **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञक है। **मत्** बचता है।

गोमान्। जिसके पास गौएँ हों वह गोपाल या जिसमें गौएँ रहती हैं ऐसा भवन आदि। **गावः अस्य सन्ति** अथवा **गावः अस्मिन् सन्ति** लौकिक विग्रह और **गो+जस्** अलौकिक विग्रह है। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से मतुप् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गोमत्** बना। सु विभक्ति आई, **गोमत्+स्** में **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुमागम और **अत्वसन्तस्य चाधातोः** से उपधादीर्घ करने पर **गोमान्त्+स्** बना। सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ और तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप हुआ तो **धीमान्** की तरह **गोमान्** सिद्ध हुआ। इसके रूप **धीमत्** शब्द की तरह **गोमान्, गोमन्तौ, गोमन्तः** आदि बनते हैं।

११८६- **तसौ मत्वर्थे।** मतोरर्थो मत्वर्थस्तस्मिन्। तश्च स् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्तसौ। तसौ प्रथमान्तं, मत्वर्थे सप्तम्यन्तम्। **यचि भम्** से **भम्** की अनुवृत्ति आती है।

मतुप् के अर्थ वाला कोई प्रत्यय परे हो तो तकारान्त और सकारान्त प्रातिपदिक की भसंज्ञा होती है।

भसंज्ञाप्रकरण का यह सूत्र है। जैसे कप्प्रत्ययावधिक असर्वनामस्थान यकारादि और अजादि स्वादि प्रत्ययों के परे रहते पूर्व की **यचि भम्** से भसंज्ञा होती है उसी तरह **मतुप्** प्रत्यय के अर्थ में होने वाले सभी प्रत्ययों के परे होने पर **तकारान्त** और **सकारान्त** की भी इससे **भसंज्ञा** की जाती है। **आ कडारादेका संज्ञा** से एकसंज्ञाधिकार होने के कारण भसंज्ञा से पदसंज्ञा का बाध होता है, जिससे पद को मानकर के होने वाले कार्य रूक जाते हैं।

गरुत्मान्। दो पंख हैं इसके अर्थात् पक्षी गरुड़। **गरुतौ अस्य स्तः। गरुत् औ** में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **गरुत्+मत्** बना है। लुप्तविभक्ति को मानकर के **गरुत्** में पदसंज्ञा की प्राप्ति थी और **तसौ मत्वर्थे** से **भसंज्ञा** की भी प्राप्ति हो रही थी। **एकसंज्ञाधिकार** होने और अनवकाश

संज्ञा होने से **पदसंज्ञा** का बाध होकर **भसंज्ञा** हो गई। अब पदत्व के अभाव के कारण पदान्त को मानकर होने वाला **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व रूक गया साथ ही पदत्वाभाव के कारण ही **प्रत्यये भाषायां नित्यम्** से अनुनासिक आदेश भी नहीं हुआ। **गरुत्मत्** यह प्रातिपदिक है। सु, उपधा को दीर्घ, नुम्, सुलोप, संयोगान्तलोप करके **गरुत्मान्** सिद्ध हुआ। **गरुत्मन्तौ, गरुत्मन्तः** आदि इसके रूप बनते हैं।

विदुष्मान्। विद्वान् हैं जिसके ऐसा वंश। **विद्वांसोऽस्य सन्ति** लौकिक विग्रह और **विद्वस् जस्** इस अलौकिक विग्रह में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **विद्वस्+मत्** बना है। लुप्तविभक्ति को मानकर के **विद्वस्** में पदसंज्ञा की प्राप्ति थी और **तसौ मत्वर्थे** से **भसंज्ञा** की भी प्राप्ति हो रही थी। **एकसंज्ञाधिकार** होने और अनवकाश संज्ञा होने से **पदसंज्ञा** का बाध होकर **भसंज्ञा** हो गई। अब पदत्व के अभाव के कारण पदान्त को मान कर के होने वाला **वसुस्रंसुध्वंसनडुहां दः** से दत्व रूक गया। अब **विद्वस्+मत्** में **वसोः सम्प्रसारणम्** से वकार को सम्प्रसारण और **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **विदुस्+मत्** बना। **आदेशप्रत्यययोः** से **सकार** को **षकार** आदेश होकर **विदुष्मत्** यह प्रातिपदिक बना। सु, नुम्, नान्तोपधादीर्घ सुलोप, संयोगान्तलोप करके **विदुष्मान्** सिद्ध हुआ। **विदुष्मन्तौ, विदुष्मन्तः** आदि इसके रूप बनते हैं।

गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः। यह वार्तिक है। **गुण के वाचक शब्दों से परे मतुप् प्रत्यय का लुक् होना अभीष्ट है।** तात्पर्य यह है कि सफेद, काला आदि गुण को बताने वाले शब्दों से मतुप् करने के बाद भी सफेद वाला, काला वाला आदि ही अर्थ बता रहे हों तो मतुप् प्रत्यय का लुक् हो जाना चाहिए।

शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति शुक्लः पटः। सफेद गुण है जिसका ऐसा वस्त्र। यहाँ **शुक्ल सु** में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा होने के बाद सुप् का लुक् करके **शुक्ल+मत्** बना। **गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः** इस वार्तिक से **मत्** का लुक् हुआ तो **शुक्ल** ही बचा। इससे स्वादिकार्य करने पर **शुक्लः, शुक्लौ, शुक्लाः** आदि रूप बनते हैं। मतुप् होने के पक्ष में और न होने के पक्ष में समान ही रूप बनते हैं, प्रसंग के अनुसार यहाँ पर अर्थबोध होता है। इसी तरह **कृष्णो गुणोऽस्यास्तीति कृष्णः** आदि ही जानना चाहिए।

गुणवान्। जिसके पास गुण हो। **गुणाः अस्य सन्ति** अथवा **गुणाः अस्मिन् सन्ति** लौकिक विग्रह और **गुण+जस्** अलौकिक विग्रह है। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से मतुप् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गुण+मत्** बना। अकार से परे मतुप् के मकार के स्थान पर **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से वकार आदेश हुआ, **गुणवत्** बना। सु विभक्ति आई, **गुणवत्+स्** में **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुम् करके **अत्वसन्तस्य चाधातोः** से उपधादीर्घ और करने पर **गुणवान्त्+स्** बना। सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ और तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप हुआ **गुणवान्** सिद्ध हुआ। **गुणवान्, गुणवन्तौ, गुणवन्तः।**

विद्यावान्। जिसके पास विद्या हो। **विद्याः अस्य सन्ति** अथवा **विद्याः अस्मिन् सन्ति** लौकिक विग्रह और **विद्या+जस्** अलौकिक विग्रह है। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से मतुप् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विद्या+मत्** बना। अवर्ण से

आलच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११८७. प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ५।२।९६॥

चूडालः। चूडावान्। प्राणिस्थात् किम्? शिखावान् दीपः।
प्राण्यङ्गादेव। मेधावान्।

श-न-इलच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११८८. लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ५।२।१००॥

लोमादिभ्यः शः। लोमशः। लोमवान्। रोमशः। रोमवान्।
पामादिभ्यो नः। पामनः।

गणसूत्रम्- **अङ्गात् कल्याणे।** अङ्गना।

गणसूत्रम्- **लक्ष्म्या अच्च।** लक्ष्मणः।

पिच्छादिभ्य इलच्- पिच्छिलः। पिच्छवान्।

परे मतुप् के मकार के स्थान पर **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से वकार आदेश हुआ, **विद्यावत्** बना। सु विभक्ति आई, **विद्यावत्+स्** में नुम्, दीर्घ करने पर **विद्यावान्त्+स्** बना। सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ और तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप होकर **विद्यावान्** सिद्ध हुआ। **विद्यावान्, विद्यावन्तौ, विद्यावन्तः**। इसी तरह **लक्ष्मीवान्, यशस्वान्** आदि भी बनाइये।

११८७-**प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्**। प्राणिषु तिष्ठतीति प्राणिस्थम्, तस्मात्। प्राणिस्थात् पञ्चम्यन्तम्, आतः पञ्चम्यन्तं, लच् प्रथमान्तम्, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थाना प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधि कार है।

प्राणियों के अंगवाचक आकारान्त प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में विकल्प से लच् प्रत्यय होता है।

मतुप् प्रत्यय जिस अर्थ में होता है, उसे **मतुबर्थ** या **मत्वर्थ** कहते हैं। **'वह इसका है या वह इस में है'** इन अर्थों में मतुप् होता है तो ऐसे अर्थ में होने वाले अन्य प्रत्यय भी **मत्वर्थ** कहलाते हैं। **लच्** में चकार इत्संज्ञक है और **ल** मात्र बचता है। **मतुप्** को बाधकर **लच्** होता है, न होने के पक्ष में **मतुप्** ही होगा।

चूडालः, चूडावान्। चोंटी, शिखा है जिसका अर्थात् चोंटी वाला। **चूडा** शब्द प्राणी के शरीर का एक अंग है। **चूडा अस्यास्ति** या **अस्मिन्नस्ति** यह विग्रह है। **चूडा सु** में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** प्राप्त था, उसे बाधकर के **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्** से **लच्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **चूडाल** बना और स्वादिकार्य करके **चूडालः** सिद्ध हुआ। यह प्रत्यय वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** होकर **चूडा+मत्** बना। **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से **मत्** के **मकार** के स्थान पर **वकार** आदेश होकर **चूडावत्** बना और स्वादिकार्य करके **चूडावान्** भी बन जाता है।

प्राणिस्थात् किम्, शिखावान् दीपः। यदि **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्** इस

सूत्र में **प्राणिस्थात्** नहीं कहते तो **शिखा वाला दीपक** इस अप्राणी में भी लच् होने लगता। ऐसा होना अभीष्ट नहीं है। अत: **प्राणिस्थात्** कहा गया जिससे अप्राणी **दीपस्थ शिखा** से लच् न होकर मतुप् ही हो गया।

प्राण्यङ्गादेव, नेह- मेधावान्। ग्रन्थकार का यह कथन है कि केवल **प्राणिस्थ** मात्र होने से काम नहीं चलेगा किन्तु प्राणी के अंग का वाचक होना चाहिए। जैसे कि **बुद्धि** का वाचक **मेधा** शब्द प्राणी में ही स्थित रहता है किन्तु वह **प्राणी का अंग** नही है। जो प्राणियों में मूर्तरूप में विद्यमान हो ऐसे अंग के वाचक शब्द से ही इस प्रत्यय का विधान होना चाहिए। अत: **मेधा अस्यास्तीति** में **मेधावान्** बनेगा, **मेधाल:** नहीं।

११८८- लोमादिपामादिपिच्छादिभ्य: शनेलच:। लोमन् शब्द आदिर्येषां ते लोमादय:। पामन् शब्द आदिर्येषां ते पामादय:। पिच्छशब्द आदिर्येषां ते पिच्छादय:। लोमादयश्च पामादयश्च पिच्छादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो लोमादिपामादिपिच्छादयस्तेभ्य:। शश्च नश्च इलच् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्व: शनेलच:। लोमादिपामादिपिच्छादिभ्य: पञ्चम्यन्तं, शनेलच: प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की तथा **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्यय:, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिता:** का अधिकार है।

मत्वर्थ में लोमादिगणपठित शब्दों से श प्रत्यय, पामादिगणपठित शब्दों से न प्रत्यय और पिच्छादिगणपठित शब्दों से इलच् प्रत्यय होते हैं विकल्प से।

श और **न** प्रत्यय में कोई अनुबन्ध नहीं है किन्तु **इलच्** में चकार इत्संज्ञक है। तीन प्रकार के प्रातिपदिकों से तीन प्रकार के प्रत्यय हो रहे हैं। अत: **यथासङ्ख्यनियम** रहेगा। ये सभी प्रत्यय वैकल्पिक हैं। अत: न होने के पक्ष में **मतुप्** ही होगा।

लोमादिकों से **श** हो रहा है-

लोमश:। लोम, रोम हैं जिसके ऐसा व्यक्ति। **लोमानि अस्य सन्ति। लोमन् जस्** में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** प्राप्त था, उसे बाधकर **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्य: शनेलच:** से **श** प्रत्यय हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **लोमन्+श** बना। **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदत्व के कारण पदान्त नकार का **न लोप: प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ- **लोमश** बना। स्वादिकार्य करके **लोमश:** सिद्ध हुआ। **श** न होने के पक्ष में **मतुप्** होकर **लोमवान्** बन जाता है।

रोमश:। रोम हैं जिसके ऐसा व्यक्ति। **रोमाणि अस्य सन्ति। रोमन् जस्** में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** प्राप्त था, उसे बाधकर के **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्य: शनेलच:** से **श** प्रत्यय हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **रोमन्+श** बना। **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदत्व के कारण पदान्त नकार का **न लोप: प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ- **रोमश** बना। स्वादिकार्य करके **रोमश:** सिद्ध हुआ। **श** न होने के पक्ष में **मतुप्** होकर **रोमवान्** बन जाता है।

पामादिकों से **न** प्रत्यय हो रहा है।

पामन:। गीली खुजली वाला व्यक्ति। **पाम अस्यास्तीति। पामन् सु** में **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्य: शनेलच:** से **पामादि** मानकर **न** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **न लोप: प्रातिपदिकान्तस्य** से **नकार** का लोप करके **पामन** बना। स्वादिकार्य से **पामन:** सिद्ध हुआ। **न** होने के पक्ष में **मतुप्** होकर **पामवान्** बन जाता है।

अङ्गात् कल्याणे। यह गणसूत्र है। **कल्याण अर्थ में ही अङ्ग शब्द से न प्रत्यय**

उरच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११८९. दन्त उन्नत उरच् ५।२।१०६॥

उन्नता दन्ताः सन्त्यस्य दन्तुरः।

व-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११९०. केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ५।२।१०१॥

केशवः। केशी। केशिकः। केशवान्।

वार्तिकम्- **अन्येभ्योऽपि दृश्यते।** मणिवः।

वार्तिकम्- **अर्णसो लोपश्च।** अर्णवः।

....

हो। **अङ्ग**-शब्द **पामादि** के अन्तर्गत आता है। अतः उससे **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः** से **न** प्रत्यय प्राप्त था किन्तु इस गण सूत्र से सीमा बाँधी गई कि सर्वत्र **अङ्ग** शब्द से **न** प्रत्यय नहीं होता किन्तु **कल्याण** अर्थ होने पर ही होता है।

अङ्गना। कल्याण या सुन्दर अंगों वाली स्त्री। **कल्याणानि अङ्गानि सन्ति अस्याः।** **अङ्ग जस्** में **अङ्गात् कल्याणे** के अर्थनिर्देशन में **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः** से विकल्प से **न** प्रत्यय होकर स्त्रीत्व में **अङ्गना** बन जाता है। **न** प्रत्यय के न होने के पक्ष में **मतुप्** होकर **अङ्गवती** बन जायेगा।

पिच्छादिकों से **इलच्** प्रत्यय हो रहा है।

पिच्छिलः, पिच्छवान्। मयूरपंख है जिसका ऐसा व्यक्ति। **पिच्छिलमस्य अस्ति। पिच्छिल सु** में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** प्राप्त था, उसे बाधकर **पिच्छादि** होने के कारण **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः** से **इलच्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध का लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पिच्छ+इल** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **पिच्छिल** बना। स्वादिकार्य करके **पिच्छिलः** सिद्ध हुआ। **इलच्** न होने के पक्ष में **मतुप्** होकर **पिच्छवान्** बन जाता है। इसी तरह **पङ्कोऽस्यास्तीति पङ्किलः, पङ्कवान्** आदि भी बनाइये।

११८९- **दन्त उन्नत उरच्।** दन्ते सप्तम्यन्तम्, उन्नते सप्तम्यन्तम्, उरच् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

दाँतों का उन्नत होना अर्थ गम्यमान हो तो प्रथमान्त 'दन्त' शब्द से मत्वर्थ में 'उरच्' प्रत्यय होता है।

चकार इत्संज्ञक है, **उर** बचता है। जहाँ **उन्नत दाँत वाला** अर्थ न होकर केवल सामान्य दाँत वाला अर्थ होगा, वहाँ **उरच्** न होकर **मतुप्** के योग से **दन्तवान्** बनता है।

दन्तुरः। ऊँचे दाँत वाला व्यक्ति। **उन्नता दन्ता सन्त्यस्य। दन्त जस्** से **दन्त उन्नत उरच्** से **उरच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दन्त+उर** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **दन्तुर** बना और स्वादिकार्य करके **दन्तुरः** सिद्ध हुआ। सामान्य अर्थ में **मतुप्** होकर **दन्तवान्** बन जाता है।

इनि-ठन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११९१. अत इनिठनौ ५।२।११५॥

दण्डी। दण्डिकः।

....

११९०- **केशाद्वोऽन्यतरस्याम्**। केशात् पञ्चम्यन्तं, वः प्रथमान्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमान्त 'केश' शब्द से मत्वर्थ में विकल्प से व प्रत्यय होता है।

इस प्रत्यय में कोई अनुबन्ध नहीं है। यह प्रत्यय वैकल्पिक है। यह केवल **केश** शब्द से मत्वर्थ प्रत्यय की कर्तव्यता में प्रवृत्त होता है।

यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आ ही सकती है तो इस सूत्र में पुनः **अन्यतरस्याम्** क्यों पढ़ा गया? इसका उत्तर यह है कि यहाँ पर आचार्य को केवल **व** प्रत्यय को विकल्प से करना अभीष्ट नहीं है अपितु मत्वर्थ में होने वाले **इनि, ठन्** और **मतुप्** प्रत्ययों को भी करना अभीष्ट है। अतः **अन्यतरस्याम्** पढ़ कर यह सूचित किया है। फलतः **केश** शब्द से उक्त तीनों प्रत्यय होंगे।

केशवः, केशी, केशिकः, केशवान्। केशों वाला व्यक्ति। **केशाः सन्त्यस्य**। **केश जस्** में **केशाद्वोऽन्यतरस्याम्** से विकल्प से **व**-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **केशव** बना। स्वादिकार्य करके **केशवः** सिद्ध हुआ। **इनि** होने के पक्ष में **केश+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **केशिन्** यह प्रातिपदिक बना। इससे स्वादिकार्य करके **केशी, केशिनौ, केशिनः** आदि बन जाते हैं। इसी तरह **ठन्** होने पर उसके स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **केशिकः, केशिकौ** आदि भी बन जाते है। **मतुप्** होने के पक्ष में **केशवान्** बना सकते हैं। इस तरह **केश** शब्द से **मत्वर्थ** में चार रूप बने गये।

अन्येभ्योऽपि दृश्यते। यह वार्तिक है। **केश-शब्द के अतिरिक्त अन्य शब्दों से व प्रत्यय देखा जाता है**। जहाँ-जहाँ **व** प्रत्ययान्त रूप देखा जाय, वहीं-वहीं पर ही इस वार्तिक से **व** प्रत्यय हुआ है, ऐसा माना जाय। **दृश्यते** आदि शब्दों के प्रयोग से यह सूचना मिलती है कि हम स्वतन्त्रतया सभी शब्दों से उक्त प्रत्यय नहीं कर सकते। जहाँ-जहाँ आप्त लोगों का ऐसा प्रयोग मिलता है, वहाँ वहाँ ही उक्त **व** प्रत्यय कर सकते हैं। जैसे कि-

मणिवः। ऐसे शब्दों में आप्तप्रमाण प्राप्त है। अतः **मणिरस्यास्तीति** विग्रह में **मणि सु** से **अन्येभ्योऽपि दृश्यते** इस वार्तिक से **व** प्रत्यय करके स्वादिकार्य करने पर **मणिवः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **हिरण्यवः** आदि भी प्रयोग मिलते हैं।

अर्णसो लोपश्च। यह भी वार्तिक ही है। **'अर्णस्' शब्द से मत्वर्थ में 'व' प्रत्यय होता है साथ ही 'अर्णस्' के अन्त्य अल् का लोप भी होता है।**

अर्णवः। बहुत जल है ऐसा समुद्र। **प्रभूतम् अर्णोऽस्यास्तीति**। **अर्णस् सु** से **अर्णसो लोपश्च** इस वार्तिक से **व** प्रत्यय और **अर्णस्** के अन्त्य वर्ण **सकार** का लोप भी हुआ- **अर्णव** बना। स्वादिकार्य करके **अर्णवः** सिद्ध हुआ।

इनि-ठन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११९२. व्रीह्यादिभ्यश्च ५।२।११६॥

व्रीही। व्रीहिकः।

....

११९१- **अत इनिठनौ**। इनिश्च ठन् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्व इनिठनौ। अतः पञ्चम्यन्तं, इनिठनौ प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

ह्रस्व अकारान्त प्रथमान्त प्रातिपदिक से इनि और ठन् प्रत्यय होते हैं।

इनि में नकारोत्तरवर्ती **इकार** इत्संज्ञक है और **ठन्** में **नकार** इत्संज्ञक है। ठ के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश होता है।

दण्डी, दण्डिकः। जिसका दण्ड हो अथवा जिसमें दण्ड हो अर्थात् दण्ड वाला। **दण्डः अस्य अस्ति** अथवा **दण्डः अस्मिन् अस्ति** लौकिक विग्रह और **दण्ड सु** अलौकिक विग्रह है। **अत इनिठनौ** से इनि होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दण्ड+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **दण्ड्+इन्=दण्डिन्** बना। **योगिन्** से **योगी, योगिनौ, योगिनः** की तरह **दण्डिन्** से **दण्डी, दण्डिनौ, दण्डिनः** आदि रूप बनते हैं। **ठन्** होने के पक्ष में नकार का लोप करके ठ के स्थान पर इक आदेश करके **दण्ड+इक**, भसंज्ञक अकार का लोप करके **दण्ड्+इक=दण्डिक** बना। अकारान्त बन जाने के कारण **राम** की तरह **दण्डिकः, दण्डिकौ, दण्डिकाः** रूप बनते हैं।

छत्री, छत्रिकः। जिसका छत्र(छतरी) हो अथवा जिसमें छत्र हो अर्थात् छत्र वाला। **छत्रम् अस्य अस्ति** अथवा **छत्रम् अस्मिन् अस्ति** लौकिक विग्रह और **छत्र सु** अलौकिक विग्रह है। **अत इनिठनौ** से इनि होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **छत्र+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **छत्र्+इन्=छत्रिन्** बना। **योगिन्** से **योगी, योगिनौ, योगिनः** की तरह **छत्रिन्** से **छत्री**, रेफ से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व करने पर **छत्रिणौ, छत्रिणः** आदि रूप बनते हैं। **ठन्** होने के पक्ष में नकार का लोप करके ठ के स्थान पर इक आदेश करके **छत्र+इक**, भसंज्ञक अकार का लोप करके **छत्र्+इक=छत्रिक** बना। अकारान्त बन जाने के कारण राम की तरह **छत्रिकः, छत्रिकौ, छत्रिकाः** रूप बनते हैं।

११९२- **व्रीह्यादिभ्यश्च**। व्रीहिः आदिर्येषां ते व्रीह्यादयस्तेभ्यः। व्रीह्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की **अत इनिठनौ** से **इनिठनौ** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

व्रीहि आदि गणपठित प्रथमान्त प्रातिपदिकों से भी इनि और ठन् प्रत्यय होते हैं।

व्रीहि आदि शब्दों के अदन्त न होने के कारण **अत इनिठनौ** से प्राप्त नहीं था, एतदर्थ इस सूत्र का अवतरण हुआ है।

व्रीही, व्रीहिकः। जिसका धान हो, धान वाला। **व्रीहयोऽस्य सन्ति। व्रीहि जस्**

विनि-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११९३. अस्मायामेधास्रजो विनिः ५।२।१२१॥

यशस्वी। यशस्वान्। मायावी। मेधावी। स्रग्वी।

....

में **व्रीह्यादिभ्यश्च** से **इनि** होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **व्रीहि+इन्** बना। भसंज्ञक इकार का लोप करके **व्रीह्+इन्=व्रीहिन्** बना। **योगिन्** से **योगी, योगिनौ, योगिनः** की तरह **व्रीहिन्** से **व्रीही, व्रीहिणौ, व्रीहिणः** आदि रूप बनते हैं। **ठन्** होने के पक्ष में नकार का लोप करके **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **वीहि+इक**, भसंज्ञक इकार का लोप करके **व्रीह्+इक=व्रीहिक** बना। अकारान्त बन जाने के कारण **राम** की तरह **व्रीहिकः, व्रीहिकौ, व्रीहिकाः** रूप बनते हैं।

११९३- अस्मायामेधास्रजो विनिः। अस् च माया च मेधा च स्रज् च तेषां समाहारद्वन्द्व अस्मायामेधास्रज्, तस्मात्। अस्मायामेधास्रजः पञ्चम्यन्तं, विनिः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमान्त असन्त शब्द और माया, मेधा तथा स्रज् शब्दों से मत्वर्थ में विनि प्रत्यय होता है।

विनि में नकारोत्तरवर्ती **इकार** इत्संज्ञक है, **विन्** बचता है।

यशस्वी, यशस्वान्। जिसका यश, कीर्ति हो अथवा जिसमें यश, कीर्ति हो अर्थात् यश, कीर्ति वाला। **यशः अस्य अस्ति** अथवा **यशः अस्मिन् अस्ति** लौकिक विग्रह और **यशस् सु** अलौकिक विग्रह है। यह असन्त शब्द है। **अस्मायामेधास्रजो विनिः** से **विनि** हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **यशस्+विन्=यशस्विन्** बना। **योगिन्** से **योगी, योगिनौ, योगिनः** की तरह **यशस्विन्** से **यशस्वी, यशस्विनौ, यशस्विनः** आदि रूप बनते हैं। मतुप् होने के पक्ष में अवर्णोपध मानकर मकार के स्थान पर वकार आदेश करके **यशस्वान्, यशस्वन्तौ, यशस्वन्तः** आदि बनाये जाते हैं। स्त्रीलिङ्ग में **यशस्विनी, यशस्विन्यौ, यशस्विन्यः** आदि रूप बनते हैं।

मायावी। माया वाला, कपटी। **माया अस्य अस्ति** अथवा **माया अस्मिन् अस्ति** लौकिक विग्रह और **माया सु** अलौकिक विग्रह है। **अस्मायामेधास्रजो विनिः** से **विनि** हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **माया+विन्=मायाविन्** बना। सु आदि विभक्ति आने पर **मायावी, मायाविनौ, मायाविनः** आदि रूप बनते हैं। स्त्रीलिङ्ग में **मायाविनी, मायाविन्यौ, मायाविन्यः** आदि रूप बनाये जाते हैं।

मेधावी। धारणावती बुद्धि वाला। **मेधा अस्य अस्ति** अथवा **मेधा अस्मिन् अस्ति** लौकिक विग्रह और **मेधा सु** अलौकिक विग्रह है। **अस्मायामेधास्रजो विनिः** से **विनि** हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मेधा+विन्=मेधाविन्** बना। सु आदि विभक्ति आने पर **मेधावी, मेधाविनौ, मेधाविनः** आदि रूप बनते हैं। स्त्रीलिङ्ग में **मेधाविनी, मेधाविन्यौ, मेधाविन्यः** आदि रूप बनाये जाते हैं। इसी प्रकार **स्रज्** से **स्रग्वी, स्रग्विणौ, स्रग्विणः** आदि रूप बनाइये।

ग्मिनि-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११९४. वाचो ग्मिनिः ५।२।१२४॥

वाग्ग्मी।

अच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११९५. अर्शआदिभ्योऽच् ५।२।१२७॥

अर्शोऽस्य विद्यतेऽर्शसः। आकृतिगणोऽयम्।

....

स्रग्वी। माला, हार वाला। **स्रक् अस्य अस्ति। स्रज् सु** में **अस्मायामेधास्रजो विनिः** से **विनि** हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्रज्+विन्** बना। **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदत्व के कारण **चोः कुः** से **कुत्व** होकर **जकार** के स्थान पर **गकार** होकर **स्रग्विन्** बना। सु आदि विभक्ति आने पर **स्रग्वी, स्रग्विणौ, स्रग्विणः** आदि रूप बनते हैं।

११९४- वाचो ग्मिनिः। वाचः पञ्चम्यन्तं, ग्मिनिः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

'वाच्' इस प्रथमान्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में 'ग्मिनि' प्रत्यय होता है।

ग्मिनि में अन्त्य इकार इत्संज्ञक है, **ग्मिन्** शेष रहता है।

वाग्ग्मी। प्रशस्त वाणी वाला, बोलने में चतुर। **प्रशस्ता वागस्त्यस्य। वाच् सु** से **वाचो ग्मिनिः** से **ग्मिनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वाच्+ग्मिन्** बना। **चकार** को **चोः कुः** से कुत्व होकर **ककार** बना। उसको **झलां जशोऽन्ते** से जशत्व होकर **गकार** हुआ- **वाग्ग्मिन्** बना। इससे स्वादि कार्य करके **वाग्ग्मी, वाग्ग्मिनौ, वाग्ग्मिनः** आदि रूप बनते हैं। यथार्थ एवं सन्तुलित बोलने वाले को **वाग्ग्मी** कहते हैं तो **बोलक्कड़** को **वाचालः** कहते हैं। इसमें **आलच्** प्रत्यय होता है।

११९५- अर्शआदिभ्योऽच्। अर्शस्-शब्द आदिर्येषां ते अर्शआदयस्तेभ्यः। अर्शआदिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अच् प्रथमान्तम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

अर्शस् आदि गणपठित प्रथमान्त प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में अच् प्रत्यय होता है।

चकार इत्संज्ञक है, **अ** शेष रहता है। यह सूत्र **अस्मायामेधास्रजो विनिः** का बाधक है। **अर्शस् आदि** यह **आकृतिगण** है।

अर्शसः। अर्श, बवासीर रोग वाला। **अर्शोऽस्यास्तीति। अर्शस् सु** से **अर्शआदिभ्योऽच्** से **अच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अर्शस्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अर्शस** बना। इससे स्वादि कार्य करके **अर्शसः, अर्शसौ, अर्शसाः** आदि रूप बनते हैं।

११९६- अहंशुभमोर्युस्। अहं च शुभं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्व अहंशुभमौ, तयोः। अहंशुभमोः पञ्चम्यर्थे षष्ठी। युस् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य**

युस्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११९६. अहंशुभमोर्युस् ५।२।१४०॥

अहंयुः अहङ्कारवान्। शुभंयुः शुभान्वितः।

इति मत्वर्थीयाः॥५६॥

....

अस्ति अस्मिन् इति इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

अहम् और शुभम् इन दो अव्ययों से परे मत्वर्थ में युस् प्रत्यय होता है।

अहम् और **शुभम्** ये प्रथमान्त समान दीखने वाले अव्यय हैं। **सकार** इत्संज्ञक है, **यु** बचता है। **सित्** होने के कारण पूर्व की **सिति च** से पदसंज्ञा हो जाती है, जिससे पदान्तकार्य अनुस्वार-परसवर्ण आदि हो जाते हैं।

अहंयुः। अहंकार वाला, घमंडी। **अहम् अस्यास्तीति**। **अहम्** इस मकारान्त अव्यय से **अहंशुभमोर्युस्** से **युस्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अहम्+यु** बना। **सिति च** से **अहम्** की पदसंज्ञा होने के कारण **मकार** को **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और उसका **वा पदान्तस्य** से विकल्प से परसवर्ण होकर **अहय्‍ँयु** बना। इससे स्वादि कार्य करके **अहय्‍ँयुः, अहय्‍ँयू, अहय्‍ँयवः** आदि रूप बनते हैं। परसवर्ण न होने के पक्ष में अनुस्वार ही रह जाता है जिससे **अहंयुः, अहंयू, अहंयवः** आदि रूप बनते हैं।

शुभंयुः। शुभता से युक्त, कल्याणवाला। **शुभम् अस्यास्तीति**। **शुभम्** इस मकारान्त अव्यय से **अहंशुभमोर्युस्** से **युस्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **शुभम्+यु** बना। **सिति च** से **शुभम्** की पदसंज्ञा होने के कारण **मकार** को **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और उसका वैकल्पिक **परसवर्ण** होकर **शुभय्‍ँयु** बना। इससे स्वादि कार्यकरके **शुभय्‍ँयुः, शुभय्‍ँयू, शुभय्‍ँयवः** आदि रूप बनते हैं। पक्ष में **शुभंयुः, शुभंयू, शुभंयवः**।

परीक्षा

इस प्रकरण के सभी सूत्रों एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालते हुए किन्हीं बीस प्रयोगों की सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
मत्वर्थीयप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ प्राग्दिशीयाः

विभक्तिसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

११९७. प्राग्दिशो विभक्तिः ५।३।१॥

'दिक्छब्देभ्य' इत्यतः प्राग्वक्ष्यमाणाः प्रत्यया विभक्तिसंज्ञाः स्युः।

प्राग्दिशीयाधिकारसूत्रम्

११९८. किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः ५।३।२॥

किमः सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चेति प्राग्दिशोऽधिक्रियते।

तसिलादेशविधायकं विधिसूत्रम्

११९९. पञ्चम्यास्तसिल् ५।३।७॥

पञ्चम्यन्तेभ्यः किमादिभ्यस्तसिल् वा स्यात्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **प्राग्दिशीयप्रकरण** का प्रारम्भ होता है। इस प्रकरण के प्रत्यय प्रायः प्रकृति के ही अर्थ में होते हैं और कहीं-कहीं लौकिक विग्रह का अभाव जैसा भी रहता है। यहाँ से **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार नहीं है।

११९७- **प्राग्दिशो विभक्तिः**। प्राक् अव्ययपदं, दिशः पञ्चम्यन्तं, विभक्तिः प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्।

'दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः' इस सूत्र से पहले तक जितने प्रत्ययों का कथन होगा, उन सब की विभक्तिसंज्ञा होती है।

उन प्रत्ययों की विभक्तिसंज्ञा होने से विभक्ति को मानकर होने वाले सारे कार्य हो सकते हैं। इस प्रकरण में सिद्ध शब्द स्वरादिगण में आने के कारण अव्ययसंज्ञक हो जाते हैं।

११९८- **किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः**। किं च सर्वनाम च बहुश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः किंसर्वनामबहवस्तेभ्यः। द्वि-शब्द आदिर्येषां ते द्व्यादयः, न द्व्यादयोऽद्व्यादयस्तेभ्यः। किंसर्वनामबहुभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अद्व्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्राग्दिशो विभक्तिः** से **प्राक्** और **दिशः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

द्वि आदि से भिन्न सर्वनामसंज्ञक शब्द, किम्-शब्द और बहु शब्द से परे ही प्राग्दिशीय प्रत्यय होते हैं, यह अधिकार किया जाता है।

कु-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२००. कु तिहोः ७।२।१०४।।

किमः कुः स्यात्तादौ हादौ च विभक्तौ परतः। कुतः, कस्मात्।

इशादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२०१. इदम इश् ५।३।३।।

प्राग्दिशीये परे। इतः।

....

सर्वनाम में **द्वि, युष्मत्, अस्मत्, भवतु, किम्** भी पढ़े गये हैं। इनको छोड़कर सभी सर्वनामसंज्ञक शब्दों से प्राग्दिशीय प्रत्यय होंगे साथ ही **द्वि** आदि में **किम्** को नहीं लिया जायेगा। अतः सूत्र में **किम्** का साक्षात् उच्चारण किया गया।

११९९- पञ्चम्यास्तसिल्। पञ्चम्याः पञ्चम्यन्तं, तसिल् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः** यह पूरा सूत्र अनुवर्तित होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

द्वि आदि शब्दों से भिन्न पञ्चम्यन्त किम्, सर्वनाम एवं बहु आदि प्रातिपदिकों से वैकल्पिक तसिल् प्रत्यय होता है।

तसिल् में **इल्** इत्संज्ञक है, **तस्** बचता है। विभक्तिसंज्ञक होने के कारण **न विभक्तौ तुस्माः** से **सकार** की इत्संज्ञा का निषेध होता है।

१२००- कु तिहोः। तिश्च ह् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्तिहौ, तयोः। कु प्रथमान्तं, तिहोः सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अष्टन आ विभक्तौ** से **विभक्तौ** और **किमः कः** से **किमः** की अनुवृत्ति आती है। **यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे** से तदादिविधि होकर **तकारादि थकारादि** यह अर्थ बनता है।

तकारादि और हकारादि प्रत्ययों के परे होने पर किम् शब्द के स्थान पर कु सर्वादेश होता है।

यह **किमः कः** का अपवाद है।

कुतः, कस्मात्। कहाँ से? **कस्मात्** लौकिक विग्रह और **किम् ङसि** अलौकिक विग्रह है। **पञ्चम्यास्तसिल्** से **तसिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तस् बचा। **किम्+ङसि+तस्** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **किम्+तस्** बना। तस् की **प्राग्दिशो विभक्तिः** से विभक्तिसंज्ञा करके उसके परे होने पर **किमः कः** से क आदेश की प्राप्ति थी, उसे बाध कर **कु तिहोः** से कु आदेश हुआ। **कुतस्** से सु आदि विभक्ति और अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से उसका लुक् हो जाता है एवं सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **कुतः** सिद्ध हो जाता है। तसिल् प्रत्यय वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में पञ्चमी में **कस्मात्** तो बनता ही है।

१२०१- इदम इश्। इदमः षष्ठ्यन्तं, इश् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्दिशो विभक्तिः** से **प्राग्दिशः** की अनुवृत्ति आती है।

प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे होने पर इदम् के स्थान पर इश् आदेश होता है।

इश् में शकार की इत्संज्ञा होती है और **इ** शेष रहता है। शित् होने के कारण **अनेकाल् शित्सर्वस्य** से सर्वादेश होता है।

अनादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२०२. अन् ५।३।५॥

एतदः प्राग्दिशीये। अनेकाल्त्वात् सर्वादेशः।

अतः। अमुतः। यतः। ततः। बहुतः। द्व्यादेस्तु द्वाभ्याम्।

तसिल्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२०३. पर्यभिभ्यां च ५।३।९॥

आभ्यां तसिल् स्यात्। परितः। सर्वत इत्यर्थः। अभितः। उभयत इत्यर्थः।

....

इतः, अस्मात्। यहाँ से। **अस्मात्** लौकिक विग्रह और **इदम् ङसि** अलौकिक विग्रह है। **पञ्चम्यास्तसिल्** से **तसिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तस् बचा। **इदम्+ङसि+तस्** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **इदम् तस** बना। इदम् के स्थान पर **इदम इश्** से **इश्** आदेश, अनुबन्धलोप करके **इ+तस्=इतस्** बना। सु आदि विभक्ति और अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से उसका लुक् हो जाता है। सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **इतः** सिद्ध हो गया। तसिल् प्रत्यय वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में पञ्चमी में **अस्मात्** तो बनता ही है।

१२०२- अन्। अन् प्रथमान्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **एतदः** इस सूत्र की और **प्राग्दिशो विभक्तिः** से **प्राग्दिशः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है ही।

प्राग्दिशीय के परे होने पर एतद् के स्थान पर अन् आदेश होता है।

अन् में **नकार** की इत्संज्ञा नहीं होती है, अतः **नकार** सहित **अन्** होने के कारण अनेकाल् है। फलतः सर्वादेश हो जाता है।

अतः, एतस्मात्। इससे। **एतद् ङसि** इसमें **पञ्चम्यास्तसिल्** से तसिल्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तस् बचा। **एतद्+ङसि+तस्** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अन्** सूत्र से एतद् के स्थान पर **अन्** सर्वादेश करके **अन्+तस्** बना। नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ। **अतस्** बना। सु आदि विभक्ति, अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से उसका लुक् हो जाता है और सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **अतः** सिद्ध हो जाता है। तसिल् प्रत्यय वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में पञ्चमी में **एतस्मात्** तो बनता ही है।

अमुतः, अमुष्मात्। इससे। **अदस् ङसि** में **पञ्चम्यास्तसिल्** से तसिल्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तस् बचा। **अदस्+ङसि+तस्** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अदस्+तस्** बना। **तस्** की विभक्तिसंज्ञा हुई है, अतः **त्यदादीनामः** से दकार के स्थान पर **अकार** आदेश करके **अद+अ+तस्** बना। **अद+अ** में **अतो गुणे** से पररूप होकर **अद+तस्** बना। **अदसोऽसेर्दादु दो मः** से उत्व-मत्व होकर **अमुतस्** बना। सु आदि विभक्ति, अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से उसका लुक् हो जाता है। सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **अमुतः** सिद्ध हो गया। तसिल् आदेश वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में पञ्चमी में **अमुष्मात्** तो बनता ही है।

यतः। ततः। बहुतः। यत् शब्द से तसिल्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, तस् की विभक्तिसंज्ञा, **त्यदादीनामः** से अत्व, पररूप करके **यतस्** बना, सु,

त्रल्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२०४. सप्तम्यास्त्रल् ५।३।१०॥

कुत्र। यत्र। तत्र। बहुत्र।

ह-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२०५. इदमो हः ५।३।११॥

त्रलोऽपवादः। इह।

....

लुक् और सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **यतः** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार तद् शब्द से **ततः** भी बनाइये। यदि ये बना लिए तो फिर **बहु** शब्द से **बहुतः** बनाने में भी कोई परेशानी नहीं आयेगी।

किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः में **अद्व्यादिभ्यः** से **द्वि** आदि शब्दों में प्राग्दिशीय प्रत्ययों का निषेध है, अतः **द्वि** शब्द से **द्वाभ्याम्** मात्र ही बनता है, तसिल् आदि नहीं होते।

१२०३- पर्यभिभ्यां च। परिश्च अभिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः पर्यभी, ताभ्याम्। पर्यभिभ्यां पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **पञ्चम्यास्तसिल्** से **तसिल्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

परि और अभि इन अव्ययों से परे तद्धितसंज्ञक तसिल् प्रत्यय होता है।

परितः। चारों तरफ। **परि** इस अव्यय से **पर्यभिभ्यां च** से **तसिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **परितस्,** सु, अव्ययत्वात् उसका लुक् करके सकार को रुत्व और उसका विसर्ग करने पर **परितः** सिद्ध हो जाता है।

अभितः। दोनों ओर। **अभि** इस अव्यय से **पर्यभिभ्यां च** से **तसिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **अभितस्,** सु, अव्ययत्वात् उसका लुक् करके सकार को रुत्व और उसका विसर्ग करने पर **अभितः** सिद्ध हो जाता है।

१२०४- सप्तम्यास्त्रल्। सप्तम्याः पञ्चम्यन्तं, त्रल् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

द्वि आदि शब्दों से भिन्न किम्, सर्वनाम एवं बहु इन सप्तम्यन्त प्रातिपदिकों से वैकल्पिक त्रल् प्रत्यय होता है।

लकार इत्संज्ञक है। **त्र** शेष रहता है।

कुत्र(कहाँ)। **यत्र**(जहाँ)। **तत्र**(वहाँ)। **सर्वत्र**(सभी जगह)। **बहुत्र**(अनेक जगह)। **कस्मिन्** लौकिक विग्रह और **किम् ङि** अलौकिक विग्रह है। **सप्तम्यास्त्रल्** से **त्रल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, त्र बचा। **किम्+ङसि+त्र** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कु तिहोः** से किम् के स्थान पर कु सर्वादेश करके **कु+त्र=कुत्र** बना। सु आदि विभक्ति, अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से उसका लुक् होकर **कुत्र** सिद्ध हो गया। इसी प्रकार यद् से **यत्र,** तद् से **तत्र,** सर्व से **सर्वत्र** और बहु से **बहुत्र** भी आप बना लें। यत् और तत् में **त्यदादीनामः** से अत्व करना न भूलें।

१२०५- इदमो हः। इदमः पञ्चम्यन्तं, हः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में

अत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२०६. किमोऽत् ५।३।१२॥

वा-ग्रहणमपकृष्यते। सप्तम्यन्तात् किमोऽद्वा स्यात्। पक्षे त्रल्।

क्वादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२०७. क्वाति ७।२।१०५॥

किमः क्वादेश स्यादिति। क्व, कुत्र।

तसिलादिविधायकं विधिसूत्रम्

१२०८. इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ५।३।१४॥

पञ्चमीसप्तमीतरविभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते।

दृशिग्रहणाद् भवदादियोग एव। स भवान्। ततो भवान्। तत्र भवान्। तं भवन्तम्। ततो भवन्तम्। तत्र भवन्तम्। एवं दीर्घायुः, देवानाम्प्रियः, आयुष्मान्।

....

सप्तम्यास्त्रल् से **सप्तम्याः** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त इदम् शब्द से ह प्रत्यय होता है।

यह **सप्तम्यास्त्रल्** का अपवाद है।

इह। यहाँ। **इदम् ङि** इस अलौकिक विग्रह में **इदमो हः** से **ह** प्रत्यय प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **इदम इश्** से इश् आदेश, अनुबन्धलोप करके **इह** बना और सु आदि करके उसका अव्ययत्व के कारण लुक् होने से **इह** सिद्ध हुआ।

१२०६- **किमोऽत्**। किमः पञ्चम्यन्तम्, अत् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

पञ्चम्यन्त किम् से परे वैकल्पिक अत् प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है। **अत्** न होने के पक्ष में **त्रल्** होता है।

१२०७- **क्वाति**। क्व लुप्तप्रथमाकम्, अति सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **किमः कः** से **कः** की अनुवृत्ति आती है।

अत् प्रत्यय के परे होने पर किम् के स्थान पर क्व आदेश होता है।

क्व, कुत्र। कहाँ। **किम् ङसि** अलौकिक विग्रह है। त्रल् प्राप्त था, उसे बाधकर **किमोऽत्** से **अत्**, अनुबन्धलोप, **क्वाति** से किम् के स्थान पर **क्व** आदेश, **क्व+अ** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **क्व्+अ=क्व** बना। सु आदि करके अव्ययत्वात् विभक्ति का लुक् करके **क्व** सिद्ध हुआ।

१२०८- **इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते**। इतराभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अपि अव्ययपदं, दृश्यन्ते क्रियापदं, त्रिपदं सूत्रम्। **पञ्चम्यास्तसिल्, सप्तम्यास्त्रल्** आदि सूत्रों से **तसिल्, त्रल्** की अनुवृत्ति आती है, उसे यहाँ पर **तसिलादयः** कह दिया गया है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

दा-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२०९. सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा ५।३।१५॥

सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा स्यात्।

सादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२१०. सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ५।३।६॥

दादौ प्राग्दिशीये सर्वस्य सो वा स्यात्। सर्वस्मिन् काले सदा, सर्वदा। अन्यदा। कदा। यदा। तदा। काले किम्? सर्वत्र देशे।

र्हिल्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२११. इदमो र्हिल् ५।३।१६॥

सप्तम्यन्तात् काल इत्येव।

....

पञ्चमी और सप्तमी के अतिरिक्त अन्य विभक्त्यन्त किम् आदियों से भी स्वार्थ में तसिल् आदि प्रत्यय देखे जाते हैं।

दृश्यन्ते इस पद का अर्थ है **देखे जाते हैं**। अतः **सभी विभक्तियों से सर्वत्र होते हैं**, ऐसा अर्थ नहीं है किन्तु जहाँ-जहाँ आप्तों ने अन्य विभक्तियों से प्रयोग किया है, उन-उन विभक्त्यन्तों से ही ये प्रत्यय किये जा सकते हैं। इसका अर्थ मूलकार ने यह लगाया है कि **भवत्** आदि शब्दों के योग में ही अन्य विभक्त्यन्तों से **तसिल्** आदि किये जायें। शिष्टों ने **भवत्, दीर्घायुः, देवानाम्प्रियः, आयुष्मान्** इन शब्दों के योग में इतरविभक्तियों से भी इस प्रत्यय से युक्त रूपों का प्रयोग किया है।

स भवान्, ततो भवान्, तत्र भवान्। आप। यहाँ पर **भवत्** शब्द का योग है। **तद्** शब्द से तसिल् होने पर **ततः** और **त्रल्** होने पर **तत्र** बना है। ये प्रत्यय स्वार्थ में ही हुए है। प्रत्यय के योग से किसी अर्थविशेष की उपस्थिति नहीं हो रही है। केवल वाक्य में सौष्ठव हो रहा है।

१२०९- सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा। सर्वश्च एकश्च अन्यच्च किञ्च यच्च तच्च तेषां समाहारद्वन्द्वः सर्वैकान्यकिंयत्तत्, तस्मात्। सर्वैकान्यकिंयत्तदः पञ्चम्यन्तं, काले सप्तम्यन्तं, दा लुप्तप्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **सप्तम्यास्त्रल्** से **त्रल्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त कालार्थक सर्व, एक, अन्य, किम्, यत् और तद् शब्द से स्वार्थ में दा प्रत्यय होता है काल अर्थ गम्यमान होने पर।

१२१०- सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि। सर्वस्य षष्ठ्यन्तं, सः प्रथमान्तं, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं, दि सप्तम्यन्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्।

दकारादि प्रत्यय के परे होने पर सर्व के स्थान पर स आदेश होता है।

सदा, सर्वदा। सब काल में अर्थात् हमेशा। **सर्वस्मिन् काले** यह लौकिक विग्रह है। **सर्व ङि** इस अलौकिक विग्रह में **सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा** से दा प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, दा के परे **सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि** से सर्व के स्थान पर

एत-इत्-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२१२. एतेतौ रथोः ५।३।४॥

इदम्-शब्दस्य एत इत् इत्यादेशौ स्तो रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये परे। अस्मिन् काले एतर्हि। काले किम्? इह देशे।

र्हिल्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२१३. अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् ५।३।२१॥

कर्हि, कदा। यर्हि, यदा। तर्हि, तदा।

....

स आदेश होने पर **स+दा=सदा** बना। सु, उसका लुक् करने पर **सदा** सिद्ध हुआ। दा आदेश न होने के पक्ष में **सर्वदा**। इसी तरह **एक** से **एकदा**, **अन्य** से **अन्यदा**, **किम्** से **क** आदेश होकर **कदा**, **यत्** और **तद्** से अत्व आदि होकर **यदा**, **तदा** आदि रूप बना सकते हैं।

सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा में **काले** पढ़े जाने के कारण **देश** अर्थ गम्यमान होने पर दा प्रत्यय नहीं होता। जैसे कि- **सर्वत्र देशे**। (**सर्वदा देशे** नहीं बना।)

१२११- **इदमो र्हिल्**। इदमः पञ्चम्यन्तं, र्हिल् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा** से **काले** तथा **सप्तम्यास्त्रल्** से **सप्तम्याः** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **तद्धिताः** का अधिकार है।

काल अर्थ में वर्तमान सप्तम्यन्त 'इदम्' इस प्रातिपदिक से स्वार्थ में र्हिल् प्रत्यय होता है।

सप्तम्यास्त्रल् का अपवाद है। **र्हिल्** में **लकार** इत्संज्ञक है, **र्हि** शेष रहता है। ध्यान रहे कि **र्हि** में **रेफ** पहले उच्चारित है, उसके बाद **हकार** का उच्चारण होगा और अन्त में **इकार** का।

१२१२- **एतेतौ रथोः**। एतश्च इच्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्व एतेतौ। रश्च थ् च तथौ, तयोः। एतेतौ प्रथमान्तं, रथोः सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **इदम इश्** से **इदमः** और **प्राग्दिशो विभक्तिः** से **प्राग्दिशः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः** का वचनविपरिणाम और विभक्तिविपरिणाम करके **प्रत्यययोः** बनाया जाता है। यहाँ पर **रथोः** में **यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे** से तदादिविधि करके **रादौ** और **थादौ** बन जाता है।

रेफादि और थकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे होने पर इदम् शब्द के स्थान पर 'एत' और 'इत्' ये आदेश होते हैं।

इदम इश् का अपवाद है यह सूत्र। **यथासङ्ख्यनियम** से **रेफ** के परे होने पर **एत** आदेश और **थकारादि** के परे होने पर **इत्** आदेश होंगे। अनेकाल् होने के कारण दोनों सर्वादेश हैं।

एतर्हि। इस काल में, अब। **अस्मिन् काले**। **इदम् ङि** इस अलौकिक विग्रह में **सप्तम्यास्त्रल्** को बाधकर **इदमो र्हिल्** से **र्हिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **इदम्+र्हि** बना। रेफादि प्रत्यय परे है **र्हि**, अतः **एतेतौ रथोः** से **इदम्** के स्थान पर **एत** सर्वादेश हुआ- **एतर्हि** बना। **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से अव्ययसंज्ञक होने के कारण सु आदि विभक्तियों का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है। अतः **एतर्हि** ही बना। काल अर्थ नहीं होने पर **इह देशे** बनता है।

एत-इत्-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२१४. एतदः ५।३।५॥

एत इत् एतौ स्तो रेफादौ थादौ च प्राग्दिशीये। एतस्मिन् काले एतर्हि।

थाल्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२१५. प्रकारवचने थाल् ५।३।२३॥

प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्यस्थाल् स्यात् स्वार्थे।

तेन प्रकारेण तथा। यथा।

....

१२१३- **अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्।** अद्य भवः अद्यतनम्, न अद्यतनम् अनद्यतनं, तस्मिन्। अनद्यतने सप्तम्यन्तं, र्हिल् प्रथमान्तम्, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **सप्तम्यास्त्रल्** से **सप्तम्याः** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है साथ ही **किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः** यह सूत्र भी अधिकृत है।

अनद्यतन काल में वर्तमान किम् आदि सप्तम्यन्त प्रातिपदिकों से तद्धितसंज्ञक र्हिल् प्रत्यय विकल्प से होता है।

कर्हि, कदा। किस अनद्यतन काल में? कब? **कस्मिन् अनद्यतने काले?** यह लौकिक विग्रह है। **किम् ङि** में **अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्** से **र्हिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **किम्+र्हि** बना। प्राग्दिशीय प्रत्यय विभक्तिसंज्ञक हैं, अतः **किमः कः** से **किम्** के स्थान पर **क** आदेश होकर **कर्हि** बना और अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् करके **कर्हि** सिद्ध हुआ। **र्हिल्** न होने के पक्ष में **सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा** से **दा** प्रत्यय होकर **कदा** बन जाता है।

यर्हि, यदा। जिस अनद्यतन काल में, जब। **यस्मिन् अनद्यतने काले?** यह लौकिक विग्रह है। **यत् ङि** में **अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्** से **र्हिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **यत्+र्हि** बना। प्राग्दिशीय प्रत्यय विभक्ति संज्ञक हैं, अतः **त्यदादीनामः** से **अत्व** होकर **यर्हि** बना। अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् करके **यर्हि** सिद्ध हुआ। **र्हिल्** न होने के पक्ष में **सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा** से **दा** प्रत्यय होकर **यदा** बन जाता है।

तर्हि, तदा। उस अनद्यतन काल में, तब। **तस्मिन् अनद्यतने काले?** यह लौकिक विग्रह है। **तत् ङि** में **अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्** से **र्हिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **तत्+र्हि** बना। प्राग्दिशीय प्रत्यय विभक्ति संज्ञक हैं, अतः **त्यदादीनामः** से **अत्व** होकर **तर्हि** बना। अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् करके **तर्हि** सिद्ध हुआ। **र्हिल्** न होने के पक्ष में **सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा** से **दा** प्रत्यय होकर **तदा** बन जाता है।

१२१४- **एतदः।** पञ्चम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **एतेतो रथोः** यह पूरा सूत्र आता है।

रेफादि और थकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे होने पर एतद् के स्थान पर एत और इत् आदेश होते हैं।

पाणिनि जी ने **एतदोऽन्** एक ही सूत्र पढ़ा था, जिसका अर्थ होता है- **एतद् शब्द के स्थान पर अन् आदेश हो, प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे रहते।** इससे **एतस्मात्-अतः,**

थमु-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२१६. इदमस्थमुः ५।३।२४॥

थालोऽपवादः।

वार्तिकम्- **एतदोऽपि वाच्यः।** अनेन एतेन वा प्रकारेण इत्थम्।

थमु-विधायकं विधिसूत्रम्

१२१७. किमश्च ५।३।२५॥

केन प्रकारेण कथम्।

इति प्राग्दिशीयप्रकरणम्॥५७॥

....

एतस्मिन्-अत्र ये रूप सिद्ध हो जाते हैं किन्तु रेफादि और थकारादि प्राग्दिशीयों में **इदम्** शब्द की तरह **एतद्** को भी क्रमशः **एत** और **इत्** आदेश करना अभीष्ट है। जैसे- **एतस्मिन् काले- एतर्हि, एतेन प्रकारेण- इत्थम्।** इस प्रकार के रूपों की सिद्धि के लिए भाष्यकार ने **एतदोऽन्** सूत्र का विभाग कर दिया है, जिसे **योगविभाग** कहा जाता है। ऐसा करने से **एतदः** इस खण्ड में **एतेतौ रथोः** सूत्र अनुवृत्त होकर अर्थ होता है- **रेफादि और थकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे रहते एतद् को अन् आदेश हो।** पहले **अन्** सूत्र का अर्थ बताया जा चुका है।

एतर्हि। इस अनद्यतन काल में, अब। **एतत् ङि** में **अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्** से **र्हिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **एतत्+र्हि** बना है। **एतदः** से **एतत्** के स्थान पर **एत** आदेश होने पर **एतर्हि** बन गया। अव्ययसंज्ञा, स्वादिकार्य करने पर **एतर्हि** सिद्ध हो जाता है।

१२१५- **प्रकारवचने थाल्।** प्रकारवचने सप्तम्यन्तं, थाल् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है साथ ही **किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः** यह सूत्र भी अधिकृत है।

'इस प्रकार से या उस प्रकार से' आदि प्रकारवचन में किम् आदि शब्दों से थाल् प्रत्यय होता है।

लकार इत्संज्ञक है, **था** शेष रहता है। **किम्** शब्द से तो **थाल्** को बाधकर अग्रिम सूत्र **इदमस्थमुः** से **थमु** प्रत्यय हो जाता है।

तथा। उस प्रकार से। **तेन प्रकारेण** लौकिक विग्रह और **तद्+टा** अलौकिक विग्रह है। **प्रकारवचने थाल्** से **थाल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **था** की **प्राग्दिशो विभक्तिः** से विभक्तिसंज्ञा, **त्यदादीनामः** से अत्व करके सु, अव्ययत्वात् विभक्ति का लुक् करने पर **तथा** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार **येन प्रकारेण** जिस प्रकार से, **यत् टा** से थाल् आदि करके **यथा** बनाइये।

१२१६- **इदमस्थमुः।** इदमः पञ्चम्यन्तं, थमुः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रकारवचन में इदम् से थमु प्रत्यय होता है।

उकार इत्संज्ञक है, **थम्** शेष रहता है। यह **प्रकारवचने थाल्** का अपवाद है।

एतदोऽपि वाच्यः। यह वार्तिक है। एतद् शब्द से भी प्रकारवचन अर्थ में थमु प्रत्यय होता है।

इत्थम्। इस प्रकार से। **अनेन प्रकारेण** लौकिक विग्रह और **इदम् टा** अलौकिक विग्रह है। **इदमस्थमुः** से थमु, अनुबन्धलोप, **एतेतौ रथोः** से इत् आदेश करके **इत्थम्**। इसी तरह से **एतद्** शब्द से **एतदोऽपि वाच्यः** से **थमु** प्रत्यय करके **एतद्** के स्थान पर **एतदः इत्** आदेश करने पर भी **इत्थम्** ही बनता है। आगे अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् करना तो सामान्य प्रक्रिया ही है।

१२१७- **किमश्च**। किमः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रकारवचने थाल्** से विभक्तिविपरिणाम करके **प्रकारवचनात्** की तथा **इदमस्थमुः** से **थमु** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, प्राग्दिशो विभक्तिः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्** का अधिकार है।

प्रकारवचन अर्थ में किम् से परे थमु प्रत्यय होता है।

कथम्। किस प्रकार से। **केन प्रकारेण** लौकिक विग्रह और **किम् टा** अलौकिक विग्रह है। **किमश्च** से थमु, अनुबन्धलोप, **किमः कः** से क आदेश करके **कथम्**।

परीक्षा

इस प्रकरण के सभी सूत्रों एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालते हुए किन्हीं बीस प्रयोगों की सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का प्राग्दिशीयप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ प्रागिवीयाः

तमबिष्ठन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२१८. अतिशायने तमबिष्ठनौ ५।३।५५॥

अतिशयविशिष्टार्थवृत्तेः स्वार्थ एतौ स्तः।

अयमेषामतिशयेनाढ्यः आढ्यतमः। लघुतमः। लघिष्ठः।

तपप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२१९. तिङश्च ५।३।५६॥

तिङन्तादतिशये द्योत्ये तमप् स्यात्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **प्रागिवीयप्रकरण** प्रारम्भ होता है। इस प्रकरण से बाद के प्रकरणों **इव** अर्थ में प्रत्ययों का विधान है। अतः **इवार्थ** से पहले के प्रकरण को **प्रागिवीयप्रकरण** कहा गया है। इस प्रकरण में प्रायः अनेकों में किसी एक की विशिष्टता दिखा जाने पर ही प्रत्ययों का विधान होता है। इस प्रकरण में तमप्, इष्ठन्, तरप्, ईयसुन्, डतरच्, डतमच्, धा और चरट् प्रत्यय सूत्रों से विहित हैं।

११९८- अतिशायने तमबिष्ठनौ। तमप् च इष्ठन् च तमबिष्ठनौ। अतिशायने सप्तम्यन्तं, तमबिष्ठनौ प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

अतिशय विशिष्ट अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में तमप् और इष्ठन् प्रत्यय होते हैं।

तमप् में **पकार** इत्संज्ञक है, **तम** बचता है। **इष्ठन्** में **नकार** इत्संज्ञक है, **इष्ठ** बचता है।

आढ्यतमः। इनमें से यह अतिशय सम्पन्न है। **अयमेषामतिशयेनाढ्यः** लौकिक विग्रह और **आढ्य सु** अलौकिक विग्रह है। **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से तमप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तम बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **आढ्यतमः** सिद्ध हुआ।

लघुतमः, लघिष्ठः। इनमें से यह अतिशय छोटा है। **अयमेषामतिशयेन लघुः** लौकिक विग्रह और **लघु सु** अलौकिक विग्रह है। **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से पहले **तमप्**

घ-संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१२२०. तरप्तमपौ घः १।१।२२॥

एतौ घसंज्ञौ स्तः।

आमु-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२२१. किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ५।४।११॥

किम एदन्तात्तिङोऽव्ययाच्च यो घस्तदन्तादामुः स्यान्न तु द्रव्यप्रकर्षे। किन्तमाम्। प्राह्णेतमाम्। पचतितमाम्। उच्चैस्तमाम्। द्रव्यप्रकर्षे तु उच्चैस्तमस्तरुः।

....

प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **तम** बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **लघुतमः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **दीर्घतमः**, **महत्तमः** आदि भी बनते हैं। **इष्ठन्** होने के पक्ष में **लघु+इष्ठ** बनने के बाद **टेः** से टि का लोप करके **लघ्+इष्ठ** बना। वर्णसम्मेलन, स्वादिकार्य करके **लघिष्ठः** बनता है।

१२१९- **तिङश्च**। तिङः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **अतिशायने तमबिष्ठनौ** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है और **प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है किन्तु **ङ्याप्प्रातिपदिकात्** का अधिकार नहीं है।

अतिशय अर्थ द्योत्य होने पर तिङन्त से भी तद्धितसंज्ञक तमप् प्रत्यय होता है।

यद्यपि **तमप्** और **इष्ठन्** इन दोनों प्रत्ययों का विधान प्राप्त होता है तथापि **तिङन्त** से **इष्ठन्** का प्रयोग नहीं मिलता, अतः मूलकार ने **तमप्** प्रत्यय का ही विधान दिखाया है।

१२२०- **तरप्तमपौ घः**। तरप् च तमप् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्तरप्तमपौ। तरप्तमपौ प्रथमान्तं, घः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्।

तरप् और तमप् प्रत्ययों की घ-संज्ञा होती है।

घ संज्ञा का प्रमुख उपयोग **आमु** आदि प्रत्ययों का विधान है।

१२२१- **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे**। किम् च एत् च तिङ् च अव्ययं च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः किमेत्तिङव्ययानि, तेभ्यो विहितो यो घः किमेत्तिङव्ययघः, तस्मात्। द्रव्यस्य प्रकर्षो द्रव्यप्रकर्षः, न द्रव्यप्रकर्षः- अद्रव्यप्रकर्षस्तस्मिन्। **प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है।

किम्, एदन्त, तिङन्त और अव्यय इन चार से विहित जो घसंज्ञक प्रत्यय, तदन्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में आमु प्रत्यय होता है अद्रव्यप्रकर्ष में।

उकार इत्संज्ञक है, **आम्** बचता है। इस प्रत्यय के लगने के बाद वह शब्द **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से **अव्ययसंज्ञक** बन जाता है।

किन्तमाम्। अत्यन्त ही तुच्छ वस्तु। **इदमेषामतिशयेन किम्**। यहाँ पर अतिशय अर्थ में विद्यमान **किम् सु** से **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **तमप्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् आदि होने के बाद **किम्+तम** बना है। **मकार** को **मोऽनुस्वारः** से **अनुस्वार** आदेश और उसके स्थान पर **वा पदान्तस्य** से **परसवर्ण** होकर

तरबीयसुन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२२२. द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ५।३।५७॥

द्वयोरेकस्यातिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादेतौ स्तः। पूर्वयोरपवादः। अयमनयोरतिशयेन लघुः लघुतरो लघीयान्। उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटुतराः, पटीयांसः।

....

किन्तम बना है। **तरप्तमपौ घः** से **तम** की **घ**संज्ञा होकर **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** से **आमु** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप होने के बाद **किन्तम+आम्** बना। **यस्येति च** से भसंज्ञक **अकार** का लोप हुआ और वर्णसम्मेलन होकर **किन्तमाम्** बना। इसकी अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् होकर **किन्तमाम्** सिद्ध हुआ। यह तो **किम्** का उदाहरण है। **एदन्त** का उदाहरण आगे देखिये।

प्राह्णेतमाम्। दिन का अतिशय पूर्वभाग। **अतिशयिते पूर्वाह्णे।** यहाँ पर अतिशय अर्थ में विद्यमान **प्राह्ण ङि** से **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **तमप्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् प्राप्त था किन्तु **घकालतनेषु कालनाम्नः** से उसका अलुक् हुआ। अतः **प्राह्ण+ङि+तम** बना है। इसमें ङकार की इत्संज्ञा करके **प्राह्ण+इ** में **आद्गुणः** से गुण करके **प्राह्णेतम** बन जाता है। अब **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** से **आमु** प्रत्यय हुआ। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **प्राह्णेतमाम्** बना। इसकी अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् होकर **प्राह्णेतमाम्** सिद्ध हुआ। यह **एदन्त** का उदाहरण है। **तिङन्त** का उदाहरण आगे देखिये।

पचतितमाम्। अतिशय पकाता है। **अतिशयेन पचति।** यहाँ पर अतिशय अर्थ में **पचति** इस तिङन्त से **तिङश्च** सूत्र के द्वारा **तमप्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप करके **पचति+तम** बना है। अब **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** से **आमु** प्रत्यय हुआ। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **प्राह्णेतमाम्** बना। इसकी अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् होकर **पचतितमाम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह **वदतितमाम्** आदि भी बना सकते हैं। यह तो **तिङन्त** का उदाहरण है। **अव्यय** का उदाहरण आगे देखिये।

उच्चैस्तमाम्। अतिशय ऊँचा। **अतिशयेन उच्चैः।** यहाँ पर अतिशय अर्थ में **उच्चैस्** इस अव्यय से **अतिशायने तमबिष्ठनौ** के द्वारा **तमप्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उच्चैस्+तम** बना है। अब **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** से **आमु** प्रत्यय हुआ। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **उच्चैस्तमाम्** बना। इसकी अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् होकर **उच्चैस्तमाम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह **नीचैस्तमाम्, अतितमाम्, सुतमाम्** आदि बना सकते हैं। **तरप्** होने पर **उच्चैस्तराम्, नीचैस्तराम्, अतितराम्, सुतराम्** भी बनते हैं।

द्रव्यप्रकर्षे तु उच्चैस्तमस्तरुः। जब द्रव्य का प्रकर्ष, उत्कर्ष श्रेष्ठता आदि अर्थ हो तो **आमु** नहीं होता, जिससे **उच्चैस्तमः** ही रह जाता है। **उच्चैस्तमस्तरुः**= सबसे ऊँचा वृक्ष।

१२२२- द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ। उच्चते इति वचनं, द्वयोर्वचनं द्विवचनम्। विभक्तुं योग्यं विभज्यं, द्विवचनं च विभज्यं च तयोः समाहारद्वन्द्वो द्विवचनविभज्यम्। द्विवचनविभज्यं च तद् उपपदम्- द्विवचनविभज्योपपदं, तस्मिन्, कर्मधारयः। द्विवचनविभज्योपपदे

श्रादेश-विधायकं विधिसूत्रम्

१२२३. प्रशस्यस्य श्रः ५।३।६०॥

अस्य श्रादेशः स्यादजाद्योः परतः।

प्रकृतिभावविधायकं विधिसूत्रम्

१२२४. प्रकृत्यैकाच् ६।४।१६३॥

इष्ठादिष्वेकाच् प्रकृत्या स्यात्। श्रेष्ठः, श्रेयान्।

....

सप्तम्यन्तं, तरबीयसुनौ प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **अतिशायने** की अनुवृत्ति आती है।

दो में एक के अतिशय, उत्कर्ष को बताने के लिए या विभक्तव्य शब्द के उपपद होने पर उत्कर्षविशिष्ट अर्थ में वर्तमान सुबन्त और तिङन्त से तरप् और ईयसुन् प्रत्यय होते हैं।

तरप् में भी **पकार** इत्संज्ञक है और **तर** बचता है और **ईयसुन्** में **उन्** की इत्संज्ञा होती है, **ईयस्** बचता है। यह सूत्र **अतिशायने तमबिष्ठनौ** और **तिङश्च** का अपवाद है।

लघुतरः, लघीयान्। दोनों में यह अतिशय छोटा है। **अयमनयोरतिशयेन लघुः** लौकिक विग्रह और **लघु सु** अलौकिक विग्रह है। **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** से तरप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तर बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग, **लघुतरः** सिद्ध हुआ। **ईयसुन्** होने के पक्ष में अनुबन्धलोप होकर **लघु+ईयस्** बना है। **टेः** से टिसंज्ञक उकार का लोप करके **लघीयस्** यह प्रातिपदिक बना। अब सु प्रत्यय, **उगिदचां सर्वनामस्थाने धातोः** से **नुम्** आगम करके **लघीयन्स्+स्** बना। **सान्तमहतः संयोगस्य** से **दीर्घ** करके **लघीयान्स्+स्** बना। सु के सकार का **हल्ङ्यादिलोप** हुआ और प्रकृति के सकार का संयोगान्तस्य लोप हुआ तो **लघीयान्** सिद्ध हुआ। आगे नकार को अनुस्वार आदि करके **लघीयांसौ, लघीयांसः** आदि भी बनाते जायें। **ईयसुन्** प्रत्यय में उकार की इत्संज्ञा होती है, अतः यह शब्द **उगित्** है जिससे स्त्रीलिङ्ग में **उगितश्च** से **ङीप्** होकर **लघीयसी, लघीयस्यौ, लघीयस्यः** आदि बना सकते हैं। इसी तरह **अयमनयोः पटुः पटुतरः, पटीयान्, पटीयसी। महत्तरः, महीयान्, महीयसी** आदि अनेकों शब्दों से इन प्रत्ययों का योग करके रूप बनायें।

उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटुतराः। उत्तर दिशा के लोग पूर्व दिशा के लोगों से ज्यादा चतुर होते हैं। **एते एतेभ्योऽतिशयेन पटवः** लौकिक विग्रह और **पटु जस्** अलौकिक विग्रह है। **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** से तरप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तर बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, बहुवचन में जस् विभक्ति, दीर्घ, रुत्वविसर्ग करके **पटुतराः** सिद्ध हुआ। **ईयसुन्** होने के पक्ष में **पटीयान्, पटीयांसौ, पटीयांसः।**

१२२३- **प्रशस्यस्य श्रः।** प्रशस्यस्य षष्ठ्यन्तं, श्रः अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **अजादी गुणवचनादेव** से **अजादी** को सप्तम्यन्ततया विपरिणत के अनुवर्तन करते हैं। **प्रत्ययः** का अधिकार है, उसको भी सप्तम्यन्त बनाते हैं।

अजादि प्रत्यय अर्थात् इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे होने पर प्रशस्य शब्द के स्थान पर श्र आदेश होता है।

ज्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२२५. ज्य च ५।३।६१॥

प्रशस्यस्य ज्यादेशः स्यादिष्ठेयसोः। ज्येष्ठः।

आत्-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२२६. ज्यादादीयसः ६।४।१६०॥

आदेः परस्य। ज्यायान्।

....

१२२४- **प्रकृत्यैकाच्**। प्रकृत्या तृतीयान्तम्, एकाच् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तुरिष्ठेमेयस्सु** से **इष्ठेमेयस्सु** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** और **भस्य** का अधिकार है।

इष्ठन्, ईयसुन् और इमनिच् प्रत्ययों के परे होने पर एक अच् वाले भसंज्ञक अङ्ग को प्रकृतिभाव होता है।

अल्लोपोऽनः, नस्तद्धिते, यस्येति च और **टेः** से प्राप्त कार्यों को रोकने के लिए इससे प्रकृतिभाव किया जाता है।

श्रेष्ठः, श्रेयान्। अतिशय प्रशंसनीय। **अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः**। यहाँ पर **अतिशय विशिष्ट** अर्थ में **प्रशस्य सु** से **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **इष्ठन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **प्रशस्य+इष्ठ** बना है। **प्रशस्यस्य श्रः** से **प्रशस्य** के स्थान पर **श्र** आदेश होकर **श्र+इष्ठ** बना। अब भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप प्राप्त था, उसे बाधकर के **प्रकृत्यैकाच्** से प्रकृतिभाव हुआ अर्थात् लोप नहीं हुआ। **श्र+इष्ठ** में गुण होकर **श्रेष्ठ** बना और स्वादिकार्य करके **श्रेष्ठः** सिद्ध हुआ। **ईयसुन्** प्रत्यय होने के पक्ष में भी यही प्रक्रिया करके **श्रेयस्** यह प्रातिपदिक बना। उससे स्वादिकार्य करने पर **पटीयान्** की तरह **श्रेयान्, श्रेयांसौ, श्रेयांसः** आदि सिद्ध होते हैं।

१२२५- **ज्य च**। ज्य इति लुप्तप्रथमाकं पदं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रशस्यस्य श्रः** से **प्रशस्यस्य** और **अजादी गुणवचनादेव** से **अजादी** को सप्तम्यन्ततया विपरिणाम करके अनुवृत्ति की जाती है।

अजादि अर्थात् इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे रहते प्रशस्य के स्थान पर ज्य आदेश भी होता है।

१२२६- **ज्यादादीयसः**। ज्यात् पञ्चम्यन्तम्, आत् प्रथमान्तम्, ईयसः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

ज्य से परे ईयस् के ईकार के स्थान पर आकार आदेश होता है।

आदेः परस्य की सहायता से पर के स्थान पर विहित कार्य उसके आदि वर्ण के स्थान पर हो जाने से केवल **ई** के स्थान पर यह **आकार** आदेश हो जाता है।

जेष्ठः, ज्यायान्। अतिशय प्रशंसनीय। **अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः**। यहाँ पर **अतिशय विशिष्ट** अर्थ में **प्रशस्य सु** से **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **इष्ठन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **प्रशस्य+इष्ठ** बना है। **ज्य च** से **प्रशस्य** के स्थान पर **ज्य** आदेश होकर **ज्य+इष्ठ** बना। अब भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप प्राप्त था, उसे बाधकर के **प्रकृत्यैकाच्** से प्रकृतिभाव हुआ अर्थात् लोप नहीं हुआ। **ज्य+इष्ठ** में गुण होकर **ज्येष्ठ** बना, स्वादिकार्य करके **ज्येष्ठः** सिद्ध हुआ। **इयसुन्** प्रत्यय होने के पक्ष में **ज्य+ईयस्** है। **ज्यादादीयसः** से **ईकार** के स्थान पर **आकार** आदेश होकर

अनेककार्यार्थं विधिसूत्रम्

१२२७. बहोर्लोपो भू च बहोः ६।४।१५८॥

बहोः परयोरिमेयसोर्लोपः स्याद् बहोश्च भूरादेशः। भूमा। भूयान्।

अनेककार्यार्थं विधिसूत्रम्

१२२८. इष्ठस्य यिट् च ६।४।१५९॥

बहोः परस्य इष्ठस्य लोपः स्याद् यिडागमश्च! भूयिष्ठः।

....

ज्या+आयस् बना। **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ होकर **ज्यायस्** यह प्रातिपदिक बना। उससे स्वादिकार्य करने **श्रेयान्** की तरह **ज्यायान्, ज्यायांसौ, ज्यायांसः** आदि सिद्ध होते हैं।

१२२७- बहोर्लोपो भू च बहोः। बहोः षष्ठ्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, भू लुप्तप्रथमाकं पदं, च अव्ययपदं, बहोः षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **तुरिष्ठेमेयस्सु** से **इमेयसोः** की अनुवृत्ति आती है।

बहु-शब्द से परे इमनिच् और ईयसुन् प्रत्ययों का लोप होता है और बहु-शब्द के स्थान पर भू आदेश भी होता है।

आदेः परस्य की सहायता से **इमनिच्** और **ईयसुन्** के केवल आदि वर्ण इकार और ईकार का ही लोप हो जाता है।

भूमा, भूयान्। बहुतायत, अधिकतर। **बहोर्भावः**। **बहु ङस्** में **पृथ्व्यादिभ्य इमनिज्वा** से **इमनिच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **बहु+इमन्** बना। **बहोर्लोपो भू च बहोः** से **बहु** के स्थान पर **भू** आदेश और **आदेः परस्य** की सहायता से **इमन्** के **इकार** का लोप करके **भूमन्** बना। स्वादिकार्य करके **राजन्** शब्द की तरह **भूमा, भूमानौ, भूमानः** रूप बन जाते हैं। अब **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** से **ईयसुन्** होने पर **बहु+ईयस्** बना है। **बहोर्लोपो भू च बहोः** से **भू** आदेश और **ईयस्** के ईकार का लोप हो जाने पर **भूयस्** बना। अब **श्रेयान्** की तरह **भूयान्, भूयांसौ, भूयांसः** आदि रूप बनाये जा सकते हैं।

१२२८- इष्ठस्य यिट् च। इष्ठस्य षष्ठ्यन्तं, यिट् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **बहोर्लोपो भू च बहोः** यह पूरा सूत्र आता है।

बहुशब्द से परे इष्ठन् का लोप होता है तथा इष्ठन् को यिट् का आगम भी होता है, साथ ही बहु के स्थान पर भू आदेश भी हो जाता है।

इस सूत्र से तीन काम किये जा रहे हैं- **आदेः परस्य** की सहायता से **इष्ठन्** के इकार का लोप, शेष बचे प्रत्यय को **यिट्** का आगम और तीसरा कार्य **बहु** के स्थान पर **भू** आदेश। **यिट्** में **टकार** इत्संज्ञक है। **टित्** होने के कारण उसके आदि में बैठेगा। कुछ आचार्य यहाँ पर **इकार** और **टकार** दोनों वर्णों को इत्संज्ञक मानते हैं और **इष्ठ** का लोप नहीं मानते हैं। ऐसा मानने पर भी प्रयोग की सिद्धि में अन्तर नहीं आता है।

भूमा, भूयान्। सबसे अधिक बड़ा। **अयमतिशयेन बहुः**। **बहु सु** में **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **इष्ठन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **बहु+इष्ठ** बना है। **इष्ठस्य यिट् च** से **बहु** के स्थान पर **भू** आदेश और **आदेः परस्य** की सहायता

लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

१२२९. विन्मतोर्लुक् ५।३।६५॥

विनो मतुपश्च लुक् स्यादिष्ठेयसोः। अतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठः, स्रजीयान्। अतिशयेन त्वग्वान् त्वचिष्ठः, त्वचीयान्।

कल्पप्-देश्य-देशीयर्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२३०. ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ५।३।६७॥

ईषदूनो विद्वान् विद्वत्कल्पः। विद्वद्देश्यः। विद्वद्देशीयः। पचतिकल्पम्।

....

से इष्ठ के इकार का लोप और उसको यिट् आगम करके भूयिष्ठ बना। अब स्वादिकार्य करने पर राम शब्द की तरह भूयिष्ठः, भूयिष्ठौ, भूयिष्ठाः रूप बन जाते हैं।

१२२९- **विन्मतोर्लुक्**। विन् च मत् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो विन्मतौ, तयोः। विन्मतोः षष्ठ्यन्तं, लुक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अजादी गुणवचनादेव** से **अजादी** को सप्तम्यन्ततया विपरिणाम करके **अजादौ** इस पद का अनुवर्तन किया जाता है।

अजादि प्रत्यय अर्थात् इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे रहते विन् और मतुप् प्रत्ययों का लुक् होता है।

स्रजिष्ठः, स्रजीयान्। सभी माला वालों में अतिशय माला वाला। **अतिशयेन स्रग्वी**। पहले **स्रग् अस्यास्ति** इस लौकिक विग्रह और **स्रज् सु** अलौकिक विग्रह में **अस्मायामेधास्रजो विनिः** से मत्वर्थ **विनि** प्रत्यय होकर **चो कुः** से जकार को कुत्व होकर **स्रग्विन्** बना है। अब **अतिशयेन स्रग्वी** इस विग्रह में **स्रग्विन् सु** से **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से पहले **इष्ठन्** प्रत्यय हुआ, **स्रग्विन्+इष्ठ** बना। **विन्मतोर्लुक्** से **इष्ठ** के परे रहते **विन्** का लुक् हुआ- **स्रग्+इष्ठ** बना। **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियमानुसार विन् के अभाव में कुत्व भी नहीं रहा, इस लिए जकार के रूप में आ गया- **स्रज्+इष्ठ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **स्रजिष्ठ** बना और स्वादिकार्य करके **स्रजिष्ठः** सिद्ध हुआ। **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** से **ईयसुन्** होने के पक्ष में **स्रज्+विन्+ईयस्** बना है। इस स्थिति में भी **विन्मतोर्लुक्** से **विन्** का लुक् होकर **स्रजीयस्** यह प्रातिपदिक बनता है। उससे स्वादिकार्य करने पर **स्रजीयान्** सिद्ध हो जाता है।

त्वचिष्ठः, त्वचीयान्। सब त्वचा वालों में अतिशय त्वचा वाला। **अतिशयेन त्वग्वान्**। यहाँ पर भी **स्रजिष्ठः** और **स्रजीयान्** की तरह ही **इष्ठन्** या **ईयसुन्** प्रत्यय करके **मतुबर्थ विनि** का **विन्मतोर्लुक्** से लुक् करके **त्वचिष्ठः, त्वचीयान्** बनाया जा सकता है।

१२३०- **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः**। न समाप्तिः असमाप्तिः, तस्याम्। कल्पप् च देश्यश्च देशीयर् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः कल्पब्देश्यदेशीयरः। **तिङश्च** यह सम्पूर्ण सूत्र आता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्** आदि का पूरे तद्धित में ही अधिकार है।

कुछ न्यूनताविशिष्ट अर्थ में सुबन्त या तिङन्त से स्वार्थ में कल्पप्, देश्य, और देशीयर् प्रत्यय होते हैं।

इन प्रत्ययों में पकार और रकार इत्संज्ञक हैं। ये इत्संज्ञक वर्ण स्वरार्थ हैं।

विद्वत्कल्पः, विद्वद्देश्यः, विद्वद्देशीयः। कुछ कम विद्वान् अर्थात् विद्वान् के सदृश,

बहुच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२३१. विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु ५।३।६८॥

ईषदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे सुबन्ताद् बहुज्वा स्यात् स च प्रागेव न तु परत:। ईषदून: पटुर्बहुपटु:। पटुकल्प:। सुप: किम्? जयतिकल्पम्।

कस्याधिकारसूत्रम्

१२३२. प्रागिवात् क: ५।३।७०॥

इवे प्रतिकृतावित्यत: प्राक् काधिकार:।

....

विद्वत्तुल्य। **ईषद् ऊनो विद्वान्। विद्वस् सु** से **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयर:** से क्रमश: तीनों प्रत्यय हुए, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विद्वस्** के सकार का **वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां द:** से **दकार** आदेश करके स्वादिकार्य करने पर उक्त तीनों शब्द सिद्ध हो जाते हैं। ये तो **सुबन्त** के उदाहरण हैं। तिङन्त का आगे देखें।

पचतिकल्पम्, पचतिदेश्य:, पचतिदेशीय:। कुछ कम पकाता है। **ईषद् ऊनं पचति**। तिङन्त **पचति** से **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयर:** से **कल्पप्, देश्य, देशीयर्** ये तीनों प्रत्यय बारी-बारी से हुए तो उक्त तीनों रूप सिद्ध हुए।

१२३१- विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु। विभाषा प्रथमान्तं, सुप: पञ्चम्यन्तं, बहुच् प्रथमान्तं, पुरस्तात् अव्ययपदं, तु अव्ययपदम्, अनेकपदं सूत्रम्। **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयर:** से **ईषदसमाप्तौ** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्यय:**, आदि का अधिकार है किन्तु **परश्च** का अधिकार नहीं आता, क्योंकि **परश्च** का बाधक **पुरस्तात्** पद यहाँ पर पठित है।

कुछ न्यूनताविशिष्ट अर्थ में सुबन्त से पूर्व बहुच् प्रत्यय विकल्प से होता है।

यहाँ पर यह शंका उत्पन्न होती है कि जब **ङ्याप्प्रातिदिकात्** की अनुवृत्ति आ रही है तो इस सूत्र में **सुप:** लिखने की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर यह है कि यदि **सुप:** न देते तो पूर्वत: आ रही **तिङश्च** की अनुवृत्ति यहाँ पर आती। फलत: **तिङन्त** से बहुच् प्रत्यय होने लगता। ऐसा न हो, इसलिए **सुप:** का पठन किया गया।

ध्यान रहे कि यह प्रत्यय प्रकृति से परे नहीं पूर्व में होता है। स्वरार्थ पठित चकार इत्संज्ञक है, **बहु** मात्र बचता है।

बहुपटु:, पटुकल्प:, पटुदेश्य:, पटुदेशीय:। थोड़ा कम चतुर, चतुर के सदृश। **ईषद् ऊन: पटु:**। **पटु सु** में **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयर:** से **कल्पप्** आदि प्रत्यय प्राप्त थे, उन्हें बाधकर के **विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु** से **बहुच्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **बहुपटु** बना और स्वादिकार्य करके **बहुपटु:** सिद्ध हुआ। यह प्रत्यय वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **कल्पप्, देश्य** और **देशीयर्** प्रत्यय भी हो जाते हैं, जिससे **पटुकल्प:, पटुदेश्य:, पटुदेशीय:** ये भी बन जाते हैं।

सुप: किम्? जयतिकल्पम्। यदि **विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु** इस सूत्र में **सुप:** यह पद नहीं पढ़ते तो **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयर:** इस सूत्र की तरह **तिङन्त** से भी प्रत्यय होते, जिससे **जयतिकल्पम्** की जगह **बहुजयति** ऐसा अनिष्ट रूप भी बन जाता।

१२३२- प्रागिवात् क:। प्राक् अव्ययपदम्, इवात् पञ्चम्यन्तं, क: प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रत्यय:, परश्च** आदि का अधिकार है।

अकच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२३३. अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः ५।३।७१॥

कापवादः। तिङश्चेत्यनुवर्तते।

कादि-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२३४. अज्ञाते ५।३।७३॥

कस्यायमश्वोऽश्वकः। उच्चकैः। नीचकैः। सर्वके।

वार्तिकम्- **ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच्, अन्यत्र सुबन्तस्य।**

युष्मकाभिः। युवकयोः। त्वयका।

....

'इवे प्रतिकृतौ' इस सूत्र से पहले तक क प्रत्यय का अधिकार है।

इस सूत्र में **इवात्** यह पद **इवे प्रतिकृतौ** ५।३।९६ में पठित **इवे** का संकेतक है। उस सूत्र से पहले तक **क** प्रत्यय का अधिकार रहता है किन्तु बीच में कुछ इसके अपवाद प्रत्यय **अकच्** आदि भी होते हैं।

१२३३- अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः। अव्ययानि च सर्वनामानि च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः, अव्ययसर्वनामानि, तेषाम्। अव्ययसर्वनाम्नाम् षष्ठ्यन्तम्, अकच् प्रथमान्तं, प्राक् अव्ययपदं, टेः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रागिवात्कः** से **प्रागिवात्** और **तिङश्च** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, तद्धिताः** आदि का अधिकार है। **प्राक्** कहने से **परश्च** का अधिकार रूक जाता है।

इवे प्रतिकृतौ से पहले के अपवाद के रूप में अव्यय और सर्वनामसंज्ञक प्रातिपदिकों से टि से पहले पूर्व में अकच् प्रत्यय होता है।

ध्यान रहे कि **अकच्** जिस शब्द से हो रहा है, उसके **टि** के पहले ही होता है। यह सूत्र **क** का अपवाद है। **अकच्** में **चकार** और उससे पूर्व के **अकार** की इत्संज्ञा होती है, **अक्** शेष रहता है। कुछ आचार्य **अकार** की इत्संज्ञा नहीं करते अपितु उसके अगले अकार के साथ में **अतो गुणे** से पररूप कर देते हैं। ऐसा करने पर **तिङन्तों** से अकच् होने पर **पचतकि** के स्थान पर **पचतके** ऐसा अनिष्ट रूप बन सकता है। अतः अकार की भी इत्संज्ञा करनी चाहिए।

१२३४- अज्ञाते। न ज्ञातम् अज्ञातं, तस्मिन्। अज्ञाते सप्तम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **प्रागिवात् कः** और **अकच् प्राक्टेः** ये पूर्वोक्त दोनों सूत्रो से आते हैं और **तिङश्च** की भी अनुवृत्ति है।

अज्ञातत्वविशिष्ट अर्थ में वर्तमान प्रातिपदिक या तिङन्त से यथाप्राप्त क और अकच् प्रत्यय होते हैं।

वास्तव में यह सूत्र प्रत्ययों का विधान नहीं करता अपितु **अज्ञात होना** यह अर्थ निर्देश मात्र करता है।

अश्वकः। किसका है यह घोड़ा? **कस्यायम् अश्वः?** अथवा **अज्ञांतः अश्वः** ऐसा लौकिक विग्रह है। **अश्व सु** इस अलौकिक विग्रह में **अज्ञाते** से **क** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु और रुत्वविसर्ग करके **अश्वकः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **अज्ञातो गर्दभः गर्दभकः, अज्ञात उष्ट्र उष्ट्रकः** आदि भी बनते हैं।

उच्चकैः। ऊँचा। सामान्यतया यह **उच्चैस्** ऐसा अव्यय है। इससे स्वार्थ में **उच्चैस्** में **ऐस्**-रूप **टि** के पहले **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः** से **अकच्** प्रत्यय हुआ। **चकार** और **अकार** की इत्संज्ञा के बाद लोप होकर **अक्** बचा। **उच्च्+अक्+ऐस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उच्चकैस्** बना। अव्यय है, अतः इसके बाद प्राप्त सु का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो गया- **उच्चकैः**। इसी तरह **नीचैस्** से **नीचकैः** बन जाता है।

सर्वके। सभी। सामान्यतया यह **सर्वनामसंज्ञक** प्रातिपदिक से प्रथमा के बहुवचन में **सर्वे** बनता है। **सर्व जस्** में **टि** है वकारोत्तरवर्ती अकार, उसके पहले **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः** से **अकच्** प्रत्यय हुआ। **चकार** और **अकार** की इत्संज्ञा के बाद लोप होकर **अक्** बचा। **सर्व्+अक्+अ+जस्** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ। **सर्व्+अक्+अ** में वर्णसम्मेलन होकर **सर्वक** बना। पुनः जस् विभक्ति के स्थान पर **जसः शी** से **शी**, शकार का लोप, गुण आदि होकर **सर्वके** बना। इसी तरह **विश्वे** से **विश्वके, उभ** से **उभके** आदि बनते हैं।

ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच्, अन्यत्र सुबन्तस्य। यह वार्तिक है। **ओकारादि, सकारादि और भकारादि सुप् विभक्ति के परे रहते मूल सर्वनामशब्द के टि से पूर्व अकच् होता है परन्तु अन्य सुप् विभक्तियों में सुबन्त सर्वनाम की ही टि से पूर्व अकच् होता है।**

भाष्यकार के अनुसार इस वार्तिक में सर्वनाम से केवल युष्मद् और अस्मद् शब्द को ही लिया गया है, अन्य सर्वनामों को नहीं। अतः इन दो शब्दों से ओकारादि **ओस्,** सकारादि **सुप्** और भकारादि **भ्याम्, भिस्, भ्यस्** के परे होने पर मूल युष्मद्, अस्मद् शब्द अर्थात् प्रत्यय होने के पहले के शब्द के टि के पहले और शेष विभक्तियों में स्वादि प्रत्ययों के लगने के बाद जो रूप बनता है, उसमें टि के पहले **अकच्** होगा।

युष्मकाभिः। अज्ञात तुम लोगों से। **अज्ञातैर्युष्माभिः**। **युष्मद्+भिस्** यह भकारादि प्रत्यय के परे का उदाहरण है। **ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच्, अन्यत्र सुबन्तस्य** इस वार्तिक की सहायता से **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः** से मूल **युष्मद्** शब्द के टि मकारोत्तरवर्ती अकार के पहले ही **अकच्** हुआ। अनुबन्धलोप होकर **युष्म्+अक्+अद्+भिस्** बना। **युष्मदस्मदोरनादेशे** से **दकार** को **आकार** आदेश करके **युष्म्+अक्+अ+आ+भिस्** बना। सवर्णदीर्घ और वर्णसम्मेलन करके **युष्मकाभिः** सिद्ध हो जाता है।

युवकयोः। अज्ञात तुम दो के या अज्ञात तुम दोनों में। **अज्ञातयोर्युवकयोः**। **युष्मद्+ओस्** यह ओकारादि प्रत्यय के परे का उदाहरण है। **ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच्, अन्यत्र सुबन्तस्य** इस वार्तिक की सहायता से **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः** से मूल **युष्मद्** शब्द के टि-रूप मकारोत्तरवर्ती अकार के पहले ही **अकच्** हुआ। अनुबन्धलोप होकर **युष्म्+अक्+अद्+ओस्** बना। **युवावौ द्विवचने** से मपर्यन्त भाग **युष्म्** के स्थान पर **युव** आदेश होकर **युव+अक्+अद्+ओस्** बना। **योऽचि** से **दकार** को **यकार** आदेश करके **युव+अक्+अ+य्+ओस्** बना। पररूप और वर्णसम्मेलन करके **युवकयोः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **आवकयोः** भी बना सकते हैं।

अब वार्तिक में कथित ओकारादि-सकारादि-भकारादि से भिन्न प्रत्यय के परे होने की स्थिति का उदाहरण दिखाते हैं- **त्वयका**। यहाँ पर तृतीयैकवचन **टा** वाला **आ** परे है।

क-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२३५. कुत्सिते ५।३।७४॥

कुत्सितोऽश्वोऽश्वकः।

डतरच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२३६. किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ५।३।९२॥

अनयोः कतरो वैष्णवः। यतरः। ततरः॥

....

त्वयका। यहाँ उपर्युक्त वार्तिक के अनुसार सुबन्त शब्द से ही **अकच्** होगा। अतः **युष्मद्** शब्द के तृतीयैकवचन में **त्वया** बन जाने के बाद उसमें विद्यमान टिसंज्ञक वर्ण **आ** से पहले **अकच्** होकर **त्वय्++अक्+आ** बन जाता है और वर्णसम्मेलन होकर **त्वयका** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **मयका** आदि भी बना सकते हैं।

अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः में **तिङश्च** भी आता है। अतः **तिङन्तों** से भी **अकच्** प्रत्यय किया जाता है, जिससे **पचति** इस तिङन्त से टि के पहले **अकच्** करने पर **पचत्+अक्+इ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **पचतकि** सिद्ध हुआ। **पचतकि**=अज्ञात पकाता है।

१२३५- **कुत्सिते**। कुत्सिते सप्तम्यन्तम् एकपदं सूत्रम्। **कः** और **अकच्** दोनों का अधिकार है। **तिङश्च** की अनुवृत्ति भी है साथ ही तद्धित में **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है ही।

निन्दा अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक या तिङन्त से स्वार्थ में क और अकच् प्रत्यय होते हैं।

अश्वकः। निन्दित घोड़ा। **कुत्सितोऽश्वः। अश्व सु** से **कुत्सिते** से **क** प्रत्यय प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु होने के बाद उसको रुत्वविसर्ग करके **अश्वकः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **कुत्सितो गर्दभः गर्दभकः, कुत्सित उष्ट्र उष्ट्रकः** आदि भी बनते हैं।

१२३६- **किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्**। किम् च यत् च तत् च(किञ्च, यच्च, तच्च) तेषां समाहारद्वन्द्वः किंयत्तद्, तस्मात्। किंयत्तदः पञ्चम्यन्तं, निर्धारणे सप्तम्यन्तं, द्वयोः षष्ठ्यन्तं, एकस्य षष्ठ्यन्तं, डतरच् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्।

दो में से एक का निर्धारण गम्यमान होने पर किम्, यत्, तत् से डतरच् प्रत्यय होता है।

जाति, गुण, क्रिया और संज्ञाओं के द्वारा समुदाय से एक भाग को अलग करना **निर्धारण** कहलाता है।

डकार की **चुटू** से इत्संज्ञा होती है और चकार भी इत्संज्ञक है। **अतर** बचता है। डित् होने से **टेः** से टि का लोप होता है।

अनयोः कतरो वैष्णवः। इन दोनों में से कौन वैष्णव है? **किम् सु** से **किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्** से डतरच् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अतर बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, किम् में **इम्** टि है, उसका लोप होने पर **क्+अतर=कतर** बना और सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **कतरः** सिद्ध हुआ।

डतमच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२३७. वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् ५।३।९३॥

जातिपरिप्रश्न इति प्रत्याख्यातमाकरे।

बहूनां मध्ये एकस्य निर्धारणे डतमज्वा स्यात्। कतमो भवतां कठः। यतमः। ततमः। वा-ग्रहणमकजर्थम्। यकः सकः।

इति प्रागिवीयाः॥५८॥

....

यतरः। इन दोनों में से जो विशेष हो। **यत् सु** इस अलौकिक विग्रह में **किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्** से डतरच्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अतर बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **त्यदादीनामः** से अत्व, पररूप और अ टि है, उसका लोप होने पर **य्+अतर=यतर** बना और सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **यतरः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **तद्** से **ततरः** बनाइये।

१२३७- **वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्**। वाव्ययपदं, बहूनां षष्ठ्यन्तं, जातिपरिप्रश्ने सप्तम्यन्तं, डतमच् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्।

अनेकों मे से एक के निर्धारण में डतमच् प्रत्यय होता है।

डकार और **चकार** इत्संज्ञक हैं, **अतम** बचता है।

भाष्य में **जातिपरिप्रश्ने** इतने शब्दों का प्रत्याख्यान किया गया है। **प्रत्याख्यान** का अर्थ **खण्डन** भी होता है। **जातिपरिप्रश्ने** इस शब्द की सूत्र में आवश्यकता नहीं है, यह बात महाभाष्यकार पतंजलि ने कहा है। **प्रत्याख्यान** का अर्थ एकदम खण्डन करना नहीं है अपितु इसका दृष्टफल अर्थात् तात्कालिक फल नहीं है किन्तु वेदान्त सूत्रों के पारायण से पुण्यादि की प्राप्ति होती है, यह अदृष्ट फल अवश्य है। अतः इसका पारायण तो यथावत् करना ही चाहिए किन्तु प्रयोगों की सिद्धि के लिए इसको आवश्यक नहीं समझना चाहिए।

कतमः। इनमें से कौन सा कठ(वेद का भाग) है आपका? **कतमो भवतां कठः? किम् सु** अलौकिक विग्रह में **वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्** से डतमच् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अतम** बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **किम्** में **इम्** टि है, उसका लोप होने पर **क्+अतम=कतम** बना। सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **कतमः** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार यत् से **यतमः** और तत् से **ततमः** भी बनाइये।

एषु कतमः पटुः। इनमें से कौन चतुर है? **किम् सु** से **वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्** से डतमच् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अतम बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, किम् में इम् टि है, उसका लोप होने पर **क्+अतम=कतम** बना। सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **कतमः** सिद्ध हुआ।

वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् में **वा** पठित है, इससे **अकच्** का भी ग्रहण करने का संकेत मिलता है। अतः जैसे **डतमच्** करके **यतमः, ततमः** बनाये गये, वैसे उनसे **अकच्** भी करके **यकः, सकः** भी बनाये जा सकते हैं।

अब यहाँ लघुसिद्धान्तकौमुदी में अनुक्त किन्तु बहुत उपयोगी प्रत्ययों का कथन सूत्रनिर्देश पूर्वक किया जा रहा है-

सूत्र- **सङ्ख्याया विधार्थे धा।** सङ्ख्याया षष्ठ्यन्तं, विधार्थे सप्तम्यन्तं, धा लुप्तप्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। क्रिया के प्रकार अर्थ में विद्यमान सङ्ख्यावाचक शब्दों से स्वार्थ में **धा** प्रत्यय का विधान होता है। धा-प्रत्ययान्त शब्द अव्यय में आता है। अतः इससे परे विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जायेगा।

कतिभिः प्रकारैः अथवा **कति प्रकाराः सन्ति? कतिधा।** कितने प्रकार हैं। **कति जस्** से **सङ्ख्याया विधार्थे धा** से धाप्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कतिधा** बना। सु आदि विभक्ति के आने पर अव्ययत्वात् लुक् होकर **कतिधा** सिद्ध होता है।

चतुर्भिः प्रकारैः अथवा **चत्वारः प्रकाराः सन्ति- चतुर्धा।** चार प्रकार हैं इसके। **चतुर् जस्** से **सङ्ख्याया विधार्थे धा** से धाप्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और रेफ का ऊर्ध्वगमन करके **चतुर्धा** बना। सु आदि विभक्ति के आने पर अव्ययत्वात् लुक् होकर **चतुर्धा** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार पञ्चन् से भी धा करके **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप करना न भूलें।

सूत्र- **भूतपूर्वे चरट्।** भूतपूर्वे सप्तम्यन्तं, चरट् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **भूतपूर्व** अर्थात् **पहले यह था**, इस अर्थ में चरट् प्रत्यय का विधान करता है। टकार की इत्संज्ञा होती है। चर शेष रहता है।

कुलपतिचरः। भूतपूर्व कुलपति। **भूतपूर्वः कुलपतिः** लौकिक विग्रह औ **कुलपति सु** अलौकिक विग्रह है। **भूतपूर्वे चरट्** से चरट्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने पर **कुलपतिचर** बना, सु, रुत्वविसर्ग करके **कुलपतिचरः** सिद्ध हुआ।

सचिवचरः। भूतपूर्व सचिव। **भूतपूर्वः सचिवः** लौकिक विग्रह औ **सचिव सु** अलौकिक विग्रह है। **भूतपूर्वे चरट्** से चरट्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने पर **सचिवचर** बना, सु, रुत्वविसर्ग करके **सचिवचरः** सिद्ध हुआ।

परीक्षा

इस प्रकरण के सभी सूत्रों एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालते हुए किन्हीं दस प्रयोंगों की सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का प्रागिवीय-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ स्वार्थिकाः

कन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२३८. इवे प्रतिकृतौ ५।३।९६।।

कन् स्यात्। अश्व इव प्रतिकृतिः- अश्वकः।

वार्तिकम्- **सर्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन्।** अश्वकः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

इस प्रकरण में विहित प्रत्ययों का प्रकृतिभूत शब्द के अर्थ से भिन्न अर्थ न होने के कारण इस प्रकरण को **स्वार्थिकप्रकरण** कहा जाता है।

१२३८- इवे प्रतिकृतौ। इवे सप्तम्यन्तं, प्रतिकृतौ सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अवक्षेपणे कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रतिकृति(प्रतिमा), प्रतिरूप, सादृश्य अर्थों में वर्तमान प्रातिपदिकों से कन् प्रत्यय होता है, यदि प्रकृति मूर्ति या चित्र उपमेय हो तो।

नकार इत्संज्ञक है, **क** ही शेष रहता है।

अश्वकः। अश्व की प्रतिमा। **अश्वस्य इव प्रतिकृतिः** लौकिक विग्रह और **अश्व सु** अलौकिक विग्रह है। **इवे प्रतिकृतौ** से कन्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **अश्वकः** सिद्ध हुआ।

उष्ट्रकः। ऊँट की प्रतिमा। **उष्ट्रस्य इव प्रतिकृतिः** लौकिक विग्रह और **उष्ट्र सु** अलौकिक विग्रह है। **इवे प्रतिकृतौ** से कन्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **उष्ट्रकः** सिद्ध हुआ।

सर्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन्। यह वार्तिक है। **सभी प्रातिपदिकों से स्वार्थ में कन् प्रत्यय होता है।** किसी अर्थविशेष की विवक्षा के विना होने वाले प्रत्यय स्वार्थिक कहलाते हैं। सभी प्रातिपदिकों से स्वार्थ में कन् प्रत्यय हो सकता है। अब प्रश्न आता है कि प्रत्यय के करने के बाद भी अर्थ में कोई बदलाव नहीं है तो प्रत्ययविधान से क्या लाभ? तो उत्तर यह है कि व्याकरण शब्दों की रचना नहीं करता किन्तु पहले से विद्यमान शब्दों में प्रकृति+प्रत्ययों को दिखाता है। जो शब्द पहले से ही ऐसे हैं, उनका कथन करता है। कभी कभी वक्ता उच्चारण सौकर्य या सौष्ठव के लिए स्वार्थिक में प्रत्यय युक्त शब्दों का प्रयोग करते हैं कभी कभी छन्द के अनुरोध से भी **कन्** आदि प्रत्यय लगाये जाते हैं।

मयट्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२३९. तत् प्रकृतवचने मयट् ५।४।२१॥

प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतं, तस्य वचनं प्रतिपादनम्। भावे अधिकरणे वा ल्युट्।
आद्ये प्रकृतमन्नम् अन्नमयम्। अपूपमयम्।
द्वितीये तु अन्नमयो यज्ञः। अपूपमयं पर्व।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२४०. प्रज्ञादिभ्यश्च ५।४।३८॥

अण् स्यात्। प्रज्ञ एव प्राज्ञः। प्राज्ञी स्त्री। दैवतः। बान्धवः।

....

अश्वकः। घोड़ा। **अश्व एव**। **अश्व सु** में **सर्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन्** से **कन्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **अश्वकः** सिद्ध हुआ। इसी तरह सभी प्रातिपदिकों से **कन्** कर सकते हैं। **देवदत्त एव देवदत्तकः**, **सरलमेव सरलकम्**, **बाल एव बालकः** इत्यादि।

१२३९- **तत्प्रकृतवचने मयट्**। प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतं, प्रकृतस्य वचनं प्रकृतवचनं, तस्मिन्। तत् प्रथमान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, प्रकृतवचने सप्तम्यन्तं, मयट् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्राचुर्य, अधिकता से युक्त वस्तु के वाचक प्रातिपदिकों से स्वार्थ में या अधिकरण की वाच्यता में मयट् प्रत्यय होता है।

सूत्र में **वचन** शब्द पठित है। इसकी दो तरह की व्युत्पत्ति है- एक भाव अर्थ में व्युत्पत्ति है- कथनं प्रतिपादनमेव **वचनम्** और दूसरी अधिकरण अर्थ में व्युत्पत्ति- **उच्यतेऽस्मिन् इति वचनम्**। सूत्र में पठित **प्रकृत** शब्द का अर्थ है **प्रचुरता, अधिकता**। **तत्** यह प्रथमान्त का सूचक है, अतः प्रथमान्त प्रातिपदिकों से यह प्रत्यय होगा। **मयट्** में **टकार** इत्संज्ञक है, **मय** बचता है।

अन्नमयम्। अधिकता से विद्यमान अन्न। **प्राचुर्येण प्रस्तुतम् अन्नम्**। **अन्न सु** से **तत्प्रकृतवचने मयट्** सूत्र के द्वारा **मयट्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अन्नमय** बना। स्वादिकार्य करके **अन्नमयम्** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **प्राचुर्येण प्रस्तुतम् अपूपम्** में **अपूपमयम्** बना सकते हैं। ये तो **वचन** में भावव्युत्पत्ति के उदाहरण हैं, अधिकरणव्युत्पत्ति के उदाहरण आगे देखें।

अन्नमयम्। अन्न की अधिकता होती है जिसमें, ऐसे यज्ञ आदि। **प्राचुर्येण प्रस्तुतम् अन्नं यस्मिन्**। यहाँ पर अधिकरण अर्थ है। **अन्न सु** में **तत्प्रकृतवचने मयट्** से **मयट्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अन्नमय** बना। स्वादिकार्य करके **अन्नमयम्** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **प्राचुर्येण प्रस्तुताः अपूपा यस्मिन् पर्वणि** में **अपूपमयम्** बना सकते हैं। मालपुए ही मालपुए जिसमें खूब होता है, ऐसा पर्व।

१२४०- **प्रज्ञादिभ्यश्च**। प्रज्ञा आदिर्येषां ते प्रज्ञादयस्तेभ्यः प्रज्ञादिभ्यः। प्रज्ञादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **तद्युक्तात् कर्मणोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **तद्धिताः** का अधिकार है।

शस्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२४१. बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम् ५।४।४२॥

बहूनि ददाति बहुशः। अल्पशः।

वार्तिकम्- **आद्यादिभ्यस्तसेरुपसङ्ख्यानम्।** आदौ आदितः। मध्यतः। अन्ततः। पृष्ठतः। पार्श्वतः। आकृतिगणोऽयम्। स्वरेण- स्वरतः। वर्णतः।

....

प्रज्ञा आदि शब्दों से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होता है।

प्रज्ञादिगण में प्रज्ञ, वणिज्, उशिज्, मनस्, प्रत्यक्ष, विदन्, चोर, बन्धु, देवता, असुर, पिशाच आदि अनेक शब्द आते हैं।

प्राज्ञः। जानकार, बुद्धिमान्। **प्रज्ञ एव प्राज्ञः**। सामान्यतया यह **प्रज्ञः** ऐसा प्रातिपदिक है। इससे स्वार्थ में **प्रज्ञादिभ्यश्च** से **अण्** प्रत्यय हुआ। **णकार** की इत्संज्ञा के बाद लोप होकर **अ** बचा। **प्रज्ञ+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होकर **प्राज्ञ+अ** बना। अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **प्राज्ञ्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **प्राज्ञ** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु, रुत्वविसर्ग होकर **प्राज्ञः** सिद्ध हुआ। **अणन्त** होने के कारण स्त्रीलिङ्ग में **टिड्ढाणञ्०** से ङीप् होकर **प्राज्ञी** बनता है।

दैवतः। देवता। **देवता एव दैवतः**। सामान्यतया यह **प्रज्ञः** ऐसा प्रातिपदिक है। **प्रज्ञादिगण** में होने के कारण **देवता** से स्वार्थ में **प्रज्ञादिभ्यश्च** से **अण्** प्रत्यय हुआ। णकार की इत्संज्ञा के बाद लोप होकर **अ** बचा। **देवता+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होकर **दैवत+अ** बना। अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **दैवत्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **दैवत** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु, रुत्वविसर्ग होकर **दैवतः** सिद्ध हुआ।

बान्धवः। बन्धु, सम्बन्धी। **बन्धुरेव बान्धवः**। सामान्यतया यह **बन्धुः** ऐसा प्रातिपदिक है। **प्रज्ञादिगण** में होने के कारण **बन्धु** से स्वार्थ में **प्रज्ञादिभ्यश्च** से **अण्** प्रत्यय हुआ। णकार की इत्संज्ञा के बाद लोप होकर **अ** बचा। **बन्धु+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होकर **बान्धु+अ** बना। अन्त्य उकार का **ओर्गुणः** से लोप होकर **बान्धो+अ** बना। **अव्** आदेश होकर **बान्धव** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु, रुत्वविसर्ग होकर **बान्धवः** सिद्ध हुआ।

१२४१. बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्। बहुश्च अल्पश्च बह्वल्पौ, तौ अर्थौ यस्य तद् बह्वाल्पार्थं, तस्मात्। बह्वल्पार्थात् पञ्चम्यन्तं, शस् प्रथमान्तं, कारकात् पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

बह्वर्थ और अल्पार्थ कारकवाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में विकल्प से शस् प्रत्यय होता है।

शस् के तद्धित होने के कारण **शकार** की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा नहीं होती है और **सकार** की भी **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा इसलिए नहीं होती क्योंकि इत्संज्ञा कर **सित्** बना करके कोई भी प्रयोजन नहीं है। अतः सित् के लिए सकार नहीं पढ़ा गया है, अपितु यथावत् बने रहने के लिए पढ़ा गया है। अतः प्रयोजनाभावात् उसकी इत्संज्ञा नहीं होगी। **शस्** प्रत्ययान्त की **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से अव्ययसंज्ञा हो जाती है।

च्वि-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२४२. कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः ५।४।५०॥

वार्तिकम्- **अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्।**

विकारात्मतां प्राप्नुवत्यां प्रकृतौ वर्तमानाद् विकारशब्दात् स्वार्थे च्विर्वा स्यात् करोत्यादिभिर्योगे।

....

बहुशः। बहुत देता है। **बहूनि ददाति** और **बहुशो ददाति** इन दोनों वाक्यों के अर्थ में कोई अन्तर नहीं है। एक **शस्** प्रत्यय वाला है तो एक में वह प्रत्यय नहीं है। शस् प्रत्यय के लगने के बाद भी अर्थ में कोई बदलाव नहीं है। अतः यह प्रत्यय स्वार्थिक कहलाया। इसकी प्रक्रिया देखें- **बहु जस्** में **बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्** से **शस्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **बहुशस्** बना। **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से अव्ययसंज्ञा, सु, उसका **अव्ययादाप्सुपः** से **लुक्** करके **बहुशस्** ही बना। सकार को रुत्व और उसको विसर्ग करने पर **बहुशः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर **बहूनि** की जगह **बहुशः** का प्रयोग हुआ है। **बहुशो ददाति**। यह प्रत्यय वैकल्पिक है, अतः **बहूनि ददाति** भी बन जाता है।

अल्पशः। कम देता है। **अल्पं ददाति** और **अल्पशो ददाति** इन दोनों वाक्यों के अर्थ में कोई अन्तर नहीं है। एक **शस्** प्रत्यय वाला है तो एक में वह प्रत्यय नहीं है। शस् प्रत्यय के लगने के बाद भी अर्थ में कोई बदलाव नहीं है। अतः यह प्रत्यय स्वार्थिक कहलाया। इसकी प्रक्रिया देखें- **अल्प सु** में **बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्** से **शस्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अल्पशस्** बना। **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से अव्ययसंज्ञा, सु, उसका **अव्ययादाप्सुपः** से **लुक्** करके **अल्पशस्** ही बना। सकार को रुत्व और उसको विसर्ग करने पर **अल्पशः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर **अल्पम्** की जगह **अल्पशः** का प्रयोग हुआ है। **अल्पशो ददाति**। यह प्रत्यय वैकल्पिक है, अतः **अल्पं ददाति** भी रह जाता है।

आद्यादिभ्यस्तसेरुपसङ्ख्यानम्। यह वार्तिक है। **आदि इत्यादि गणपठित शब्दों से स्वार्थ में विकल्प से तसि प्रत्यय का विधान करना चाहिए**। यह प्रत्यय भी स्वार्थिक है। **आद्यादि** आकृतिगण है, अतः इसमें कितने शब्द हैं? कोई सीमा नहीं। **तसि** में **इकार** इत्संज्ञक है, **तस्** बचता है। इस प्रत्यय के लगने के बाद **तसिप्रत्ययान्त** की **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से **अव्ययसंज्ञा** हो जाती है। किसी विभक्ति की अपेक्षा नहीं है, अतः सभी विभक्त्यन्तों से यह प्रत्यय हो जाता है।

आदौ आदितः। आदि में। **आदि ङि** में **आद्यादिभ्यस्तसेरुपसङ्ख्यानम्** वार्तिक से **तसि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **आदितस्** बना। इसकी अव्ययसंज्ञा, सु, उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् करके **आदितस्** ही बना। सकार को रुत्वविसर्ग होकर **आदितः** सिद्ध हुआ। यह कार्य वैकल्पिक है, अतः पक्ष में **आदौ** भी बना रहेगा। इसी तरह **मध्ये मध्यतः, अन्ते अन्ततः, पृष्ठे पृष्ठतः, पार्श्वे, पार्श्वतः** आदि भी बनाइये। यह आकृतिगण है, अतः **स्वरेण- स्वरतः, वर्णेन वर्णतः** आदि भी इसी तरह सिद्ध होते हैं।

१२४२- कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः। कृश्च भूश्च अस्तिश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः कृभ्वस्तयः, तेषां कृभ्वस्तीनाम्, तेषां योगः कृभ्वस्तियोगस्तस्मिन्, कृभ्वस्तियोगे। सम्पदनं

ईदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२४३. अस्य च्वौ ७।४।३२।।

अवर्णस्य ईत् स्यात् च्वौ।

वेर्लोपे च्व्यन्तत्वादव्ययत्वम्। अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते, तं करोति कृष्णीकरोति। ब्रह्मीभवति। गङ्गी स्यात्।

वार्तिकम्- **अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम्।** दोषाभूतमहः। दिवाभूता रात्रिः।

....

सम्पद्यः, तस्य कर्ता, सम्पद्यकर्ता, तस्मिन् सम्पद्यकर्तरि। कृभ्वस्तियोगे सप्तम्यन्तं, सम्पद्यकर्तरि सप्तम्यन्तं, च्विः प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है। इस सूत्र के अर्थ में निम्नलिखित वार्तिक पढ़ना आवश्यक है।

अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्। अर्थात् **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** इस सूत्र में **अभूततद्भावे** इतना और जोड़ना चाहिए। **जो वस्तु पहले जिस रूप में न हो और बाद में वह उस रूप को प्राप्त कर ले** तो इसे **अभूततद्भाव** कहते हैं।

अब सूत्रार्थ करते हैं- **अभूततद्भाव गम्य होने पर अर्थात् विकार को प्राप्त हो रही प्रकृति के अर्थ में वर्तमान जो विकारवाचक शब्द, उससे परे स्वार्थ में विकल्प से च्वि प्रत्यय हो, यदि कृ, भू और अस् धातु के साथ योग हो तो।**

च्वि में **चकार** की **चुटू** से इत्संज्ञा होती है और **इकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से तथा **वकार** की **वेरपृक्तस्य** से इत्संज्ञा होती है। इस तरह सर्वापहार लोप हो जाता है। **च्वि** प्रत्यय **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से अव्ययसंज्ञक है, अतः इसके बाद की विभक्ति का लुक् होता है।

१२४३- अस्य च्वौ। अस्य षष्ठ्यन्तं, च्वौ सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ई घ्राध्मोः** से **ई** की अनुवृत्ति आती है।

च्वि के परे होने पर अकार के स्थान पर ईकार आदेश करता है।

च्वि के सर्वापहार लोप हो जाने पर भी **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** की सहायता से प्रत्यय परे मानकर के **ईकारादेश** आदि होते हैं।

कृष्णीकरोति। कृष्णीभवति। जो काला नहीं है उसे काला करता है या होता है। **अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते तं करोति** यह लौकिक विग्रह और **कृष्ण सु** अलौकिक विग्रह में **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से च्वि, सर्वापहारलोप। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **कृष्ण+करोति** बना। **अस्य च्वौ** से णकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **ईकार** आदेश करके **कृष्णी** बना। आगे **करोति** या **भवति** है, **कृष्णीकरोति, कृष्णीभवति।**

ब्रह्मीभवति। जो ब्रह्मभाव का अनुभव नहीं कर रहा था, वह ब्रह्मभाव को प्राप्त हो रहा है। **अब्रह्म ब्रह्म भवति** यह लौकिक विग्रह और **ब्रह्म सु** अलौकिक विग्रह में **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से च्वि, सर्वापहारलोप। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ब्रह्म** बना। **अस्य च्वौ** से णकारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर ईकार आदेश करके **ब्रह्मी** बना। आगे भवति है, **ब्रह्मीभवति।**

अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम्। यह वार्तिक है। **च्वि प्रत्यय के परे रहते अव्यय के अवर्ण के स्थान पर ईकारादेश नहीं होता है, ऐसा कहना चाहिए।**

वैकल्पिकसातिप्रत्ययविधायकं सूत्रम्

१२४४. विभाषा साति कात्स्न्र्ये ५।४।५२॥

च्विविषये सातिर्वा स्यात् साकल्ये।

पत्वनिषेधकं विधिसूत्रम्

१२४५. सात्पदाद्योः ८।३।१११॥

सस्य षत्वं न स्यात्। कृत्स्नं शस्त्रमग्निः सम्पद्यतेऽग्निसाद्भवति। दधि सिञ्चति।

....

दोषाभूतमहः। अदोषा दोषा सम्पद्यमानं भूतम् अर्थात् जो रात्रि न था किन्तु रात्रि हो गया, ऐसा दिन। **दोषा भूतम्** में **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से **च्वि,** सर्वापहार, **दोषा+भूतम्** में **अस्य च्वौ** से **दोषा** के **आकार** को **ईकारादेश** प्राप्त था, उसका **अव्ययस्य च्यावीत्वं नेति वाच्यम्** इस वार्तिक से निषेध हो जाने के कारण **दोषा भूतम्** ही रह गया। **दोषा+भूतम्** की **कुगतिप्रादयः** से समास होता है।

दिवाभूता रात्रिः। अदिवा दिवा सम्पद्यमाना भूता अर्थात् जो दिन न थी किन्तु दिन बन गई, ऐसी रात्रि। **दिवा भूता** में **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से **च्वि,** सर्वापहार, **दिवा+भूता** में **अस्य च्वौ** से **दिवा** के **आकार** को **ईकारादेश** प्राप्त था, उसका **अव्ययस्य च्यावीत्वं नेति वाच्यम्** इस वार्तिक से निषेध हो जाने के कारण **दिवा भूता** ही रह गया। **दिवा+भूतम्** की **कुगतिप्रादयः** से समास होता है।

१२४४- विभाषा साति कात्स्न्र्ये। विभाषा प्रथमान्तं, साति लुप्तप्रथमाकं पदं, कात्स्न्र्ये सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है। **अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि** की अनुवृत्ति आ रही है।

च्वि के विषय में विकल्प से साति प्रत्यय होता है यदि सम्पूर्णता अर्थ गम्यमान हो तो।

कृत्स्नं सर्म्पूणम्, तस्य भावः कात्स्न्र्यम्। उक्त सूत्र से विहित **साति** में इकार की इत्संज्ञा होती है, **सात्** बचता है। **सातिप्रत्ययान्त** शब्द की **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से **अव्ययसंज्ञा** होती है।

१२४५. सात्पदाद्योः। पदस्यादिः पदादिः। सात् च पदादिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः सात्पदादी, तयोः सात्पदाद्योः। सात्पदाद्योः षष्ठ्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **सहेः साडः सः** से **सः** और **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** से **मूर्धन्यः** तथा **न रपरसृपिसृजिसृषिस्पृहिसवनादीनाम्** से **न** की अनुवृत्ति आती है।

साति प्रत्यय के सकार और पदादि में स्थित सकार को मूर्धन्य षकार आदेश नहीं होता है।

अग्निसाद् भवति। कृत्स्नं शस्त्रम् अग्निः सम्पद्यत इति। सम्पूर्ण शस्त्र जो अग्नि नहीं है, वह आग हो जाता है अर्थात् जल जाता है। यहाँ पर **सम्पूर्ण** अर्थ होने के कारण **कात्स्न्र्य** है। अभूततद्भाव भी है। जैसे कि जो आग नहीं वह आग हो गया। अतः **अग्नि सु भवति** में **विभाषा साति कात्स्न्र्ये** से **साति** प्रत्यय, इकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अग्नि+सात्** बना। यहाँ पर इवर्ण से परे होने के कारण

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

१२४६. च्वौ च ७।४।२६॥

च्वौ परे पूर्वस्य दीर्घः स्यात्। अग्नीभवति।

डाच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२४७. अव्यक्तानुकरणाद्व्द्यजवरार्धादनितौ डाच् ५।४।५७॥

द्व्यजेवावरं न्यूनं न तु ततो न्यूनमनेकाजिति यावत्।

तादृशमर्धं यस्य तस्माद् डाच् स्यात् कृभ्वस्तिभिर्योगे।

वार्तिकम्- **डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्।** इति डाचि विवक्षिते द्वित्वम्।

वार्तिकम्- **नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्।**

डात्परं यदाम्रेडितं तस्मिन् परे पूर्वपरयोर्वर्णयोः पररूपं स्यात्।

इति तकारपकारयोः पकारः। पटपटाकरोति।

अव्यक्तानुकरणात् किम्? ईषत्करोति। द्व्यजवरार्धात् किम्? श्रत्करोति।

अवरेति किम्? खरटखरटाकरोति। अनितौ किम्? पटिति करोति।

इति स्वार्थिकाः॥५९॥

इति तद्धिताः।

....

सात्-प्रत्यय के सकार के स्थान पर **आदेशप्रत्यययोः** से **षत्व** प्राप्त था, उसका **सात्पदाद्योः** से निषेध हो गया। अतः **अग्निसात्** ही रह गया। **सातिप्रत्ययान्त** अव्यय होता हो है, अतः उससे बाद की विभक्ति का लुक् होकर **अग्निसात्** सिद्ध हो जाता है। आगे **भवति** है, अतः **तकार** को **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर **अग्निसाद् भवति** हो जाता है।

दधि सिञ्चति। दही छिड़कता है। यह **साति** प्रत्यय का विषय नही है अपितु षत्व के निषेध में **पदादि** का उदाहरण है। **दधि** में विद्यमान इण् वर्ण इकार से परे **सिञ्चति** के सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षकारादेश प्राप्त था, उसका निषेध **सात्पदाद्योः** से किया गया है। **साति** प्रत्यय के विधान एवं उसके सकार को षत्वनिषेध के विषय में आगे देखें।

१२४६- च्वौ च। च्वौ सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अङ्गस्य** का अधिकार है और **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है।

च्वि के परे होने पर पूर्व के अङ्ग को दीर्घ होता है।

अग्नीभवति। जो अग्नि नहीं है वह अग्नि बनता है। **अनग्निः अग्निर्भवति** लौकिक विग्रह और **अग्नि सु** अलौकिक विग्रह में **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से च्वि, सर्वापहारलोप होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **अग्नि+भवति** बना। **च्वौ च** से इकार को दीर्घ होकर **अग्नीभवति**।

१२४७. अव्यक्तानुकरणाद्व्द्यजवरार्धादनितौ डाच्। यत्र ध्वनौ अकारादयो वर्णा न व्यज्यन्ते सोऽव्यक्तो ध्वनिः। अव्यक्तध्वनेरनुकरणम् अव्यक्तानुकरणं, तस्मात्। द्वयोरचोः समाहारः द्व्यच्, द्व्यच् एव अवरं न्यूनं, द्व्यजवरं, तस्मात्। न इतिः अनितिः, तस्मिन्, अनितौ। **मण्डूकप्लुति** से

कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः से **कृभ्वस्तियोगे** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

जिसके आधे भाग में कम से कम दो अच् हों, ऐसे अव्यक्तानुकरण अर्थात् स्पष्टतया अकारादि वर्ण की ध्वनि जहाँ पर न हो ऐसे शब्द के अनुकरण होने पर उससे डाच् प्रत्यय होता है यदि कृ, भू, अस् का योग हो तो किन्तु इति शब्द परे नहीं होना चाहिए।

इस सूत्र के लगने में प्रथमतः **अव्यक्त ध्वनि की नकल होनी चाहिए**, दूसरी बात जिस शब्द से डाच् किया जा रहा है, **उस शब्द में कम से कम दो अच् होने चाहिए**, तीसरी बात- **कृ, भू, अस् का योग होना चाहिए** और चौथी बात **इति** शब्द परे नहीं होना चाहिए।

डाच् में डकार और चकार इत्संज्ञक हैं, आ बचता है। **डित्** होने के कारण **टेः** से **प्रकृति** के टि का लोप किया जाता है।

इस सूत्र में एक वार्तिक पढ़ा गया है- **डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्** अर्थात् डाच् **प्रत्यय करने की विवक्षा हो तो पहले मूल शब्द को बहुल से द्वित्व होता है।**

नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्। यह भी वार्तिक है। **डाच् परे है जिसके ऐसा जो आम्रेडित, उसके परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर पररूप एक आदेश होता है।**

स्मरण रहे कि द्वित्व होने पर द्वितीय की **तस्य परमाम्रेडितम्** से **आम्रेडितसंज्ञा** होती है।

पटपटा करोति। पटत् इति शब्दं करोति। पटत् ऐसा शब्द करता है। यहाँ **पटत्** लगभग इस तरह का शब्द करना, यह अव्यक्त शब्द का अनुकरण है क्योंकि जो आवाज हुई वह **पटत्** ऐसे व्यक्त शब्द के रूप में न होकर उसके अनुकरण में जैसे ठक् ठक् करता है आदि में अनुकरण किया जाता है, उसी तरह का यह भी अनुकरण ही है। **पटत्** इससे अतः **अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** से **डाच्** की प्रत्यय की विवक्षा है। उसके पहले ही **डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्** से उसको द्वित्व हुआ- **पटत् पटत् करोति** बना। अब यहाँ पर आधा भाग भी दो अच् वाला है ही। अतः **डाच्** प्रत्यय हो गया, अनुबन्धलोप होने के बाद **पटत्+पटत्+आ करोति** बना। प्रथम **पटत्** के तकार और द्वितीय **पटत्** के आदि वर्ण **पकार** के स्थान पर **नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्** से पररूप होकर **पकार** ही बना। **पट+प्+अटत्+आ करोति** बना। **अटत्** में **अत्** टि है, इसका **टेः** से लोप होकर **पट+प्+अट्+आ करोति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **पटपटा करोति** बना। **डाजन्त** भी **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से अव्यय बन जाता है। अतः उसके बाद आए हुए सुप् का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर **पटपटा** बना। आगे **करोति** है। इस तरह **पटपटा-करोति** सिद्ध हुआ।

अव्यक्तानुकरणात् किम्? ईषत्करोति। यदि **अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** इस सूत्र में **अव्यक्तानुकरणात्** न कहते तो **व्यक्तानुकरण** में भी **डाच्** होने लगाता, जिससे **ईषत्करोति** नहीं बन पाता।

द्व्यजवरार्धात् किम्? श्रत्करोति। अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्

इस सूत्र में **द्व्यजवरार्धात्** न कहते तो एक अच् वाले में भी उक्त सूत्र प्रवृत्त होता, जिससे **श्रत्करोति** न बन पाता।

अवरेति किम्? खरटखरटाकरोति। अव्यक्तानुकरणाद्व्यजवरार्धादनितौ डाच् इस सूत्र में **अवर** शब्द न होता तो दो अच् में तो डाच् हो जाता किन्तु दो से अधिक अच् होने पर भी **डाच्** नहीं हो पाता जिससे **खरटखरटा करोति** नहीं बन पाता।

अनितौ किम्? पटिति करोति। अव्यक्तानुकरणाद्व्यजवरार्धादनितौ डाच् इस सूत्र में **अनिति** नहीं कहते तो **इति** के परे होने पर भी **डाच्** होने लगता, जिससे **पटिति करोति** न बन पाता।

परीक्षा

इस प्रकरण के किन्हीं पन्द्रह प्रयोगों की सूत्र लगाकर सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का स्वार्थिक-प्रकरण पूर्ण हुआ।

तद्धितप्रकरण समाप्त।

अथ स्त्रीप्रत्ययाः

अधिकारसूत्रम्

१२४८. स्त्रियाम् ४।१।३।।

अधिकारोऽयम्, समर्थानामिति यावत्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **लघुसिद्धान्तकौमुदी** का अन्तिम **स्त्रीप्रत्यय-प्रकरण** प्रारम्भ होता है। सामान्यतया जो शब्द पहले पुँल्लिङ्ग में हो और उसे स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग करने की आवश्यकता होने पर उनसे तथा स्वाभाविक ही स्त्रीलिङ्ग में रहने वाले शब्दों से स्त्रीलिङ्गबोधक प्रत्यय किये जाते हैं। ऐसे शब्द जो धातुओं से प्रत्यय होकर कृदन्त बने हों या प्रातिपदिकों से प्रत्यय होकर तद्धितान्त बने हों अथवा अर्थविशेष में समास किये गये हों, या तो अव्युत्पन्न हों, ऐसे सभी शब्दों से **स्त्रीत्व** अर्थबोधन करने की इच्छा होने पर अर्थात् स्त्रीत्व की विवक्षा होने पर स्त्रीलिङ्गबोधक प्रत्यय होते हैं परन्तु प्रायः अजन्त शब्दों से उनमें भी ज्यादातर अकारान्त शब्दों से ये प्रत्यय किये जाते हैं। हलन्त शब्दों से स्त्रीत्व विवक्षा होने पर भी स्त्रीत्वबोधक प्रत्यय प्रायः कम ही होते हैं।

छात्र, नर, मनुष्य पुँल्लिङ्ग है तो स्त्रीलिङ्गबोधक प्रत्यय होकर छात्रा, नारी, मानुषी शब्द बनते हैं। ऐसे के लिए व्याकरणशास्त्र में कुछ प्रकृति-विशेष से कुछ प्रत्ययों का विधान है। ये प्रत्यय **स्त्रियाम्** इस सूत्र के अधिकार में आते हैं। **प्रत्ययः** और **परश्च** का पूरा अधिकार है। **ङ्याप्प्रातिपदिकात्** से **प्रातिपदिकात्** का भी अधिकार है। **स्त्रियाम्** के अधिकार में आने वाले प्रत्यय हैं- **टाप्, डाप्, चाप्, ङीप्, ङीष्, ङीन्, ऊङ्** और **ति**। इनमें से **टाप्, चाप्** और **डाप्** इन तीनों को **आप्-शब्द** से ग्रहण किया जाता है और **ङीप्, ङीष्** और **ङीन्** की **ङी**-शब्द से ग्रहण किया जाता है। **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** इस सूत्र में **आप्** और **ङी** इन प्रत्ययों के अन्त में होने पर तदन्त शब्दों से परे सु आदि का लोप किया जाता है और **औङ आपः, आङि चापः** आदि में भी **आप्** का कथन है।

लिङ्ग का निर्धारण तो **लिङ्गानुशासन** प्रकरण के अन्तर्गत ही हो सकता है किन्तु स्त्रीलिङ्ग के बोधन के लिए कौन सा प्रत्यय लग सकता है, यह वर्णन इस प्रकरण में किया गया है। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो पुंल्लिङ्ग में तो नहीं होते किन्तु स्त्रीलिंग में होते हैं। उनको

टाप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२४९. अजाद्यतष्टाप् ४।१।४॥

अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत् स्त्रीत्वं तत्र द्योत्वे टाप् स्यात्। अजा। एडका। अश्वा। चटका। मूषिका। बाला। वत्सा। होडा। मन्दा। विलाता इत्यादि। मेधा। गङ्गा। सर्वा।

....

नित्यस्त्रीलिङ्गशब्द कहा जाता है। इनका विस्तृत ज्ञान **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में ही हो सकेगा, यहाँ पर दिग्दर्शन मात्र कराया गया है।

१२४८- **स्त्रियाम्।** स्त्रियाम् सप्तम्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। यह अधिकार सूत्र है।

तद्धिताः ४.१.७६ तक प्रत्येक सूत्रों में **स्त्रियाम्** येह अधिकार के रूप में उपस्थित रहेगा।

१२४९- **अजाद्यतष्टाप्।** अज आदिर्येषां ते अजादयः। अजादयश्च अत् च तेषां समाहारः अजाद्यत्, तस्मात्। अजाद्यतः पञ्चम्यन्तं, टाप् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **ङ्याप्प्रातिपदिकात्** से **प्रातिपदिकात्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार आता है। **स्त्रियाम्** का अधिकार तो है ही।

अज आदि गण में पढ़े गये शब्द अथवा ह्रस्व अकारान्त शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् प्रत्यय होता है।

अजादिगण में अजा, एडका आदि अनेक शब्द आते हैं। टकार **चुटू** से और पकार **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञक है, आ बचता है। इसके बाद **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ हो जाता है।

अजा। (बकरी) यह अज अजादिगणीय शब्द है। स्त्रीत्व के द्योतन करने में **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अज+आ** बना। सवर्णदीर्घ होकर **अजा** बना। अब आबन्त से सु विभक्ति करके रमा की तरह **अजा, अजे, अजाः** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

एडका। (मादा भेंड़) यह **एडक** अजादिगणीय शब्द है। स्त्रीत्व के द्योतन करने में **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **एडक+आ** बना। सवर्णदीर्घ होकर **एडका** बना। अब आबन्त से सु विभक्ति करके रमा की तरह **एडका, एडके, एडकाः** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

अश्वा। (घोड़ी) यह अजादिगणीय शब्द है। स्त्रीत्व के द्योतन करने में **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अश्व+आ** बना। सवर्णदीर्घ होकर **अश्वा** बना। अब आबन्त से सु विभक्ति करके रमा की तरह **अश्वा, अश्वे, अश्वाः** आदि रूप सिद्ध होते हैं। अब इसी तरह **बाल** से **बाला**(बालिका), **वत्स** से **वत्सा**(बछिया), **चटक** से **चटका**(चिड़िया), **मूषक** से **मूषिका**(चूहिया), **होड** से **होडा**(कन्या), **मन्द** से **मन्दा**(कन्या), **विलात** से **विलाता**(कन्या), **गङ्ग** से **गङ्गा**(नदी-विशेष)। ये सभी उदाहरण **अजादिगण** में पठित शब्दों के हैं। ह्रस्व अकारान्त के उदाहरण- **सर्व** से **सर्वा**(सभी स्त्री आदि) आदि उक्त रीति से टाप् करके बना सकते हैं।

ङीप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२५०. उगितश्च ४।१।६॥

उगिदन्तात्प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप्-स्यात्।

भवती। भवन्ती। पचन्ती। दीव्यन्ती।

ङीप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२५१. टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः ४।१।१५॥

अनुपसर्जनं यट्टिदादि तदन्तं यददन्तं प्रातिपदिकं ततः स्त्रियां ङीप् स्यात्।

कुरुचरी। नदट् नदी। देवट् देवी। सौपर्णेयी। ऐन्द्री। औत्सी। ऊरुद्वयसी। ऊरुदघ्नी। ऊरुमात्री। पञ्चतयी। आक्षिकी। लावणिकी। यादृशी। इत्वरी।

वार्तिकम्- **नञ्स्नञीकक्ख्युँस्तरुणतलुनानामुपसङ्ख्यानम्।** स्त्रैणी। पौंस्नी। शाक्तीकी। याष्टीकी। आढ्यङ्करणी। तरुणी। तलुनी।

....

प्रश्नः- अज आदि शब्दों से भी ह्रस्व अकारान्त होने से ही टाप् हो सकता था, पुनः अजादिगण में इनका पाठ क्यों?

उत्तरः- अजादिगण में इनका पाठ इसलिए है कि सामान्य स्त्रीत्व-विवक्षा में प्राप्त टाप् प्रत्यय को बाधकर जातिविषयक स्त्रीत्वविवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से **ङीष्** प्राप्त होता है और पुंयोग होने पर **पुंयोगादाख्यायाम्** से ङीष् प्राप्त होता है। इन दोनों को बाधकर टाप् ही हो अर्थात् अजादिगणपठित शब्दों से जातिविषयक स्त्रीत्वविवक्षा में और पुंयोग होने पर भी टाप् ही हो, न कि ङीप्, ङीष् आदि। इसलिए अकारान्त होते हुए भी अजादि में पढ़ा है।

१२५०- **उगितश्च**। उक् इत् यस्य(प्रातिपदिकस्य) तद् उगित्, तस्मात्। उगितः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से **ङीप्** की अनुवृत्ति आती है। **स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार तो है ही।

जिसमें उक् अर्थात् उ, ऋ, ऌ की इत्संज्ञा हो गई हो ऐसे प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है।

लशक्वतद्धिते से ङकार तथा **हलन्त्यम्** से पकार इत्संज्ञक हैं ई बचता है। शतृ, वसु, डवतु आदि प्रत्ययों में ऋकार, उकार आदि इत्संज्ञक होने से उगित् हैं। इस ङीप् प्रत्यय करने से शब्द ङ्यन्त हो जाता है, जिससे सुलोप आदि कार्य होते हैं।

भवती। आप(स्त्री, महिला)। **भवत्** शब्द के पुँल्लिङ्ग में भवान् बना है। **भा** धातु से कृत्-प्रकरण में डवतु प्रत्यय करके **भवत्** बना है। उकार की इत्संज्ञा होने से उगित् है। **उगितश्च** से ङीप्, अनुबन्धलोप, **भवत्+ई=भवती** बना। ङ्यन्त भवती से सु आदि विभक्ति लगाकर **नदी** की तरह **भवती, भवत्यौ, भवत्यः** आदि रूप बन जाते हैं।

भवन्ती। (होने वाली) भू धातु से शतृप्रत्यय करके अनुबन्धलोप, होने पर **भू+अत्**, शप्, अनुबन्धलोप, **अ** और **अत्** में **अतो गुणे** से पररूप हुआ एवं सार्वधातुकगुण, अव् आदेश करके **भवत्** बना है। ऋकार की इत्संज्ञा होने के कारण उदित् है। स्त्रीत्व की विवक्षा में **उगितश्च** से ङीप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **भवती** बना है। **शप्श्यनोर्नित्यम्**

से नुम् करने पर भवन्ती बना। अब ङ्यन्त **भवन्ती** से सु आदि विभक्ति लगाकर नदी की तरह **भवन्ती, भवन्त्यौ, भवन्त्यः** आदि रूप बन जाते हैं। इसी तरह पच् से शतृ, पचत्, पचती, **पचन्ती**। इसके रूप **नदी** की तरह ही **पचन्ती, पचन्त्यौ, पचन्त्यः** आदि होते हैं। **दीव्यत्** इस शत्रन्त **दीव्यत्** से **दीव्यन्ती, दीव्यन्त्यौ, दीव्यन्तः** आदि बनाये जा सकते हैं।

१२५१- टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः। टित् च ढश्च, अण् च, द्वयसच्च, दघ्नञ्च, मात्रच्च तयप्च, ठक् च, ठञ्च, कञ् च, क्वरप् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः। प्रथमान्तमेकपदं सूत्रम्। **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से **ङीप्** तथा **अजाद्यतष्टाप्** से एकदेश **अतः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** इन सभी शब्दों का पूर्ववत् अधिकार है।

अनुपसर्जन जो टित्, ढ, अण्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच् तयप्, ठक्, ठञ्, कञ् और क्वरप् जो प्रत्यय, ऐसे प्रत्यय अन्त में होने वाले अदन्त प्रातिपदिक, उनसे स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है।

ये प्रत्यय कृत्प्रकरण और तद्धितप्रकरण के हैं। **ङीप्** में ङकार की **लशक्वतद्धिते** से तथा पकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा के बाद **तस्य लोपः** से लोप करके ईकार ही शेष रहता है। ईकार के परे होने पर प्रकृति की भसंज्ञा होती है। अतः प्रकृति में विद्यमान अन्त्य अवर्ण का **यस्येति च** से लोप हो जाता है।

कुरुचरी। कुरुदेश में विचरण करने वाली स्त्री। यह टित् का उदाहरण है। **कुरुषु चरति** इस विग्रह में **कुरु** पूर्वक **चर्** धातु से **चरेष्टः** इस सूत्र से **ट** प्रत्यय होकर कृदन्त में **कुरुचर** बना है। कृदन्त होने के कारण प्रातिपदिक भी है। अतः इससे टित् मानकर के स्त्रीत्व की विवक्षा में **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से ङीप् हुआ। **ङकार** और **पकार** की इत्संज्ञा और लोप के बाद **कुरुचर** की भसंज्ञा करके अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **कुरुचर्+ई** बना। वर्णसम्मेलन होकर **कुरुचरी** बन गया। अब सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करने पर **कुरुचरी** सिद्ध हुआ।

नदी। दरिया। यह भी टित् का उदाहरण है। **पचादिगण** में **नदट्** के रूप में इसका पाठ है। अतः **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** से **अच्** प्रत्यय होकर **नद** बना है। कृदन्त होने के कारण प्रातिपदिक भी है। अतः इससे **टित्** मानकर के स्त्रीत्व की विवक्षा में **नद** से **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से **ङीप्** हुआ। **ङकार** और **पकार** की इत्संज्ञा और लोप के बाद **कुरुचर** की भसंज्ञा करके अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **नद्+ई** बना। वर्णसम्मेलन होकर **नदी** बन गया। अब सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करने पर **नदी** सिद्ध हुआ। इसी तरह **टिदन्त** मानकर अजन्त **देव** से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् करके **देवी** बनता है।

सौपर्णेयी। सुपर्णी की कन्या, गरुड़ की बहन। यह **ढ-प्रत्ययान्त** का उदाहरण है। **सुपर्ण्या अपत्यं स्त्री** इस विग्रह में **स्त्रीभ्यो ढक्** से **ढक्** प्रत्यय, **एय्** आदेश होकर **सौपर्णेय** बना है। तद्धितान्त होने के कारण प्रातिपदिक भी है। अतः इससे ढान्त मानकर के स्त्रीत्व की विवक्षा में **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से **ङीप्** हुआ। **ङकार** और **पकार** की इत्संज्ञा और लोप के बाद **सौपर्णेय** की भसंज्ञा करके अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **सौपर्णेय्+ई** बना। वर्णसम्मेलन होकर **सौपर्णेयी** बन गया।

अब सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करने पर **सौपर्णेयी** सिद्ध हुआ।

ऐन्द्री। इन्द्र देवता है जिसका, ऐसी पूर्वदिशा। यह **अण्-प्रत्ययान्त** का उदाहरण है। **इन्द्रो देवता अस्य** इस विग्रह में **सास्य देवता** से **अण्** प्रत्यय अथवा **इन्द्रस्य इयम्** इस विग्रह में **तस्येदम्** से **अण् प्रत्यय** होकर **ऐन्द्र** बना है। तद्धित होने के कारण प्रातिपदिक भी है। अतः इससे अणन्त मानकर के स्त्रीत्व की विवक्षा में **ऐन्द्र** शब्द से **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से **ङीप्** हुआ। **ङकार** और **पकार** की इत्संज्ञा और लोप के बाद **सौपर्णेय** की भसंज्ञा करके अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **ऐन्द्र्+ई** बना। वर्णसम्मेलन होकर **ऐन्द्री** बन गया। अब सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करने पर **ऐन्द्री** सिद्ध हुआ।

औत्सी। झरने में उत्पन्न होने वाली मछली आदि। यह **अञ्-प्रत्ययान्त** का उदाहरण है। **तत्र भवः** अर्थ में **उत्सादिभ्योऽञ्** से **अञ् प्रत्यय** होकर **औत्स** बना है। तद्धितान्त होने के कारण प्रातिपदिक भी है। अतः इससे अञन्त मानकर के स्त्रीत्व की विवक्षा में **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से **ङीप्** हुआ। **ङकार** और **पकार** की इत्संज्ञा और लोप के बाद **सौपर्णेय** की भसंज्ञा करके अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **औत्स्+ई** बना। वर्णसम्मेलन होकर **औत्सी** बन गया। अब सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करने पर **औत्सी** सिद्ध हुआ।

ऊरुद्वयसी। ऊरु प्रमाण है जिस का, ऐसी नदी। यह **द्वयसच्-प्रत्ययान्त** का उदाहरण है। **प्रमाण** अर्थ में **प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः** से **द्वयसच् प्रत्यय** होकर **ऊरुद्वयस** बना है। तद्धितान्त होने के कारण प्रातिपदिक भी है। अतः इससे **द्वयसजन्त** मानकर के स्त्रीत्व की विवक्षा में **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से **ङीप्** हुआ। **ङकार** और **पकार** की इत्संज्ञा और लोप के बाद **ऊरुद्वयस** की भसंज्ञा करके अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **ऊरुद्वयस्+ई** बना। वर्णसम्मेलन होकर **ऊरुद्वयसी** बन गया। अब सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करने पर **ऊरुद्वयसी** सिद्ध हुआ। इसी तरह उक्त सूत्र से **दघ्नच्** और **मात्रच्** प्रत्यय करके क्रमशः **ऊरुदघ्नी** और **ऊरुमात्री** ये शब्द सिद्ध हो जाते हैं।

पञ्चतयी। पाँच अवयव वाली स्त्री। **पञ्च अवयवा अस्याः** इस विग्रह में **पञ्चन् जस्** से **सङ्ख्याया अवयवे तयप्** से **तयप्** प्रत्यय होकर **पञ्चतय** बना है **तयप्-प्रत्ययान्त** का उदाहरण है। स्त्रीत्व की विवक्षा में **पञ्चतय** से **टिड्ढाणञ्द्वयसज्-दघ्नञ्मात्रच्-तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से **ङीप्** हुआ। **ङकार** और **पकार** की इत्संज्ञा और लोप के बाद **पञ्चतय** की भसंज्ञा करके अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **पञ्चतय्+ई** बना। वर्णसम्मेलन होकर **पञ्चतयी** बन गया। अब सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करने पर **पञ्चतयी** सिद्ध हुआ।

ठक्-प्रत्ययान्त का उदाहरण- **अक्षैर्दीव्यति** इस विग्रह में **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से ठक् प्रत्यय, उसमें **ठस्येकः** से इक आदेश होकर **आक्षिक** बना है। **ठक्** प्रत्ययान्त **आक्षिक** से **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** के द्वारा **ङीप्** हुआ-**आक्षिकी**।

ङीप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२५२. यञश्च ४।१।१६॥

यञन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात्। अकारलोपे कृते-

यकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

१२५३. हलस्तद्धितस्य ६।४।१५०॥

हलः परस्य तद्धितयकारस्योपधाभूतस्य लोप ईति परे। गार्गी।

....

ठञ्-प्रत्ययान्त का उदाहरण- **प्रस्थेन क्रीता** इस विग्रह में **तेन क्रीतम्** से ठञ् होकर इक आदेश के बाद **प्रास्थिक** बना। उससे **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्-तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** के द्वारा **ङीप्** हुआ- **प्रास्थिकी**।

ठञ्-प्रत्ययान्त का दूसरा उदाहरण- **लवणं पण्यमस्याः** इस विग्रह में **लवणाट्ठञ्** से **ठञ्** और **ठस्येकः** से इक आदेश होकर **लावणिक** बना। उससे ङीप् होकर **लावणिकी** बना।

कञ्-प्रत्ययान्त का उदाहरण- **यत् प्रमाणमस्य** इस विग्रह में **त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च** से **कञ्** प्रत्यय हो **आ सर्वनाम्नः** से यत् को आकारान्त आदेश होकर **यादृश** बना है। उससे स्त्रीत्व में **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से ङीप् होकर **यादृशी** बनता है।

क्वरप् का उदाहरण- **इण्** धातु से **इणनशिजिसर्तिभ्यः क्वरप्** से क्वरप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** से तुक् होकर **इत्वर** बना है। उससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से **ङीप्** होकर **इत्वरी** सिद्ध हुआ।

नञ्स्नञीकक्ख्युँस्तरुणतलुनानामुपसङ्ख्यानम्। यह वार्तिक है। **नञ्-प्रत्ययान्त, स्नञ्-प्रत्ययान्त, ईकक्-प्रत्ययान्त और ख्युन्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से तथा तरुण, तलुन प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है।**

तद्धित में **नञ्** प्रत्यय होकर **स्त्रैण** तथा **स्नञ्** प्रत्यय होकर **पौंस्न** एवं **ईकक्** प्रत्यय होकर **शाक्तीक, याष्टीक** और **ख्युन्** प्रत्यय होकर **आढ्यङ्करण** बने हैं। उनसे **स्त्रीत्वविवक्षा** में **नञ्स्नञीकक्ख्युँस्तरुणतलुनानामुपसङ्ख्यानम्** से **ङीप्** प्रत्यय होकर **स्त्रैणी, पौंस्नी, शाक्तीकी, याष्टीकी, आढ्यङ्करणी** सिद्ध हो जाते हैं। इसी तरह **तरुण, तलुन** शब्दों से भी इसी वार्तिक से उक्त प्रत्यय होकर **तरुणी** और **तलुनी** बनाइये।

१२५२- **यञश्च**। यञः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से **ङीप्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, स्त्रियाम्** का अधिकार है।

स्त्रीत्व की विवक्षा में यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से परे ङीप् प्रत्यय होता है।

१२५३- **हलस्तद्धितस्य**। हलः पञ्चम्यन्तं, तद्धितस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः** से **उपधायाः** और **ढे लोपोऽकद्र्वाः** से **लोपः** की तथा **यस्येति च** से **ईति** की अनुवृत्ति आती है।

ष्फ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२५४. प्राचां ष्फ तद्धितः ४।१।१७॥

यञन्तात् ष्फो वा स्यात् स च तद्धितः।

ङीष्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२५५. षिद्गौरादिभ्यश्च ४।१।४१॥

षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च स्त्रियां ङीष् स्यात्।

गार्ग्यायणी। नर्तकी। गौरी। अनडुही। अनड्वाही। आकृतिगणोऽयम्।

....

हल् से परे तद्धित के उपधाभूत यकार का लोप होता है, ईकार के परे होने पर।

गार्गी। गर्ग गोत्र की सन्तति, कन्या। **गर्गस्य गोत्रापत्यं स्त्री**। तद्धित में **गर्ग** शब्द से **गर्गादिभ्यो यञ्** से **यञ्** प्रत्यय होकर **गार्ग्य** बना हुआ है। उससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **यञश्च** से ङीप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके भसंज्ञक अकार का लोप करके **गार्ग्य्+ई** बना। अब **हलस्तद्धितस्य** से **गार्ग्य्** के **यकार** का लोप हुआ- **गार्ग्+ई** बना। वर्णसम्मेलन होकर **गार्गी** और स्वादिकार्य करने पर **गार्गी** सिद्ध हो जाता है।

१२५४- **प्राचां ष्फ तद्धितः**। प्राचां षष्ठ्यन्तं, ष्फ लुप्तप्रथमाकं, तद्धितः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **यञश्च** से **यञः** की अनुवृत्ति आती है और **प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **स्त्रियाम्** का पूर्ववत् अधिकार है।

यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व विवक्षा में विकल्प से तद्धितसंज्ञक ष्फ प्रत्यय होता है।

षकार का **षः प्रत्ययस्य** से इत्संज्ञा होकर लोप होता है, **फ** बचता है। उसमें से केवल **फ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **आयन्** आदेश होकर **आयन** बनता है।

१२५५- **षिद्गौरादिभ्यश्च**। ष् इत् यस्य स षित्, गौरः आदिर्येषां ते गौरादयः। षित् च गौरादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः षिद्गौरादयस्तेभ्यः। षिद्गौरादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्। **अन्यतो ङीष्** से **ङीष्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रातिपदिककात्, प्रत्ययः, परश्च** और **स्त्रियाम्** का पूर्ववत् अधिकार है।

जिस शब्द में षकार की इत्संज्ञा हो गई हो ऐसे शब्दों से और गौर आदि गणपठित शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा होने पर ङीष् प्रत्यय होता है।

ङ्कार और **षकार** इत्संज्ञक हैं, **ईकार** शेष रहता है। **गौरादिगण** में **गौर, मस्त्य, मनुष्य, हय** आदि अनेक शब्द पठित हैं फिर भी यह **आकृतिगण** है। तात्पर्य यह है कि इस गण में आने वाले शब्द असंख्य हैं। अतः गणना नहीं हो सकती। फलतः **आकृतिगण** है।

गार्ग्यायणी। गर्ग शब्द से **गर्गादिभ्यो यञ्** से **यञ्** प्रत्यय करके **गार्ग्य** बना। यञन्त **गार्ग्य** से स्त्रीत्व की विवक्षा में **प्राचां ष्फ तद्धितः** से **ष्फ** प्रत्यय हुआ। षकार का **षः प्रत्ययस्य** से लोप होकर **फ** बचा। उसमें केवल **फकार** के स्थान पर **आयन्** आदेश

ङीप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२५६. वयसि प्रथमे ४।१।२०॥

प्रथमवयोवाचिनोऽदन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात्। कुमारी।

ङीप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२५७. द्विगोः ४।१।२१॥

अदन्ताद् द्विगोर्ङीप् स्यात्।

त्रिलोकी। अजादित्वात् त्रिफला। त्र्यनीका सेना।

....

होकर **गार्ग्य+आयन** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **गार्ग्यायन** बना। णत्व होकर **गार्ग्यायण** बना। अब षित् होने के कारण **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ङीष्, अनुबन्धलोप, **गार्ग्यायण+ई** बना। भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप हुआ। **गार्ग्यायण्+ई=गार्ग्यायणी** बना। ङ्यन्त **गार्ग्यायणी** से सु आदि विभक्ति लगाकर **गार्ग्यायणी, गार्ग्यायण्यौ गार्ग्यायण्यः** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

नर्तकी। नाचने वाली स्त्री। **नृत्** धातु से **शिल्पिनि ष्वुन्** से **ष्वुन्** प्रत्यय होकर **नर्तक** बना है। षित् होने के कारण स्त्रीत्वविवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ङीष्, अनुबन्धलोप, **नर्तक+ई** बना। भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप हुआ। **नर्तक्+ई=नर्तकी** बना। ङ्यन्त **नर्तकी** से सु आदि विभक्ति लगाकर **नर्तकी, नर्तक्यौ** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

गौरी। यह गौरादिगण में पठित शब्द है। **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ङीष्, अनुबन्धलोप, **गौर+ई** बना। भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप हुआ। **गौर्+ई=गौरी** बना। ङ्यन्त **गौरी** से सु आदि विभक्ति लगाकर **गौरी, गौर्यौ** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

अनड्वाही, अनडुही। गाय। **अनडुह्** शब्द से स्त्रीत्वविवक्षा में **गौरादिगणीय** होने के कारण **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ङीष्, अनुबन्धलोप, **अनडुह्+ई** बना। **आमनडुहः स्त्रियां वा** इस वार्तिक से विकल्प से **आम्** आगम होकर **अनडु+आह्+ई** बना। यण् और वर्णसम्मेलन होकर **अनड्वाही** बना। अब ङ्यन्त **अनड्वाही** से सु आदि विभक्ति लगाकर **अनड्वाही** सिद्ध हुआ। **आम्** वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **अनडुही** बनता है।

१२५६- **वयसि प्रथमे**। वयसि सप्तम्यन्तं, प्रथमे सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से **ङीप्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **स्त्रियाम्** का पूर्ववत् अधिकार है।

प्रथम अवस्था अर्थात् कौमार अवस्था के सूचक शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है।

आयु की तीन अवस्था होती है- कौमार, यौवन और वृद्धावस्था। यह सूत्र प्रथम अवस्था के वाचक शब्दों से प्रत्यय का विधान करता है।

कुमारी। कुमार, यह शब्द प्रथमावस्था सूचक है। स्त्रीत्व की विवक्षा में **वयसि प्रथमे** से ङीप्, अनुबन्धलोप, भसंज्ञक अकार का लोप, **कुमार्+ई=कुमारी**, सु आदि करके **कुमारी, कुमार्यौ, कुमार्यः** आदि बन जाते हैं।

अन्य उदाहरण- **किशोरी**। इसी प्रकार किशोर यह भी युवावस्था से पहले की अवस्था का वाचक शब्द है। इससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **वयसि प्रथमे** से ङीप्, अनुबन्ध

ङीप्सन्नियोगनकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२५८. वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ४।१।३९॥

वर्णवाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्तादनुपसर्जनात् प्रातिपदिकाद्वा ङीप्, तकारस्य नकारादेशश्च। एनी, एता। रोहिणी, रोहिता।

....

लोप, भसंज्ञक अकार का लोप, **किशोर+ई=किशोरी**, सु आदि करके **किशोरी, किशोर्यौ, किशोर्यः** आदि बन जाता है।

१२५७- **द्विगोः**। पञ्चम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से **ङीप्** की अनुवृत्ति आती है और **अतः, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **स्त्रियाम्** का अधिकार है।

अदन्त द्विगुसमास से स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है।

स्मरण रहे कि **समास** में संख्यावाचक शब्द पूर्व रहे तो उसे **द्विगु** कहते हैं। **सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः**। ऐसे शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में **ङीप्** होता है।

त्रिलोकी। तीन लोंकों का समूह। **त्रयाणां लोकानां समूहः**। द्विगुसमाससंज्ञक **त्रिलोक** शब्द से **द्विगोः** से **ङीप्** प्रत्यय करके भसंज्ञक अकार का लोप करके **त्रिलोकी**, स्वादिकार्य करके **त्रिलोकी** सिद्ध हुआ।

अजादित्वात्- त्रिफला। तीन फलों का समूह, औषधि विशेष। **त्रयाणां फलानां समाहारः**। यहाँ पर भी सङ्ख्यापूर्व होने से **द्विगोः** से **ङीप्** होना चाहिए था किन्तु इस शब्द के **अजादिगण** में पाठ होने के कारण इसको बाधकर **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर **त्रिफला** बन जाता है।

त्र्यनीका। तीन तरह की सेनाओं का समूह। **त्रयाणाम् अनीकानां समाहारः** यहाँ पर भी सङ्ख्यापूर्व होने से **द्विगोः** से **ङीप्** होना चाहिए था किन्तु इस शब्द के **अजादिगण** में पाठ होने के कारण इसको बाधकर **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर **त्र्यनीका** बन जाता है।

१२५८- **वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः**। त उपधा यस्य स तोपधस्तस्मात्। वर्णात् पञ्चम्यन्तम्, अनुदात्तात् पञ्चम्यन्तं, तोपधात् पञ्चम्यन्तं, तः षष्ठ्यन्तं, नः प्रथमान्तम् अनेकपदं सूत्रम्। **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से **ङीप्** और **मनोरौ वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है और **अनुपसर्जनात्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **स्त्रियाम्** का अधिकार है।

वर्णवाची जो अनुदात्त तकारोपध शब्द, तदन्त अनुपसर्जन प्रातिपदिक से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीप् प्रत्यय तथा शब्द में विद्यमान तकार के स्थान पर नकारादेश होता है।

ङीप् होने के पक्ष में ही नकारादेश होता है, अन्यथा नहीं होता। यहाँ पर **वर्ण** शब्द सफेद, लाल आदि रंगों का वाचक है।

एनी, एता। चितकबरी, अनेक रंगों वाली। **एत** शब्द विविध रंगों का वाचक है। इससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः** से **ङीप्** प्रत्यय और उसके साथ में **एत** के तकार के स्थान पर नकार आदेश होकर **एन+ई** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **एनी** बनता है। ङीप् न होने के पक्ष में **एत** से **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर **एता** बन जाता है। स्वादिकार्य दोनों में करना न भूलें।

वैकल्पिक-ङीष्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२५९. वोतो गुणवचनात् ४।१।४४॥

उदन्ताद् गुणवाचिनो वा ङीष् स्यात्। मृद्वी, मृदुः।

ङीष्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२६०. बह्वादिभ्यश्च ४।१।४५॥

एभ्यो वा ङीष् स्यात्। बह्वी, बहुः।

वार्तिकम्- **कृदिकारादक्तिनः**। रात्री, रात्रिः।

वार्तिकम्- **सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके**। शकटी, शकटिः।

....

रोहिणी, रोहिता। लाल रंगों वाली। **रोहित** शब्द लाल रंग का वाचक है। इससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **वर्णादनुदात्तोत्तापधात्तो नः** से **ङीप्** प्रत्यय और उसके साथ में **रोहित** के तकार के स्थान पर नकार आदेश होकर **रोहिन+ई** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **रोहिनी** और णत्व करके **रोहिणी** बनता है। ङीप् न होने के पक्ष में **रोहित** से **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर **रोहिता** बन जाता है। स्वादिकार्य दोनों में करना न भूलें।

१२५९- **वोतो गुणवचनात्**। वाव्ययपदं, उतः पञ्चम्यन्तं, गुणवचनात् पञ्चम्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अन्यतो ङीष्** से **ङीष्** और **मनोरौ वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है। **प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **स्त्रियाम्** का अधिकार पूर्ववत् है।

ह्रस्व उकारान्त शब्दों से स्त्रीत्व-विवक्षा में वैकल्पिक ङीष् प्रत्यय होता है।

मृद्वी, मृदुः। कोमल। ह्रस्व उकारान्त मृदु शब्द से **वोतो गुणवचनात्** से ङीप्, अनुबन्धलोप, **मृदु+ई** में यण् होकर व्, **मृद्+व्+ई=मृद्वी**, सु विभक्ति, लोप होकर **मृद्वी** बना। इसके रूप **नदी** शब्द की तरह होते हैं। ङीप् वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में केवल **मृदु** है, सु, रुत्वविसर्ग करके **मृदुः** सिद्ध हो जाता है। इसके रूप **धेनु** शब्द की तरह होते हैं- **मृदुः, मृदू, मृदवः**। नपुंसक में तो **मृदु, मृदुनी, मृदूनि** आदि मधु-शब्द की तरह बनते हैं।

पट्वी, पटुः। चतुर स्त्री। ह्रस्व उकारान्त पटु शब्द से **वोतो गुणवचनात्** से ङीष्, अनुबन्धलोप, **पटु+ई** में यण् होकर व्, **पट्+व्+ई=पट्वी**, सु विभक्ति, **पट्वी**। ङीष् न होने के पक्ष में केवल पटु है, सु, रुत्वविसर्ग करके **पटुः** सिद्ध हो जाता है।

१२६०- **बह्वादिभ्यश्च**। बहुशब्द आदिर्येषां ते बह्वादयस्तेभ्यः। बह्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **वोतो गुणवचनात्** से **वा** और **अन्यतो ङीष्** से **ङीष्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रातिपदिकात्** आदि का अधिकार पूर्ववत् है ही।

बहु आदि गण में पठित प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है।

बह्वी, बहुः। बहुत(स्त्री)। ह्रस्व उकारान्त **बहु** शब्द से **बह्वादिभ्यश्च** से **ङीष्**, अनुबन्धलोप, **बहु+ई** में यण् होकर व्, **बह्वी**, सु विभक्ति, लोप, **बह्वी** सिद्ध हुआ। इसके रूप **नदी** शब्द की तरह होता है। **ङीष्** वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में केवल **बहु** है, सु, रुत्वविसर्ग करके **बहुः** सिद्ध हो जाता है। इसके रूप **धेनु** शब्द की तरह होते हैं- **बहुः, बहू, बहवः** आदि।

ङीष्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२६१. पुंयोगादाख्यायाम् ४।१।४८॥

या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्तते, ततो ङीष्।

गोपस्य स्त्री गोपी।

वार्तिकम्- **पालकान्तान्न।**

....

कृदिकारादक्तिनः। यह वार्तिक है। **क्तिन् से भिन्न कृत् से सम्बन्धित इकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है।**

रात्री, रात्रिः। रात। **रात्रि** शब्द कृदन्तप्रकरण के अन्तर्गत उणादिप्रकरण के सूत्र द्वारा **रा** धातु से **त्रिप्** प्रत्यय करके बना है। इसमें **कृत्** का **इकार** मिल रहा है। अतः **कृदिकारादक्तिनः** से विकल्प से **ङीष्** प्रत्यय होकर **रात्रि ई** बना। भसंज्ञक इकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **रात्री** बना। स्वादिकार्य तो होता ही है। **ङीष्** न होने के पक्ष में **रात्रि** है, स्वादिकार्य करके **रात्रिः** बन जाता है। **रात्री** के रूप गौरी की तरह और **रात्रि** के रूप मति की तरह होते हैं

क्तिन् प्रत्ययान्त के निषेध होने के कारण **मति, कीर्ति, नीति, रीति** आदि शब्दों से **ङीष्** नहीं होता।

सर्वतोऽक्तिनर्थादित्येके। यह भी वार्तिक ही है। कुछ आचार्य **क्तिन् प्रत्ययान्त से भिन्न सभी इदन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् होता है,** ऐसा मानते हैं।

शकटी, शकटिः। छोटी गाड़ी। **शकटि** शब्द अव्युत्पन्न इदन्त प्रातिपदिक है। इसमें **सर्वतोऽक्तिनर्थादित्येके** से विकल्प से **ङीष्** प्रत्यय होकर **शकटि ई** बना। भसंज्ञक इकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **शकटी** बना। स्वादिकार्य तो होता ही है। **ङीष्** न होने के पक्ष में **शकटि** बना है, स्वादिकार्य करके **शकटिः** बन जाता है।

१२६१- पुंयोगादाख्यायाम्। पुंयोगात् पञ्चम्यन्तं, आख्यायां, सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रातिपदिकात्** आदि का अधिकार पूर्ववत् है ही।

पुरुष के साथ सम्बन्ध के कारण जब पुंवाचक शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त हो तो उस अदन्त शब्द से ङीष् प्रत्यय होता है।

स्त्री वह पत्नी भी हो सकती है और पुत्री, बहन आदि भी हो सकती है। गोपस्य पत्नी, भगिनी, पुत्री गोपी। बकस्य भगिनी बकी आदि।

गोपस्य स्त्री, गोपस्य पत्नी, गोपस्य भगिनी, गोपस्य पुत्री गोपी। **गोपी**। गोप की स्त्री, पत्नी, बहन, पुत्री गोपी कहलाती है। **गोप** शब्द अदन्त है और स्त्रीत्व की विवक्षा में पुरुष के साथ सम्बन्ध जोड़कर बोला जा रहा है। **पुंयोगादाख्यायाम्** से ङीष्, अनुबन्धलोप, भसंज्ञक अकार का लोप करके **गोप्+ई=गोपी,** सु आदि कार्य करके **गोपी** सिद्ध हुआ।

पालकान्तान्न। यह वार्तिक है। **पालक अन्त में होने वाले शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में पुंयोग होने पर भी ङीष् नहीं होता।** पालक अन्त में हो ऐसे शब्दों से भी **पुंयोगादाख्यायाम्** से ङीष् प्राप्त होता है। यह वार्तिक उसका अपवाद है। अतः **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् प्रत्यय होता है।

इदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२६२. प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः ७।३।४४।।

प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्याकारस्येकारः स्यादापि, स आप् सुपः परो न चेत्।

गोपालिका। अश्वपालिका। सर्विका। कारिका। अतः किम्? नौका।

प्रत्ययस्थात् किम्? शक्नोतीति शका। असुपः किम्? बहुपरिव्राजका नगरी।

वार्तिकम्- **सूयाद् देवतायां चाब्वाच्यः।** सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या। देवतायां किम्?

वार्तिकम्- **सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च।** यलोपः। सूरी- कुन्ती, मानुषीयम्।

....

१२६२- **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः**। प्रत्ययस्थात् पञ्चम्यन्तं, कात् पञ्चम्यन्तं, पूर्वस्य षष्ठ्यन्तं, अतः षष्ठ्यन्तं, इत् प्रथमान्तं, आपि सप्तम्यन्तं, असुपः पञ्चम्यन्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्।

प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व में स्थित अकार के स्थान पर इकार आदेश होता है आप् के परे होने पर, यदि वह आप् सुप् से परे हो तो नहीं होता है।

गोपालिका। गोपालक शब्द पालकान्त है, **पालकान्तान्न** इस वार्तिक से निषेध होने के कारण **पुंयोगादाख्याम्** से ङीष् नहीं हुआ तो **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् हुआ, अनुबन्ध लोप होने पर **गोपालक+आ** बना। **गोपालक** का ककार प्रत्यय वाला ककार है। उससे पूर्व में लकारोत्तरवर्ती अकार है। आप् भी परे है और वह सुप् से परे भी नहीं है। ऐसी स्थिति में **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** से ल के अकार को इकार आदेश हो गया, **गोपालिक+आ** बना। **गोपालिक+आ** में सवर्णदीर्घ करके **गोपालिका** बना। सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और रमा शब्द की तरह रूप सिद्ध हो जाते हैं- **गोपालिका, गोपालिके, गोपालिकाः** आदि। अब इसी तरह **सर्वक** से **सर्विका** और **कारक** से **कारिका** आदि भी आप बना सकते हैं।

अतः किम्? नौका। यदि **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** इस सूत्र में **अतः** इतना पद न पढ़ते तो अदन्त शब्द में तो इत्व होता ही साथ ही जो अदन्त नहीं है, उसमें भी होता। जैसे कि **नौ+का** में औकार के स्थान पर भी इकार आदेश हो जाता।

प्रत्ययस्थात् किम्? शक्नोतीति शका। यदि **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** इस सूत्र में **प्रत्ययस्थात्** इतना पद न पढ़ते तो प्रत्यय के अकार को तो इत्व होता ही साथ ही जो प्रत्यय का अकार नहीं है, उसमें भी होता। जैसे कि **श+का** में अकार के स्थान पर भी इकार आदेश हो जाता।

असुपः किम्? बहुपरिव्राजका नगरी। यदि **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** इस सूत्र में **असुपः** इतना पद न पढ़ते तो सुप् से परे विद्यमान अकार को भी इकार हो जाता। जैसे कि **बहुपरिव्राज+का** में अकार के स्थान पर भी इकार आदेश हो जाता। बहवः परिव्राजकाः सन्ति यस्यां नगर्याम् सा बहुपरिव्राजिका नगरी। यहाँ बहु जस् परिव्राजक जस् इस अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ और प्रातिपदिकसंज्ञा होकर विभक्ति का लुक् हुआ। उसके बाद स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् प्रत्यय हुआ तो **बहुपरिव्राजक+आ** बना। इस समय जकारोत्तरवर्ती अकार को इकार नहीं होता, क्योंकि जो **आप्**(टाप्) प्रत्यय

आनुगागम-ङीष्-विधायकं विधिसूत्रम्

१२६३. इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक् ४।१।४९॥

एषामानुगागमः स्याद् ङीष् च।

इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी। वरुणानी। भवानी। शर्वाणी। रुद्राणी। मृडानी।

वार्तिकम्- **हिमारण्ययोर्महत्त्वे।** महद्धिमं हिमानी। महदरण्यमरण्यानी।

वार्तिकम्- **यवाद् दोषे।** दुष्टो यवो यवानी।

वार्तिकम्- **यवनाल्लिप्याम्।** यवनानां लिपिर्यवनानी।

वार्तिकम्- **मातुलोपाध्याययोरानुग् वा।** मातुलानी, मातुली। उपाध्यायानी, उपाध्यायी।

वार्तिकम्- **आचार्यादणत्वं च।** आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी।

वार्तिकम्- **अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे।** अर्याणी, अर्या। क्षत्रियाणी, क्षत्रिया।

....

पर में वह सुप् विभक्ति से परे है। समास करके लोप किये गये जस् प्रत्यय को **प्रत्ययलक्षण** से उपस्थित माना जाता है।

सूयाद् देवतायां चाब्वाच्यः। यह वार्तिक है। **सूर्य इस प्रातिपदिक से पुंयोग में देवता स्त्रीत्व वाच्य होने पर चाप् प्रत्यय होता है।** यह **पुंयोगादाख्यायाम्** का अपवाद है। **चकार** और **पकार** की इत्संज्ञा होकर **टाप्** की तरह **आ** मात्र बचता है।

सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या। सूर्य की स्त्री देवता, छाया, सन्ध्या। **सूर्य** से **पुंयोगादख्यायाम्** से **ङीष्** प्राप्त था, उसे बाधकर के **सूर्याद् देवतायां चाब्वाच्यः** से **चाप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **सूर्य+आ** बना। सवर्णदीर्घ करके स्वादिकार्य करने पर **सूर्या** सिद्ध हुआ। सूर्य की दो स्त्रियाँ हैं। एक देवता स्त्री छाया और दूसरी मनुष्य स्त्री कन्या कुन्ती।

सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च। यह भी वार्तिक है। **छ या ङी के परे होने पर सूर्य या अगस्त्य शब्द के उपधा के यकार का लोप हो जाता है।**

यह वार्तिक **सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः** सूत्र में पढ़ा गया है।

देवतायां किम्? सूरी। यदि **सूर्याद् देवतायां चाब्वाच्यः** इस वार्तिक में **देवतायाम्** यह पद न पढ़ते तो **मनुष्य स्त्री** अर्थ में भी उससे **चाप्** होकर अनिष्ट रूप बन जाता। **देवतायाम्** इस पद के कारण उक्त वार्तिक मानुषी स्त्री के विषय में नहीं लगा। अतः **सूर्यस्य स्त्री मानुषी** में **सूर्य** शब्द से **पुंयोगादाख्यायाम्** से **ङीष्** होकर **सूर्य+ई** बना। भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **सूर्य्+ई** बना। ङी के ईकार के परे होने पर **सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च** से **यकार** का लोप होकर **सूर्+ई,** वर्णसम्मेलन होकर **सूरी** बना। स्वादिकार्य करके **सूरी** सिद्ध हुआ। इस **सूरी** शब्द का सूर्य की मनुष्य पत्नी **कुन्ती** अर्थ है।

१२६३- इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्। इन्द्रश्च वरुणश्च भवश्च शर्वश्च रुद्रश्च मृडश्च हिमञ्च अरण्यञ्च यवश्च यवनश्च मातुलश्च आचार्यश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्यास्तेषाम्। इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणां षष्ठ्यन्तं,

आनुक् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **अन्यतो ङीष्** से **ङीष्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च** और **स्त्रियाम्** आदि का अधिकार है ही।

इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल और आचार्य इन बारह शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा ङीष् प्रत्यय एवं इनको ही आनुक् का आगम भी होता है।

इन्द्राणी। इन्द्रस्य स्त्री, इन्द्र की पत्नी। **इन्द्र** शब्द से **इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्** से आनुक् आगम और ङीप् प्रत्यय हुआ। आगम और प्रत्यय में अनुबन्धलोप होकर **इन्द्र+आन्+ई** बना। **इन्द्र+आन्** में सवर्णदीर्घ करके **इन्द्रान्+ई=इन्द्रानी**, णत्व करके **इन्द्राणी**, सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **नदी** की तरह **इन्द्राणी** सिद्ध हुआ।

वरुणानी। वरुण की स्त्री, वरुण की पत्नी। **वरुण** शब्द से **इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्** से आनुक् का आगम और ङीप् प्रत्यय हुआ। आगम और प्रत्यय में अनुबन्धलोप होकर **वरुण+आन्+ई** बना। **वरुण+आन्** में सवर्णदीर्घ करके **वरुणान्+ई=वरुणानी**, सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **इन्द्राणी** की तरह **वरुणानी** सिद्ध हुआ। इसके रूप भी नदी शब्द की तरह चलते हैं। इसी तरह **शर्वस्य स्त्री शर्वाणी, रुद्रस्य स्त्री रुद्राणी** और **मृडस्य स्त्री मृडानी** भी बना सकते हैं।

हिमारण्ययोर्महत्त्वे। यह वार्तिक है। **हिम और अरण्य इन दो प्रातिपदिकों से महत्त्व अर्थात् बड़ा होना अर्थ में ही ङीष् प्रत्यय और आनुक् आगम होता है।**

महद्धिमं हिमानी। बड़ी बरफ। **हिम** शब्द से **हिमारण्ययोर्महत्त्वे** के अनुसार **महत्त्व** अर्थ में **इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन- मातुलाचार्याणामानुक्** से आनुक् आगम और ङीष् प्रत्यय हुआ। आगम और प्रत्यय में अनुबन्धलोप होकर **हिम+आन्+ई** बना। **हिम+आन्** में सवर्णदीर्घ करके **हिमान्+ई=हिमानी** बना। इससे सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **नदी** की तरह **हिमानी** सिद्ध हुआ।

महद् अरण्यम् अरण्यानी। बड़ा जंगल। **अरण्य** शब्द से **हिमारण्ययोर्महत्त्वे** के अनुसार **महत्त्व** अर्थ में **इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्** से आनुक् आगम और ङीष् प्रत्यय हुआ। आगम और प्रत्यय में अनुबन्धलोप होकर **अरण्य+आन्+ई** बना। **अरण्य+आन्** में सवर्णदीर्घ करके **अरण्यान्+ई=अरण्यानी** बना। इससे सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **नदी** की तरह **अरण्यानी** सिद्ध हुआ।

यवाद् दोषे। यह वार्तिक है। **दोष अर्थ द्योत्य होने पर यव इस प्रातिपदिक से ङीष् और प्रकृति को आनुक् आगम होता है।**

दुष्टो यवो यवानी। दूषित जौ अथवा अजवाइन। **यव** शब्द से **यवाद् दोषे** के अनुसार **दूषित** अर्थ में **इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्** से आनुक् आगम और ङीष् प्रत्यय हुआ। आगम और प्रत्यय में अनुबन्धलोप होकर **यव+आन्+ई** बना। **यव+आन्** में सवर्णदीर्घ करके **यवान्+ई=यवानी** बना। इससे सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **नदी** की तरह **यवानी** सिद्ध हुआ।

यवनाल्लिप्याम्। यह वार्तिक है। **यवन इस प्रातिपदिक से लिपिविशेष अर्थ होने पर ही ङीष् तथा प्रकृति को आनुक् आगम होता है।**

यवनानां लिपिर्यवनानी। यवनों की लिपि, ऊर्दू, फारसी आदि। **यवन** शब्द से **यवनाल्लिप्याम्** के अनुसार लिपि अर्थ में **इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्** से आनुक् आगम और ङीष् प्रत्यय हुआ। आगम और प्रत्यय में अनुबन्धलोप होकर **यवन+आन्+ई** बना। **यवन+आन्** में सवर्णदीर्घ करके **यवनान्+ई=यवनानी** बना। इससे सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **नदी** की तरह **यवनानी** सिद्ध हुआ।

मातुलोपाध्याययोरानुग् वा। यह वार्तिक है। **मातुल और उपाध्याय शब्दों से स्त्रीत्वविवक्षा में पुंयोग में आनुक् आगम विकल्प से होता है। मातुल** शब्द से **ङीष् तो इन्द्रवरुण०** इस सूत्र से ही होता है।

मातुलानी, मातुली। मामा की पत्नी, मामी। **मातुलस्य पत्नी। मातुल** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्** से आनुक् का आगम और ङीष् नित्य से प्राप्त थे किन्तु **मातुलोपाध्ययोरानुग् वा** के द्वारा **आनुक्** आगम को विकल्प से कर दिया गया। आगम और प्रत्यय में अनुबन्धलोप होकर **मातुल+आन्+ई** बना। **मातुल+आन्** में सवर्णदीर्घ करके **मातुलान्+ई=मातुलानी** बना। इससे सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **नदी** की तरह **मातुलानी** सिद्ध हुआ। **आनुक्** के न होने के पक्ष में **ङीष्** तो है ही। **मातुली** बन जाता है।

उपाध्यायानी, उपाध्यायी। उपाध्याय की पत्नी। **उपाध्यायस्य पत्नी। उपाध्याय** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्** से आनुक् आगम और ङीष् दोनों नहीं प्राप्त थे। अत: **मातुलोपाध्ययोरानुग् वा** के द्वारा **आनुक्** आगम को विकल्प से कर दिया गया। आगम और प्रत्यय में अनुबन्धलोप होकर **उपाध्याय+आन्+ई** बना। **उपाध्याय+आन्** में सवर्णदीर्घ करके **उपाध्यायानी** बना। इससे सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **नदी** की तरह **उपाध्यायानी** सिद्ध हुआ। **आनुक्** के न होने के पक्ष में **ङीष्** तो है ही। **उपाध्यायी** बन जाता है।

आचार्यादणत्वं च। यह वार्तिक है। **आचार्य इस प्रातिपदिक से परे आनुक् के नकार को णत्व नहीं होता है।**

आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी। आचार्य की पत्नी। **आचार्य** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन- मातुलाचार्याणामानुक्** से **आनुक्** आगम और **ङीष्** होकर **आचार्य+आन्+ई** बना। सवर्णदीर्घ करके **आचार्यानी** बना। रेफ से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व प्राप्त था, उसका **आचार्यादणत्वं च** इस वार्तिक से निषेध हुआ। अब **आचार्यानी** से सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **नदी** की तरह **आचार्यानी** सिद्ध हुआ।

अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे। यह भी वार्तिक है। **अर्य और क्षत्रिय इन दो प्रातिपदिकों से स्वार्थ में अर्थात् पुंयोग में नहीं, ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम विकल्प से होते हैं।**

ङीष्-विधायकं विधिसूत्रम्

१२६४. क्रीतात् करणपूर्वात् ४।१।५०॥

क्रीतान्ताददन्तात् करणादेः स्त्रियां ङीष् स्यात्।

वस्त्रक्रीती। क्वचिन्न- धनक्रीता।

ङीष्-विधायकं विधिसूत्रम्

१२६५. स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ४।१।५४॥

असंयोगोपधमुपसर्जनं यत्स्वाङ्गं तदन्ताददन्तात् ङीष् वा स्यात्।

केशानतिक्रान्ता अतिकेशी, अतिकेशा। चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा। असंयोगोपधात् किम्? सुगुल्फा। उपसर्जनात् किम्? शिखा।

....

अर्याणी, अर्या। अर्य अर्थात् वैश्य जाति की स्त्री। **अर्य** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे** इस वार्तिक की सहायता से **इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन- मातुलाचार्याणामानुक्** से **आनुक्** आगम और **ङीष्** होकर **अर्य+आन्+ई** बना। सवर्णदीर्घ करके **अर्यानी** बना। रेफ से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व होकर **अर्याणी** बना। अब **अर्याणी** से सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **नदी** की तरह **अर्याणी** सिद्ध हुआ। वार्तिक के कारण प्रत्यय और आगम दोनों वैकल्पिक थे, न होने के पक्ष में **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् होकर **अर्या** बन जाता है।

क्षत्रियाणी, क्षत्रिया। क्षत्रिय जाति की स्त्री। **क्षत्रिय** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे** इस वार्तिक की सहायता से **इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्** से **आनुक्** आगम और **ङीष्** होकर **क्षत्रिय+आन्+ई** बना। सवर्णदीर्घ करके **क्षत्रियानी** बना। रेफ से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व होकर **क्षत्रियाणी** बना। अब **क्षत्रियाणी** से सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **नदी** की तरह **क्षत्रियाणी** सिद्ध हुआ। वार्तिक के कारण प्रत्यय और आगम दोनों वैकल्पिक थे, न होने के पक्ष में **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् होकर **क्षत्रिया** बन जाता है।

१२६४- **क्रीतात् करणपूर्वात्।** करणं पूर्वं यस्य तत् करणपूर्वम्, तस्मात्। क्रीतात् पञ्चम्यन्तं, करणपूर्वात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अन्यतो ङीष्** से **ङीष्** की अनुवृत्ति आती है। **अतः**, **प्रातिपदिकात्**, **स्त्रियाम्**, **प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

क्रीत शब्द जिसके अन्त में हो तथा करणवाचक जिसका पूर्वावयव हो ऐसे अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है।

वस्त्रक्रीती। वस्त्रों के द्वारा खरीदी गई स्त्रीलिंग की वस्तु भूमि, स्त्री आदि। **वस्त्रैः क्रीता** इस विग्रह में **कर्तृकरणे कृता बहुलम्** से समास हुआ है। अतः करणपूर्व है साथ **क्रीत** अन्त में तो है ही। **वस्त्रक्रीत** से स्त्रीत्व की विवक्षा में **क्रीतात् करणपूर्वात्** से **ङीष्** होकर अनुबन्धलोप, भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके स्वादिकार्य करने पर **वस्त्रक्रीती** सिद्ध हो जाता है।

उक्त सूत्र कहीं कहीं नहीं भी लगता है। अतः **धनक्रीता** में **ङीष्** न होकर **टाप्** हुआ- **धनक्रीता** बना।

१२६५- **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्।** स्वम् अङ्गं स्वाङ्गं, तस्मात्। संयोगः उपधा यस्य स संयोगोपधः, न संयोगोपधः असंयोगोपधस्तस्मात्। स्वाङ्गात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदम्, उपसर्जनात् पञ्चम्यन्तम्, असंयोगोपधात् पञ्चम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **अन्यतो ङीष्** से ङीष् की अनुवृत्ति आती है और **अतः, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, स्त्रियाम्** का अधिकार है।

उपधा में संयोग न हो ऐसे उपसर्जनसंज्ञक स्वाङ्गवाची शब्द अन्त में हो ऐसे अदन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है।

स्वाङ्ग-शब्द का यहाँ पर **अपना अंग** ऐसा अर्थ नहीं है अपितु पारिभाषिक अर्थ है। महाभाष्यकार ने इसके तीन लक्षण बताये हैं-

अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम्।
अतस्थं तत्र दृष्टं च, तेन चेत्तत्तथायुतम्।

१- पहला स्वाङ्ग- **अद्रव** अर्थात् जो तरल न हो, **मूर्तिमत्**- अर्थात् साकार हो, **प्राणिस्थ**- प्राणियों में स्थित हो और **अविकारज**- जो विकार से उत्पन्न न हो। वह एक प्रकार का **स्वाङ्ग** होता है। इस लक्षण के अनुसार जब प्राणी के अङ्ग प्राणी में ही हों, तब वह **स्वाङ्ग** कहलाता है।

२- **अतस्थम्**- अभी उस प्राणी में नहीं रहता हो, पर **तत्र दृष्टम्**- कभी उस प्राणी में दिखाई दिया हो तो वह भी **स्वाङ्ग** कहलाता है। जैसे- प्राणी के अङ्ग केश आदि यदि गली में पड़े हों तो प्राणी में न रहते हुए भी अर्थात् गली में रहते हुए भी कभी पहले प्राणी में स्थित थे तो उस समय वहाँ उसमें दिखाई देने के कारण इस दूसरे लक्षण का विषय बन सकता है।

३- **तेन चेत्तत्तथायुतम्**- जैसे वह स्वाङ्ग प्राणी में होता है, वैसे ही अन्यत्र भी हो तो भी वह **स्वाङ्ग** कहलाता है। इस लक्षण के अनुसार मूर्तियों में वर्तमान अङ्ग भी प्राणी में स्थित अङ्ग के समान होने से तीसरा **स्वाङ्ग** सिद्ध होता है।

केशानतिक्राता अतिकेशी, अतिकेशा। केशों को लांघने वाली लम्बी माला आदि। **अतिकेश** शब्द में उपधा में संयोग नहीं है, केश प्रथम लक्षण के अनुसार स्वाङ्गवाची है और वह अन्त में भी है ऐसे **अतिकेश** शब्द से **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** इस सूत्र के द्वारा **ङीष्** होकर स्वादिकार्य करने पर **अतिकेशी** बनता है। **ङीष्** न होने के पक्ष में टाप् होकर **अतिकेशा** बन जाता है।

चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा। चन्द्र के समान मुख वाली। **चन्द्रमुख** शब्द में उपधा में संयोग नहीं है, **मुख** भी प्रथम लक्षण के अनुसार स्वाङ्गवाची है और वह अन्त में भी है ऐसे **चन्द्रमुख** शब्द से **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** इस सूत्र के द्वारा **ङीष्** होकर स्वादिकार्य करने पर **चन्द्रमुखी** बनता है। **ङीष्** न होने के पक्ष में टाप् होकर **चन्द्रमुखा** बन जाता है।

असंयोगोपधात् किम्, सुगुल्फा। यदि **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** में **असंयोगोपधात्** न पढ़ते तो **स्वाङ्गवाची** संयोगोपध **सुगुल्फ** आदि शब्दों से भी एक पक्ष में **ङीष्** होकर **सुगुल्फी** ऐसा अनिष्ट शब्द सिद्ध होने लगता। यहाँ पर **टाप्** हुआ है।

ङीष्-निषेधकं विधिसूत्रम्

१२६६. न क्रोडादिबह्वचः ४।१।५६॥

क्रोडादेर्बह्वचश्च स्वाङ्गान्न ङीष्। कल्याणक्रोडा। आकृतिगणोऽयम्। सुजघना।

ङीष्-निषेधकं विधिसूत्रम्

१२६७. नखमुखात् सञ्ज्ञायाम् ४।१।५८॥

न ङीष्।

णत्व-विधायकं विधिसूत्रम्

१२६८. पूर्वपदात् सञ्ज्ञायामगः ८।४।३॥

पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य नस्य णः स्यात् सञ्ज्ञायां न तु गकारव्यवधाने। शूर्पणखा। गौरमुखा। सञ्ज्ञायां किम्? ताम्रमुखी कन्या।

....

उपसर्जनात् किम्? शिखा। यदि **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** इस सूत्र में **उपसर्जनात्** इतना पद न रखते तो स्वाङ्गवाची अनुपसर्जन **शिखा** आदि शब्दों से भी एक पक्ष में **ङीष्** होकर **शिखी** ऐसा अनिष्ट शब्द सिद्ध होने लगता।

१२६६- **न क्रोडादिबह्वचः।** क्रोडा आदिर्येषां ते क्रोडादयः। बहवोऽच् यस्य स बह्वच्। क्रोडादयश्च बह्वच् च तेषां समाहारद्वन्द्वः क्रोडादिबह्वच्, तस्मात्। न अव्ययपदं, क्रोडादिबह्वचः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अन्यतो ङीष्** से **ङीष्** और **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** से **स्वाङ्गात्, उपसर्जनात्** की अनुवृत्ति आती है। **स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है।

क्रोडादिगण में पठित स्वाङ्गवाचकों तथा बह्वच् स्वाङ्गवाचक प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय नहीं होता।

यह **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** का निषेध करता है।

क्रोडादि आकृतिगण है, बहुत शब्द इसके अन्तर्गत आते हैं।

कल्याणक्रोडा। अच्छी छाती वाली, घोड़ी आदि। **कल्याणक्रोड** शब्द में **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** इस सूत्र के द्वारा **ङीष्** प्राप्त था, उसका **न क्रोडादिबह्वचः** से निषेध हुआ। फलतः **टाप्** होकर स्वादिकार्य करने पर **कल्याणक्रोडा** बन जाता है।

सुजघना। अच्छी जघनों वाली स्त्री। **सुजघन** शब्द में **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** इस सूत्र के द्वारा **ङीष्** प्राप्त था, उसका **न क्रोडादिबह्वचः** से निषेध हुआ। फलतः **टाप्** होकर स्वादिकार्य करने पर **सुजघना** बन जाता है।

१२६७- **नखमुखात् संज्ञायाम्।** नखं च मुखं च तयोः समाहारद्वन्द्वो नखमुखम्, तस्मात्। नखमुखात् पञ्चम्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अन्यतो ङीष्** से **ङीष्** और **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** से **स्वाङ्गात्**, और **न क्रोडादिबह्वचः** से **न** की अनुवृत्ति आ रही है। **स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है।

स्वाङ्गवाची नख शब्द और मुख शब्द अन्त में हो ऐसे प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् नहीं होता।

ङीष्-विधायकं विधिसूत्रम्

१२६९. जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ४।१।६३॥

जातिवाचि यन्न च स्त्रियां नियतमयोपधं ततः स्त्रियां ङीष् स्यात्। तटी। वृषली। कठी। बह्वृची। जातेः किम्? मुण्डा। अस्त्रीविषयात् किम्? बलाका। अयोपधात् किम्? क्षत्रिया।

वार्तिकम्- **योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः।** हयी। गवयी। मुकयी। **हलस्तद्धितस्येति** यलोपः। **मनुषी।**

वार्तिकम्- **मस्त्यस्य ङ्याम्।** यलोपः। मत्सी।

....

यह भी **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** का निषेध करता है।

१२६८- **पूर्वपदात् संज्ञायाममगः।** अविद्यमानो गकारो यस्मिन् स अग्, तस्माद् अगः। पूर्वपदात् पञ्चम्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तम्, अगः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **रषाभ्यां नो णः समानपदे** यह पूरा सूत्र आता है।

पूर्वपदस्थ निमित्त से परे नकार को णकार आदेश होता है किन्तु गकार के व्यवधान होने पर नहीं।

णत्व के लिए पूर्व में **रेफ, षकार** और **ऋकार** का होना आवश्यक है। इन्हीं को निमित्त कहा गया। ये पूर्वपद में हों।

शूर्पणखा। इस नाम वाली रावण की बहन, जिसके नख शूपे की तरह होते हैं जिसके वह स्त्री। **शूर्प+नख** शब्द में **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** इस सूत्र के द्वारा **ङीष्** प्राप्त था, उसका **नखमुखात् संज्ञायाम्** से निषेध हुआ। फलतः **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होता है। यहाँ पर संज्ञा(नाम) होने के कारण **पूर्वपदात् संज्ञायामगः** णत्व होता है। स्वादिकार्य करने पर **शूर्पणखा** बन जाता है।

गौरमुखा। इस नाम वाली स्त्री। **गौरमुख** शब्द में **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** इस सूत्र के द्वारा **ङीष्** प्राप्त था, उसका **नखमुखात् संज्ञायाम्** से निषेध हुआ। फलतः **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर स्वादिकार्य करने पर **गौरमुखा** बन जाता है।

संज्ञायां किम्? यदि **नखमुखात् संज्ञायाम्** इस सूत्र में **संज्ञायाम्** यह पद न देते तो संज्ञा में भी निषेध होता और असंज्ञा में भी, जिससे **ताम्रमुखी** में ङीष् का निषेध होकर **ताम्रमुखा** ऐसा एक रूप मात्र बन जाता। यहाँ पर **संज्ञायाम्** के पठन के कारण इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई, **ङीष्** का निषेध नहीं हुआ। अतः **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** से विकल्प से ङीष् होकर तत्पक्ष में **ताम्रमुखी** और न होने के पक्ष में **टाप्** होकर **ताम्रमुखा** ये दो रूप बन जाते हैं।

१२६९- **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्।** स्त्रिया विषयः स्त्रीविषयः, न स्त्रीविषयोऽस्त्रीविषयस्तस्मात्। य उपधा यस्य स योपधः, न योपधोऽयोपधस्तस्मात्। जातेः पञ्चम्यन्तम्, अस्त्रीविषयात् पञ्चम्यन्तम्, अयोपधात् पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अन्यतो ङीष्** से **ङीष्** की अनुवृत्ति आती है और **स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, अतः** आदि का अधिकार है ही।

जो नित्यस्त्रीलिङ्ग न हो और यकार भी उपधा में न हो ऐसे जातिवाचक प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् होता है।

स्वाङ्ग की तरह **जाति** शब्द भी पारिभाषिक है। इसके चार लक्षण बताये गये हैं-

आकृतिग्रहणा जातिः, लिङ्गानां न च सर्वभाक्।
सकृदाख्यातनिग्राह्या गोत्रं च चरणैः सह॥

१- आकृतिग्रहणा जातिः। गृह्यतेऽनेन इति ग्रहणम्- व्यञ्जकम्। आकृतिर्ग्रहणं यस्या सा आकृतिग्रहणा। आकृति से पहचानी जाने वाली **जाति** होती है। तात्पर्य यह है कि आकृतिविशेष जिसका व्यंजक होता है, उसे **जाति** कहते हैं।

२- लिङ्गानां न च सर्वभाक्, सकृदाख्यातनिग्राह्या। या सर्वाणि लिङ्गानि न भजते, एकस्यां व्यक्तौ सकृद् आख्यातेन उपदेशेन व्यक्तन्तरे उपदेशं विनापि या सुग्रहा, सापि जातिरित्यर्थः। किसी व्यक्ति में जिसके एक बार कथन से अन्य अनेक व्यक्तियों में उसका बोध हो जाय, तो उसे भी **जाति** समझना चाहिए परन्तु ऐसा शब्द **त्रिलिङ्गी** अर्थात् **सर्वलिङ्गी** नहीं होना चाहिए।

३- गोत्रम्। गोत्र अर्थात् अपत्य-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक भी एक **जाति** है। तथा-

४- चरणैः सह। चरणवाची(वेदशाखा के अध्येता का वाचक) प्रातिपदिक भी एक **जाति** ही है।

उक्त चारों प्रकार की जातियों के उदाहरण क्रमशः ये हैं- **१-तटी, सूकरी, २- वृषली, ३- औपगवी** और **४- कठी, बह्वृची।**

तटी। नदी का किनारा। **तट** भी एक जाति है। अतः **तट**-शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से **ङीष्** होकर **तटी** बन जाता है।

वृषली। शूद्र जाति की स्त्री। यह भी जातिवाचक ही है। अतः **वृषल**-शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से **ङीष्** होकर **वृषली** बन जाता है।

कठी। तटी। कठ ऋषिद्वारा प्रोक्त वेदशाखा को पढ़ने वाली ब्राह्मण जाती की स्त्री **कठ**-शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से **ङीष्** होकर **कठी** बन जाता है।

बह्वृची। बहुत ऋचाओं का अध्ययन करने वाली स्त्री। **बह्वृच**-शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से **ङीष्** होकर **बह्वृची** बन जाता है।

जातेः किम्? मुण्डा। अब यहाँ पर शंका करते हैं कि **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** में **जातेः** यह पद क्यों दिया गया। उत्तर यह है कि यदि यह पद नहीं दिया जाता तो यह सूत्र जाति-अजाति दोनों से **ङीष्** करता जिससे **मुण्ड** इस अजातिवाचक शब्द से भी **ङीष्** होकर **मुण्डी** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। अतः **जातेः** कहा गया। इससे **मुण्ड** से **ङीष्** न हो सका, फलतः **टाप्** होकर **मुण्डा** बन गया।

अस्त्रीविषयात् किम्? बलाका। अब यहाँ पर शंका करते हैं कि **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** में **अस्त्रीविषयात्** यह पद क्यों दिया गया। उत्तर यह है कि यदि यह पद नहीं दिया जाता तो यह सूत्र नित्यस्त्रीलिङ्ग वाले शब्द से भी **ङीष्** करता जिससे **बलाका** इस नित्यस्त्रीलिङ्ग शब्द से भी **ङीष्** होकर **बलाकी** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

अत: **अस्त्रीविषयात्** कहा गया। इससे **बलाका** से **ङीष्** न हो सका, फलत: **टाप्** होकर **बलाका** बन गया।

अयोपधात् किम्? क्षत्रिया। अब यहाँ पर शंका करते हैं कि **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** में **अयोपधात्** यह पद क्यों दिया गया। उत्तर यह है कि यदि यह पद नहीं दिया जाता तो यह सूत्र योपध-अयोपध दोनों प्रकार के शब्दों से **ङीष्** करता जिससे **क्षत्रिया** इस **यकारोपध** शब्द से भी **ङीष्** होकर **क्षत्रियी** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। अत: **अयोपधात्** कहा गया। इससे **क्षत्रिय** से **ङीष्** न हो सका, फलत: **टाप्** होकर **क्षत्रिया** बन गया।

योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेध:। यह वार्तिक है। इससे सूत्र में विद्यमान कमी को दिखाया गया है। **योपध शब्द के प्रतिषेध में हय, गवय, मुकय, मनुष्य, मत्स्य इन शब्दों का निषेध कहना चाहिए।** तात्पर्य यह है कि सूत्रकार ने **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** इस सूत्र में **अयोपधात्** पद देकर समस्त यकारोपध शब्दों से **ङीष्** का निषेध कहा था किन्तु वार्तिककार का मत है कि अन्य योपध शब्दों से ङीष् का निषेध हो किन्तु **हय आदि** शब्दों में निषेध न हो, अर्थात् ङीष् होवे जिससे **हयी, गवयी, मुकयी** आदि बन सकें।

हयी(घोड़ी) **गवयी**(नीलगाय) **मुकयी**(खच्चरी) उक्त तीनों शब्द पुँल्लिङ्ग में क्रमश: **हय, गवय, मुकय** है। इनसे स्त्रीत्व विवक्षा में **योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्य-मत्स्यानामप्रतिषेध** की सहायता से **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से **ङीष्** होकर **हयी, गवयी, मुकयी** सिद्ध होते हैं। स्वादिकार्य तो होता ही है।

मनुषी। मनुष्य जाति की स्त्री। **मनुष्य** शब्द में योपध होने से **अयोपधात्** यह निषेध प्रवृत्त हो रहा था किन्तु **योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेध:** इस वार्तिक की सहायता से ङीष् होकर **मनुष्य+ई** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **हलस्तद्धितस्य** से यकार का लोप करने पर **मनुष्+ई=मनुषी** बना। स्वादिकार्य करके **मनुषी।**

मत्स्यस्य ङ्याम्। यह वार्तिक है जो लोपप्रकरण के **सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधाया:** इस सूत्र में पढ़ा गया है। **ङी के परे होने पर ही मत्स्यशब्द के उपधाभूत यकार का लोप हो।** इस वार्तिक को नियमार्थ माना जाता है क्योंकि **योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेध:** से **मत्स्य**-शब्द से **ङीष्** सिद्ध था फिर इस वार्तिक को क्यों पढ़ा? **सिद्धे सत्यारभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति।** नियम यह हुआ कि **यदि मत्स्य-शब्द में यकार का लोप हो तो केवल ङी के परे रहने पर हो, अन्य के परे होने पर नहीं।** इससे **मत्स्यस्य इदं मात्स्यम्** आदि में **हलस्तद्धितस्य** से यकार का लोप नहीं हुआ।

मत्सी। मादा मछली।। **मत्स्य** शब्द में योपध होने से **अयोपधात्** यह निषेध प्रवृत्त हो रहा था किन्तु **योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेध:** और **मत्स्यस्य ङ्याम्** इन दो वार्तिकों की सहायता से ङीष् होकर **मत्स्य+ई** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **हलस्तद्धितस्य** से यकार का लोप करने पर **मत्स्+ई=मत्सी** बना। स्वादिकार्य करके **मत्सी।**

ङीष्-विधायकं विधिसूत्रम्

१२७०. इतो मनुष्यजातेः ४।१।६५॥

ङीष्। दाक्षी।

ऊङ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२७१. ऊङुतः ४।१।६६॥

उदन्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियामूङ् स्यात्। कुरूः।
अयोपधात् किम्? अध्वर्युर्ब्राह्मणी।

....

१२७०- **इतो मनुष्यजातेः**। इतः पञ्चम्यन्तं, मनुष्यजातेः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अन्यतो ङीष्** से **ङीष्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

मनुष्यजातिवाचक ह्रस्व इकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है।

दाक्षी। दक्ष की सन्तान स्त्री, दक्ष की कन्या। **दक्षस्यापत्यं स्त्री। दक्ष** शब्द से तद्धित में **अत इञ्** से **इञ्** होकर के **दाक्षि** बना है। इससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **इतो मनुष्यजातेः** से **ङीष्** होकर अनुबन्धलोप, भसंज्ञक इकार का लोप करके **दाक्षी** बना है। स्वादिकार्य करना न भूलें, **दाक्षी**।

१२७१- **ऊङुतः**। ऊङ् प्रथमान्तम्, उतः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इतो मनुष्यजातेः** से **मनुष्यजातेः** तथा **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से **अयोपधात्** की अनुवृत्ति आती है। **स्त्रियाम्, प्रत्ययः, परश्च, प्रातिपदिकात्** का अधिकार है ही।

जिसकी उपधा में अकार न हो ऐसे मनुष्यवाची उदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय होता है।

ङकार इत्संज्ञक है, ऊ शेष रहता है।

प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्। यह परिभाषा है। **प्रातिपदिक के ग्रहण में लिङ्गविशिष्ट प्रातिपदिक का भी ग्रहण होता है। प्रातिपदिकत्वात् स्वाद्युत्पत्तिः**। अतः स्त्रीलिङ्ग से युक्त होने पर भी प्रातिपदिकत्व की क्षति नहीं होती है। फलतः सु आदि विभक्तियाँ आती है। यहाँ पर **कुरू** आदि प्रयोगों में ङ्यन्त न होने पर भी इसी परिभाषा के बल पर सु आदि प्रत्यय लाये जाते हैं।

कुरूः। कुरु की सन्तान स्त्री। **कुरोरपत्यं स्त्री** ऐसे विग्रह में **कुरु** से अपत्य अर्थ में **कुरुनादिभ्यो ण्यः** से **ण्यप्रत्यय**, उसका **स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च** से लुक् करके **कुरु** ही बना है। इससे स्त्रीत्व में उवर्णान्त होने के कारण **ऊङुतः** से **ऊङ्** प्रत्यय, ङकार का लोप, **कुरु+ऊ** बना। सर्वणदीर्घ होकर **कुरू** बना। सु, उसका रुत्वविसर्ग होकर **कुरूः** सिद्ध हुआ। ऊवर्णान्त स्त्रीलिङ्गी शब्द से सु का लोप नहीं होता है।

अयोपधात् किम्? अध्वर्युर्ब्राह्मणी। अब यहाँ पर शंका करते हैं कि **ऊङुतः** में **अयोपधात्** इस पद की अनुवृत्ति क्यों की जाती है? उत्तर यह है कि यदि यह पद नहीं दिया जाता तो यह सूत्र योपध-अयोपध दोनों प्रकार के शब्दों से **ऊङ्** करता जिससे **अध्वर्यु** इस

ऊङ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२७२. पङ्गोश्च ४।१।६८॥

पङ्गूः।

वार्तिकम्- **श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च।** श्वश्रूः।

ऊङ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२७३. ऊरूत्तरपदादौपम्ये ४।१।६९॥

उपमानवाची पूर्वपदमूरूत्तरपदं यत्प्रातिपदिकं तस्मादूङ् स्यात्। करभोरूः।

ऊङ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२७४. संहितशफलक्षणवामादेश्च ४।१।७०॥

अनौपम्यार्थं सूत्रम्। संहितोरूः। शफोरूः। लक्षणोरूः। वामोरूः।

....

यकारोपध शब्द से भी ऊङ् होकर **अध्वर्यूः** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। अतः **अयोपधात्** कहा गया। इससे **अध्वर्यु** से **ङीष्** न हो सका, फलतः पुँल्लिङ्ग की तरह ही रह गया। **अध्वर्युः ब्राह्मणी।**

१२७२- **पङ्गोश्च।** पङ्गोः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **ऊङुतः** से **ऊङ्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। **पङ्गु इस प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय होता है।**

पङ्गु शब्द गुणवाचक है, जातिवाचक नहीं। अतः **ऊङुतः** से प्राप्त नहीं था।

पङ्गूः। लंगड़ी स्त्री। **पङ्गु** इस इकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व विवक्षा में **पङ्गोश्च** से ऊङ् प्रत्यय, ङकार का लोप, **पङ्गु+ऊ** बना। सर्वणदीर्घ होकर **पङ्गू** बना। सु, उसका रुत्वविसर्ग होकर **पङ्गूः** सिद्ध हुआ।

श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च। यह वार्तिक है। **श्वशुर शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय के साथ उकार और अकार का लोप होता है।**

श्वश्रूः। ससुर की स्त्री, सास। **श्वशुरस्य स्त्री। श्वशुरशब्द** से **श्वशुरस्योकारलोपश्च** से **ऊङ् प्रत्यय** और **शु** के उकार और **र** को अकार के लोप होने पर **श्वश्+र्+ऊ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **श्वश्रू** बना। **प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्** इस परिभाषा के बल पर सु विभक्ति, उसको रुत्वविसर्ग करके **श्वश्रूः** सिद्ध हुआ।

१२७३- **ऊरूत्तरपदादौपम्ये।** ऊरुरुत्तरपदं यस्य स ऊरूत्तरपदं, तस्मात्। उपमीयतेऽनया इति उपमा, उपमा एव औपम्यम्, तस्मिन्। **ऊङुतः** से **ऊङ्** की अनुवृत्ति आ रही है और **स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

जिसका पूर्वपद उपमानवाची तथा उत्तरपद ऊरु हो तो उससे स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय होता है।

करभोरूः। करभ के समान अर्थात् मांसल जंघा वाली स्त्री। **करभौ इव ऊरू यस्याः** इस विग्रह में बहुव्रीहि समास होकर **करभोरु** बना है। इससे **ऊरूत्तरपदादौपम्ये** से

ङीन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२७५. शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ४।१।७३॥

शार्ङ्गरवादेरञो योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन् स्यात्। शार्ङ्गरवी। बैदी। ब्राह्मणी।

वार्तिकम्- **नृनरयोर्वृद्धिश्च।** नारी।

....

ऊङ् करके अनुबन्धलोप, सर्वणदीर्घ, स्वादिकार्य करके **करभोरूः** सिद्ध हो जाता है। स्मरण रहे कि **ऊङन्त** से **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्** से प्राप्त **हल्ङ्यादिलोप** नहीं होता। अतः स् को रुत्वविसर्ग हो गया है।

१२७४- संहितशफलक्षणवामादेश्च। संहितश्च शफश्च लक्षणश्च वामश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः संहितशफलक्षणवामास्ते आदयो यस्य स संहितशफलक्षणवामादिस्तस्मात्। संहितशफलक्षणवामादेः षष्ठ्यन्तं, चाव्ययं, द्विपदं सूत्रम्। **ऊरूत्तरपदादौपम्ये** से **ऊरूत्तरपदात्** और **ऊङुतः** से **ऊङ्** की अनुवृत्ति आती है। **स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है ही।

संहित, शफ, लक्षण, वाम ये आदि में हों और ऊरू उत्तरपद में हो ऐसे प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय होता है।

उपमान से भिन्न में प्राप्त नहीं था, इसलिए यह सूत्र है।

संहितोरूः। सटी हुई जंघों वाली स्त्री। यहाँ पर उपमा नहीं है। **संहितोरु** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **संहितशफलक्षणवामादेश्च** से **ऊङ्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ करके **संहितोरू** बना। उससे सु, रुत्वविसर्ग करके **संहितोरूः** सिद्ध हुआ।

शफोरूः। खुर हैं ऊरु जिसके अर्थात् जिसकी ऊरुएँ मिली हुई हों, ऐसी स्त्री। यहाँ पर भी उपमा नहीं है। **शफोरु** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **संहितशफलक्षणवामादेश्च** से **ऊङ्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ करके **शफोरू** बना। उससे सु, रुत्वविसर्ग करके **शफोरूः** सिद्ध हुआ।

लक्षणोरूः। सुलक्षण जंघों वाली स्त्री। यहाँ पर उपमा नहीं है। **लक्षणोरु** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **संहितशफलक्षणवामादेश्च** से **ऊङ्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ करके **लक्षणोरू** बना। उससे सु, रुत्वविसर्ग करके **लक्षणोरूः** सिद्ध हुआ।

वामोरूः। सुन्दर जंघों वाली स्त्री। यहाँ पर भी उपमा नहीं है। **वामोरु** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **संहितशफलक्षणवामादेश्च** से **ऊङ्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ करके **वामोरू** बना। उससे सु, रुत्वविसर्ग करके **वामोरूः** सिद्ध हुआ।

१२७५- शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्। शार्ङ्गरव आदियेषां ते शार्ङ्गरवादयः। शार्ङ्गरवादयश्च अञ् च तयोः समाहारद्वन्द्वः शार्ङ्गरवाद्यञ्, तस्मात्। शार्ङ्गरवाद्यञः पञ्चम्यन्तं, ङीन् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से **जातेः** की अनुवृत्ति आती है और **अतः, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है।

शार्ङ्गरव आदि गणपठित शब्दों तथा अञ् प्रत्यय अन्त में हो ऐसे जातिवाचक प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीन् प्रत्यय होता है।

ङीन् में भी **ङकार** और **नकार** इत्संज्ञक हैं, **ईकार** मात्र बचता है। **नित्** होने के कारण **ञ्नित्यादिर्नित्यम्** से आद्युदात्त होता है किन्तु ङीष्, ङीप् होने से अन्तोदात्त होता है।

तिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२७६. यूनस्तिः ४।१।७७॥

युवञ्छब्दात् स्त्रियां तिः प्रत्ययः स्यात्। युवतिः।

इति स्त्रीप्रत्ययाः॥६०॥

शास्त्रान्तरे प्रविष्टानां बालानां चोपकारिका।
कृता वरदराजेन लघुसिद्धान्तकौमुदी॥
इति वरदराजकृता लघुसिद्धान्तकौमुदी॥

....

शार्ङ्गरवी। शृङ्गरु की कन्या। **शृङ्गरोरपत्यं स्त्री** इस विग्रह में **तस्यापत्यम्** से **अण्** होकर, गुण, अवादेश करके **शार्ङ्गरव** बना है। उससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से ङीष् प्राप्त था उसे बाधकर के **शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्** से ङीन् होकर अनुबन्धलोप करके भसंज्ञक अकार का लोप करके **शार्ङ्गरवी** बना। स्वादिकार्य अर्थात् सु लाकर के उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **शार्ङ्गरवी** सिद्ध हो जाता है।

बैदी। बैद ऋषि की कन्या। **बिदस्यारपत्यं स्त्री** इस विग्रह में तद्धित में **तस्यापत्यम्** के अधिकार में **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** से **अञ्** होकर वृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **बैद** बना है। उससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से ङीष् प्राप्त था उसे बाधकर **शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्** से ङीन् होकर अनुबन्धलोप करके भसंज्ञक अकार का लोपकर **बैदी** बना। स्वादिकार्य अर्थात् सु लाकर के उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **बैदी** सिद्ध हो जाता है।

ब्राह्मणी। ब्राह्मण की पत्नी, कन्या। **ब्राह्मण** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से ङीष् प्राप्त था उसे बाधकर **शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्** से ङीन् होकर अनुबन्धलोप करके भसंज्ञक अकार का लोप करके **ब्राह्मणी** बना। स्वादिकार्य अर्थात् सु लाकर उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **ब्राह्मणी** सिद्ध हो जाता है।

नृनरयोर्वृद्धिश्च। यह वार्तिक है। **नृ और नर इन दो जातिवाचक शब्दों से भी स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीन् होता है साथ ही प्रकृति में वृद्धि भी होती है।**

नारी। मादा, स्त्री जाति। **नृ** और **नर** इन दोनों शब्दों से **नृनरयोर्वृद्धिश्च** से **ङीन्** प्रत्यय और **नृ** के **ऋकार** और **नर** के आदि **अकार** की वृद्धि हुई। **नार्+ई** और **नार+ई** बना। द्वितीय **नार** में भसंज्ञक अकार का लोप करके **नारी** वर्णसम्मेलन करने पर दोनों में **नारी** बना। इससे सु, उसका लोप करके **नारी** सिद्ध हुआ।

१२७६- यूनस्तिः। यूनः पञ्चम्यन्तं, तिः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **स्त्रियाम्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

युवन् शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में ति प्रत्यय होता है।

युवतिः। युवन्-शब्द से **यूनस्तिः** से **ति** प्रत्यय हुआ। **युवन्+ति** बना। **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से **ति** के परे रहते **युवन्** की पदसंज्ञा करके **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप करके **युवति** बनता है। इससे सु, रुत्वविसर्ग करके **युवतिः** सिद्ध हुआ।

अब मूलकार ग्रन्थ के अन्त में भी उपसंहारात्मक मंगलाचरण कर रहे हैं- **शास्त्रान्तरे** इत्यादि से-

अन्य काव्य आदि शास्त्रों में प्रवेश हो चुके छात्रों के लिए अत्यन्त सहायिका इस लघुसिद्धान्तकौमुदी की रचना मुझ वरदराजाचार्य के द्वारा की गई है।

इस प्रकार से **लघुसिद्धान्तकौमुदी** अब यहीं पर पूर्ण होती है। इसकी **श्रीधरमुखोल्लासिनी टीका** ईसवीय दिनांक 18 अक्टूबर 2004 को प्रारम्भ हुई थी और आज दिनांक 12 मार्च 2006 को पूर्ण हुई।

अब आपकी बहुत बड़ी तपस्या पूरी हुई। हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास भी है कि आपने व्याकरण की वर्णमाला अच्छी तरह से समझ ली होगी। अब आप व्याकरणशास्त्र में प्रवेश कर सकते हैं। निर्देशानुसार **पाणिनीयाष्टाध्यायी** की आवृत्ति भी आप कर रहे होंगे। हमने पाणिनीय व्याकरण की प्रक्रिया को अत्यन्त सरल बनाने का प्रयास किया है किन्तु पूर्ण करने में नहीं। आपमें पाणिनीय व्याकरण की पूर्णता तक जाने के लिए रुचि उत्पन्न हो, यही मेरा प्रयास रहा है।

मैंने अपने जीवन में अनेकों छात्रों को लघुसिद्धान्तकौमुदी से लेकर महाभाष्य, प्रौढमनोरमा, लघुशब्देन्दुशेखर आदि ग्रन्थ पढ़ाये किन्तु प्रारम्भिक अवस्था को जिसने नहीं सम्हाला, वह छात्र आगे जाकर के भी कुछ नहीं बना किन्तु जिस छात्र ने लघुसिद्धान्तकौमुदी ठीक से तैयार की, वह आगे भी प्रगति करता गया। आज की तारीख में मेरे द्वारा लघुसिद्धान्तकौमुदी से पढ़ाये गये अनेक छात्र विद्यालय एवं महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में प्रतिष्ठा के साथ पढ़ा रहे हैं।

आपने इतना परिश्रम कर लिया तो आपमें भी और आगे बढ़ने की इच्छा अवश्य जागृत हुई होगी। हाँ तो, अब आपको वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी ग्रन्थ पढ़ना है। अष्टाध्यायी तो आपके लिए प्रतिदिन अनुष्ठान के लिए अनिवार्य ग्रन्थ होना चाहिए। अष्टाध्यायी के सभी सूत्र याद होने पर वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी के ज्ञान में सरलता होगी। व्याकरणशास्त्र में ज्यादा न भी पढ़ सकें तो कम से कम वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, न्याय में न्यायसिद्धान्तमुक्तावली और कोश में अमरकोष इन तीन ग्रन्थों की तैयारी अवश्य होनी चाहिए। काव्य में हितोपदेश, रघुवंशम् और भट्टिकाव्य का भी व्याकरण, कोष की दृष्टि से अध्ययन होना चाहिए। इतना जानने के बाद आप किसी भी वेदान्त आदि शास्त्रों में प्रवेश कर सकते हैं।

संस्कृतसाहित्य का बहुत बड़ा भण्डार है। मनुष्य अपने जीवन में एक विषय के सभी ग्रन्थों का पूर्ण ज्ञान तो दूर केवल एक बार पारायण भी कर सके तो वह धन्य है।

आपका लघुसिद्धान्तकौमुदी में किया गया परिश्रम कितना सार्थक हुआ, इसका मूल्यांकन आप स्वयं भी कर सकते हैं अथवा अपने गुरु जी से अपना मूल्यांकन करा सकते हैं।

अब आप परीक्षा में पूछे गये निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दें। इस परीक्षा में स्त्रीप्रत्यय के ५० अंक और सम्पूर्ण **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में १०० अंक करके दो परीक्षाओं में बैठना है। उत्तीर्ण होने के लिए ७० प्रतिशत अंक प्राप्त करना आवश्यक है।

परीक्षा (स्त्रीप्रत्ययप्रकरण)

१-	स्त्रीप्रत्यय प्रकरण पर एक विस्तृत लेख लिखिए।	२०
२-	इस प्रकरण के सभी सूत्रों एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालते हुए किन्हीं पन्द्रह प्रयोगों की सिद्धि दिखाइये।	३०

परीक्षा (आद्योपान्त)

सूचना- एक से दस तक के प्रश्न पाँच-पाँच अंकों के हैं और अन्तिम प्रश्न पचास अंक का है। इस परीक्षा में कोई समय सीमा नहीं है फिर भी तीन दिनों में सभी प्रश्नों के उत्तर लिखे जा सकते हैं।

१.	**संज्ञाप्रकरण पर एक निबन्ध लिखिए।**	५
२.	**सन्धिप्रकरण पर एक विस्तृत लेख लिखिए।**	५
३.	**षड्लिङ्गप्रकरण पर एक विवेचन तैयार करें।**	५
४.	**तिङन्तप्रकरण की व्याख्या करें।**	५
५.	**कृदन्तप्रकरण पर अपना दृष्टिकोण बतायें।**	५
६.	**कारक पर एक छोटा लेख लिखें।**	५
७.	**समास की उपयोगिता पर एक टिप्पणी करें।**	५
८.	**तद्धितप्रकरण का सारांश समझायें।**	५
९.	**स्त्रीप्रत्ययप्रकरण की आवश्यकता पर एक लेख लिखें।**	५
१०.	**अव्यय के सभी सूत्रों को संक्षेप में समझाइये।**	५
११.	**अच्सन्धि से स्त्रीप्रत्यय तक के प्रत्येक प्रकरणों से किन्ही पाँच-पाँच प्रयोगों की प्रक्रिया समझाइये।**	५०

अब आपके गुरु जी आपकी उत्तरपुस्तिका का मूल्यांकन करेंगे। आप अपने सहपाठियों के साथ पढ़े गये विषयों पर चर्चा करें। आप परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं तो ठीक है, नहीं तो पुनः एक माह **लघुसिद्धान्तकौमुदी** की आवृत्ति करके पुनः परीक्षा दीजिए।

इसके बाद भी आप आवृत्ति बराबर करते रहें। कहीं ऐसा न हो कि आप कुछ प्रकरणों या स्थलों को भूल गये हों। इसीलिए बराबर आवृत्ति होती रहनी चाहिए। संज्ञाप्रकरण से स्त्रीप्रत्यय तक के सारे प्रकरणों के सूत्र, वृत्ति, अर्थ और साधनी की अक्षरशः आवृत्ति करें। अपने सहपाठियों से संवाद, शास्त्रार्थ आदि करें। जब आपको विश्वास हो जाय कि **लघुसिद्धान्तकौमुदी** आपको पूर्ण कण्ठस्थ हो गई है तो शुरु से लेकर अभी तक सभी प्रकरणों के अभ्यास और परीक्षा की प्रश्नावली को अपनी पुस्तिका में उतारें और पुस्तक को सुन्दर वस्त्र से ढककर इसकी पूजा करें। इसके बाद उन सभी प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में ही सही एक बार अपनी पुस्तिका में देने का प्रयास करें। यदि आपके सहपाठी गण हैं तो

पुस्तिकाओं का मूल्यांकन अपने ही सहपाठियों में परस्पर करें। यह मेरा अनुभूत विषय है और इसका परिणाम अच्छा मिला है।

स्मरण रहे कि जिस प्रकार से आप पुस्तक की पूजा करते हैं, उसी तरह आपके गुरु जी भी आपके लिए उतने ही पूज्य हैं। यदि गुरु की कृपा आपने प्राप्त नहीं की है तो आपकी विद्या उतनी फलवती नहीं होगी। अत: उनका सम्मान करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करें।

आप सभी विद्या-व्यसनी अध्येताओं को मेरी ओर से शुभकामनाएँ। अब आप चाहें तो व्याकरणशास्त्र के अन्य ग्रन्थों में प्रवेश करें या काव्यकोश आदि का स्वाध्याय करें जिससे व्याकरण से ज्ञात शब्दों का प्रयोग किया जा सके और शब्दभण्डार भी बढ़े। भगवान् श्रीमन्नारायण हम सबका मंगल करें।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
स्त्रीप्रत्यय-प्रकरण पूर्ण हुआ।

श्रीश्रीनिवासमुक्तिनाराणरामानुजयतिभ्यो नमः।

भीमप्रसादसत्पुत्रः गोविन्दो वैष्णवो गृही।
पाणिनीयप्रवेशाय ऋजुमार्गावलम्बिनाम्।१॥
लघुसिद्धान्तकौमुद्या व्याख्यां कृत्वा यथामति।
श्रीधराचार्यमोदाय समर्पयति सादरम्॥२॥

गोविन्दाचार्य की कृतियों में से वरदराजाचार्यकृत-लघुसिद्धान्तकौमुदी
की श्रीधरमुखोल्लासिनी व्याख्या पूर्ण हुई।

(दिनांक 12 मार्च 2006)

परिशिष्टम्

अथ संक्षिप्तो लिङ्गपरिचयः

तत्रादौ स्त्रीलिङ्गाधिकारः

आचार्य पाणिनि जी ने सूत्रपाठ के साथ-साथ धातुपाठ, गणपाठ, लिङ्गानुशासन आदि का भी पाठ किया था किन्तु **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में बहुत ही उपयोगी सूत्र, धातु, गण आदि लिये गये हैं किन्तु लिङ्गानुशासन का विवेचन नहीं किया गया है। छात्रों की जानकारी के लिए अत्यन्त उपयोगी कुछ शब्दों के विषय में लिङ्गनिर्देशन किया जा रहा है। पहले स्त्रीलिङ्ग के शब्दों के विषय में बताया जा रहा है।

निम्नलिखित शब्द स्त्रीलिङ्ग में ही होते हैं-

ऋकारान्त शब्दों में मातृ, दुहितृ, स्वसृ, यातृ, ननान्दृ ये पाँच ही शब्द स्त्रीलिङ्ग में हैं, क्योंकि अन्य ऋकारान्तों से ङीप् होकर ईकारान्त बनते हैं। जैसे **कर्त्री** आदि।

क्तिन्प्रत्ययान्त, तल्प्रत्ययान्त, आबन्त(टाप्, चाप्, डाप्-प्रत्ययान्त), ङ्यन्त(ङीप्, ङीन्, ङीषन्त) और ऊङन्त शब्द स्त्रीलिङ्ग में ही होते हैं। जैसे-कृतिः, भूतिः, ब्रह्मणता, देवता, रमा, कुमारी, कुण्डोघ्नी, कुरूः इत्यादि।

गो, मणि, यष्टि, मुष्टि, पाटलि, वस्ति, शाल्मलि, त्रुटि, मसि, मरीचि, मृत्यु, शीधु, कर्कन्धु, किष्कु, कण्डु, रेणु, अशनि, भरणि, अरणि, श्रोणि, योनि, ऊर्मि, तिथि, तिथि, इषु, इषुधि इत्यादि शब्द पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं।

सुमनस् शब्द देवार्थवाचक हो तो पुँल्लिङ्ग में और पुष्पार्थवाचक हो तो नपुंसक एवं स्त्रीलिङ्ग दोनों जगह प्रयुक्त होता है।

दुन्दुभिशब्द पाशा अर्थ में स्त्रीलिङ्ग और अन्यत्र पुँल्लिङ्ग में है।

भूमि, विद्युत्, सरित्, लता और वनिता के पर्यायवाची शब्दा भी स्त्रीलिङ्ग में ही होते हैं किन्तु यादस् शब्द नपुंसक में और दार शब्द पुँल्लिङ्ग के बहुवचन में ही होते हैं।

चमू, ग्लानि, लक्ष्मी, श्री, विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति, भास्, स्रुच्, स्रज्, दिश्, उष्णिह्, उपानह्, प्रावृष्, विप्रुष्, रुष्, तृष्, विश्, त्विष्, दर्वि, विदि, वेदि, खनि, शानि, अश्रि, वेशि, कृषि, ओषधि, कटि, अङ्गुलि, नाडी, रुचि, वीचि, नाली, धूलि, किकि, केलि, छवि, रात्रि, शष्कुलि, राजि, कुटी, वर्ति, भ्रुकुटि, त्रुटि, वलि, पङ्क्ति, प्रतिपद्, आपद्, विपद्, सम्पद्, शरद्, संसद्, परिषद्, उषस्, संविद्, क्षुध्, मुद्, समिध्, आशिष्, धुर्, पुर्, गिर्, द्वार्, अप्, त्वच्, वाच्, यवागू, नौ, स्फिच्, सीमन्, याच्ञा- ये शब्द स्त्रीलिङ्ग में ही रहते हैं।

इति स्त्रीलिङ्गाधिकारः।

अथ पुँल्लिङ्गाधिकारः।

घञ् अप्, घ, अच् प्रत्ययान्त शब्दाः पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे-पाकः, त्यागः। करः, गरः। विस्तरः, गोचरः। चयः, जयः इत्यादि।

नङ्-प्रत्ययान्त शब्दाः पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- यज्ञः, यत्नः, विश्नः, प्रश्नः, इत्यादि। याच्ञा शब्द तो स्त्रीलिङ्ग में ही रहता है।

कि-प्रत्ययान्त घुसंज्ञकशब्द पुँल्लिङ्ग में ही होते हैं। जैसे- आधिः, निधिः, उदधिः इत्यादि किन्तु इषुधि शब्द तो स्त्रीलिङ्ग में ही होता है।

देव, असुर, आत्मा, स्वर्ग, गिरि, समुद्र, नख, केश, दन्त, स्तन, भुज, कण्ठ, खड्ग, शर और पङ्क एवं इनके पर्यायवाची शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- देवाः सुराः। असुराः दैत्याः। आत्मा क्षेत्रज्ञः। स्वर्गः नाकः। गिरिः पर्वतः। समुद्रः अब्धिः। नखः कररुहः। केशः शिरोरुहः। दन्तः दशनः। स्तनः कुचः। भुजः बाहुः। कण्ठः गलः। ग्रीवा-शब्द तो स्त्रिलिङ्ग में ही रहता है। खड्गः करवालः। शरः मार्गणः। पङ्कः कर्दमः। इसके कुछ अपवाद भी हैं। जैसे कि त्रिविष्टप और त्रिभुवन शब्द नपुंसक में, द्यौः शब्द स्त्रीलिङ्ग में, इषु और बाहु शब्द स्त्रीलिङ्ग में और बाण और काण्ड शब्द नपुंसक में होते हैं।

मन्नन्त चर्मन् आदि शब्दों को छोड़कर नकारान्त प्रायः सभी पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- राजा, तक्षा, युवा इत्यादयः।

क्रतु, पुरुष,कपोल, गुल्फ, मेघ आदि शब्द और इनके पर्यायवाचक शब्द भी पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- क्रतुः अध्वरः। पुरुषः नरः। कपोलः गण्डः। गुल्फः प्रपदः। मेघः नीरदः। यहाँ पर अपवाद यह है कि मेघ का वाचक अभ्र शब्द नपुंसक में होता है।

उकारान्त शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- प्रभुः, इक्षु आदि। इसका अपवाद- हनु, करेणु,धेनु, रज्जु, कुहु, सरयु, तनु, रेणु, प्रियङ्गु आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग में होते हैं। इसी तरह दूसरा अपवाद यह है- श्मश्रु, जानु, वसु(धनवाची), स्वादु, अश्रु, जतु, त्रपु, तालु आदि शब्द नपुंसक में होते हैं। यहाँ पर देवतार्थक वसु तो पुँल्लिङ्ग में होता है। मद्गृ, मधु, शीधु, सीधु, सानु, कमण्डलु शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों में होते हैं।

रु अन्त वाले और तु अन्त वाले शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- मेरुः, गुरुः, सेतुः, केतुरित्यादयः। इसका अपवाद है- दारु, कसेरु, जतु, वस्तु, मस्तु आदि शब्द नपुंसक में होते है। सक्तु-शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों में रहता है।

ककार उपधा होते हुए ह्रस्व अकारान्तः पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- स्तबकः, कल्कः। इसका अपवाद- चिबुक, शालूक, प्रातिपदिक, अंशुक, उल्मुक नपुंसक में रहते हैं इसी तरह कण्टक, अनीक, सरक, मोदक, चषक, मस्तक, पुस्तक, तटाक, निष्क, शुष्क, वर्चस्क, पिनाक, भाण्डक, पिण्डक, कटक, शण्डक, पिटक, तालक, फलक और पुलक शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

टकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- घटः, पटः आदि। इसका अपवाद- किरीट, मुकुट, ललाट, वट, वीट, श्रृङ्गाटक, आराट और लोष्ट शब्द नपुंसक में होत हैं और कुट, कूट, कपट, कवाट, कर्पट, नट, निकट, कीट और कट शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

णकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- गुणः, गणः, पाषाणः आदि। इसका अपवाद- ऋण, लवण, पर्ण, तोरण, उष्ण आदि शब्द नपुंसक

में होते हैं। इसी तरह कार्षापण, स्वर्ण, सुवर्ण, व्रण, चरण, वृषण, विषाण, चूर्ण और तृण आदि शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होतै हैं।

थकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- रथ:, पथ:, ग्रन्थ:, श्रन्थ: आदि। इसका अपवाद- काष्ठ, पृष्ठ, सिक्थ, उक्था आदि शब्द नपुंसक में होते हैं। दिशावाचक काष्ठा-शब्द स्त्रीलिङ्ग में होता है। तीर्थ, यूथ, प्रोथ, गाथ आदि शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होता है तो गाथा-शब्द स्त्रीलिङ्ग में होता है।

नकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- इन:, फेन: आदि। इसका अपवाद- जघन, अजिन, तुहिन, कानन, वन, वृजिन, विपिन, वेतन, शासन, सोपान, मिथुन, श्मशान, रत्न, निम्न, चिन्ह आदि शबद नपुंसक में होते हैं। इसी तरह मान, यान, अभिधान, मलिन, पुलिन, उद्यान, शयन, आसन, स्थान, चन्दन, आलान, समान, भवन, वसन, सम्भावन, विभावन, विमान शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

पकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- यूप:, दीप:, सर्प: आदि। इसका अपवाद- पाप,रूप, उडुप, तल्प, शिल्प, पुष्प, शष्प, समीप, अन्तरीप आदि शब्द नपुंसक में होते हैं। शूर्प, कुतप, कुणप, द्वीप, विटप आदि शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

भकार उपधा वाले ह्रस्व अकारान्त पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- स्तम्भ:, कुम्भ आदि। इसका अपवाद- तलभ शब्द नपुंसक में और जृम्भ शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

मकार उपधा वाले ह्रस्व अकारान्त पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- सोम:, भीम: आदि। इसका अपवाद- रुक्म, सिध्म, युध्म, इध्म, गुल्म, अध्यात्म, कुङ्कुम शब्द नपुंसक में होते हैं। संग्राम, दाडिम, कुसुम, अश्रम, क्षेम, क्षौम, होम, उद्दाम शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

यकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- समय:, हय: आदि। इसका अपवाद- किसलय, हृदय, इन्द्रिय, उत्तरीय आदि शब्द नपुंसक में होते हैं। इसी तरह गोमय, कपाय, मलय, अन्वय, अव्यय शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

रकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- क्षुर:, अङ्कुर: आदि। इसका अपवाद- द्वार, अग्रस्फार, तक्र, वक्र, वप्र, क्षिप्र, क्षुद्र, नार, तीर, दूर, कृच्छ्र, रन्ध्र, आश्र, स्वभ्र, भीर, गभीर, क्रूर, विचित्र, केयूर, केदार, उदर, अजस्र, शरीर, कन्दर, मन्दार, पञ्जर, अजर, जठर, अजिर, वैर, चामर, पुष्कर, गह्वर, कुहर, कुटीर, कुलीर, चत्वर, काश्मीर, नीर, अम्बर, तन्त्र, यन्त्र, क्षत्र, क्षेत्र, मित्र, कलत्र, चित्र, मूत्र, सूत्र, वक्त्र, नेत्र, गोत्र, अङ्गुलित्र, वलत्र, शस्त्र, शास्त्र, वस्त्र, पत्र, पात्र, छत्र शब्द नपुंसक में होते हैं। शुक्र-शब्द का अर्थ देवता न हो तो नपुंसकलिङ्ग में होता है। चक्र, वज्र, अन्धकार, सार, अवार, पार, क्षीर, तोमर, श्रृङ्गार, भृङ्गार, मन्दार, उशीर, तिमिर, शिशिर शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

षकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- वृष:, वृक्ष: आदि। इसका अपवाद- शिरीष, ऋजीष, अम्बरीष, पीयूष, पुरीष, किल्बिष, कल्माष शब्द नपुंसक में होते हैं तो यूष, करीष, मिष, विष, वर्ष शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

सकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे-वत्सः, वायसः आदि। इसका अपवाद- पनस, बिस, बुस, साहस आदि शब्द नपुंसक में होते हैं और चमस, अंस, रस, निर्यास, उपवास, कार्पास, वास, मास, कास, कांस, मांस शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

रश्मि, दिवस और उनके पर्यायवाची शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। रश्मिः मयूखः दिवसः घस्रः आदि। इसका अपवाद- दीधिति शब्द स्त्रीलिङ्ग में और दिन एवं अहन् शब्द नपुंसक में होते हैं।

परिमाण के वाचक शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- कुडवः, प्रस्थः आदि। इसका अपवाद- द्रोण, आढक ये शब्द नपुंसक और पुँल्लिङ्ग दोनों में रहते हैं। खारी, मानिका स्त्रीलिङ्ग में हैं।

दार, अक्षत, लाज, असु ये शब्द हमेश बहुवचनान्त और पुँल्लिङ्ग में होते हैं।

मरुत्, गरुत्, तरत्, ऋत्विक्, ऋषि, राशि, दृति, ग्रन्थि, कृमि, ध्वनि, वलि, कौलि, मौलि, रवि, कवि, कपि, मुनि, ध्वज, गज, मुञ्ज, पुञ्ज, हस्त, कुन्त, अन्त, व्रात, वात, दूत, धूर्त, सूत, चूत, मुहूर्त, षण्ड, भण्ड, करण्ड, भरण्ड, वरण्ड, तुण्ड, गण्ड, मुण्ड, पाषण्ड, शिखण्ड, वंश, अंश, पुरोडाश, ह्रद, कन्द, कुन्द, बुद्बुद, शब्द, अर्घ, पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन्, स्तम्ब, नितम्ब, पूग, पल्लव, पल्वल, कफ, रेफ, कटाह, निर्व्यूह, मठ, मणि, तरङ्ग, तुरङ्ग, गन्ध, स्कन्ध, मृदङ्ग, सङ्ग, समुद्र, पुङ्ख, सारथि, अतिथि, कुक्षि, बस्ति, पाणि, अञ्जलि- ये शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। इनमें से कतिपय शब्द नपुंसक में भी होते हैं।

इति पुँल्लिङ्गाधिकारः।

अथ नपुंसकलिङ्गाधिकारः।

भावार्थक ल्युट् प्रत्ययान्त, भावार्थक निष्ठाप्रत्ययान्त, तद्धित-ष्यञ्-प्रत्ययान्त भावकर्मनिमित्तक यत्-य-ढक्-यक्-अञ्-अण्-वुञ्-छप्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे कि- हसनम्, शयितम्, शुक्लत्वम्, शौक्ल्यम्, स्तेयम्, सख्यम्, कापेयम्, आधिपत्यम्, औष्ट्रम्, द्वैहायनम्, पितापुत्रकम्, अच्छावाकीयम्।

अव्ययीभाव समास होने के बाद शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे- अधिस्त्रि, उपकुम्भम् आदि। एकवद्भाव वाले द्वन्द्व समास के शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे- पाणिपादम् आदि।

राजा के पर्यायवाची शब्द पूर्व में हो किन्तु मनुष्यशब्द पूर्व में न हो तो ऐसे शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे इनसभम्, ईश्वरसभम्, इन्द्रसभम् इत्यादि।

सुरा-सेना-छाया-शाला-निशा ये अन्त में हों ऐसे तत्पुरुष समास वाले शब्द स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक में होते हैं। द्विगुसमास वाला शब्द भी स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक में होते हैं। जैसे- पञ्चमूली, त्रिभुवनम् आदि।

इसन्त और उसन्त शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे- हविः, धनुः आदि। इसका अपवाद- अर्चिस् स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक दोनों में है और छदिस् स्त्रीलिङ्ग में ही है।

मुख, नयन, लोह, वन, मांस, रुधिर, कार्मुक, विवर, जल, हल, धन, अन्न और उनके पर्यायवाची शब्द भी नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे- मुखम् आननम्। नयनं लोचनम्। लोहं कालम्। वनं गहनम्। मांसम् आमिषम्। रुधिरं रक्तम्। कार्मुकं शरासनम्। विवरं विलम्। जलं वारि। हलं लाङ्गलम्। धनं द्रविणम्। अन्नम् अशनम्। इसका अपवाद- सीरः, अर्थः,

ओदनः- ये शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। वक्त्र, नेत्र, अरण्य, गाण्डीव शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं एवं अटवी शब्द स्त्रीलिङ्ग में होता है।

लकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे- कुलं, कूलं, स्थलम् आदि। इसका अपवाद- तूल, उपल, ताल, कुसूल, तरल, कम्बल, देवल, वृषल शब्द पुँल्लिङ्ग में ही होते हैं और शील, मूल, मङ्गल, शाल, कमल, तल, मुसल, कुण्डल, पलल, मृणाल, बाल, निगल, पलाल, विडाल, खिल, शूल शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

शत आदि संख्यावाचक शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। शतं सहस्रम् इत्यादि। इसका अपवाद- अनन्तवाची शत शब्द और युत, प्रयुत शब्द शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं। कोशप्रमाण से लक्ष-शब्द नपुंसक में भी होता है एवं कोटि-शब्द स्त्रीलिङ्ग में।

मन्प्रत्यान्त दो अच् वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे- चर्म, वर्म आदि। इसका अपवाद- ब्रह्मन् शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में है।

अस्-अन्त होते हुए दो अच् वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे- यशः, मनः, तपः आदि। इसका अपवाद- अप्सरस् स्त्रीलिङ्ग और प्रायेण बहुवचनान्त होता है।

त्र-अन्त में रहने वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे- पत्रं, छत्रम् इत्यादि। इसका अपवाद- यात्रा, मात्रा, भस्त्रा, दंष्ट्रा, वरत्रा शब्द स्त्रीलिङ्ग में ही होते हैं और भृत्र, अमित्र, छात्र, पुत्र, मन्त्र, वृत्र, मेढ्र, उष्ट्र शब्द पुँल्लिङ्ग में ही होते हैं तो पत्र, पात्र, पवित्र, सूत्र, छत्र ये शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों में होते हैं।

बल, कुसुम, शुल्व, पत्तन, रण और उनके पर्यायवाचक शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे- बलं वीर्यम्। कुसुमं पुष्पम्। शुल्वं ताम्रम्। पत्तनं नगरम्। रणं युद्धम्। इसका अपवाद- पद्म, कमल, उत्पल ये शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं। आहव और संग्राम शब्द पुँल्लिङ्ग में है और आजिः स्त्रीलिङ्ग में।

फलवाची शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं- आमलकम्, आम्रम् आदि।

वियत्, जगत्, शकृत्, पृषत्, उदश्वित्, नवनीत, अवतान, अनृत, अमृत, निमित्त, वित्त, चित्त, पित्त, व्रत, रजत, वुत्त, पलित, श्राद्ध, कुलिश, दैव, पीठ, कुण्ड, अङ्ग, अङ्क, दधि, सक्थि, अक्षि, आस्य, आस्पद, कण्व, बीज, धान्य, आज्य, शस्य, रूप्य, पण्य, वण्य, धृष्य, हव्य, कव्य, काव्य, सत्य, अपत्य, मूल्य, शिक्य, कुड्य, मद्य, हर्म्य, तुर्य, सैन्य, द्वन्द्व, बर्ह, दुःख, बडिश, पिच्छ, विम्ब, कुटुम्ब, कवच, वर, शर, वृन्दारक, अक्ष(इन्द्रियवाची) ये शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं।

घृत, भूत, मुस्त, क्ष्वेलित, ऐरावत, पुस्तक, बुस्त, लोहित, श्रृङ्ग, अर्घ, निदाघ, उद्यम, शल्य, दृढ, व्रज, कुञ्ज, कुथ, कूर्च, प्रस्थ, दर्प, अर्भ, अर्धर्च, दर्भ, पुच्छ, कबन्ध, औषध, आयुध, दण्ड, मण्ड, खण्ड, शव, सैन्धव, पार्श्व, आकाश, कुश, काश, अङ्कुश, कुलिश, गृह, मेह, देह, पट्ट, पटह, अष्टापद, अम्बुद, ककुद ये शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों में होते हैं।

इति नपुंसकलिङ्गाधिकारः।

अथ लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थो गणपाठः

अच्सन्धिप्रकरणे

शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्। (६।१।९४) शकन्धुः कर्कन्धुः कुलटा। सीमन्तः केशवेशे। हलीषा मनीषा लाङ्गलीषा पतञ्जलिः। सारङ्गः पशुपक्षिणोः।। **आकृतिगणोऽयम्।** मार्तण्डः। **इति शकन्ध्वादिः।।**

अजन्तपुँल्लिङ्गप्रकरणे

सर्वादीनि सर्वनामानि। (१।१।२७) सर्व विश्व उभ उभय डतर डतम अन्य अन्यतर इतर त्वत् त्व नेम सम सिम। पूर्वपरावर-दक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्। स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्। अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः। त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवतु किम्। **इति सर्वादिः।**

कण्ड्वादिप्रकरणे

कण्ड्वादिभ्यो यक् (३।१।१२७) कण्डूञ् मन्तु हृणी वल्गु असु (मनस्) महीङ् लाट् लेट् इरस् इरज् इरञ् दुबस् उवस् वेट् मेधा कुषुभ (नमस्) मगध तन्तस् पम्पस् (पपस्) सुख दुःख (भिक्ष चरम चरण अबर) सपर अरर (अरर्) भिषज् भिष्णुज् (अपर आर) इषुध वरण चुरण तुरण भुरण गद्गद एला केला खेला (वेला शेला) लिट लाट (लेखा लेख) रेखा द्रवस् तिरस् अगद उरस् तरण (तरिण) पयस् संभूयस् सम्वर।। **आकृतिगणोऽयम्।। इति कण्ड्वादिः।।**

कृदन्तप्रकरणे

नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः। (३।१।१३४) नन्दिवाशिमदिदूषिसाधिवर्धि-शोभिरोचिभ्यो ण्यन्तेभ्यः संज्ञायाम्। नन्दनः वाशनः मदनः दूषणः साधनः वर्धनः शोभनः रोचनः। सहितपिदमः संज्ञायाम्। सहनः तपनः दमनः जल्पनः रमणः दर्पणः संक्रन्दनः संकर्षणः संहर्षणः जनार्दनः यवनः मधुसूदनः बिभीषणः लवणः चित्तविनाशनः कुलदमनः (शत्रुदमनः)।। **इति नन्द्यादिः।।**

ग्राही उत्साही उद्दासी उद्भासी स्थायी मन्त्री संमर्दी। **रक्षश्रुवपशां नौ।** विरक्षी निश्रावी निवापी निशायी। **याचृव्याहृसंव्याहृव्रजवदवशां प्रतिषिद्धानाम्।** अयाची अव्याहारी। असंख्याहारी अव्राजी अवाजी अवासी। **अचामचित्तकर्तृकाणाम्।** अकारी अहारी अविनायी(विशायी विषायी) विशयी विषयी देशे। **विशयी विषयी देशः। अवियावी भूते।** अवराधी उपरोधी परिभवी परिभावी **इति ग्रह्यादिः।**

पच वच वद वप चल पत नदट् भषट् प्लवट् चरट् गरट् तरट् चोरट् गाहट् शरट् देवट् (दोषट्) जर (रज) मर (मद) क्षम(क्षप) सेव मेष कोप (कोष) मेघ्र नर्त व्रण दर्श सर्प (दम्भ दर्प) जारभर श्वपच **पचादिराकृतिगणः। इति पचादिः।**

मूलविभुजादिभ्यः कः। (३।२।३) मूलविभुज नखमुच काकगुह कुमुद महीध्र कुध्र। गिध्र। **आकृतिगणोऽयम्। इति मूलविभुजादयः।**

संपदादिभ्यः क्विप्। (३।३।९४) संपद् विपद् आपद् प्रतिपद् परिषद् ।। **एते संपदादयः।**

अव्ययीभावसमासे

अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः। (५।४।१०७) शरद् विपाश् अनस् मनस् उपानह् अनडुह् दिव् हिमवत् हिरुक् विद् सद् दिश् दृश् विश् चतुर् त्यद् तद् यद् एतद् कियत्। जराया जरस् च। प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः। पथिन्। इति **शरदादिः।**

तत्पुरुषसमासे

सप्तमी शौण्डैः। (२।१।४०) शौण्ड धूर्त कितव व्याड प्रवीण संवीत अन्तर अधि पटु पण्डित कुशल चपल निपुण। इति **शौण्डादिः।**

ऊर्यादिच्विडाचश्च। (१।४।६१) ऊरी उररी तन्थी ताली आताली वेताली धूली धूसी शकला स्त्रंसकला ध्वंसकला संशकला गुलुगुधा सजूस् फलफली विक्ली आक्ली आलोष्ठी केवाली केवासी सेवासी पर्याली शेवाली वर्षाली अत्यूमशा वश्मशा मस्मसा मसमसा औषट् श्रौषट् वौषट् वषट् स्वाहा स्वधा बन्धा (पाम्पी) प्रादुस् श्रत् आविस्। **एते ऊर्यादयः।**

शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानम् (**उपमानानि सामान्यवचनैः।** (२।१।६०) इति सूत्रे। शाकपार्थिव कुतुपसौश्रुत अजातौल्वलि। **आकृतिगणोऽयम्।** कृताकृत भुक्तविभुक्त पीतविपीत गतप्रत्यागत यातानुयात क्रयाक्रयिका पुटापुटिका फलाफलिका मानोन्मानिका।। **इति शाकपार्थिवादिः।**

अर्धर्चाः पुंसि च। (२।४।३१।) अर्धर्च गोमय कषाय कार्षापण कुपत कुशप (कुणप) कपाट शङ्ख गूथ यूथ ध्वज कबन्ध पद्म गृह सरक कंस दिवस यूष अन्धकार दण्ड कमण्डलु मण्ड भूत द्वीप द्यूत चक्र धर्म कर्मन् मोदक शतमान यान नख नखर चरण पुच्छ दाडिम हिम रजत सक्तु पिधान सार पात्र घृत सैन्धव औषध आढक चषक द्रोण खलीन पात्रीव षष्टिक वारबाण (वारवारंण) प्रोथ कपित्थ (शुष्क) शाल शील शुक्ल (शुल्क) शीधु कवच रेणु (ऋण) कपट शीकर मुसल सुवर्ण वर्ण पूर्व चमस क्षीर कर्ष आकाश अष्टापद मङ्गल निधन निर्यास जृम्भ वृत्त पुस्त बुस्त क्ष्वेडित श्रृङ्ग निगड (खल) मूलक मधु मूल स्थूल शराव नाल वप्र विमान मुख प्रग्रीव शूल वज्र कटक कण्टक (कर्पट)शिखर कल्क (वल्कल) नटमस्तक (नाटमस्तक) वलय कुसुम तृण पङ्क्त कुण्डल किरीट (कुमुद) अर्बुद अङ्कुश तिमिर आश्रय भूषण इक्कस (इष्वास) मुकुल वसन्त तटाक (तडाग) पिटक विटङ्क विडङ्ग पिण्याक माष कोश फलक दिन दैवत पिनाक समर स्थाणु अनिक उपवास शाक कर्पास (विशाल) चषाल (चखाल) खण्ड दर विटप (रण बल मक) मृगाल हस्त आर्द्र हल (सूत्र) ताण्डव गाण्डीव मण्डप पटह सौध योध पार्श्व शरीर फल (छल) पुर (पुरा) राष्ट्र अम्बर बिम्ब कुट्टिमत मण्डल (कुक्कुट) कुडप ककुद खण्डल तोमर तोरण मञ्चक पञ्चक पुङ्ख मध्य (बाल) छाल वल्मीक वर्ष वस्त्र वसु देह उद्यान उद्योग स्नेह स्तेन (स्वन स्वर) संगम निष्क क्षेम शूक क्षत्र पवित्र (यौवन कलह) मालक (पालक) मूषिक (मण्डल वल्कल) कुज (कुञ्ज) विहार लोहित विषाण भवन अरण्य पुलिन दृढ आसन ऐरावत शूर्प तीर्थ लोमन (लोमश) तमाल लोह दण्डक शपथ प्रतिसर दारु धनुस् मान वर्चस्क कूर्च तण्डक मठ सहस्र ओदन प्रवाल शकट अपराह्ण नीड शकल तण्डुल।। **इत्यर्धर्चादिः।।**

बहुव्रीहिसमासे

पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः। (५।४।१३८) हस्तिन् कुद्दाल अश्व कशिक कुरुत कटोल कटोलक गण्डोल गण्डोलक कण्डोल कण्डोलक अज कपोत जाल गण्ड महिला दासी गणिका कुसूल।। **इति हस्त्यादिः।।**

उरः प्रभृतिभ्यः कप्। (५।४।१५१) उरस् सर्पिस् उपानह् पुमान् अनड्वान् पयः नौः लक्ष्मीः दधि मधु शाली शालिः। अर्थान्नञः।। **इत्युरःप्रभृतयः।।**

कस्कादिषु च। (८।३।४८) कस्कः कौतस्कुतः भ्रातुष्पुत्रः शुनस्कर्णः सद्यस्कालः सद्यस्कीः साद्यस्कः कांस्कान् सर्पिष्कुण्डिका धनुष्कपालम् बहिष्पलम् (बर्हिष्पलम्) यजुष्पात्रम् अयस्कान्तः तमस्काण्डः अयस्काण्डः मेदस्पिण्डः भास्करः अहस्करः।। **इति कस्कादिराकृतिगणः।।**

द्वन्द्वसमासे

राजदन्तादिषु परम्। (२।२।३१) राजदन्तः अग्रेवणम् लिप्तवासितम् नग्नमुषितम् सिक्तसंमृष्टम् मृष्टलुञ्चितम् अवक्लिन्नपक्वम् अर्पितोतम् (अर्पितोप्तम्) उप्तगाढम् उलूखलमुसलम् तण्डुलकिण्वम् दृषदुपलम् आरड्वायनि (आरग्वायनबन्धकी) चित्ररथवाह्लीकम् अवन्त्यश्मकम् शूद्रार्यम् स्नातकराजानौ विष्वक्सेनार्जुनौ अक्षिभ्रुवम् दारगवम् शब्दार्थौ धर्मार्थौ कामार्थौ अर्थशब्दौ अर्थधर्मौ अर्थकामौ वैकारिमतम् गाजवाजम् (गोजवाजम्) गोपालिधानपूलासम् (गोपालधानीपूलासम्) पूलासकारण्डम् (पूलासककुरण्डम्) स्थूलासम् (स्थूलपूलासम्) उशीरबीजम् (जिज्ञास्थि) सिञ्जास्थम् (सिञ्जाश्वत्थम्) चित्रास्वाति (चित्रस्वाति) भार्यापती दंपती जंपती जायापती पुत्रपती पुत्रपशू केशरश्मश्रू शिरोबीजु (शिरोबीजम्) शिरोजानु सर्पिर्मधुनी मधुसर्पिषी (आद्यन्तौ) अन्तादी गुणवृद्धी वृद्धिगुणौ।। **इति राजदन्तादिः।।**

तद्धितप्रकरणे

अश्वपत्यादिभ्यश्च। (४।१।८४) अश्वपति ज्ञानपति शतपति धनपति गणपति (स्थानपति यज्ञपति) राष्ट्रपति कुलपति गृहपति (पशुपति) धान्यपति धन्वपति (धर्मपति बन्धुपति) सभापति प्राणपति क्षेत्रपति। **इत्यश्वपत्यादिः।**

उत्सादिभ्योऽञ्। (४।१।८६) उत्स उदपान विकर विनद महानद महानस महाप्राण तरुण तलुन। वष्कयासे। पृथ्वी (धेनु) पङ्क्ति जगती त्रिष्टुप् अनुष्टुप् जनपद भरत उशीनर ग्रीष्म पीलुकुण। उदस्थान देशे। पृषदंश भल्लकीय रथन्तर मध्यन्दिन बृहत् महत् सत्वत् कुरु पञ्चाल इन्द्रावसान उष्णिह् ककुभ् सुवर्ण देव ग्रीष्मादच्छन्दसि। **इत्युत्सादिः।**

बाह्वादिभ्यश्च। (४।१।९६) बाहु उपबाहु उपवाकु निवाकु शिवाकु वटाकु उपनिन्दु (उपबिन्दु) वृषली वृकला चूडा बलाका मूषिका कुशला भगला (छगला) ध्रुवका (धुवका) सुमित्रा दुर्मित्रा पुष्करसद् अनुहरत् देवशर्मन् अग्निशर्मन् (भद्रशर्मन् सुशर्मन्) कुनामन् (सुनामन्) पञ्चन् सप्तन् अष्टन्। अमितौजसः सलोपश्च। सुधावत् उदञ्चु शिरस् माष शराविन् मरीची क्षेमवृद्धिन् श्रृङ्खलतोदिन् खरनादिन् नगरमर्दिन् प्राकारमर्दिन् लोमन् अजीगर्त कृष्ण युधिष्ठिर अर्जुन साम्ब गद प्रद्युम्न राम (उदङ्क)। उदकः संज्ञायाम्। संभूयोम्भसोः सलोपश्च।। **आकृतिगणोऽयम्।।** तेन सात्त्विकिः जाङ्घ्रिः ऐन्दशर्मिः आजधेनविः इत्यादि।। **इति बाह्वादयः।।**

अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्। (४।१।१०४) बिद उर्व कश्यप कुशिक भरद्वाज उपमन्यु किलात कन्दर्प (किंदर्भ) विश्वानर ऋषिषेण (ऋष्टिषेण) ऋतभाग हर्यश्व प्रियक आपस्तम्ब कुचवार शरद्वत् शुनक (शुनक्) धेनु गोपवन शिग्रु बिन्दु (भोगक) भाजन (शमिक) अश्वावतान श्यामाक श्यामक (श्यावलि) श्यापर्ण हरित किंदास बह्वस्क अर्कजूष (अर्कलूप) बध्योग विष्णुवृद्ध प्रतिबोध रचित (रथीतर) रथन्तर गविष्ठिर निषाद (शबर अलस) मठर (मृडाकु) सृपाकु मृदु पुनर्भू पुत्र दुहितृ ननान्दृ। परस्त्री परशुं च।। **इति बिदादिः।।**

गर्गादिभ्यो यञ्। (४।१।१०५) गर्ग वत्स। वाजासे। सङ्कृति अज व्याघ्रपात् विदभृत् प्राचीनयोग (अगस्ति) पुलस्ति चमस रेभ अग्निवेश शंख शट शक एक धूम अवट मनस्

धनञ्जय वृक्ष विश्वावसु जरमाण लोहित शंसित बभ्रु वल्गु मण्डु शङ्कु लिगु गुहलु मन्तु मंक्षु अलिगु जिगीषु मनु तन्तु मनायीसूनु कथक कन्थक ऋक्ष तृक्ष (वृक्ष) (तनु) तरुक्ष तलुक्ष तण्ड वतण्ड कपिकत (कपि कत) कुरुकत अनडुह कण्व शकल गोपक्ष कोकक्ष अगस्त्य कण्डिनी यज्ञवल्क पर्णवल्क अभयजात विरोहित वृषगण रहूगण शण्डिल वर्णक (चणक) चुलुक मुद्गल मुसल जमजग्नि पराशर जतूकर्ण जातूकर्ण महित मन्त्रित अश्मरथ शर्कराक्ष पूतिमाष स्थूरा अदरक (अररक) एलाक पिङ्गल कृष्ण गोलन्द उलूक तितिक्ष भिषज (भिषज्) भिष्णज भडित भण्डित दल्भ चेकित चिकित्सित देवहू इन्द्रहू एकलु पिप्पलु बृहदग्नि (सुलोहिन्) सुलाभिन् उक्थ कुटीगु **इति गर्गादिः।**

शिवादिभ्योऽण्। (४।१।११२) शिव प्रोष्ठ प्रोष्ठिक चण्ड जम्भ भूरि दण्ड कुठार ककुभ् (ककुभा) अनभिम्लान कोहित सुख सन्धि मुनि ककुत्स्थ कहोड कोहड कहूय कहय रोद कपिञ्जल (कुपिञ्जल) खञ्जन वतण्ड तृणकर्ण क्षीरह्रद जलह्रद परिल (पथिक) पिष्ट हैहय (पार्षिका) गोपिका कपिलिका जटिलिका बधिरिका मञ्जीरक(मजिरक) वृष्णिक खञ्जार खञ्जाल (कर्मार) रेख लेख आलेखन विश्रवण रवण वर्तनाक्ष ग्रीवाक्ष (पिटक विटप) पिटाक तृक्षाक नभक ऊर्णनाभ जरत्कारु (पृथा उत्क्षेप) पुरोहितिका सुरोहितिका सुरोहिका आर्यश्वेत (अर्यश्वेत) सुपिष्ट मसूरकर्ण मयूरकर्ण (खर्जूरकर्ण) कदूरक तक्षन् ऋष्टिषेण गङ्गा विपाश मस्का लह्य द्रुह्य अयस्थूण तृणकर्ण (तृण कर्ण) पर्ण भलन्दन विरूपाक्ष भूमि इला सपत्नी। द्व्यचो नद्याः। त्रिवणी त्रिवणं च। इति **शिवादिः। आकृतिगणः।**

रेवत्यादिभ्यष्ठक्। (४।१। १४६) रेवती अश्वपाली मणिपाली द्वारपाली वृकवञ्चिन् वृकबन्धु वृकग्राह दण्डग्राह कर्णग्राह कुक्कुटाक्ष (ककुदाक्ष) चामरग्राह। इति **रेवत्यादिः।**

भिक्षादिभ्योऽण्। (४।२।३८) भिक्षा गर्भिणी क्षेत्र करीष अङ्गार (अङ्गार) चर्मिन् धर्मिन् सहस्र युवति पदाति पद्धति अथर्वन् दक्षिणा भूत विषय श्रोत्र। इति **भिक्षादिः।**

क्रमादिभ्यो वुन्। (४।२।६१) क्रम पद शिक्षा मीमांसा सामन्। इति **क्रमादिः।**

वरणादिभ्यश्च। (४।२।८२) वरणा शृङ्गी शाल्मलि शुण्डी शयाण्डी पर्णी ताम्रपर्णी गोद आलिङ्ग्यायनी जालपदी (जानपदी) जम्बू पुष्कर चम्पा पम्पा वल्गु उज्जयिनी गया मथुरा तक्षशिला उरसागोमती वलभी। इति **वरणादिः।**

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः। (८।२।९) यव दल्मि ऊर्मि भूमि कृमि क्रुञ्चा वशा द्राक्षा ध्राक्षा ध्रजि (व्रजि) ध्वजि निजि सिजि सञ्जि हरित् ककुद् मरुत् गरुत् इक्षुद्रु मधु। आकृतिगणोऽयं **यवादिः।**

नद्यादिभ्यो ढक्। (४।२।९७) नदी मही वाराणसी श्रावस्ती कौशाम्बी वनकौशाम्बी (वनकोशाम्बी) काशपरी काशफारी (काशफरी) खादिरी पूर्वनगरी पाठा माया शाल्वा दार्वा सेतकी। **वडवाया वृषे।** इति **नद्यादिः।**

गहादिभ्यश्च। (४।२।१३८) गह अन्तस्थ सम विषम मध्य। **मध्यन्दिन चरणे।** उत्तम अङ्ग बङ्ग मगध पूर्वपक्ष अपरपक्ष अधमशाख उत्तमशाख एकशाख एकग्राम समानग्राम एकवृक्ष एकपलाश इष्वग्र इष्वनीक अवस्यन्दन कामप्रस्थ शाडिकाडायनि (खाडायन) काठेरणि लावेरणि सौमित्रि शैशिरि आसतु दैवशर्मि श्रौति अहिंसि अमित्रि व्याडि वैजि आध्यश्वि आनृशसि (आनृशंसि) शौङ्गि अग्निशर्मि भौजि वाराटकि वाल्मीकि (वाल्मीकी) क्षैमवृद्धि आश्वत्थि औद्गाहमानि ऐकविन्दवि दन्ताग्र हंस तत्त्वग्र तन्त्वग्र उत्तर अन्तर (अनन्तर)। **मुखपार्श्वतसोर्लोपः। जनपरयोः कुक् च देवस्य च। वेणुकादिभ्यश्छण्।** इति **गहादिराकृतिगणोऽयम्।**

दिगादिभ्यो यत्। (४।३।५४) दिश् वर्ग पूग गण पक्ष धाय्य मित्र मेधा अन्तर पथिन् रहस् अलीक उखा साक्षिन् देश आदि अन्त मुख जघन मेघ यूथ। **उदकात्संज्ञायाम्।** ज्ञायवंश वेश काल आकाश। इति **दिगादिः।**

नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ।४।३।१४४। शर दर्भ मृद् (मृत्) कुटी तृण सोम बल्वज। **इति शरादिः।।**

उगवादिभ्यो यत्। (५।१।२) गो हविस् अक्षर विष बर्हिस् अष्टका स्वदा युग मेधा स्रुच्। **नाभि नभं च। शुनः सम्प्रसारणं वा च दीर्घत्वं तत्सन्नियोगेन चान्तोदात्तत्वम्। ऊधसोऽनङ् च।** कूप खद दर खर असुर अध्वन् (अध्वन) क्षर वेद बीज दीस दीप्त। इति **गवादिः।**

दण्डादिभ्यो यत्। (५।१।६६) दण्ड मुसल मधुपर्क कशा अर्घ मेघ मेधा सुवर्ण उदक वध युग गुहा भाग इभ भङ्ग। इति **दण्डादिः।**

पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा। (५।१।१२२) पृथु मृदु महत् पटु तनु लघु बहु साधु आशु उरु गुरु बहुल खण्ड दण्ड चण्ड अकिंचन बाल होड पाक वत्स मन्द स्वादु ह्रस्व दीर्घ प्रिय वृष ऋजु क्षिप्र क्षुद्र अणु।। **इति पृथ्वादिः।।**

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च। (५।१।१२३) दृढ वृढ परिवृढ भृश कृश वक्र शुक्र चुक्र आम्र कृष्ट लवण ताम्र शीत उष्ण जड बधिर पण्डित मधुर मूर्ख मूक स्थिर। **वेर्यातलातमतिर्मनः शारदानाम्, समो मतिमनसोः।** जवन। **इति दृढादिः।।**

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। (५।१।१२४) ब्राह्मण वाडव माणव। अर्हतो नुम्च। चोर धूर्त आराधय विराधय अपराधय उपराधय एकभाव द्विभाव त्रिभाव अन्यभाव अक्षेत्रज्ञ संवादिन् संवेशिन् संभाषिन् बहुभाषिन् शीर्षघातिन् विघातिन् समस्थ विषमस्थ परमस्थ मध्यस्थ अनीश्वर कुशल चपल निपुण पिशुन कुतूहल क्षेत्रज्ञ विश्न बालिश अलस दुःपुरुष कापुरुष राजन् गणपति अधिपति गडुल दायाद विशस्ति विषम विपात निपात। सर्ववेदादिभ्यः स्वार्थे। चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च। शौटीर।। **आकृतिगणोऽयम्।। इति ब्राह्मणादिः।।**

पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्। (५।१।१२८) पुरोहित। राजासे। ग्रामिक पिण्डिक सुहित बालमन्द (बाल-मन्द) खण्डिक दण्डिक वर्मिक कर्मिक धर्मिक शीतिक सूतिक मूलिक तिलक अञ्जलिक (अन्तनिक) रूपिक ऋषिक पुत्रिक अविक छत्रिक पर्षिक पथिक चर्मिक प्रतिक सारथि आस्थिक सूचिक संरक्ष सूचक (संरक्षसूचक) नास्तिक अजानिक शाक्वर नागर चूडिक।। **इति पुरोहितादिः।।**

तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्। (५।२।३६) तारका पुष्प कर्णक मञ्जरी ऋजीष क्षण सूत्र मूत्र निष्क्रमण पुरीष उच्चार प्रचार विचार कुञ्चल कण्टक मुसल मुकुल कुसुम कुतूहल स्तबक (स्तवक) किसलय पल्लव खण्ड वेग निद्रा मुद्रा बुभुक्षा धेनुष्या पिपासा श्रद्धा अभ्र पुलक अङ्गारक वर्णक द्रोह दोह सुख दुःख उत्कण्ठा भर व्याधि वर्मन् व्रण गौरव शास्त्र तरंग तिलक चन्द्रक अन्धकार गर्व कुमुर (मुकुर) हर्ष उत्कर्ष रण कुवलय गर्ध क्षुध् सीमन्त ज्वर गर रोग रोमाञ्च पण्डा कज्जल तृष् कोरक कल्लोल स्थपुट फल कञ्चुक श्रृङ्गार अङ्कुर शैवल बकुल श्वभ्र आराल कलङ्क कर्दम कन्दल मूर्च्छा अङ्गार हस्तक प्रतिबिम्ब विघ्नतन्त्र प्रत्यय दीक्षा गर्ज। गर्भादप्राणिनि।। **इति तारकादिराकृतिगणः।**

इष्टादिभ्यश्च। (५।२।८८) इष्ट पूर्त उपासादित निगदित परिगदित परिवादित निकथित निषादित निपठित संकलित परिकलित संरक्षित परिरक्षित अर्चित गणित अवकीर्ण

आयुक्त गृहीत आम्नात श्रुत अधीत अवधान आसेवित अबधारित अवकल्पित निराकृत उपकृत उपाकृत अनुयुक्त अनुगणित अनुपठित व्याकुलित।। **इतीष्टादिः**।।

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः। (५।२।१००) लोमन् रोमन् बभ्रु हरि गिरि कर्क कपि मुनि तरु। इति **लोमादिः**।

पामन् वामन् वेमन् हेमन् श्लेष्मन् कद्रु (कद्रू) वलि सामन् ऊष्मन् कृमि। **अङ्गात्कल्याणे**। शाकी पलाली। **दद्रूणां ह्रस्वत्वं च**। **विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धेः**। **लक्ष्म्या अच्च**। इति **पामादिः**।

पिच्छा उरस् धुवक ध्रुवक। **जटाघटाकालाः क्षेपे**। वर्ण उदक पङ्क प्रज्ञा। इति **पिच्छादिः**।

व्रीह्यादिभ्यश्च। (५।२।११६) व्रीहि माया शाला शिखा माला मेखला केका अष्टका पताका चर्मन् कर्मन् वर्मन् दंष्ट्रा संज्ञा बडवा कुमारी नौ वीणा बलाका यवखदनौ कुमारी। **शीर्षान्नञः**। इति **व्रीह्यादिः**।

अर्श आदिभ्योऽच्। (५।२।१२७) अर्शस् उरस् तुन्द चतुर कलित जटा घटा घाटा अभ्र अघ कर्दम अम्ल लवण **स्वाङ्गाद्धीनात्**। **वर्णात्**। **इत्यर्शआदिराकृतिगणः**।

क्षुभ्नादिषु च। (८।४।३९) क्षुभ्न नृगमन नन्दिन् नन्दन नगर। एतान्युत्तरपदानि संज्ञायां प्रयोजयन्ति। हरिनन्दी हरिनन्दनः गिरिनगरम्। नृतिर्यङि प्रयोजयन्ति। नरीनृत्यते। नर्तन गहन नन्दन निवेश निवास अग्नि अनूप। एतान्युत्तरपदानि प्रयोजयन्ति। परिनर्तनम् परिगहनम् परिनन्दनम् शरनिवेशः शरनिवासः शराग्निः दर्भानूपः। **आचार्यादणत्वं च**।। **आकृतिगणोऽयम्**।। **पाठान्तरम्**।। क्षुभ्ना तृप्नु नृनमन नरनगर नन्दन। नृतिर्यङि। गिरिनदी गृहगमन निवेश निवास अग्नि अनूप आचार्यभोगीन चतुर्हायन। इरिकादीनि वनोत्तरपदानि संज्ञायाम्। इरिका तिमिर समीर कुबेर हरि कर्मार।। **इति क्षुभ्नादिः**।।

अनुशतिकादीनां च। (७।३। २०) अनुशतिक अनुहोड अनुसंवरण (अनुसंचरण) अनुसंवत्सर अङ्गारवेणु असिहत्य अस्यहत्य अस्यहेति बध्योग पुष्करसद् अनुहरत् कुरुकत् कुरुपञ्चाल उदकशुद्ध इहलोक परलोक सर्वलोक सर्वपुरुष सर्वभूमि प्रयोग परस्त्री (राजपुरुषात्ष्यञि) सूत्रनड। **इत्यनुशतिकादिराकृतिगणोऽयम्**। तेन अभिगम अभिभूत अधिदेव चतुर्विधा इत्यादयोऽन्येऽपि गृह्यन्ते।

आद्यादिभ्य उपसंख्यानम्। आदि मध्य अन्त पार्श्व पृष्ठ। **इत्याद्यादिराकृतिगणोऽयम्**। स्वरेण स्वरतः।

प्रज्ञादिभ्यश्च (५।४।३८) प्रज्ञ वणिज् उशिज् उष्णिज् प्रत्यक्ष विद्वस् विदन् षोडन् विद्या मनस्। **श्रोत्रं शरीरे**। जुह्वत्। **कृष्णमृगे**। चिकीर्षत्। चोर शत्रु योध चक्षुस् वसु (एनस्) मरुत् क्रुञ्च सत्वत् दशार्ह वयस् (व्याकृत) असुर रक्षस् पिशाच अशनि कर्षापणा देवता बन्धु। इति **प्रज्ञादिः**।

स्त्रीप्रत्ययप्रकरणे

अजाद्यतष्टाप्। (४।१।४) अजा एडका कोकिला चटका अश्वा मूषिका बाला होडा पाका वत्सा मन्दा विलाता पूर्वापिहाणा (पूर्वापहाणा) अपरापहाणा। **सम्भस्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात्**। **सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्**। **शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः**। क्रुञ्चा उष्णिहा देवविशा ज्येष्ठा कनिष्ठा। **मध्यमेति पुंयोगेऽपि**। **मूलान्नञः**। दंष्ट्रा। **एतेऽजादयः**। **आकृतिगणोऽयम्**।

षिद्गौरादिभ्यश्च। (४।१।४१) गौर मत्स्य मनुष्य शृङ्ग पिङ्गल हय गवय मुकय ऋष्य (पुट तूण) द्रुण द्रोण कोकण (काकण) हरिण कामण पटर उणक (आमल) आमलक कुबल बिम्ब बदर कर्करक तर्कार शर्कार पुष्कर शिखण्ड सलद शष्कण्ड सनन्द सुषम सुषब अलिन्द गुडुल षाण्डश आढक आनन्द आश्वत्थ सृपाट आखक(आपच्चिक) शष्कुल सूर्य(सूर्म) शूर्प सूच यूष(पूष) यूथ सूप मेथ वल्लक घातक सल्लक माल्लक मालत साल्वक वेतस वृक्ष(वृस) अतस (उभय) भृङ्ग मह मठ छेद पेश मेद श्वन् तक्षन् अनडुही अनड्वाही। **एषणः करणे।** देह देहल काकादन गवादन तेजन रजन लवण औद्गाहमानी आद्गाहमानी गौतम(गोतम)(पारक) अयस्थूण (अयःथूण) भौरिकि भौलिकि भौलाङ्गि यान मेध आलम्बि आलजि आलब्धि आलक्षि केवाल आपक आरट नट टोट नोट मूलाट शातन(पोतन) पातन पाठन(पानठ) आस्तरण अधिकरण अधिकार अग्रहायनी (आग्रहायणी) प्रत्यवरोहिणी(सेचन)। **सुमङ्गलात् संज्ञायाम्।** अण्डर सुन्दर मण्डल मन्थर मङ्गल पट पिण्ड(षण्ड) उर्द गुर्द शम सूद औड (आर्द्र) हृद ह्रद पाण्ड (भाण्डल) भाण्ड (लोहाण्ड) कदर कन्दर कदल तरुण तलुन कल्माष बृहत् महत् (सोम) सौधर्म। **रोहिणी नक्षत्रे। रेवती नक्षत्रे।** विकल निष्कल। पुष्कल **कटाच्छ्रोणिवचने। पिप्पल्यादयश्च।** पिप्पली हरितकि (हरीतकी) कोशातकी शमी वरी शरी पृथिवी क्रोष्टु मातामह पितामह इति **गौरादिः।**

बह्वादिभ्यश्च। (४।१।४५) बहु पद्धति अङ्कति अञ्चति अंहति शकटि। **शक्तिः शस्त्रे।** शारि वारि राति राडि (शाधि) अहि कपि यष्टि मुनि। **इतः प्राण्यङ्गात्। कृतिकारादक्तिनः। सर्वतोऽक्तिनर्थादित्येके।** चण्ड अराल कृपण कमल विकट विशाल विशङ्कट भरुज ध्वज। **चन्द्रभागान्नद्याम्।** (चन्द्रभागा नद्याम्) कल्याण उदार पुराण अहन् क्रोड नख खुर शिखा बाल शफ गुद। **आकृतिगणोऽयम्।** तेन भग गल राग इत्यादि। **इति बह्वादयः।**

न क्रोडादिबह्वचः। (४।१।५६) क्रोड नख खुर गोखा उखा शिखा वाल शफ शुक्र। **आकृतिगणोऽयम्।** तेन भगगलघोणनालभुजगुदकर। इति **क्रोडादिः।**

शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्। (४।१।७३) शार्ङ्गरव कापटव गौग्गुलव ब्राह्मण वैद गौतम कामण्डलेय ब्राह्मणकृतेय (आनिचेय) आनिधेय आशोकेय वात्स्यायन मौञ्जायन कैकस काप्य (काव्य) शैव्य एहि पर्येहि आश्मरथ्य औदपान अराल चण्डाल बतण्ड। **भोगवद् गौरिमतोः संज्ञायाम् घादिषु। नृनरयोर्वृद्धिश्च।** इति **शार्ङ्गरवादिः।**

इति लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थो गणपाठः।

लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थसूत्राणामकारादिक्रमेण सूत्रसूची

सूत्राणि	अध्यायादिः,	पृष्ठाङ्काः
अ		
अकथितं च	१।४।५१	८७४
अकर्तरि च०	३।३।१९	८४०
अकर्मकाच्च	१।३।४५	७३८
अकृत्सार्वधातु०	७।४।२५	४६०
अकः सवर्णे दीर्घः	६।१।१०१	६५
अक्ष्णोऽदर्शनात्	५।४।७६	९८०
अचस्तास्वत्०	७।२।६१	४५८
अचित्तहस्ति०	४।२।४७	१०२२
अचि र ऋतः	७।२।१००	२२५
अचि विभाषा	८।२।२१	६३९
अचि श्नुधातु०	६।४।७७	१९०
अचोन्त्यादि टि	१।१।६४	६१
अचो ञ्णिति	७।२।११५	१७८
अचो यत्	३।१।९७	७७७
अचोरहाभ्याम्०	८।४।४६	८०
अचः	६।४।१३८	३१७
अचः परस्मिन्०	१।१।५७	५३०
अच्च घेः	७।३।११९	१७४
अजाद्यदन्तम्	२।२।३३	९७२
अजाद्यतष्टाप्	४।१।४	११५४
अज्झनगमां सनि	६।४।१६	७०५
अज्ञाते	५।३।७३	११३९
अञ्जेः सिचि	७।२।७१	६५३
अट्कुप्वाङ्०	८।४।२	१४२
अणुदित्सवर्णस्य०	१।१।६९	२१
अत आदेः	७।४।७०	४२३
अत इञ्	४।१।९५	९९८
अत इनिठनौ	५।२।११५	१११६
अत उपधायाः	७:२।११६	४३३
अत उत्०	६।४।११०	६६३
अत उत्०	६।४।११०	५३६
अत एकहल्०	६।४।१२०	४३७
अतिशायने०	५।३।५५	११३१
अतो गुणे	६।१।९७	२७४
अतो दीर्घो यञि	७।३।१०१	३९०
अतो भिस् ऐस्	७।१।९	१४४
अतोऽम्	७।१।२४	२३९
अतोरोरप्लुता०	६।१।११३	११८
अतो येयः	७।२।८०	४०९
अतो लोपः	६।४।४८	४४६
अतो हलादेर्लघोः	७।२।७	४३५
अतो हेः	६।४।१०५	४०२
अतः कृकमि०	८।३।४६	७९१
अत्रानुनासिकः०	८।३।२	१०८
अत्वसन्तस्य०	६।४।१४	३२५
अदभ्यस्तात्	७।१।४	५६५
अदर्शनं लोपः	१।१।६०	६
अदस औ सुलोपश्च	७।२।१०७	३३७
अदसो मात्	१।१।१२	७४
अदसोऽसेर्दादु०	८।२।८०	३३८
अदिप्रभृतिभ्यः०	२।४।७२	५२१
अदूरभवश्च	४।२।७०	१०२८
अदेङ् गुणः	१।१।२	४२
अदः सर्वेषाम्	७।३।१००	५२४
अदड्डतरादिभ्यः०	७।१।२५	२४४
अधिकृत्य कृते ग्रन्थे	४।३।८७	१०५१
अनङ्सौ	७।१।९३	१७५
अनचि च	८।४।४७	३१
अनद्यतने लुट्	३।३।१५	३९६
अनद्यतने लङ्	३।२।१११	४०६
अनद्यतनेर्हिल्०	५।३।२१	११२७
अनश्च	५।४।१०८	९०८

सूत्राणि	अध्यायादिः,	पृष्टाङ्काः
अनाप्यकः	७।२।११२	२७५
अनिदितां ह०	६।४।२४	३१७
अनुदात्तोपदेश०	६।४।३७	५२६
अनुदात्तङितः०	१।३।१२	३८२
अनुदात्तस्य चर्दु०	६।१।५९	६२१
अनुनासिकस्य०	६।४।१५	७२८
अनुनासिकात्०	८।३।४·	१०८
अनुपराभ्यां कृञः	१।३।७९	७४३
अनुशतिका०	७।३।२०	१०५२
अनुस्वारस्य ययि०	८।४।५८	९९
अनृष्यानन्तये०	४।१।१०४	९९९
अनेकमन्यपदार्थे	२।२।२४	९५१
अनेकाल्शित्०	१।१।५५	७०
अन्	६।४।१६७	१००६
अन्	५।३।५	११२३
अन्तरं बहिर्योगोप०	१।१।३६	१६०
अन्तर्बहिर्भ्यां च०	५।४।११७	९६१
अन्तादिवच्च	६।१।८५	६४
अन्यथैवंकथ०	३।४।२७	८६५
अन्येभ्योऽपि०	३।२।७५	७९४
अपत्यं पौत्र०	४।१।१६२	९९४
अपह्नवे ज्ञः	१।३।४४	७३८
अपादाने पञ्चमी	२।३।२८	८८३
अपृक्त एकाल्०	१।२।४१	१७६
अपो भि	७।४।४८	२४८
अप्तृन्तृच्स्वसृ०	६।४।११	१९८
अप्पूरणी०	५।४।११६	९५८
अ प्रत्ययात्	३।३।१०२	८५१
अभिज्ञावचने०	३।२।११२	७६६
अभिनिष्क्रामति०	४।३।८६	१०५१
अभिप्रत्यतिभ्यः	१।३।८०	७४४
अभ्यासस्या०	६।४।७८	५४२
अभ्यासाच्च	७।३।५५	५२७
अभ्यासे चर्च	८।४।५४	३९३
अमि पूर्वः	६।१।१०७	१४१
अम्बार्थनद्यो०	७।३।१०७	१८७
अम्सम्बुद्धौ	७।१।९९	२६६
अयामन्ताल्वा०	६।४।५५	४९६
अरुर्द्विषदज०	६।३।६७	७९३
अर्तिपिपर्त्योश्च	७।४।७७	५७०
अर्तिलूधूसू०	३।२।१८४	८३१
अर्तिह्रीब्ली०	७।३।३६	६९७
अर्थवदधातु०	१।२।४५	१२९
अर्धर्चाः पुंसि च	२।४।३१	९५०
अर्ध नपुंसकम्	२।२।२	९२३
अर्वणस्त्रसा०	६।४।१२७	२९१
अर्श आदिभ्योऽच्	५।२।१२७	११११
अलोऽन्त्यस्य	१।१।५२	३३
अलोऽन्त्यात्०	१।१।६५	१७५
अलंखल्वोः०	३।४।१८	८५७
अल्पाच्तरम्	२।२।३४	९७३
अल्लोपोऽनः	६।४।१३४	२४९
अवङ्स्फोटायनस्य	६।१।१२३	७१
अवयवे च	४।३।१३५	१०६३
अवे तृस्त्रोर्घञ्	३।३।१२०	८५५
अव्यक्तानुकर०	५।४।५७	११५०
अव्ययसर्व०	५।३।७१	११३९
अव्ययात्त्यप्	४।२।१०४	१०३८
अव्ययादाप्सुपः	२।४।८२	३७३
अव्ययीभावश्च	१।१।४१	३७३
अव्ययीभावश्च	२।४।१८	८९५
अव्ययीभावे०	५।४।१०७	९०६
अव्ययीभावे	६।३।८१	९०२
अव्ययीभावः	२।१।५	८९३
अव्ययं विभक्ति०	२।१।६	८९३
अश्वपत्यादिभ्यश्च	४।१।८४	९८४
अष्टन आ विभक्तौ	७।२।८४	२९४
अष्टाभ्य औश्	७।१।२१	२९४
असिद्धवदत्रा०	६।४।२२	५२७
असंयोगाल्लिट्०	१।२।५	४३०
अस्तिसिचोऽपृक्ते	७।३।९६	४२६
अस्तेर्भूः	२।४।५२	५३९
अस्थिदधि०	७।१।७५	२४९
अस्मद्युत्तमः	१।४।१०७	३८६

सूत्राणि	अध्यायादिः	पृष्ठाङ्काः
अस्मायामेधा०	५।२।१२१	१११८
अस्य च्वौ	७।४।३२	११४८
अस्यतिवक्ति०	३।१।५२	५५७
अहन्	८।२।६८	३५५
अहंशुभमोर्युस्	५।२।१४०	११२०
अहः सर्वैक०	५।४।८७	९४२
(आ)		
आकडारादेका संज्ञा	१।४।१	१६७
आक्वेस्तच्छील०	३।२।१३४	८२२
आङि चापः	७।३।१०५	२१५
आङोनाऽस्त्रियाम्	७।३।१२०	१७२
आ च त्वात्	५।१।१२०	१०८९
आ च हौ	६।४।११७	५७५
आच्छीनद्यो०	७।१।८०	३६३
आटश्च	६।१।९०	१८८
आडजादीनाम्	६।४।७२	४२५
आडुत्तमस्य०	३।४।९२	४०३
आण्नद्याः	७।३।११२	१८७
आत औ णलः	७।१।३४	४६५
आतश्चोप०	३।१।१३६	७८७
आतोऽनुपसर्गे०	३।२।३	७८९
आतो ङितः	७।२।८१	४८१
आतो धातोः	६।४।१४०	१६८
आतो युक्०	७।३।३३	७५८
आतो युच्	३।३।१२८	८५६
आतो लोप इ०	६।४।६४	४६५
आतः	३।४।११०	४६६
आत्मनेपदेष्वनतः	७।१।५	४९३
आत्मनेपदेष्व०	३।१।५४	६२६
आत्ममाने खश्च	३।२।८३	८०१
आत्मन्विश्व०	५।१।९	१०८१
आत्माध्वानौ खे	६।४।१६९	१०८१
आदिरन्त्येन०	१।१।७१	७
आदिर्ञिटुडवः	१।३।५	४३९
आदेच उप०	६।१।४५	४६७
आदेशप्रत्य०	८।३।५९	१४९
आदेः परस्य	१।१।५४	९३
आद्गुणः	६।१।८७	४४
आद्यन्तवदेक०	१।१।२१	२७६
आद्यन्तौ टकितौ	१।१।४६	२०५
आधारोऽधि०	१।४।४५	८८४
आनि लोट्	८।४।१६	४०४
आने मुक्	७।२।८२	८१९
आन्महतः०	६।३।४६	९४५
आभीक्ष्ण्ये णमुल् च	३।४।२२	८६४
आमि सर्वनाम्नः०	७।१।५२	१५५
आमेतः	३।४।९०	४८८
आमः	२।४।८१	४४६
आम्प्रत्ययवत्०	१।३।६३	४८३
आयनेयीनीयिय०	७।१।२	९९७
आयादय आर्ध०	३।१।३१	४४५
आर्धधातुके	२।४।३५	५२१
आर्धधातुकं शेषः	३।४।११४	३९६
आर्धधातुकस्ये०	७।२।३५	३९४
आशिषि लिङ्०	३।३।१७३	४००
आ सर्वनाम्नः	६।३।९१	३२८
आहस्थः	८।२।३५	५५५
(इ)		
इकोऽचि विभक्तौ	७।१।७३	२४६
इकोऽसवर्णे०	६।१।१२७	७९
इको झल्	१।२।९	७०६
इको यणचि	६।१।७७	२८
इगन्ताच्च०	५।१।१३१	१०९२
इगुपधज्ञा०	३।१।१३५	७८७
इग्यणः संप्रसा०	१।१।४५	२६४
इच्छा	३।३।१०१	८५०
इजादेश्च०	३।१।३६	४८२
इट ईटि	८।२।२८	४२६
इटोऽत्	३।४।१०६	४९१
इडत्त्यर्ति०	७।२।६६	४२३
इणो गा लुङि	२।४।४५	५४४
इणो यण्	६।४।८१	५४१
इणः षीध्वंलुङ्०	८।३।७८	४८६
इणः षः	८।३।३९	९६६

सूत्राणि	अध्यायादिः,	पृष्ठाङ्काः
इतराभ्योऽपि०	५।३।१४	११२५
इतश्च	३।४।१००	४०६
इतोऽत्सर्वनाम०	७।१।८६	२९१
इतो मनुष्य०	४।१।६५	११७४
इदम इश्	५।३।३	११२२
इदमस्थमुः	५।३।२४	११२९
इदमो मः	७।२।१०८	२७३
इदमोर्हिल्	५।३।१६	११२६
इदमो हः	५।३।११	११२४
इदितो नुम्०	७।१।५८	४३९
इदुद्भ्याम्	७।३।११७	२२३
इदोऽय् पुंसि	७।२।१११	२७३
इदंकिमोरीश्०	६।३।९०	११०१
इनण्यनपत्ये	७।४।१६४	१०२१
इन्द्रवरुणभव०	७।१।४९	११६५
इन्द्रे च	६।१।१२४	७२
इन्हन्पूषा०	६।४।१२	२८४
इरितो वा	३।१।५७	५८४
इवे प्रतिकृतौ	५।३।९६	११४४
इषुगमियमां छः	७।३।७७	४७६
इष्टादिभ्यश्च	५।२।८८	११०९
इष्ठस्य यिट् च	६।४।१५९	११३६
इसुसुक्तान्तात्कः	७।३।५१	१०२३
(ई)		
ई च गणः	७।४।९७	६११
ईदूदेद्द्विवचनम्०	१।१।११	७३
ईद्यति	६।४।६५	७७७
ईषदसमाप्तौ०	५।३।६७	११३७
ईषद्दुस्सुषु०	३।३।१२६	८५६
ई हल्यघोः	६।४।११३	५७४
(उ)		
उगवादिभ्यो यत्	५।१।२	१०७९
उगितश्च	४।१।६	११५५
उगिदचां सर्व०	७।१।७०	२८८
उच्चैरुदात्तः	१।२।२९	१३
उञ्छति	४।४।३२	१०६९
उणादयो बहुलम्	३।३।१	८३४
उतश्च प्रत्यया०	६।४।१०६	४७५
उतो वृद्धिर्लुकि०	७।३।८९	५३०
उत्सादिभ्योऽञ्	४।१।८६	९८९
उद ईत्	६।४।१३९	३१९
उदश्चरः सक०	१।३।५३	७३९
उदितो वा	७।३।५६	८६१
उदोष्ठ्यपूर्वस्य	७।१।१०२	५७०
उदः स्थास्तम्भोः०	८।४।६१	९२
उद्विभ्यां काकु०	५।४।१४८	९६३
उपदेशेऽजनु०	१।३।२	४६
उपदेशेऽत्वतः	७।२।६२	४५८
उपपदमतिङ्	२।२।१९	९३९
उपमानानि०	२।१।५५	९३१
उपमानादाचारे	३।१।१०	७२६
उपसर्गप्रा०	८।३।८७	५३८
उपसर्गादृति धातौ	६।१।९१	५९
उपसर्गाः क्रियायोगे	१।४।५९	५८
उपसर्गादध्वनः	५।४।८५	९८०
उपसर्गादसमा०	८।४।१४	४३६
उपसर्गस्यायतौ	८।२।१९	५०१
उपसर्गे च०	३।२।९९	८०६
उपसर्गे घोः किः	३।३।९२	८४५
उपसर्जनं पूर्वम्	२।२।३०	८९४
उपाच्च	१।३।८४	७४५
उपात्प्रतियत्न०	६।१।१३९	६६७
उभादुदात्तो०	५।२।४४	११०३
उभे अभ्यस्तम्	६।१।५	३२६
उरण् रपरः	१।१।५१	४७
उरत्	७।४।६६	४४७
उरः प्रभृति०	५।४।१५१	९६५
उश्च	१।२।१२	५१२
उषविदजागृभ्यो०	३।१।३८	५३५
उस्यपदान्तात्	६।१।९६	४६७
(ऊ)		
ऊकालोऽज्झ्र०	१।१।२७	११
ऊङुतः	४।१।६६	११७४
ऊतियूति०	३।३।९७	८४८

सूत्राणि	अध्यायादिः	पृष्ठाङ्काः
ऊरूत्तरपदा०	४।१।६९	११७५
ऊर्णोतेर्विभाषा	७।३।९०	५५८
ऊर्णोतेर्विभाषा	७।२।६	५६२
ऊर्यादिच्वि०	१।४।६१	९३५
(ऋ)		
ऋक्पूरब्धूः०	५।४।७४	९७८
ऋच्छत्यॄताम्	७।४।११	५७१
ऋत उत्	६।१।१११	२००
ऋतश्च संयो०	७।२।४३	६११
ऋतश्च संयोगा०	७।४।१०	४७०
ऋतो ङिसर्व०	७।३।११०	१९७
ऋतो भार०	७।२।६३	१५९
ऋत्यकः	६।१।१२८	८१
ऋत्विग्दधृक्०	३।२।५९	२९५
ऋदुशनस्पुरु०	७।१।९४	१९७
ऋद्धनोः स्ये	७।२।७०	४७०
ऋन्नेभ्यो ङीप्	४।१।५	२३४
ऋष्यन्धक०	४।१।११४	१००१
ऋहलोर्ण्यत्	३।१।१२४	७८०
(ॠ)		
ॠत इद्धातोः	७।१।१००	६३७
ॠदोरप्	३।३।५७	८४२
(ए)		
एकवचनस्य च	७।१।३२	३०९
एकवचनं सम्बुद्धिः	२।३।४९	१३९
एकविभक्ति०	१।२।४४	९३७
एकाच उपदेशे०	७।२।१०	४४९
एकाचो वशो०	८।२।३७	२६१
एकाजुत्तरपदे णः	८।४।१२	२८५
एको गोत्रे	४।१।९३	९९४
एङः पदान्तादति	६।१।१०९	६७
एङि पररूपम्	६।१।९४	६०
एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः	६।१।६९	१४०
एच इग्घ्रस्वादेशे	१।१।४८	२५४
एचोऽयवायावः	६।१।७८	३८
एजेः खश्	३।२।२८	७९३
एत ईद्बहुवचने	८।२।८१	३३८

सूत्राणि	अध्यायादिः	पृष्ठाङ्काः
एत ऐ	३।४।९३	४८९
एतत्तदोः०	६।१।१३२	१२४
एतदोऽन्	५।३।५	११२८
एतिस्तुशास्वृ०	३।१।१०९	७७८
एतेतौ रथोः	५।३।४	११२७
एतेर्लिङि	७।४।२४	५४३
एत्येधत्यूठ्सु	६।१।८९	५४
एरच्	३।३।५६	८४२
एरनेकाचो०	६।४।८२	१९०
एरुः	३।४।८६	४००
एर्लिङि	६।४।६७	४६६
(ओ)		
ओतः श्यनि	७।३।७१	५११
ओत्	१।१।१५	७७
ओदितश्च	८।२।४५	८१०
ओमाङोश्च	६।१।९५	६३
ओर्गुणः	६।४।१४६	९९२
ओसि च	७।३।१०४	१४७
ओः पुयण्ज्यपरे	७।४।८०	६९५
ओः सुपि	६।४।८३	२०३
(औ)		
औङ आपः	७।१।१८	२१४
औतोऽम्शसोः	६।१।९३	२१०
औत्	७।३।११८	१७९
(क)		
कण्ड्वादिभ्यो यक्	३।१।२७	७३३
कन्यायाः कनीनश्च	४।१।११६	१००४
कपिज्ञात्यो०	५।१।१२७	१०९५
कमेर्णिङ्	३।१।३०	४९५
कम्बोजाल्लुक्	४।१।१७५	१०१०
करणे यजः	३।२।८५	८०३
कर्तरि कर्म०	१।३।१४	७३५
कर्तरि कृत्०	३।४।६७	७७३
कर्तरि शप्	३।१।६८	३८७
कर्तुरीप्सित०	१।४।४९	८७२
कर्तृकरणयोः०	२।३।१८	८८०
कर्तृकरणे०	२।१।३२	९१५

सूत्राणि	अध्यायादिः,	पृष्ठाङ्काः
कर्मणा यमभिप्रैति०	१।४।३२	८८०
कर्मणि द्वितीया	२।३।२	८७२
कर्मण्यण्	३।२।१	७८८
कर्मवत्कर्मणा०	३।१।८७	७६३
कष्टाय क्रमणे	३।१।१४	७२९
कस्कादिषु च	८।३।४८	९६५
कानाम्रेडिते	८।३।१२	११३
काम्यच्च	३।१।९	७२५
कालसमयवेलासु०	३।३।१६७	८३८
कालाट्ठञ्	४।३।११	१०४५
किति च	७।२।११८	९८८
किदाशिषि	३।४।१०४	४१२
किमश्च	५।३।२५	११२९
किमिदंभ्यां वो घः	५।२।४०	११०१
किमेत्तिङव्य०	५।४।११	११३२
किमोऽत्	५।३।१२	११२५
किमः कः	७।२।१०३	२७२
किरतौ लवने	६।१।१४०	६३८
किंयत्तदो०	५।३।९२	११४१
किंसर्वनाम०	५।३।२	११२१
कुगतिप्रादयः	२।२।१८	९३४
कु तिहोः	७।२।१०४	११२२
कुत्सिते	५।३।७४	११४१
कुप्वोः ᳲ क०	८।३।३७	११२
कुमुदनड०	४।२।८७	१०२९
कुरुनादि०	४।१।१७२	१००८
कुहोश्चुः	७।४।६२	४३३
कृञो हेतु०	३।२।२०	७९१
कृञ्चानुप्रयु०	३।१।४०	४४७
कृत्तद्धितसमासाश्च	१।२।४६	१३१
कृत्यल्युटो०	३।३।११३	७७६
कृत्याः	३।१।९५	७७३
कृदतिङ्	३।१।९३	२९६
कृन्मेजन्तः	१।१।३९	३७२
कृभ्वस्तियोगे०	५।४।५०	११४७
कृसृभृवृस्तु०	७।२।१३	४५७
केशाद्वो०	५।२।१०९	१११५
कोशाड्ढञ्	४।३।४२	१०५०
क्ङिति च	१।१।५	४१२
क्तक्तवतू०	१।१।२६	८०६
क्त्रेर्मम्नित्यम्	४।४।२०	८४३
क्त्वातोसुन्कसुनः	१।१।४०	३७२
क्यचि च	७।४।३३	७२२
क्यस्य विभाषा	६।४।५०	७२४
क्रमादिभ्यो वुन्	४।२।६१	१०२४
क्रमः परस्मै०	७।३।७६	४६३
क्रीतात्करणपूर्वात्	४।१।५०	११६८
क्र्यादिभ्यः श्ना	३।१।८१	६७०
क्वसुश्च	३।२।१०७	८१७
क्वाति	७।२।१०५	११२५
क्विन्प्रत्ययस्य०	८।२।६२	२९६
क्विप् च	३।२।७६	७९७
क्षत्राद् घः	४।१।१३८	१००६
क्षायो मः	८।२।५३	८१२
क्षुभ्नादिषु च	८।४।३९	७१३
क्सस्याचि	७।३।७२	५५२
(ख)		
खरवसानयो०	८।३।१५	१०९
खरि च	८।४।५५	९३
खित्यनव्ययस्य	६।३।६६	८०२
ख्यत्यात्परस्य	६।१।११२	१७८
(ग)		
गतिश्च	१।१।६०	१९३
गन्धनावक्षेप०	१।३।३२	७४१
गमहनजन०	६।४।९८	४७६
गमेरिट् पर०	७।२।५८	४७७
गर्गादिभ्यो यञ्	४।१।१०५	९९५
गहादिभ्यश्च	४।२।१३८	१०४०
गाङ्कुटादि०	१।२।१	५४७
गाङ् लिटि	२।४।४९	५४६
गातिस्थाघु०	२।४।७७	४१५
गुणवचन०	५।१।१२४	१०९४
गुणोऽपृक्ते	७।३।९१	५६१
गुणोऽर्तिसंयो०	७।४।२९	४७१

सूत्राणि	अध्यायादिः	पृष्ठाङ्काः
गुणो यङ्लुकोः	७।४।८२	७०९
गुपूधूपविच्छि०	३।१।२८	४४४
गुरोश्च हलः	३।३।१०३	८५२
गेहे कः	३।१।१४४	७८८
गोतो णित्	७।१।९०	२०९
गोत्राद्यून्यस्त्रि०	४।१।९४	९९६
गोपसयोर्यत्	४।३।१६०	१०६५
गोरतद्धित०	५।४।९२	९२८
गोश्च पुरीषे	४।३।१४५	१०६५
गोस्त्रियोरुप०	१।२।४८	९३७
ग्रहिज्यावयि०	६।१।१६	५९३
ग्रहोऽलिटि०	७।२।३७	६८१
ग्रामजनबन्धु०	४।२।४३	१०२१
ग्रामाद्यखञौ	४।२।९४	१०३६
(घ)		
घञि च भाव०	६।४।२७	८४०
घुमास्थागापा०	६।४।६६	५४७
घेर्ङिति	७।३।१११	१७२
घ्वसोरेद्धाव०	६।४।११९	५४०
(ङ)		
ङमो ह्रस्वादचि०	८।३।३२	१०७
ङसिङसोश्च	६।१।११०	१७३
ङसिङ्योः०	७।१।१५	१५४
ङिच्च	१।१।५३	७०
ङिति ह्रस्वश्च	१।४।६	२२२
ङेप्रथमयोरम्	७।१।२८	३०३
ङेराम्नद्याम्नीभ्यः	७।३।११६	१८८
ङेर्यः	७।१।१३	१४५
ङ्णोः कुक्०	८।३।२८	१०३
ङ्याप्प्रातिपदि०	४।१।१	१३२
(च)		
चङि	६।१।११	४९९
चजोः कु घि०	७।३।५२	७८०
चतुरनडुहोरा०	७।१।९८	२६५
चतुर्थी तदर्था०	२।१।३६	९१६
चतुर्थी सम्प्रदाने	२।३।१३	८८१
चरति	४।४।८	१०६९
चरेष्टः	३।२।१६	७९०
चादयोऽसत्त्वे	१।४।५७	७५
चार्थे द्वन्द्वः	२।२।२९	९६९
चिणो लुक्	६।४।१०४	६०१
चिण् ते पदः	३।१।६०	६०२
चिण्भावकर्म०	३।१।६६	७५०
चुटू	१।३।७	१३८
चोः कुः	८।२।३०	२९८
चौ	६।३।१३८	३१७
च्छ्वोः शूडनुना०	६।४।१९	८२७
च्लि लुङि	३।१।४३	४१४
च्लेः सिच्	३।१।४४	४१४
च्वौ च	७।४।२६	११५०
(छ)		
छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य	६।४।९६	८५४
छे च	६।१।७३	११४
(ज)		
जक्षित्यादयः०	६।१।६	३२७
जनपदशब्दात्०	४।१।१६८	१००७
जनपदे लुप्	४।२।८१	१०२८
जनसनखनाम्०	६।४।४२	६६१
जनिवध्योश्च	७।३।३५	६०१
जराया जरस०	७।२।१०१	१६३
जल्पभिक्ष०	३।२।१५५	८२३
जश्शसोः शिः	७।१।२०	२४०
जसि च	७।३।१०९	१७०
जसः शी	७।१।१७	१५३
जहातेश्च	६।४।११६	५७३
जहातेश्च क्त्वि	७।४।४३	८६२
जातेरस्त्रीविषया०	४।१।६३	११७१
जिह्वामूलाङ्गु०	४।३।६२	१०५४
जीवति तु०	४।१।१६३	९९६
जुसि च	७।३।८३	५६७
जुहोत्यादिभ्यः०	२।४।७५	५६४
जृस्तन्भुम्रुचु०	३।१।५८	६७९
ज्ञाजनोर्जा	७।३।७९	६००
ज्य च	५।३।६१	११३५

सूत्राणि	अध्यायादिः,	पृष्ठाङ्काः
ज्यादादीयसः	६।४।१६०	११३५
ज्वरत्वर०	६।४।२०	८४९
(झ)		
झयो होऽन्यतर०	८।४।६२	९५
झयः	५।४।१११	९१०
झयः	८।२।१०	१०२९
झरो झरि सवर्णे	८।४।६५	९३
झलां जश् झशि	८।४।५३	३२
झलां जशोऽन्ते	८।२।३९	८९
झलो झलि	८।२।२६	४५५
झषस्तथोर्धो०	८।२।४०	५१८
झस्य रन्	३।४।१०५	४९१
झेर्जुस्	३।४।१०८	४१०
झोऽन्तः	७।१।३	३८९
(ट)		
टाङसिङसा०	७।१।१२	१४३
टिड्ढाणञ्०	४।१।१५	११५५
टित आत्मने०	३।४।७९	४८०
टेः	६।४।१४३	२४४
टेः	६।४।१५५	१०९१
ट्वितोऽथुच्	३।३।८९	८४४
(ठ)		
ठगायस्थानेभ्यः	४।३।७५	१०५६
ठस्येकः	७।३।५०	१००७
(ड)		
डति च	१।१।२५	१८१
डः सि धुट्	८।३।२९	१०५
ड्वितः क्त्रिः	३।३।८८	८४३
(ढ)		
ढो ढे लोपः	८।३।१३	५१८
ढ्रलोपे पूर्वस्य०	६।३।१११	१२२
(ण)		
णलुत्तमो वा	७।१।९१	४३४
णिचश्च	१।३।७४	६८७
णिजां त्रयाणाम्०	७।४।७५	५८३
णिश्रिद्रुश्रुभ्यः०	३।१।४८	४९८
णेरनिटि	६।४।५१	४९८

सूत्राणि	अध्यायादिः,	पृष्ठाङ्काः
णो नः	६।१।६५	४३३
णौ चङ्युप०	७।४।१	४९८
ण्यासश्रन्थो०	३।३।१०७	८५२
ण्वुल्तृचौ	३।१।१३३	७८२
(त)		
तङानावात्मने०	१।४।१००	३८१
तत आगतः	४।३।७४	१०५५
तत्पुरुषे कृति०	६।३।१४	८०५
तत्पुरुषस्या०	५।४।८६	९४१
तत्पुरुषः	२।१।२२	९१२
तत्पुरुषः समाना०	१।२।४२	९२९
तत्प्रकृतवचने०	५।४।२१	११४५
तत्प्रयोजको हे०	१।४।५५	६९३
तत्र जातः	४।३।२५	१०४७
तत्र तस्येव	५।१।११६	१०८८
तत्र भवः	४।३।५३	१०५०
तत्र साधुः	४।४।९८	१०७७
तत्रोद्धृतम०	४।२।१४	१०१५
तत्रोपपदम्०	३।१।९२	९३९
तदधीते०	४।२।५९	१०२३
तदर्हति	५।१।६३	१०८५
तदस्मिन्नस्तीति०	४।२।६७	१०२६
तदस्य संजातम्०	५।२।३६	१०९९
तदस्यास्त्यस्मि०	५।२।९४	१११०
तदोः सः साव०	७।२।१०६	३०२
तद्गच्छति०	४।३।८५	१०५८
तद्धिताः	४।१।७६	९०६
तद्धितश्चासर्व०	१।१।३८।।	३७१
तद्धितार्थोत्तर०	२।१।५१	९२६
तद्धितेष्वचा०	७।२।११७	९२७
तद्राजस्य०	२।४।६२	१००९
तद्वहति रथ०	४।४।७६	१०७४
तनादिकृञ्भ्यः०	३।१।७९	५३६
तनादिकृञ्भ्यः०	३।१।७९	६५८
तनादिभ्यस्त०	२।४।७९	६५९
तनोतेर्यकि	६।४।४४	७५७
तपरस्तत्कालस्य	१।१।७०	४२

सूत्राणि	अध्यायादिः	पृष्ठाङ्काः
तपोऽनुतापे च	३।१।६५	७५७
तयोरेव कृत्य०	३।४।७०	७७३
तरति	४।४।५	१०६८
तरप्तमपौ घः	१।१।२२	११३२
तवकममका०	४।३।३	१०४१
तवममौ ङसि	७।२।९६	३१०
तव्यत्तव्या०	३।१।९६	७७४
तसौ मत्वर्थे	१।४।१९	११११
तस्थस्थमिपाम्०	३।४।१०१	४०१
तस्मान्नुडचि	६।३।७४	९३३
तस्माच्छसोः नः०	६।१।१०३	१४२
तस्मादित्युत्तरस्य	१।१।६७	९२
तस्मान्नुड्०	७।४।७१	४४१
तस्मिन्नणि च०	४।३।२	१०४१
तस्मिन्निति०	१।१।६६	२९
तस्मै हितम्	५।१।५	१०८०
तस्य निवासः	४।२।६९	१०२७
तस्य परमाम्रे०	८।१।२	११३
तस्य पूरणे डट्	५।२।४८	११०४
तस्य भावस्त्व०	५।१।११९	१०८९
तस्य लोपः	१।३।९	७
तस्य विकारः	४।३।१३४	१०६२
तस्य समूहः	४।२।३७	१०२०
तस्यापत्यम्	४।१।९२	९९२
तस्येदम्	४।३।१२०	१०६१
तस्येश्वरः	५।१।४२	१०८४
तान्येकवचन०	१।४।१०२	३८४
तासस्त्यो०	७।४।५०	३९७
तिङश्च	५।३।५६	११३१
तिङस्त्रीणि०	१।४।१०१	३८३
तिङ्शित्सार्व०	३।४।११३	३८७
तितुत्रतथ०	७।२।९	८२९
तिप्तस्झि०	३।४।७८	३८०
तिप्यनस्तेः	८।२।७३	६५२
तिरसस्तिर्यलोपे	६।३।९४	३२१
ति विंशते०	६।४।१४२	११०५
तिष्ठतेरित्	७।४।५	६९८

सूत्राणि	अध्यायादिः	पृष्ठाङ्काः
तीषसह०	७।२।४८	६३०
तुदादिभ्यः शः	३।१।७७	६१५
तुभ्यमह्यौ ङयि	४।२।९५	३०८
तुमुन्ण्वुलौ०	३।३।१०	८३७
तुल्यास्यप्रय०	१।१।९	१६
तुह्योस्तात०	७।१।३५	४००
तृज्वत्क्रोष्टुः	७।१।९५	१९६
तृणह इम्	७।३।९२	६५०
तृतीयादिषु भाषित०	७।१।७४	२५०
तृतीयासप्त०	२।४।८४	८९७
तृतीया तत्कृता०	२।१।३०	९१५
तृन्	३।२।१३५	८२२
तृफलभज०	६।४।१२२	५०७
ते तद्राजाः	४।१।७४	१००९
तेन क्रीतम्	५।१।३७	१०८३
तेन तुल्यम्०	५।१।११५	१०८८
तेन दीव्यति०	४।४।२	१०६७
तेन निर्वृत्तम्	४।२।६८	१०२७
तेन निर्वृत्तम्	५।१।७९	१०८६
तेन प्रोक्तम्	४।३।१०१	१०६०
तेन रक्तं रागात्	४।२।१	१०१२
ते प्राग्धातोः	१।४।८०	४०४
तेमयावेक०	८।१।२२	३१३
तोर्लि	८।४।६०	९१
तोः षि	८।४।४३	८८
तौ सत्	३।२।१२७	८२१
त्यदादिषु०	३।२।६०	३२८
त्यदादीनामः	७।२।१०२	१८४
त्यदादीनि च	१।१।७४	१०३९
त्रिचतुरोः०	७।२।९९	२२५
त्रेस्त्रयः	६।३।४८	९४६
त्रेस्त्रयः	७।१।५३	१८४
त्रेः संप्रसारणं च	५।२।५५	११०७
त्वमावेकवचने	७।२।९७	३०६
त्वामौ द्वितीया०	८।१।२३	३१३
त्वाहौ सौ	७।२।९४	३०३

सूत्राणि	अध्यायादिः,	पृष्ठाङ्काः
(थ)		
थलि च सेटि	६।४।१२१	४३८
थासः से	३।४।८०	४८१
थो न्थः	७।१।८७	२९२
(द)		
दक्षिणापश्चात्०	४।२।९८	१०३७
दण्डादिभ्यो यत्	५।१।६६	१०८६
दधस्तथोश्च	८।२।३८	५८१
दधातेर्हिः	७।४।४२	८१३
दन्त उन्नत०	५।२।१०६	१११५
दयायासश्च	३।१।३७	५०१
दश्च	७।२।१०९	२७४
दश्च	८।२।७५	५३७
दाणश्च सा चे०	१।३।५५	७३९
दादेर्धातोर्घः	८।२।३२	२६०
दाधा घ्वदाप्	१।१।२०	५७९
दाम्नीशस०	३।२।१८२	८२८
दिक्पूर्वपदाद०	४।२।१०७	९२७
दिक्संख्ये संज्ञा०	२।१।५०	९२५
दिगादिभ्यो यत्	४।३।५४	१०५१
दित्यदित्या०	४।१।८५	९८६
दिव उत्	६।१।१३१	२६९
दिव औत्	७।१।८४	२६८
दिवादिभ्यः श्यन्	३।१।६९	५८६
दीङो युडचि०	६।४।६३	५९८
दीपजनबुध०	३।१।६१	६०१
दीर्घ इणः किति	७।४।६९	५४२
दीर्घाज्जसि च	६।१।१०५	१६५
दीर्घोऽकितः	७।४।८३	७११
दीर्घो लघोः	७।४।९४	५००
दीर्घ च	१।४।१२	४२९
दूराद्धूते च	८।२।८४	७२
दृढः स्थूल०	७।२।२०	८१३
दृशेः क्वनिप्	३।२।९४	८०३
दृष्टं साम	४।२।७	१०१४
दो दद्घोः	७।४।४६	८१४
द्युतिस्वाप्योः०	७।४।६७	५०२
द्युद्भ्यो लुङि	१।३।९१	५०३
द्युप्रागपा०	४।२।१०१	१०३७
द्वन्द्वश्च प्राणि०	२।४।२	९७४
द्वन्द्वाच्चुदष०	५।४।१०६	९७५
द्वन्द्वे घि	२।२।३२	९७१
द्विगुरेकवचनम्	२।४।१	९२१
द्विगुश्च	२।१।२३	९१२
द्विगोः	४।१।२१	११६०
द्वितीयाटौस्स्वेनः	२।४।३४	२७८
द्वितीयायां च	७।२।८७	३०६
द्वितीयाश्रिता०	२।१।२४	९१२
द्वित्रिभ्यां तयस्या०	५।२।४३	११०३
द्वित्रिभ्यां ष०	५।४।११५	९६०
द्विर्वचनेऽचि	१।१।५९	४४८
द्विवचनविभ०	५।३।५७	११३३
द्वेस्तीयः	५।२।५४	११०७
द्व्यष्टनः संख्या०	६।३।४७	९४६
द्व्येकयोर्द्विवच०	१।४।२२	१३३
(ध)		
धर्मं चरति	४।४।४१	१०७१
धातोरेकाचो हला०	३।१।२२	७०९
धातोः	३।१।९१	७७१
धातोः कर्मणः०	३।१।७	७०२
धात्वादेः षः सः	६।१।६४	२६३
धान्यानां भवने०	५।२।१	१०९७
धि च	८।२।२५	४८७
धुरो यड्ढकौ	४।४।७७	१०७५
ध्रुवमपायेऽपादा०	१।४।२४	८८२
(न)		
न क्त्वा सेट्	१।२।१८	८५९
न क्रोडादि०	४।१।५६	११७०
नक्षत्रेण युक्तः०	४।२।३	१०१२
नखमुखात्संज्ञा०	४।१।५८	११७०
न गतिहिंसा०	१।३।१५	७३६
न ङिसम्बुद्ध्योः	८।२।८	२७९
नञ्	२।२।६	९३३
नडशादाड्ड्वलच्	४।२।८८	१०३१

सूत्राणि	अध्यायादिः	पृष्ठाङ्काः
न तिसृचतसृ	६।४।४	२२६
नदीभिश्च	२।१।२०	९०५
नद्यादिभ्यो ढक्	४।२।९७	१०३६
नन्दिग्रहि०	३।१।१३४	७८५
नन्द्राः संयोगा०	६।१।३	५५९
न पदान्ताट्टो०	८।४।४२	८७
नपरे नः	८।३।२७	१०२
नपुंसकस्य झलचः	७।१।७२	२४१
नपुंसकाच्च	७।१।१९	२३९
नपुंसका०	५।४।१०९	९०९
नपुंसके भावे०	३।३।११४	८५३
न पूजनात्	५।४।६९	९८०
न भकुर्छुराम्	८।२।७९	६६४
न भकुर्छुराम्	८।२।७९	१०७५
न भूसुधियोः	६।४।८५	१९४
न माङ्योगे	६।४।७४	४१६
न मुने	८।२।३	३३९
नमः स्वस्ति०	२।३।१६	८८१
न यदि	३।२।११३	७७६
न य्वाभ्यां पदा०	७।३।३	१०२३
न लिङि	७।२।३९	६७९
न लुमता०	१।१।६३	१८३
नलापो नञः	६।३।७३	९३३
नलोपः प्राति०	८।२।७	१७७
नलोपः सुप्०	८।२।२	२८०
न विभक्तौ०	१।३।४	१३८
न वृद्धयश्च०	७।२।५९	४०५
न शसदद०	६।४।१२६	५०७
नशेर्वा	८।२।६३	३२९
नश्च	८।३।३०	१०६
नश्छव्यप्रशान्	८।३।७	११०
नश्चापदान्तस्य०	८।३।२४	९८
न षट्स्वस्रादि०	४।१।१०	२३६
न संप्रसारणे०	६।१।३७	२९०
न संयोगाद्वम०	६।४।१३७	२८२
नस्तद्धिते	६।४।१४४	९०८
नहिवृति०	६।३।११६	३३३
नहो धः	८।२।३४	३४३
नाञ्चेः पूजायाम्	६।४।३०	३२२
नादिचि	६।१।१०४	१३७
नान्तादसंख्या०	५।२।४९	११०४
नाभ्यस्तस्याचि०	७।३।८७	५८३
नाभ्यस्ताच्छतुः	७।१।७८	३२६
नामि	६।४।३	१४८
नाव्ययीभावा०	२।४।८३	८९५
निकटे वसति	४।४।७३	१०७३
नित्यवीप्सयोः	८।१।४	८६५
नित्यं करोतेः	६।४।१०८	६६४
नित्यं कौटिल्ये०	३।१।२३	७११
नित्यं ङितः	३।४।९९	४०५
नित्यं वृद्धशरा०	४।३।१४४	१०६४
निपात एका०	१।१।१४	७६
निवासचिति०	३।३।४१	८४१
निष्ठा	२।२।३६	९६६
निष्ठा	३।२।१०२	८०७
निष्ठायां सेटि	६।४।५२	८१२
नीचैरनुदात्तः	१।२।३०	१३
नुम्विसर्जनीय०	८।३।५८	३३२
नृ च	६।४।६	२०८
नृन्पे	८।३।१०	११२
नेटि	७।२।४	४५५
नेड्वशि कृति	७।२।८	७९५
नेदमदसोरकोः	७।१।११	२७७
नेयङुवङ्स्थाना०	१।४।४	२३१
नेर्गदनदपत०	८।४।१७	४३२
नेर्विशः	१।३।१७	७३६
नोपधायाः	६।४।७	२९३
नौवयोधर्म०	४।४।९१	१०७६
नः क्ये	१।४।१५	७२३
(प)		
पङ्क्तिविंशति०	५।१।५९	१०८५
पङ्गोश्च	४।१।६८	११७५
पचो वः	८।२।५२	८१२
पञ्चमी भयेन	२।१।३७	९१८

सूत्राणि	अध्यायादि:,	पृष्ठाङ्का:
पञ्चम्या अत्	७।१।३१	३१०
पञ्चम्यास्तसिल्	५।३।७	११२१
पञ्चम्या: स्तोका०	६।३।२	९१९
पति: समास एव	१।४।८	१८०
पत्यन्तपुरो०	५।१।१२८	१०९५
पथिमथ्यृभु०	७।१।८५	२९१
पदान्तस्य	८।४।३७	१४३
पदान्ताद्वा	६।१।७६	११४
परवल्लिङ्गम्०	२।४।२६	९४७
परश्च	३।१।२	१३२
परस्मैपदानाम्०	३।४।८२	३९१
परिवृतो रथ:	४।२।१०	१०१५
परिव्यवेभ्य:०	१।३।१८	७३६
परेर्मृष:	१।३।८२	७४४
परोक्षे लिट्	३।२।११५	३९१
पर: सन्निकर्ष:०	१।४।१०९	२२
पर्यभिभ्यां च	५।३।९	११२३
पाघ्राध्मास्था०	७।३।७८	४६४
पादस्य लोपो०	५।४।१३८	९६२
पाद: पत्	६।४।१३०	३१६
पिता मात्रा	१।२।७०	९७३
पितृव्यमातुल०	४।२।३६	१०१९
पुगन्तलघूप०	७।३।८६	४२९
पुम: खय्यम्परे	८।३।६	११०
पुव: संज्ञायाम्	३।२।१८५	८३२
पुषादिद्युता०	३।१।५५	४७८
पुंयोगादाख्या०	४।१।४८	११६३
पुंसि संज्ञा०	३।३।११८	८५४
पुंसोऽसुङ्	७।१।८९	३३५
पूर्णाद्विभाषा	५।४।१४९	९६४
पूर्वत्रासिद्धम्	८।२।१	४९
पूर्वपदात्संज्ञा०	८।४।३	११७०
पूर्वपरावर०	१।१।३४	१५८
पूर्ववत्सन:	१।३।६२	७४०
पूर्वादिनि:	५।२।८६	११०८
पूर्वादिभ्यो नव०	७।१।१६	१६०
पूर्वापराधरोत्तर०	२।२।१	९२२
पूर्वोऽभ्यास:	६।१।४	३९२
पृथ्वादिभ्य इ०	५।१।१२२	१०९०
पोरदुपधात्	३।१।९८	७७८
प्रकारवचने थाल्	५।३।२३	११२८
प्रकृत्यैकाच्	६।४।१६३	११३४
प्रज्ञादिभ्यश्च	५।४।३८	११४५
प्रत्ययलोपे०	१।१।६२	१८२
प्रत्ययस्थात्०	७।३।४४	११६४
प्रत्ययस्य लुक्०	१।१।६१	१८२
प्रत्ययोत्तरपद०	७।२।९८	१०४२
प्रत्यय:	३।१।१	१३२
प्रथमचर०	१।१।३३	१६१
प्रथमयो:०	६।१।१०२	१३६
प्रथमानिर्दिष्टम्०	१।२।४३	८९४
प्रथमायाश्च०	७।२।८८	३०४
प्रभवति	४।३।८३	१०५८
प्रमाणे द्वय०	५।२।३७	११००
प्रशस्यस्य श्र:	५।३।६०	११३४
प्रहरणम्	४।४।५७	१०७२
प्राक् क्रीताच्छ:	५।१।१	१०७९
प्राक्कडारात्०	२।१।३	८८९
प्रागिवात् क:	५।३।७०	११३८
प्राग्घिताद्यत्	४।४।७५	१०७४
प्राग्दिश:०	५।३।१	११२१
प्राग्वहतेष्ठक्	४।४।१	१०६७
प्राग्वतेष्ठञ्	५।१।१८	१०८३
प्राचां ष्फ तद्धित:	४।१।१७	११५९
प्राणिस्थादा०	५।२।९६	१११३
प्रातिपदिकार्थ०	२।३।४६	८६७
प्रादय:	१।४।५८	७६
प्राद्वह:	१।३।८१	७४४
प्राप्तापन्ने च०	२।२।४	९४८
प्रायभव:	४।३।३९	१०४९
प्रावृषष्ठप्	४।३।२६	१०४८
प्रावृष एण्य:	४।३।१७	१०४६
प्रियवशे वद:०	३।२।३८	७९४
प्लुतप्रगृह्या०	६।१।१२५	७३

सूत्राणि	अध्यायादि:,	पृष्ठाङ्का:
प्वादीनां ह्रस्वः	७।३।८०	६७८
(ब)		
बहुगणवतु०	१।१।२३	१८१
बहुवचने झ०	७।३।१०३	१४६
बहुवचनस्य०	८।१।२१	३१३
बहुव्रीहौ०	५।४।११३	९५३
बहुषु बहुवचनम्	१।४।२१	१३८
बहोर्लोपो०	६।४।१५८	११३६
बह्वल्पार्था०	५।४।४२	११४६
बह्वादिभ्यश्च	४।१।४५	११६२
बाह्वादिभ्यश्च	४।१।९६	९९८
ब्रुव ईट्	७।३।९३	५५५
ब्रुवो वचिः	२।४।५३	५५६
ब्रुवः पञ्चा०	३।४।८४	५५५
(भ)		
भञ्जेश्च चिणि	६।४।३३	७५९
भवतेर:	७।४।७३	३९३
भस्य टेर्लोपः	७।१।८८	२९२
भावकर्मणोः	१।३।१३	७४७
भावे	३।३।१८	८४०
भिक्षादिभ्योऽण्	४।२।३८	१०२०
भिक्षासेना०	३।२।१७	७९१
भियोऽन्यतरस्याम्	६।४।११५	५६८
भीह्रीभृहु०	३।१।३९	५६५
भुजोऽनवने	१।३।६६	६५५
भुवो वुक्०	६।४।८८	३९१
भूवादयो धातवः	१।३।१	५९
भूसुवोस्तिङि	७।३।८८	४१५
भृञामित्	७।४।७६	५७६
भोज्यं भक्ष्ये	७।३।६९	७८१
भोभगोअघो०	८।३।१७	१२०
भ्यसोऽभ्यम्	७।१।३०	३०९
भ्रस्जो रोपध०	६।४।४७	६१८
भ्राजभास०	३।२।१७७	८२५
(म)		
मघवा बहुलम्	६।४।१२८	२८७
मध्यान्मः	४।३।८	१०४४
मनः	३।२।८२	८०१
मय उञो वो वा	८।३।३३	७८
मयट् च	४।३।८२	१०५७
मयड्वैत०	४।३।१४३	१०६३
मस्जिनशोर्झलि	७।१।६०	५९६
माङि लुङ्	३।३।१७५	४१४
मातुरुत्संख्या०	४।१।११५	१००२
मादुपधायाश्च०	८।२।९	१०३०
मितां ह्रस्वः	६।४।९२	६९१
मिदचोऽन्त्या०	१।१।४७	२४१
मीनातिमिनो०	६।१।५०	५९८
मुखनासिका०	१।१।८	१४
मृजेर्विभाषा	३।१।११३	७७९
मृजेर्वृद्धिः	७।२।११४	७८०
मेर्निः	३।४।८९	४०३
मोऽनुस्वारः	८।३।२३	९८
मो नो धातोः	८।२।६४	२७१
मो राजि समः०	८।३।२५	१००
म्रियतेर्लुङ्०	१।३।६१	६४१
म्वोश्च	८।२।६५	८१८
(य)		
यङोऽचि च	२।४।७४	७१६
यङो वा	७।३।९४	७१८
यचि भम्	१।४।१८	१६७
यजयाच०	३।३।९०	८४४
यञञोश्च	२।४।६४	९९५
यञश्च	।१।१६	११५८
यञिञोश्च	४।१।१०१	९९७
यत्तदेतेभ्यः०	५।२।३९	१०००
यथासंख्यमनु०	१।३।१०	३९
यमरमनमा०	७।२।७३	४६९
यरोऽनुना०	८।४।४५	९०
यस्मात्प्रत्यय०	१।४।१३	१३९
यस्य हलः	६।४।४९	७११
यस्येति च	६।४।१४८	२४०
याडापः	७।३।११३	२१६
यासुट् पर०	३।४।१०३	४०८

सूत्राणि	अध्यायादिः,	पृष्ठाङ्काः
युजेरसमासे	७।१।७१	२९७
युवावौ द्विव०	७।२।९२	३०४
युवोरनाकौ	७।१।१	७८२
युष्मदस्मदोः षष्ठी०	८।१।२०	३१२
युष्मदस्मदोरना०	७।२।८६	३०८
युष्मदस्मद्भ्याम्०	७।१।२७	३१०
युष्मदस्मदोरन्य०	४।३।१	१०४१
युष्मद्युपपदे०	१।४।१०५	३८५
यूनस्तिः	४।१।७७	११७७
यूयवयौ जसि	७।२।९३	३०५
यू स्त्र्याख्यौ०	१।४।३	१८६
ये च	६।४।१०९	६६५
ये चाभाव०	६।४।१८६	१००५
ये विभाषा	६।४।४३	६६०
योऽचि	७।२।८९	३०७
यः सौ	७।२।११०	३४५
	(र)	
र ऋतो०	६।४।१६१	१०९१
रक्षति	४।४।३३	१०७०
रदाभ्यां नि०	८।२।४२	८०८
रधादिभ्यश्च	७।२।४५	५९५
रलो व्युप०	१।२।२६	८६०
रषाभ्याम्०	८।४।१	२७०
राजदन्तादिषु०	२।२।३१	९७१
राजनि युधि क०	३।२।९५	८०४
राजश्वशुराद्यत्	४।१।१३७	१००५
राजाहः सखि०	५।४।९१	९४४
रात्राह्नाहाः०	२।४।२९	९४२
रात्सस्य	८।२।२४	२००
रायो हलि	७।२।८५	२११
राल्लोपः	६।४।२१	८२५
राष्ट्रावार०	४।२।९३	१०३४
रिङ् शयग्०	७।४।२८	५११
रि च	७।४।५१	३९७
रीगृदुपधस्य च	७।४।९०	७१२
रीङ् ऋतः	७।४।२७	१०१८
रुधादिभ्यः श्नम्	३।१।७८	६४४

सूत्राणि	अध्यायादिः,	पृष्ठाङ्काः
रेवत्यादिभ्य०	४।१।१४६	१००७
रोऽसुपि	८।२।६९	१२१
रो रि	८।३।१४	१२२
रोः सुपि	८।३।१६	२७१
र्वोरुपधायाः	८।२।७६	३३१
(ल)		
लङः शाकटा०	३।४।१११	५३२
लटः शतृ०	३।२।१२४	८१८
लट् स्मे	३।२।११८	७६७
लशक्वतद्धिते	१।३।८	१४१
लिङाशिषि	३।४।११६	४११
लिङः सीयुट्	३।४।१०२	४९०
लिङः सलोपो०	७।२।७९	४०९
लिङ्निमित्ते०	३।३।१३९	४१७
लिङ्सिचा०	१।२।११	५५०
लिङ्सिचो०	७।२।४२	६७९
लिटस्तझयो०	३।४।८१	४८४
लिटि धातो०	६।१।८	३९२
लिटः कानज्वा	३।२।१०६	८१७
लिट् च	३।४।११५	३९४
लिट्यन्यतर०	२।४।४०	५२२
लिट्यभ्यास०	६।१।१७	५१६
लिपिसिचि०	३।१।५३	६२६
लुग्वा दुह०	७।३।७३	५५१
लुङि च	२।४।४३	५२९
लुङ्	३।२।११०	४१३
लुङ्लङ्लृङ्०	६।४।७१	४०६
लुङ्सनोर्घस्लृ	२।४।३७	५२५
लुटः प्रथमस्य०	२।४।८५	३९६
लुपि युक्तवद्०	१।२।५१	१०२८
लुबविशेषे	४।२।४	१०१३
लृटः सद्वा	३।३।१४	८२१
लृट् शेषे च	३।३।१३	३९८
लोट् च	३।३।१६२	३९९
लोटो लङ्वत्	३।४।८५	४०१
लोपश्चास्यान्य०	६।४।१०७	४७३
लोपि यि	६।४।११८	५७६

सूत्राणि	अध्यायादिः,	पृष्ठाङ्काः
लोपो व्योर्वलि	६।१।६६	४०९
लोपः शाक०	८।३।१९	४९
लोमादि०	५।२।१००	१११३
लः कर्मणि च०	३।४।६९	३७६
लः परस्मैपदम्	१।४।९९	३८१
ल्युट् च	३।३।११५	८५३
ल्वादिभ्यः	८।२।४४	८१०
	(व)	
वच् उम्	७।४।२०	५५७
वचिस्वपि०	६।१।१५	५१६
वदव्रजहलन्त०	७।२।३	४४२
वयसि प्रथमे	४।१।२०	११६०
वरणादिभ्यश्च	४।२।८२	१०२९
वर्गान्ताच्च	४।३।६३	५०५४
वर्णदृढादिभ्यः	५।१।१२३	१०९३
वर्णादनुदात्तात्तो०	४।१।३९	११६१
वर्तमानसामी०	३।३।१३१	७६७
वर्तमाने लट्	३।२।१२३	३७९
वर्षाभ्वश्च	६।४।८४	२०५
वसुस्त्रंसु०	८।२।७२	२६६
वसोः सम्प्र०	६।४।१३१	३३३
वाचो ग्मिनिः	५।२।१२४	१११९
वा जृभ्रमु०	६।४।१२४	५९०
वा द्रुहमुह०	८।२।३३	२६२
वा नपुंसकस्य	७।१।७९	३६२
वान्तो यि प्रत्यये	७।१।७९	४१
वान्यस्य संयो०	६।४।६८	४६८
वा पदान्तस्य	८।४।५९	१००
वा बहूनाम्०	५।३।९३	११४२
वा भ्राश०	३।१।७०	४६२
वामदेवाड्ड्य०	४।२।९	१०१४
वामि	१।४।५	२३२
वाम्शसोः	६।४।८०	२३०
वाय्वृतुपित्रु०	४।२।३१	१०१८
वाऽवसाने	८।४।५६	१४७
वा शरि	८।३।३६	११७
वा सरूपो०	३।१।९४	७७१

सूत्राणि	अध्यायादिः;	पृष्ठाङ्काः
वाह ऊठ्	६।४।१३२	२६४
विज इट्	१।२।२	६४२
विड्वनोरनु०	६।४।४१	७९६
विदाङ्कुर्व०	३।१।४१	५३५
विदेः शतु०	७।१।३६	८२०
विदो लटो वा	३।४।८३	५३४
विद्यायोनि०	४।३।७७	१०५६
विधिनिमन्त्र०	३।३।१६१	४०८
विन्मतोर्लुक्	५।३।६५	११३७
विपराभ्यां जेः	१।३।१९	७३७
विप्रतिषेधे०	१।४।२	१२३
विभक्तिश्च	१।४।१०४	१३८
विभाषा घ्राधेट्०	२।४।७८	५९२
विभाषा ङिश्योः	६।४।१३६	२५०
विभाषा चिण्णमु०	७।१।६९	७५९
विभाषा चेः	७।३।५८	६०९
विभाषा तृतीया०	७।१।९७	१९९
विभाषा दिक्०	१।१।२८	२२०
विभाषा लुङ्०	२।४।५०	५४७
विभाषा साति ०	५।४।५२	११४९
विभाषा सुपो०	५।३।६८	११३८
विभाषेटः	८।३।७९	४९७
विभाषोर्णोः	१।२।३	५५९
विरामो०	१।४।११०	१३४
विशेषणं विशे०	२।१।५७	९३०
विश्वस्य वसु०	६।३।१२८	३००
विसर्जनीय०	८।३।३४	१११
विसर्जनीय०	८।३।३४	११७
वृद्धाच्छः	४।२।११४	१०३९
वृद्धिरादैच्	१।१।१	५१
वृद्धिरेचि	६।१।८८	५२
वृद्धिर्यस्याचा०	१।१।७३	१०३९
वृद्भ्यः स्यसनोः	१।३।९२	५०५
वृतो वा०	७।२।३८	५७२
वेरपृक्तस्य	६।१।६७	२९६
वोतो गुण०	४।१।४४	११६२
व्याङ्परि०	१।३।८३	७४५

सूत्राणि	अध्यायादिः,	पृष्ठाङ्काः	सूत्राणि	अध्यायादिः,	पृष्ठाङ्काः
व्रश्चभ्रस्ज०	८।२।३६	२९९	शेषो बहु०	२।२।२३	९५९
व्रीहिशाल्योर्ढक्	५।२।२	१०९७	श्नसोरल्लोपः	६।४।१११	५३८
व्रीह्यादिभ्यश्च	५।२।११६	१११७	श्नान्नलोपः	६।४।२३	६५१
	(श)		श्नाभ्यस्तयोरातः	६।४।११२	५७४
शदेः शितः	१।३।६०	६३७	श्रुवः शृ च	३।१।७४	४७२
शप्श्यनोर्नित्यम्	।१।८१	३६४	श्रोत्रियंश्छ०	५।२।८४	११०७
शब्ददर्दुरं क०	४।४।३४	१०७०	श्र्युकः किति	७।२।११	६१२
शब्दवैरकलहा०	३।१।१७	७३०	श्लौ	६।१।१०	५६४
शरीरावयवाच्च	४।३।५५	१०५१	श्वयुवमघोना०	६।४।१३३	२८९
शरीरावयवा०	५।१।६	१०८१		(ष)	
शरोऽचि	८।४।४९	२७१	षट्कतिकति०	५।२।५१	११०६
शर्पूर्वाः खयः	७।४।६१	६१०	षट्चतुर्भ्यश्च	७।१।५५	२७०
शल इगुप०	३।१।४५	५५१	षड्भ्यो लुक्	७।१।२२	१८२
शश्छोऽटि	८।४।६३	९७	षढोः कः सि	८।२।४१	५१७
शसो न	७।१।२९	३०६	षष्ठी	२।२।८	९२१
शात्	८।४।४४	८५	षष्ठी शेषे	२।३।५०	८८३
शार्ङ्गरवा०	४।१।७३	११७६	षिद्गौरादिभ्यश्च	४।१।४१	११५१
शास इदङ्०	६।४।३४	७७९	षः प्रत्ययस्य	१।३।६	८३२
शासिवसि०	८।३।६०	५२२	ष्टुना ष्टुः	८।४।४१	८६
शिखाया वलच्	४।२।८९	१०३१	ष्णान्ता षट्	१।१।२४	२९३
शि तुक्	८।३।३१	१०६	(स)		
शिल्पम्	४।४।५५	१०७१	सख्युरसम्बुद्धौ	७।१।९२	१७७
शिवादिभ्योऽण्	४।१।११२	१०००	सख्युर्यः	५।१।१२६	१०९४
शि सर्वनाम०	१।१।४२	२४०	सत्यापपाश०	३।१।२५	६८५
शीङो रुट्	७।१।६	५४५	स नपुंसकम्	२।४।१७	९२९
शीङः सार्व०	७।४।२१	५४४	सनाद्यन्ता धा०	३।१।३२	४४४
शीलम्	४।४।६१	१०७२	सनाशंस०	३।२।१६८	८२४
शुक्राद्घन्	४।२।२६	१०१७	सनि ग्रहगुहोश्च	७।२।१२	७०७
शुषः कः	८।२।५१	८११	सन्यङोः	६।१।९	७०३
शृदृप्रां ह्रस्वः०	७।४।१२	५७१	सन्यतः	७।४।७९	४९९
शे मुचादी०	७।१।५९	६२३	सन्वल्लघु०	७।४।९३	४९९
शेषात्कर्तरि०	१।३।७८	३८३	सपूर्वाच्च	५।२।८७	११०८
शेषाद्विभाषा	५।४।१५४	९६७	सप्तमी शौण्डैः	२।१।४०	९२४
शेषे	४।२।९२	१०३३	सप्तमीविशेषणे०	२।२।३५	९५२
शेषे प्रथमः	१।४।१०८	३८६	सप्तम्यधिकरणे च	२।३।३६	८८५
शेषे लोपः	७।२।९०	३०४	सप्तम्यास्त्रल्	५।३।१०	११२४
शेषो घ्यसखि	१।४।७	१७१	सप्तम्यां जनेर्डः	३।२।९७	८०५

सूत्राणि	अध्यायादिः,	पृष्ठाङ्काः	सूत्राणि	अध्यायादिः,	पृष्ठाङ्काः
सभायाः यः	४।४।१०५	१०७७	सिचि च पर०	७।२।४०	५७३
समर्थः पदविधिः	२।१।१	८८९	सिचि वृद्धिः पर०	७।२।१	४६१
समर्थानां प्रथमा०	४।१।८२	९८३	सिजभ्यस्त०	३।४।१०९	४२७
समवप्रविभ्यः०	१।३।२२	७३७	सिपि धातो रुर्वा	८।२।७४	६५२
समवाये च	६।१।१३८	६६६	सुट् तिथोः	३।४।१०७	४९२
समस्तृतीया०	१।३।५४	७३९	सुडनपुंसकस्य	१।१।४३	१६६
समानकर्तृक०	३।४।२१	८५८	सुप आत्मनः०	३।१।८	७२१
समासेऽनञ्पूर्वे०	७।१।३७	८६२	सुपि च	७।३।१०२	१४४
समाहारः स्व०	१।२।३१	१३	सुपो धातु०	२।४।७१	७२२
समः समि	६।३।९३	३१९	सुपः	१।४।१०३	१३३
समः सुटि	८।३।५	१०८	सुप्तिङन्तं पदम्	१।४।१४	२४
सरूपाणमेक०	१।२।६४	१३६	सुप्यजातौ०	३।२।७८	८००
सर्वत्र विभा०	६।१।१२२	६९	सुहृद्दुर्हृदौ मित्रा०	५।४।१५०	९६४
सर्वनामस्थाने०	६।४।८	१७६	सृजिदृशो०	६।१।५८	६०३
सर्वनाम्नः स्मै	७।१।१४	१५४	सेऽसिचि०	७।२।५७	५८९
सर्वनाम्नः स्याड्०	७।३।११४	२१९	सेर्ह्यपिच्च	३।४।८७	४०२
सर्वभूमिपृथिवी०	५।१।४१	१०८४	सोऽचि लोपे०	६।१।१३४	१२६
सर्वस्य सोऽन्य०	५।३।६	११२६	सोऽस्य निवासः	४।३।८९	१०६०
सर्वादीनि०	१।१।२७	१५२	सोऽपदादौ	८।३।३८	१६५
सर्वैकान्य०	५।३।१५	११२६	सोमाट्ट्यण्	४।२।३०	१०१७
सवाभ्याम्०	३।४।९१	४८८	सौ च	६।४।१३	२८४
ससजुषो रुः	८।२।६६	११८	संख्यापूर्वो०	२।१।५२	९२९
सह सुपा	२।१।४	९९०	संख्याया अव०	५।२।४२	११०२
सहस्य सध्रिः	६।३।९५	३२०	संख्यासुपूर्वस्य	५।४।१४०	९६२
सहिवहो०	६।३।११२	५११	संपरिभ्यां क०	६।१।१३७	६६६
सहे च	३।२।९६	८०४	संबुद्धौ च	७।३।१०६	२१५
सहेः साडः सः	८।३।५६	२६७	संबुद्धौ शाक०	१।१।१६	७८
सात्पदाद्योः	८।३।१११	११४९	सम्बोधने च	२।३।४७	८७१
साधकतमं क०	१।४।४२	८७९	संभूते	४।३।४१	१०४९
सान्तमहतः	६।४।१०	३२३	संप्रसारणाच्च	६।१।१०८	२६४
साम आकम्	७।१।३३	३११	संयोगादेरातो०	८।२।४३	८०९
सायंचिरम्प्राह्णे०	४।३।२३	१०४६	संयोगान्तस्य लोपः	८।२।२३	३३
सार्वधातुकमपित्	१।२।४	४७२	संयोगे गुरु	१।४।११	४२८
सार्वधातु०	७।३।८४	३८८	संसृष्टे	४।४।२२	१०६९
सार्वधातुके यक्	३।१।६७	७४७	संस्कृतम्	४।४।३	१०६८
सावनडुहः	७।१।८२	२६५	संस्कृतं भक्षाः	४।२।१६	१०१६
साऽस्य देवता	४।२।२४	१०१६	संहितशफलक्षण०	४।१।७०	११७५

सूत्राणि	अध्यायादिः	पृष्ठाङ्काः
सः स्यार्धधातुके	७।४।४९	७०५
स्कोः संयोगा०	८।२।२९	३०१
स्तन्भुस्तुन्भु०	३।१।८२	६७४
स्तन्भेः	८।३।६७	६७६
स्तुसुधुञ्भ्यः०	७।२।७२	६०८
स्तोकान्तिक०	२।१।३९	९९९
स्तोः श्चुना श्चुः	८।४।४०	८४
स्त्रियाम्	४।१।३	११५३
स्त्रियां च	७।१।९६	२३३
स्त्रियां क्तिन्	३।३।९४	८४६
स्त्रियाः	६।४।७९	२३०
स्त्रियाः पुंवद्भा०	६।३।३४	९५५
स्त्रीपुंसाभ्याम्०	४।१।८७	९९१
स्त्रीभ्यो ढक्	४।१।१२०	१००३
स्थाघ्वोरिच्च	१।२।१७	५८०
स्थानिवदा०	१।१।५६	१४५
स्थानेऽन्तरतमः	१।१।५०	३०
स्पृशोऽनुदके०	३।२।५८	३३०
स्फुरतिस्फु०	८।३।७६	६३२
स्मोत्तरे लङ् च	३।३।१७६	४१४
स्यतासी०	३।१।३३	३९६
स्यसिच्सी०	६।४।६२	७४९
स्वतन्त्रः कर्ता	१।४।५४	६९३
स्वतन्त्रः कर्ता	१।४।५४	८७९
स्वपो नन्	३।३।९१	८४५
स्वमज्ञाति०	१।१।३५	१५९
स्वमोर्नपुं०	७।१।२३	२४६
स्वरतिसूति०	७।२।४४	४५३
स्वरादिनिपात०	१।१।३७	३६८
स्वरितञितः०	१।३।७२	३८२
स्वाङ्गाच्चोप०	४।१।५४	११६८
स्वादिभ्यः०	३।१।७३	६०६
स्वादिष्वसर्व०	१।४।१७	१६६
स्वौजसमौट्०	४।१।२	१३१
	(ह)	
ह एति	७।४।५२	४८७
हनो वध०	२।४।४२	५२९
हन्तेर्जः	६।४।३६	५२७
हलदन्तात्सप्त०	६।३।९	९५२
हलन्ताच्च	१।२।१०	७४०
हलन्त्यम्	१।३।३	५
हलश्च	३।३।१२१	८५५
हलस्तद्धितस्य	६।४।१५०	११५८
हलादिः शेषः	७।४।६०	३९२
हलि च	८।२।७७	५७०
हलि लोपः	७।२।११३	२७५
हलि सर्वेषाम्	८।३।२२	१२१
हलोऽनन्तराः०	१।१।७	२३
हलो यमां यमि०	८।४।६४	१८७
हलः	६।४।२	८१०
हलः श्नः शा०	३।१।८३	६७५
हल्ङ्याब्भ्यो०	६।१।६८	१७६
हशि च	६।१।११४	११९
हिनुमीना	८।४।१५	६७३
हिंसायाम्०	६।१।१४१	६३८
हुझल्भ्यो०	६।४।१०१	५२३
हुश्नुवोः सार्व०	६।४।८७	४७३
हेतुमनुष्ये०	४।३।८१	१०५७
हेतुहेतुमतो०	३।३।१५६	७६८
हेतुमति च	३।१।२६	६९४
हे मपरे वा	८।३।२६	१०१
हैयङ्गवीनम्०	५।२।२३	१०९८
हो ढः	८।२।३१	२५७
हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु	७।३।५४	२८५
ह्म्यन्तक्षण०	७।२।५	४४३
ह्रस्वनद्यापो०	७।१।५४	१४८
ह्रस्वस्य गुणः	७।३।१०८	१७१
ह्रस्वस्य पिति०	६।१।७१	७७९
ह्रस्वादङ्गात्	८।२।२७	५१३
ह्रस्वो नपुंस०	१।२।४७	२४५
ह्रस्वं लघु	१।४।१०	४२८
ह्रस्वः	७।४।५९	३९३

इति लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थसूत्राणामकारादिवर्णानुक्रमः।

अथ लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थवार्तिकानामकारादिक्रमेण सूची

१. अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम् ५४
२. अडभ्यासव्यवायेऽपि० ६३८
३. अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे० १३५
४. अधर्माच्चेति वक्तव्यम् १०७१
५. अध्यात्मादेष्ठञिष्यते १०५१
६. अध्वपरिमाणे च ४१
७. अनाम्नवतिनगरीणामिति० ८७
८. अन्तश्शब्दस्याङ्किविधिणत्वे० ४०४
९. अन्येभ्योऽपि दृश्यते १११५
१०. अन्वादेशे नपुंसके० ३५२
११. अभूततद्भाव इति० ११४७
१२. अमेहक्वतसित्रेभ्य एव० १०३८
१३. अर्णसो लोपश्च १११५
१४. अर्थेन नित्यसमासो० ९१६
१५. अर्यक्षत्रियाभ्यां वा० ११६५
१६. अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे० १३७
१७. अवारपारद्विगृहीतादपि० १०३४
१८. अव्ययानां भमात्रे टिलोपः १०४५
१९. अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति० ११४८
२०. अश्मनो विकारे टिलोपो० १०६२
२१. अस्य सम्बुद्धौ वानङ् ३३५
२२. नलोपश्च वा वाच्यः ३३५
२३. अह्नः खः क्रतौ १०२१
२४. आचार्यादणत्वं च ११६५
२५. आद्यादिभ्यस्तसेरुप० ११४६
२६. इर इत्संज्ञा वाच्या ५८१
२७. इवेन समासो विभ-० ८९०
२८. ईकक् च ९८७
२९. उपसर्गविभक्तिस्वर० ३६९
३०. ऊर्णोतेराम्नेति वाच्यम् ५५८
३१. ऋते च तृतीयासमासे ५४
३२. ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्य० १६
३३. ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् २०५
३४. ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठा० ८४६
३५. एकतरात्प्रतिषेधो वक्तव्यः २४४
३६. एकवाक्ये युष्मदस्मदादेशा० ३१४
३७. एतदोऽपि वाच्यः ११२१
३८. एते वान्नावादयो० ३१४
३९. ओकारसकारभकारादौ० ११३९
४०. औङः श्यां प्रतिषेधो० २४०
४१. कमेश्च्लेश्चङ् वाच्यः ५००
४२. कम्बोजादिभ्य इति ० १०१०
४३. कास्यनेकाच आम्० ४४५
४४. क्ङिति रमागमं बाधित्वा० ६१८
४५. क्विन्नपीष्यते ८४६
४६. कृदिकारादक्तिनः ११६२
४७. केलिमर उपसंख्यानम् ७७४
४८. क्विब्वचिप्रच्छ्यायत० ८२५
४९. गजसहायाभ्यां चेति० १०२१
५०. गतिकारकेतरपूर्वपदस्य० ११३
५१. गुणवचनेभ्यो मतुपो० ११११
५२. गोरजादिप्रसङ्गे यत् ९८८
५३. घञर्थे कविधानम् ८४२
५४. ङावुत्तरपदे प्रतिषेधो० २७१
५५. चयो द्वितीयाः शरि० १०३
५६. छत्वममीति वाच्यम् ९७
५७. डाचि विवक्षिते द्वे० ११५०
५८. तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि० १०१२
५९. तीयस्य ङित्सु वा १६१
६०. त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम् १०३८
६१. दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गत्व० ४०४
६२. दृन्करपुनः पूर्वस्य भुवो० २०५
६३. देवाद्यञञौ ९८७
६४. द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे० ९२७
६५. द्विगुप्राप्तापन्नालम्पूर्वगति० ९४७
६६. द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः १८४
६७. धर्मादिष्वनियमः ९७१
६८. नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुण० ११५५

६९. नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो० ९५२
७०. न समासे ८०
७१. नित्यमाम्रेडिते डाचीति० ११५०
७२. निरादयः क्रान्ताद्यर्थे० ९३७
७३. नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो० २००
७४. नृनरयोर्वृद्धिश्च ११७६
७५. पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे ० ९३७
७६. पाण्डोर्ड्यण् १००७
७७. पालकान्तान्न ११६३
७८. पूरोरण् वक्तव्यः १००७
७९. प्रत्यये भाषायां नित्यम् ९०
८०. प्रथमलिङ्गग्रहणं च १८६
८१. प्रवत्सतरकम्बलवसनार्ण० ५४
८२. प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया ९३५
८३. प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो ९५२
८४. प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु ५४
८५. बहिषष्टिलोपो यञ्च ९८७
८६. भस्याढे तद्धिते १०२०
८७. मत्स्यस्य ङ्याम् ११७१
८८. मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्वाच्यः ६३२
८९. मातुलोपाध्याययोरानुग्वा ११६५
९०. मूलविभुजादिभ्यः कः ७८९
९१. यणः प्रतिषेधो वाच्यः ३३
९२. यवलपरे यवला वा १०१
९३. यवनाल्लिप्याम् ११६५
९४. यवाद्दोषे ११६५
९५. योपधप्रतिषेधेह्यगवय० ११७१
९६. राज्ञो जातावेवेति वाच्यम् १००५
९७. लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो ९९८
९८. वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा० १०३९
९९. वुग्युटावुवङ्यणोः० ५९८
१००. वृद्धयौत्वतृज्वद्भाव० २४६
१०१. शकन्ध्वादिषु पररूपं ० ६१
१०२. शाकपार्थिवादीनां० ९३१
१०३. शे तृम्फादीनां नुम्वाच्यः ६३०
१०४. श्वशुरस्योकाराकार० ११७५
१०५. समाहारे चायमिष्यते ९०५
१०६. सङ्ख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम् ९४२
१०७. सम्पदादिभ्यः क्विप् ८४६
१०८. संपुंकानां सो वक्तव्यः १०९
१०९. सर्वप्रातिपदिकेभ्यः० ७२६
११०. सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे० ९२६
१११. सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके ११६२
११२. सर्वप्रातिपदिकेभ्यः० ११४४
११३. सामान्ये नपुंसकम् ९५०
११४. सिज्लोप एकादेशे ० ४२६
११५. सूर्याद्देवतायां चाप्० ११६४
११६. सूर्यागस्त्ययोश्छे च ० ११६४
११७. स्थाघ्वोरित्त्वे दीङः० ५९८
११८. स्पृशमृशकृषतृपदृपां० ६२१
११९. हिमारण्ययोर्महत्त्वे ११६५

।।इति लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थ-वार्तिकानामकारादिवर्णानुक्रमः।।

लघुकौमुदीस्थधातूनामकारादिवर्णक्रमेण-सूची

(अ)

अत सातत्यगमने भ्वा.प.से. ४१७
अद भक्षणे अ.प.अ. ५२१
अञ्जू व्यक्त्यादिषु रु.प.वे. ६५२
अय गतौ भ्वा.आ.वे. ५००
अर्च पूजायाम् भ्वा.प.से. ४३९
अश भोजने क्र्या.प.से. ६८१
अस भुवि अ.प.से. ५३७

(इ)

इङ् अध्ययने अ.आ.अ. ५४५
इण् गतौ अ.प.अ. ५४०
(ञि)इन्धी दीप्तौ रु.आ.से. ६५५
इषु इच्छायाम् तु.प.अ. ६३०

(उ)

उछि उञ्छे तु.प.से. ६२७
उज्झ उत्सर्गे तु.प.से. ६२७
उन्दी क्लेदने रु.प.से. ६५२

(ऊ)

ऊर्णुञ् आच्छादने अ.उ.से. ५५७

(ऋ)

ऋच्छ गतीन्द्रिय० तु.प.से. ६२७

(ए)

एध वृद्धौ भ्वा.आ.से. ४८०

(क)

कटे वर्षावरणयोः भ्वा.प.से. ४४२
कण्डूञ् गात्रविघर्षणे ७३३
कथ वाक्यप्रबन्धे चु.प.से. ६८७
कमु कान्तौ भ्वा.आ.से. ४९३
कुट कौटिल्ये तु.प.से. ६३०
कुष निष्कर्षे क्र्या.प.से. ६८१
(डु)कृञ् करणे त.उ.अ. ६६१
कृती छेदने तु.प.से. ६२७
कृती वेष्टने रु.प.से. ६४५
कृष विलेखने तु.उ.से. ६१८
कॄ विक्षेपे तु.प.से. ६३७
कॄञ् हिंसायाम् क्र्या.उ.से. ६७९
क्नूञ् शब्दे कया.उ.से. ६७६
क्रमु पादविक्षेपे भ्वा.प.से. ४६१
(डु)क्रीञ् द्रव्य० क्र्या.उ.अ. ६७०
क्षणु हिंसायाम् त.उ.से. ६६१
क्षि क्षये भ्वा.प.अ. ४४५
क्षिणु हिंसायाम् त.उ.से. ६६१
क्षुदिर् संपेषणे रु.उ.अ. ६४५
क्षुभ संचलने भ्वा.प.से. ५०३
(ञि)क्ष्विदा स्ने० भ्वा.आ.से. ५०३

(ख)

खिद परिघाते तु.प.से. ६२७
ख्या प्रकथने अ.प.अ. ५३२

(ग)

गण संख्याने चु.उ.से. ६८७
गद व्यक्तायां वाचि भ्वा.प.से. ४३०
गम्लृ गतौ भ्वा.प.से. ४७५
गुपू रक्षणे भ्वा.प.से. ४४३
गॄ निगरणे तु.प.से. ६३८
ग्रह उपादाने क्र्या.उ.से. ६७९
ग्लै हर्षक्षये भ्वा.प.अ. ४६७

(घ)

घट चेष्टायाम् ण्यन्त ६९८
घुट परिवर्तने भ्वा.आ.से. ५०३

(च)

चिञ् चयने स्वा.उ.अ. ६०८
चिती संज्ञाने भ्वा.प.से. ४३०
चुर स्तये चु.उ.से. ६८५

(छ)

छिदिर् द्वैधीकरणे रु.प.अ. ६४५
(उ)छृदिर् दीप्तिदेव० रु.उ.से ६४५
छो छेदने दि.प.अ. ५९२

(ज)

जनी प्रादुर्भावे दि.आ.से. ५९८

जुषी प्रीतिसेवनयोः तु.आ.से. ६४१
ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च ण्यन्त ६९९
ज्ञा अवबोधने क्र्या.प.अ. ६८१

(ड)

डीङ् विहायसा गतौ दि.आ.से. ५९८

(ण)

णद अव्यक्ते शब्दे भ्वा.प.से. ४३५
णभ हिंसायाम् भ्वा.आ.से. ५०३
णश अदर्शने दि.प.से. ५९३
णह बन्धने दि.उ.अ. ६०३
णिजिर् शौचपोषणयोः जु.उ.अ. ५८१
णीञ् प्रापणे भ्वा.उ.अ. ५१३
णुद प्रेरणे तु.प.अ. ६१५
णू स्तवने तु.प.से. ६३२

(त)

तञ्चू संकोचने रु.प.से. ६५३
तनु विस्तारे त.उ.से. ६५८
तप सन्तापे भ्वा.प.अ. ४६१
तुद व्यथने तु.उ.अ. ६१५
तुभ हिंसायाम् भ्वा.आ.से. ५०३
तृणु अदने त.उ.से. ६६१
(उ)तृदिर् हिंसा० रु.उ.अ. ६४५
तृप, तृम्फ तृप्तौ तु.प.से. ६३०
तृह हिंसायाम् रु.प.से. ६४५
त्रपूष् लज्जायाम् भ्वा.आ.से. ५०७
त्रसी उद्वेगे दि.प.से. ५८९

(द)

दद दाने भ्वा.आ.से. ५०५
(डु)दाञ् दाने जु.उ.अ. ५७६
दाप् लवने अ.प.अ. ५३२
दिवु क्रीडादिषु दि.प.से. ५८६
दिह उपचये अ.उ.अ. ५५२
दीङ् क्षये दि.आ.से ५९६
दीपी दीप्तौ दि.आ.से. ६०१
दुह प्रपूरणे अ.उ.अ. ५४७
दूङ् परितापे दि.आ.से. ५९६
दोऽवखण्डने दि.प.अ. ५९२
द्युत दीप्तौ भ्वा.अ.से. ५०१
द्रा कुत्सायां गतौ अ.प.अ. ५३२
द्रूञ् हिंसायाम् क्र्या.उ.से. ६७६

(ध)

(डु)धाञ् धारणपो० जु.उ.अ. ५८०
धूञ् कम्पने स्वा.उ.से. ६११
धूञ् कम्पने क्र्या.उ.से. ६७९
धृञ् धारणे भ्वा.उ.अ. ५१३
ध्वंसु अवस्रंसने० भ्वा.आ.से. ५०३

(न)

(टु)नदि समृद्धौ भ्वा.प.से. ४३८
नृती गात्रविक्षेपे दि.प.से. ५८६

(प)

(डु)पचष् पाके भ्वा.उ.अ. ५१३
पद गतौ दि.आ.से. ६०१
पा पाने भ्वा.प.अ. ४६३
पा रक्षणे अ.प.अ. ५३२
पिश अवयवे तु.प.से. ६२७
पिष्लृ संचूर्णने रु.उ.से. ६५३
पीङ् पाने दि.आ.अ. ५९८
पुट संश्लेषणे तु.प.से. ६३०
पुष पुष्टौ दि.प.से. ५९३
पूञ् पवने क्र्या.उ.से. ६७६
पृङ् व्यायामे तु.प.से. ६४१
पृड सुखने तु.प.से. ६३०
पॄ पालनपूरणयोः जु.प.से. ५६८
प्रच्छ ज्ञीप्यायाम् तु.प.से. ६३९
प्रीञ् तर्पणे कान्तौ क्र्या.उ.अ. ६७०
प्सा भक्षणे अ.प.से. ५३२

(ब)

बुध अवगमने दि.आ.से. ६०२
ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि अ.उ.से. ५५२

(भ)

भज सेवायाम् भ्वा.उ.आ. ५१३
भञ्जो आमर्दने रु.प.अ. ६५३
भा दीप्तौ अ.प.अ. ५३२
भिदिर् विदारणे रु.उ.अ. ६४५
(ञि)भी भये जु.प.अ. ५६७
भुज पालनाभ्यवहारयोः रु.प.अ.६५३

भुजो कौटिल्ये तु.प.अ. ६३२
भू सत्तायाम् भ्वा.प.से. ३७९
भृञ् भरणे भ्वा.उ.अ. ५०९
(डु)भृञ् धारणपोषण० जु.उ.अ.५७६
भ्रस्ज पाके तु.प.से. ६१५
भ्रंसु अवस्रंसने भ्वा.आ.से. ५०३

(म)

मनु अवबोधने तु.अ.से. ६६७
(टु)मस्जो शुद्धौ तु.प.अ. ६३२
माङ् माने शब्दे जु.आ.अ. ५७६
माङ् माने दि.आ.अ. ५९८
(ञि)मिदा स्नेहने भ्वा.आ.से. ५०३
मिल संगमे तु.प.से. ६२१
मीञ् हिंसायाम् क्र्या.उ.अ. ६७०
मुच्लृ मोचने तु.उ.अ. ६२१
मुष स्तेये क्र्या.प.से. ६८१
मृङ् प्राणत्यागे तु.आ.अ. ६३९
मृड सुखने तु.प.से. ६३०
मृश आमर्शने तु.प.आ. ६३२
मृष तितिक्षायाम् दि.उ.से. ६०३

(य)

यज देवपूजादिषु भ्वा.उ.अ. ५१३
या प्रापणे अ.प.अ. ५३०
यु मिश्रणामिश्रणयोः अ.प.से. ५३०
युजिर् योगे रु.उ.अ. ६४५
युञ् बन्धने क्र्या.उ.अ. ६७६
युध संप्रहारे दि.आ.अ. ६०२

(र)

रा दाने अ.प.अ. ५३२
रिचिर् विरेचने रु.उ.अ. ६४५
रुच दीप्तौ भ्वा.आ.से. ५०३
रुजो भंगे तु.प.अ. ६३२
रुधिर् आवरणे आ.उ.अ. ६४४

(ल)

ला आदाने अ.प.अ. ५३२
लिप उपदेहे तु.अ.अ. ६२६
लिह आस्वादने अ.उ.अ. ५५२
लुप्लृ छेदने तु.प.अ. ५२३
लुभ विमोहने तु.प.से. ६२७
लूञ् छेदने क्र्या.उ.से. ६७८

(व)

वनु याचने त.आ.से. ६६७
वह प्रापणे भ्वा.उ.अ. ५१७
वा-गतिगन्धनयोः अ.प.अ. ५३२
विचिर् पृथग्भावे रु.उ.अ. ६४५
(ओ)विजी भय० तु.आ.से. ६५३
विद विचारणे रु.आ.अ. ६५५
विद ज्ञाने अ.प.से. ५३२
विद सत्तायाम् दि.आ.अ. ६०२
विद्लृ लाभे तु.उ.अ. ६२३
विश प्रवेशने तु.प.अ. ६३२
वृङ् सम्भक्तौ क्र्या.आ.से. ६८१
वृञ् वरणे क्र्या.उ.से. ६७९
वृतु वर्तने भ्वा.आ.से. ५०३
व्यज व्याजीकरणे तु.प.से. ६२७
व्यध ताडने दि.प.अ. ५९२
व्रज गतौ भ्वा.प.से.. ४४१
(ओ)व्रश्चू छेदने तु.प.अ. ६२७

(श)

शद्लृ शातने तु.प.अ. ६३२
शिष्लृ विशेषणे रु.प.अ. ६५३
शीङ् स्वप्ने अ.आ.से. ५४४
शुच शोके भ्वा.प.से. ४३०
शुन गतौ तु.प.से. ६३०
शुभ दीप्तौ भ्वा.आ.से. ५०३
शुष शोषणे दि.प.अ. ५९३
शो तनूकरणे दि.प.अ. ५९०
श्रा पाके अ.प.अ. ५३२
श्रिञ् सेवायाम् भ्वा.उ.से. ५०९
श्रीञ् पाके क्र्या.उ.से. ६७०
श्रु श्रवणे भ्वा.प.अ. ४७१
श्विता वर्णे भ्वा.आ.से. ५०३

(ष)

षणु दाने त.उ.से. ६५९
षद्लृ विशरणगत्य० तु.प.अ. ६३२
षिच क्षरणे तु.उ.से. ६२३

षिञ् बन्धने स्वा.उ.अ. ६७३
षिध गत्याम् भ्वा.प.से. ४२७
षिवु तन्तुसन्ताने दि.उ.से. ५८६
षुञ् अभिषवे स्वा.उ.अ. ६०६
षूङ् प्राणिगर्भविमो० अ.आ.से. ५९६
षो अन्तकर्मणि दि.प.अ. ५९२
ष्णा शौचे अ.उ.अ. ५३२
(ञि)ष्विदा स्नेहन० भ्वा.आ.अ. ५०३

(स)

सृज विसर्गे दि.आ.अ. ६०२
स्कुञ् आप्रवणे स्वा.उ.अ. ६७३
स्तृञ् आच्छादने स्वा.उ.अ. ६७८
स्तृञ् आच्छादने क्र्या.उ.से. ६०९
स्फुट विकसने तु.प.से. ६३०
स्फुर सञ्चलने तु.प.से. ६३०
स्फुल सञ्चलने तु.प.से. ६३०
स्रंसु अवस्रंसने भ्वा.आ.से. ५०३
स्रम्भु विश्वासे भ्वा.आ.से. ५०३

(ह)

हन हिंसागत्योः अ.प.अ. ५२५
(ओ)हाक् त्यागे जु.प.अ. ५७३
(ओ)हाङ् गतौ जु.आ.अ. ५७६
हिसि हिंसायाम् रु.प.से. ६४५
हु दानादनयोः जु.प.अ. ५६४
हृञ् हरणे भ्वा.उ.अ. ५१३
ह्री लज्जायाम् जु.प.अ. ५६८
ह्वृ कौटिल्ये भ्वा.प.से. ४६९

इति लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थधातूनामकारादिवर्णक्रमेण-सूची